डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड : दो

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मानव प्रबोधन प्रन्यास

शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड : दो

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी

श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक

श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन

परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

प्रकाशक एवं मुख्य वितरक :
शिवार्चन प्रकाशन
मानव प्रबोधन प्रन्यास
श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
दूरभाष : 0151-2230982

अन्य प्राप्ति स्थान :
श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय
1-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट (1 तल्ला)
कोलकाता 700007
टेलीफैक्स : 033-22688215
e-mail : kumarsabha@vsnl.net

प्रथम संस्करण : 2010 ई.

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : चार सौ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003

Dr. Harbans Lal Oberai Samagra : Khand-2
Edited by Swami Samvit Subodhgiri

₹ 400



प.पू. श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर
(1906-1973)
डॉ. ओबराय के प्राण प्रेरक

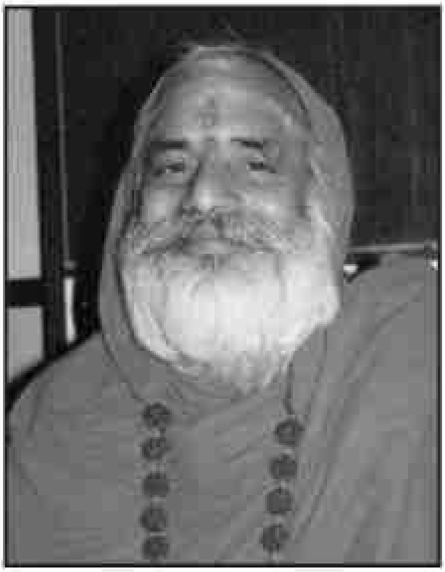
यह कृति प. पू. गुरुजी के श्रीचरणों में सादर समर्पित है।

प्रस्तुतकर्ता
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं।



संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियां प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुस्कान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डा. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे— यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि

विषय-वस्तु

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरें जमां हमारा।

—इकबाल

युग पर युग बीत गये, युग पर युग बीतते जा रहे हैं और युग पर युग बीत जायेंगे तब भी हमारी संस्कृति अजर-अमर बनकर खड़ी है, दुर्भाग्य की सबसे अधिक ठोकरें खाकर भी चिरंजीवी बनी हुई है। जबकि अन्य संस्कृतियां छोटे-मोटे आघातों से सदा के लिये विलुप्त हो गयी हैं। आज उनको जानना है तो इतिहास के पृष्ठों में और अजायबघरों में जाना होगा।

तो भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण यह आज भी चिरंजीवी बनी हुई है। सारे विश्व के विद्वान् इस पर आश्चर्यचकित हैं।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियां होती हैं। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, युक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

विषय-वस्तु को पहले खण्ड के सम्पादकीय में विस्तार से देखें।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेश वास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ टाकुर, राजा राममोहनराय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टाकुर पैदा किये।

हमारी संस्कृति के चिरंजीवी होने का रहस्य—

भारतीय संत परम्परा और सेमेटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास जी ने '**मुदमंगलमय संत समाजू**' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमेटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। उनके यहाँ तो काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य, आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। जैसे फ्रैंसिस जेवियर ने गोवा में कैसा अमानुषिक अत्याचार किया। उसे पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएं, दिल दहल जाएगा। उसने घोषणा करवा दी कि सब जगह मन्दिर नष्ट कर दिये जाएं। सब मूर्तियाँ तोड़ दी जाएं। मैं नहीं जानता कि मन्दिरों के गिराये जाने और मूर्तियों के तोड़े जाने को प्रत्यक्ष देखकर जो मुझे प्रसन्नता होती है उसको शब्दों में कैसे वर्णन किया जा सकता है। एक जैसुइट की शपथ पढ़ें तो करुणा, मानवता से विश्वास उठ जायेगा। कोलम्बस ने अमेरिका में क्या अत्याचार नहीं किये? उस देश के मूलवासियों को समूल रूप से नष्ट कर दिया और वह फ्रैंसिस जेवियर, वह कोलम्बस उनके लिये महान् संत है, महान् पुरुष है, आदर्श पुरुष है, ईसाई संस्कृति के प्रतीक हैं।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान् बुद्ध, जो त्याग और

आत्मविजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ क्योंकि उसने राज्य सत्ता त्याग दी, भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसलिये महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है, तपस्या में है, निःस्वार्थ सेवा में, ज्ञानदान में है, परदुःखकातरता में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में है, अपने पंथ विस्तार में है चाहे उसके लिये सारी मानव-जाति का संहार हो जाय।

यही स्थिति इस्लाम की है। उनके आदर्श पुरुष हैं महमूद गजनवी जिसने कई बार सोमनाथ मन्दिर को लूटा, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, मानवता को अपमानित किया, स्त्री-पुरुषों को दास-दासी, रखैल बनाकर विदेशों में बेचा। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद बिन कासिम जिसने सत्रह वर्ष की आयु में सिंध पर विजय प्राप्त की। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद गौरी जिसने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया। उनके लिये औरंगजेब महान् मुगल सम्राट है उसे वे जिन्दा पीर मानते हैं। जिन्ना उनके यहां महान् पुरुष है जिसने देश को विभाजित किया।

इस प्रकार भारतीय संत-परम्परा और सेमेटिक संत-परम्परा जिसमें ईसाई, मुसलमान व पश्चिमी देश आते हैं, भारतीय आदर्श पुरुष और सेमेटिक आदर्श पुरुष में मूलभूत अंतर है। हमारे यहां जिनको असुर, दैत्य, राक्षस-पिशाच माना गया उनके यहां वे महान् पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। अतः सभी परम्पराओं के संत एक समान है इस भ्रम में न रहें। हमारे यहाँ भी रावण, कंस, हिरण्यकशिपु हुए हैं पर वे हमारे आदर्श पुरुष नहीं हैं, उन्हें विकृति माना गया और दण्ड के पात्र बने। पश्चिम में भी सुकरात, मुसलमानों में रहीम, दाराशिकोह, सूफी संत सरमद, रसखान, जायसी, उशाउल्लाखान, मुहम्मद करीम छागला, भूतपूर्व राष्ट्रपति डा.अब्दुल कलाम आदि के संतत्व, महानता का कारण भी उनका भारतीय विचार परम्परा के प्रभाव में आना और उसके अनुसार ढल जाना रहा। इसलिये वे मानवता के पुजारी और भारतभक्त बने।

आज भी मदरसे में जो शिक्षा दी जाती है, कोर्स चलते हैं, उनमें एक पाठ भी भारतीय महापुरुष पर नहीं है। गांधीजी मुसलमानों को मूल राष्ट्रीयधारा में लाने के लिए उनकी सारी अनुचित मांगें स्वीकारते रहे, अन्त में विभाजन को स्वीकार कर लिया और अपने प्राणों की आहुति देकर भी उनको अपना नहीं बना सके। पंडित नेहरूजी भी नहीं जो स्वयं को धर्म की दृष्टि से मुसलमान मानते थे। जो आजीवन उनके संरक्षक रहे वे भी उनके पाठ में नहीं हैं। सब मतांध मुसलमान ही उनके आदर्श पुरुष हैं। यही स्थिति परम्परागत ईसाइयों की एवं पादरियों की है। अतः सभी परम्परा के महापुरुष एक से हैं इस भ्रम में न रहें। महापुरुषों संबंधी लेख दूसरे खण्ड में संग्रहित किये गये हैं।

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

परामर्श मण्डल

- **श्री नरेन्द्र कोहली**
  175, वैशाली, पीतमपुरा, नई दिल्ली-110034
  09871681382

- **श्री इन्द्रेश कुमार**
  R.S.S. की अखिल भारतीय कार्यकारिणी के सदस्य
  09818354177

- **श्री बालमुकुन्दजी संगठन सचिव**
  अ.भा.ई. संकलन योजना बाबा साहेब आपटे भवन, केशवकुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली-55
  09212447876

- **श्री बालकृष्ण नायक**
  केन्द्रीय उपाध्यक्ष (विश्व हिन्दू परिषद्) (हिन्दू-बौद्ध समन्वय प्रभारी)
  09313857322

- **श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र 'पंकज'**
  निदेशक, निराला सृजनपीठ,
  सी-165/1, प्रोफेसर कालोनी,
  भोपाल-462002 (म.प्र.)
  09425602596

- **प्रो. कुसुमलता केडिया**
  निदेशक-गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी
  09235619406

- **श्री आनन्द मिश्र 'अभय'**
  संपादक, राष्ट्र धर्म (हिन्दी मासिक)
  संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ
  0522-4041494

- **डा. मदनलाल ओबराय**
  46, चन्द्रलोक इनक्लेव, पीतमपुरा
  नई दिल्ली-110034
  011-27195675, 47093166

- **श्री जुगलकिशोर जैथलिया**
  उपाध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी, पश्चिम बंगाल
  42, कालीकृष्णा टैगोर स्ट्रीट,
  कोलकाता-7
  09830341747

- **डा. बद्री प्रसाद पंचोली**
  बी-6, दातानगर, रेम्बल रोड, अजमेर-305006
  0145-2425664

- **श्री सीताराम महर्षि**
  कृष्ण कुटीर,
  रतनगढ़ 331022 (राज.)
  09413218586

- **श्री तोलाराम लाठ**
  राजस्थान कम्प्यूटर्स, बीकानेर
  09351688268

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास
खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व
खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मूल्य : 1200 रु. (तीनों खण्ड) प्रत्येक 400 रु.

अनुक्रम

विभूति वन्दना

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक कुछ ऐसी महान् विभूतियों के जन्म-जयन्ती उत्सव आते हैं जिनमें से एक-एक पर विशद् विचार एवं विवेचन की आवश्यकता है, किन्तु निरन्तर गतिमान काल-सरिता के अनन्त प्रवाह में यह पर्वरूपी जंगम तीर्थ इतनी शीघ्रता से बहे जाते हैं कि हमारे वन्दना-व्याकुल हृदयों की भावांजलि चढ़ने से पूर्व ही आगे निकल जाते हैं। अतः काल-सरिता के सूने तट से ही उन महान् विभूतियों को अपनी श्रद्धा के दो-चार फूल चढ़ाने का अपना लोभ संवरण न कर पाने के कारण एक ही पुष्पमालिका से सातों विभूतियों की अर्चना करने का लघु प्रयास कर रहा हूँ।

अलौकिक प्रेम की अमर आराधिका : श्रीराधा

जहाँ कृष्ण वर्ण के श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद मास की कृष्णाष्टमी को होता है, वहीं गौर वर्ण की सर्वशुक्ला श्रीराधाजी का जन्मोत्सव भाद्रपद मास की शुक्ल अष्टमी को मनाया जाता है। जैसे नभ से नीलिमा, चन्द्र से चन्द्रिका, जल से लहर तथा अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं हो सकती है वैसे ही भारत की साहित्यिक एवं धार्मिक परम्पराओं में श्रीकृष्ण से राधा को भिन्न नहीं किया जा सकता। किन्तु राधाजी की ऐतिहासिकता अभी तक भी इतिहासकारों की त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा के लिए चुनौती बनी हुई है। श्रीमद्भागवत महापुराण राधाजी के विषय में रहस्यपूर्ण मौन धारण किए हुए हैं। कहा जाता है कि वहाँ वर्णित एक विशेष गोपी, जिससे कृष्ण का विशेष अनुराग था, वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी ही हैं। वैसे तो राधाजी के नाम से 'श्रीराधिकोपनिषद्', 'राधाकातापिनी उपनिषद्' भी मिलते हैं, पर वे उपनिषद् कितने प्राचीन हैं यह कहना कठिन है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है—

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्नभिन्ना यथा च सृष्टि कुरुते सनातनः।
शिवश्च सर्वा कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिता।।

रासेश्वरी श्रीराधा ब्रह्म से अभिन्न है, चराचर जगत् की स्वामिनी है। सृष्टि में भी श्रीराधा सत्ता, ज्ञान और आनन्द रूप से विराज रही हैं। शोभा, कला और रमणीयता जहाँ है, वह उन्हीं के श्रीविग्रह की ही देन है।

श्री रामहरिदासजी शास्त्री वेदांताचार्य ने सबको विस्मय में डालते हुए वेदों तक में राधा तत्त्व को खोज निकाला है। अश्वलायनीय शाखा—ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

राधया माधवो देवो माधवेनैव
राधिका विभ्राजन्ते जनेष्विति।

अर्थात्, श्रीराधाजी के द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णजी के द्वारा श्रीराधा सुशोभित होते हैं, वे अपने भक्तों में इस प्रकार हैं जैसे एक प्राण दो देह हों।

उक्त विद्वान् ने सामवेद से निम्न उदाहरण दिया है—

अनाद्योयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिका रूपं विधाय समाराधन तत्परोभूत तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेद विदोवदन्ति तस्मादानन्द मयोऽयं लोक इति।

अर्थात्, सबका आदि कारण पुरुष एक ही है, ऐसे उसी एक रूप को दो प्रकार वाला करके सम्पूर्ण रसों को एकत्रित करता है और वह स्वयं ही इसीलिए रमणी रूप धारण कर लीला आराधन में तत्पर होता है इसीलिए श्रीराधा रूप से स्वयं ही मान करके श्रीकृष्ण रूप से अपने आप को मानता है। उस रसिका नन्दिनी श्रीराधा को वेद के रहस्य जानने वाले ही जानते हैं और वर्णन करते हैं। इसीलिए गोलोक आनन्दमय है।

इतिहासकारों के गम्भीर विचार के लिए अथर्ववेद में भी श्रीराधा के दर्शन हैं—

येयं राधायश्च कृष्णे रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थ द्विधाऽभूत।

अर्थात्, श्रीराधा और कृष्ण—दोनों एक ही रस के समुद्र हैं पर क्रीडा के लिए दो बने हैं।

राधा-कृष्ण की विश्वविश्रुत गाथा का सबसे अधिक व्यथापूर्ण स्वर है राधा-कृष्ण का जीवनव्यापी दारुण वियोग। अश्लीलता से अंधी हुई आंखों वाले आलोचकों को स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण केवल 12 वर्ष की बाल्यावस्था में ही गोकुल तज कर मथुरा में कंस का संहार करने के लिए आ गए थे तथा उसके पश्चात् वे वहीं से द्वारका चले गए और जीवन भर व्रज में नहीं आए। जाते समय उन्होंने राधा को कहा था कि मैं कंस को मार कर कल ही वापस आ जाऊंगा। किन्तु वह 'कल' कभी न आया। हरिऔधजी के 'प्रिय प्रवास' में राधा पवन को दूत बनाकर संदेश भेजती है—

मेरे प्यारे नव जलद से
कंज से नेत्र काले,
जाके आए न मधुवन से
औ न भेजा सन्देसा।

मैं रो रो के प्रिय-विरह में
बावली हो रही हूं
जा के मेरी सब दुःख-कथा
श्याम को तू सुना दे।।

श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने भावनाट्य 'राधा-कृष्ण' में उस चित्र को खींचा है जब जीवन के अन्तिम प्रहर में कुरुक्षेत्र में कुंभ के मेले पर राधा-कृष्ण का थोड़े समय के लिए मिलन होता है—

'बहुत दिनों में मिले राधा'

'पर मिले तो, मैं तो कहती थी मिलेंगे और जरूर मिलेंगे।'

'हँस रही हो राधा?'

'हँसूँ ना, कितने दिन बाद हँसी हूँ, जानते हो कृष्ण?'

'शायद अस्सी बरस बाद।'

'क्या तुम रो रहे हो कृष्ण?'

'नहीं राधे'

'कृष्ण, बहुत दिन हुए, पर तुम्हें मैं देख सकती हूँ, देखो तुम्हारे सिर पर मोर मुकुट है, कमर में पीतांबर है, हाथ में बंसी है। (सोचकर) न, बंसी नहीं है! बंसी तो मेरे पास है। याद है कृष्ण! जब तुम गोकुल से चले थे तब मैंने छिपा ली थी।'

'याद है राधा'

'कितने बरस हुए कृष्ण?'

'अस्सी बरस'!!'

बस फिर इसके पश्चात् राधा और कृष्ण का इहलौकिक लीला में कभी पुनर्मिलन नहीं हुआ। पावन स्नेह की इस विश्व-दुर्लभ गाथा का यह सबसे अधिक वेदनापूर्ण स्वर महाकवि हरिऔध के कंठ से गूंज उठा है—

सच्चे स्नेह अवनिजन के
देश में श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय
हृदयाविश्व प्रेमानुरक्ता,
हे विश्वात्मा! भारत भुव
के अंक में और आवें,
ऐसी व्यापी विरह घटना
किन्तु कोई न होवें।।

राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र

सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव के ज्येष्ठ पुत्र, उदासीन सम्प्रदाय के महान् सन्त पुण्यश्लोक श्री श्रीचन्द्राचार्यजी का जन्म भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन संवत् 1561 में हुआ था। इन चमत्कारी सन्त ने पेशावर, काबुल, कंधार, सिंध और पंजाब में स्मार्त वैदिक धर्म का प्रचार किया। जनता को शासन के अत्याचार से बचाया। कहा जाता है कि जब गुरु नानक देवजी ने गुरु गृह की गद्दी गुरु अंगद देव को दे दी तो श्रीचन्द्रजी ने उपहास में कहा कि 'हुआ क्या यदि गद्दी किसी कोढ़ी कराइ' को दे दी हो।' इस बात से ही कहा जाता है कि दूसरी बादशाही से लेकर 5वें गुरु तक सभी गुरुओं की अंगुलियों में कोढ़ के चिह्न पाए जाते थे। गुरु अर्जुन ने श्रीचन्द्रजी से मिलकर यह कोढ़ क्षमा करवाया था। अमृतसर का सरोवर बनाने के पीछे भी बाबा श्रीचन्द्रजी की ही प्रेरणा थी। गुरु अर्जुन देव ने जब तरनतारन का सरोवर बनवाया तो बार-बार उसका पानी बह जाता था। कहा जाता है कि बाबा श्रीचन्द्रजी ने उसे एक बावली से मटका भरकर वहाँ ले जाने को कहा तब कहीं सरोवर का पानी ठहरा। श्रीचन्द्रजी के जीवन की एक घटना जो प्रायः इतिहास के प्रकाश में अभी तक नहीं आई है, वह है उनकी महाराणा प्रताप से भेंट। उन दिनों मेवाड़ केसरी वन-वन घूम रहे थे। श्रीचन्द्रजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया। प्रातःकाल महाराणा प्रताप उनसे मिलने के लिए गए। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को नैतिक बल दिया तथा कहा कि जीत या हार तो सदा प्रभु के हाथ में है किन्तु धर्म के लिए युद्ध करने वाले पर ईश्वरीय आशीर्वादों की वृष्टि होती है। उन्होंने प्रताप को यह भी बताया कि प्रताप और वे (श्रीचन्द्रजी)—दोनों रघुकुल-गौरव रामचन्द्र महाराज की सन्तान हैं। लव और कुश की सन्तान ने जब लाहौर से प्रस्थान किया तो कुछ सन्तानें नेपाल में जा बसीं, कुछ राजपूताने में और कुछ काशी में जाकर वेद पढ़ने से वेदी कहलाईं। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को बताया कि आप राजस्थान के सूर्यवंशी राजा हैं और हम वेदाध्ययन के कारण वेदी कहलाने वाले सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। दोनों भगवान् राम की सन्तानें हैं और भाई-भाई हैं। इससे प्रताप का नैतिक बल बढ़ा और वह श्रीचन्द्रजी के प्रेम से गद्गद हो गया। कहा जाता है कि भामाशाह को प्रताप की सहायता के लिए सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा देने वाले भी महान् सन्त बाबा श्रीचन्द्र ही थे।

धरती को तीन डग से मापने वाले बौने ब्राह्मण—वामन

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वामन द्वादशी का उत्सव मनाया जाता है। अम्बाला नगर के हिंदुओं का यह प्रमुख उत्सव है। वामन की कथा अत्यंत प्राचीन है। त्रिविक्रम विष्णु का यश तो वेदों में भी गूंज रहा है। त्रिविक्रम का अर्थ तीन पग में जगती को मापने वाला ही है। इसका अर्थ तीन विक्रम वाला भी है। विष्णु के तीन पगों से ही त्रिलोकी बनी है, त्रिभुवन खड़ा है।

ऋग्वेदोक्त विष्णु के इस वर्णन का अर्थ और्णवाभ ने यह लगाया है कि विष्णु सूर्य-देवता हैं; उनके तीन पग प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या हैं। शाकपूर्णि नामक विद्वान् ने इन्हें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश माना है। त्रिपाद पुरुष नारायण का वर्णन ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में भी है। विष्णु आकाश, अंतरिक्ष तथा पृथ्वी—तीनों में वर्तमान हैं। इन तीन पगों से विश्व का नियमबद्ध होना, बलशाली असुर बलि का बांधा जाना स्पष्ट होता है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विष्णु ही यज्ञ हैं। यज्ञ प्रथमपद से पृथ्वी, द्वितीय से अंतरिक्ष तथा तृतीय से आकाश का अतिक्रमण कर लेता है।

राजा बलि बलशाली आसुरी-शक्ति के प्रतीक थे। पुराणों में तो वामन का अर्थ बौना है किंतु यजुर्वेद में वामन रुद्र का भी एक विशेषण है जिसकी व्याख्या स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार की है—**वामं प्रशस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य।** अर्थात् जो विज्ञान तथा प्रज्ञा से युक्त है, वही वामन है।

अथर्ववेद में सूर्य को ही स्पष्ट रूप से विक्रम विष्णु कहा गया है—'आकाश से उत्पन्न जगत् में सर्वप्रथम किरणों वाला, वात के समान शीघ्रगामी, वृष्टिकारी मेघों के गर्जन से यह आदित्य तीनों लोकों में अपना प्रभाव फैला कर हमें हर्षित करें।'

माननीय श्री बाबा साहब आप्टे ने अपने ग्रन्थ 'हमारे राष्ट्रजीवन की परंपरा' में वामन की विस्मयकारी गाथा का एक राष्ट्रीय अर्थ दिया है। हिरण्यकशिपु असीरिया निवासी असुर भारत पर आक्रमण करने आए थे। हिरण्याक्ष का संहार वाराह अवतार रूपी जनशक्ति ने वाराहमूल (बारहमूला, काश्मीर) के स्थान पर किया। हिरण्यकशिपु के संहार के लिए 'नृसिंह' अवतार हुआ जो जनता के क्रोध का विवेकशून्य आकस्मिक विस्फोट था। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद का जन्म भारत में हुआ था। भारत का अन्न-जल ग्रहण कर वह भारत भक्त बन गया। उसके राज्य में प्रजा संतुष्ट थी। उसके वंशज बलि का राज्य सुराज्य तो था पर स्वराज्य नहीं था। बलि ने अपने सुराज्य से जनता के हृदय पर भी राज्य कर लिया। इन्द्र का सिंहासन भी डोल उठा। श्रीयुत् आप्टेजी ने प्रह्लाद के राज्य की अकबर से तुलना की है तथा बलि के राज्य की अंग्रेजी-शासन से। 'स्वराज्य की प्यास सुराज से नहीं बुझ सकती।' शासन के सभी स्थानों पर बलि ने असुरों को नियुक्त कर दिया था। इस भीतरी असन्तोष के वातावरण में देवमाता अदिति के गृह में वामन का अवतार हुआ। एक बार उसने हिमालय में छेद करके गंगा को मर्त्यलोक में लाने का विफल प्रयत्न भी किया था। वामन या बौने की बुद्धि प्रायः प्रखर होती है। तीन डग धरती मांगने में निस्पृह वृत्ति व्यक्त होती है। श्री आप्टे के मत में वामन ने जनता के दिलों के भीतर स्वराज्य प्रेम की अग्नि को सुलगाया। राजा बलि ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा से ही संतुष्ट रखता था। वे तनिक भी नहीं

बोलते थे। क्षत्रियों का सेना में कोई स्थान नहीं था। शिक्षा का क्रम असुरगुरु विरोचन तथा शुक्राचार्य के तन्त्रानुसार चलता था। नास्तिकता तथा भोगवाद का प्रसार हो रहा था। वामन ने वर्णाश्रम धर्म का प्रचार किया। बलि ने वामन को भी भोगैश्वर्य का प्रलोभन दिखाकर अपने वश में करना चाहा। वामन ने बलि को उसके ही मोर्चे पर परास्त करना चाहा। वे उसके यज्ञ में दक्षिणा के लिए पहुँचे। शुक्राचार्य ने बलि को दान का वचन देने से रोका। व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ एकाक्ष ही होते हैं। शुक्राचार्य को भी एकांतिक स्वपक्षनिष्ठा के कारण लाक्षणिक रूप में काणा कहा जाता है। वामन को कुछ देकर आंदोलन शांत करने की इच्छा से बलि ने पग भर धरती दान करने का वचन दे दिया। त्रिपाद भूमि की याचना का अर्थ है त्रैवर्णिकों को अपने वर्णविहित-कर्मविहित कर्म करने की सुविधा प्रदान की जाए। इन तीनों पगों की व्याख्या में बलि का सारा शासन हिल गया।

प्रथम पग—बलि अपने यज्ञ बंद करे तथा विरोचन की शिक्षा-प्रणाली को समाप्त किया जाए।

दूसरा पग—क्षत्रियों को राज्यतंत्र तथा सेवा में प्रवेश मिले।

तीसरा पग—भारतीय वैश्यवर्ग को व्यापार करने की छूट दी जाए।

तीसरे पग के विस्तार से असुर वर्ग कांप उठा। किंतु वचनबद्ध होने के कारण वामन के तीसरे चरण के आगे भी अपने मस्तक को झुकाना पड़ा तथा इस प्रकार भारत असुर शासन से विमुक्त हुआ। इस कथा के राष्ट्रीय अर्थ को ही ठीक अर्थ बताते हुए श्री आप्टे श्रीमद्भागवत से बलि के वामन को कहे हुए निम्न शब्द उद्धृत करते हैं—

अथाहमप्यात्म रिपोस्तवान्तिकम दैवेन नीतं प्रसभं त्याजित श्रीः

अर्थात्, हे वामन! वैभव का त्याग करने के लिए विवश करके, नियति ने मुझे तेरे जैसे शत्रु के पास ला पटका है। इससे प्रकट है कि बलि को वामन ने बुद्धिकौशल से हराया था। वामन ने बलि को सुतल नामक पाताल में (दक्षिण भारत में) अपने द्वारा सुरक्षित स्थान में राज्य के कैदी के रूप में रख छोड़ा।

बलि-वामन की यह रोमांचकारी प्राचीनतम गाथा अपने गर्भ में और भी कितने-कितने अद्भुत अर्थ छिपाए हुए है यह भावी भारत के पुरातत्त्ववेत्ताओं की गंभीर गवेषणा के उद्घाटन से प्रकट होगा।

प्राचीन भारत का महानतम इंजीनियर—विश्वकर्मा

विश्वकर्मा जयन्ती एक अत्यन्त प्राचीन उत्सव है। पर दीर्घकाल तक विस्मरण हो जाने के बाद दो-एक वर्षों से भारतीय मजदूर संघ ने इसे पुनः एक राष्ट्रव्यापी उत्सव के रूप में महत्त्व दिया है। मजदूर संघ के महामंत्री श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने

अपने एक लेख में साम्यवादी दल द्वारा प्रचारित 'मई दिवस' को मजदूर दिवस मनाए जाने की आलोचना की है, क्योंकि वह पिछले केवल 73 वर्ष से प्रारंभ हुआ है। क्या उससे पूर्व हमारे यहाँ श्रमिक नहीं होते थे? फिर वह एक विदेशी परम्परा का दिवस है। वास्तव में भारतीय परम्पराओं के अनुकूल कोई श्रमिक दिवस है तो वह 'विश्वकर्मा जयन्ती' ही है।

विश्वकर्मा देवताओं के शिल्पी तथा स्वयंभु मन्वन्तर में प्रजापति थे। हस्तशिल्प तथा कलाशिल्प द्वारा वे विविध वस्तुओं का निर्माण करते थे। वेदों में तो विश्वकर्मा यात्वष्टा (तरखान मिस्त्री) नाम स्वयं विश्व के निर्माता ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। त्रिपुरासुर को मारने के लिए भगवान् शंकर के लिए इन्होंने रथ बनाया था। वे वास्तुशिल्प तथा भवननिर्माण शिल्प—दोनों में पारंगत थे। सोने की लंका का निर्माण, श्रीकृष्ण की द्वारका का निर्माण तथा पाण्डवों के लिए इन्द्रप्रस्थ का, जो वर्तमान दिल्ली के स्थान पर अवस्थित था, 5000 वर्ष पूर्व के वैभवशाली नगर का निर्माण भी विश्वकर्मा ने ही किया था। लंका का निर्माण रामायण युग का है तथा द्वारका एवं इन्द्रप्रस्थ का निर्माण महाभारत युग का है। या तो विश्वकर्मा इतनी लंबी आयु वाले होंगे अथवा मूल विश्वकर्मा के उत्तराधिकारी भी 'विश्वकर्मा' उपनाम से पुकारे जाते होंगे।

देवताओं के शस्त्र इत्यादि बनाने में भी वे पारंगत थे, रामायण युग से भी बहुत पहले इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम में वृत्रासुर के हनन के लिए इन्द्र ने जो वज्र प्रयोग किया था, उसका भी ऋषि दधीचि की हड्डियों से निर्माण विश्वकर्मा ने ही किया था। हड्डियों से अमोघ अस्त्र बनाने की कला अभी तक आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं को भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः वह वज्र अणुबम जैसा मारक अस्त्र था जिससे अन्यथा न मरने वाला वृत्रासुर भी मारा गया। विवस्वान् (सूर्य) के अतिरिक्त तेज को कर्मकार के चक्र (सम्भवतः खराद) द्वारा निकालकर विश्वकर्मा ने विष्णु के लिए सुदर्शन चक्र, शंकर के लिए त्रिशूल तथा इन्द्र के लिए वज्र बनाया।

यज्ञवेदी का निर्माण भी विश्वकर्मा ने किया। क्षौरकर्म (हज़ामत के उद्योग), बढ़ई, सुवर्णकार, कुम्भकार, दर्जी, कृषक, वास्तुशिल्पी—सभी व्यवसायों के आदिप्रवर्तक विश्वकर्मा ही माने जाते हैं। ऋग्वेद में तो कहा है कि पृथ्वी तथा स्वर्ग के निर्माता भी विश्वकर्मा हैं।

भाद्रपद मास की संक्रान्ति को विश्वकर्मा की जयन्ती का दिन माना जाता है। प्रभास नामक वसु की पत्नी महासती योगसिद्धा की कोख से इन देवशिल्पी का जन्म हुआ। विश्वकर्मा का विवाह असुरराज प्रह्लाद की पुत्री 'रचना' से हुआ। उसको 'विरोचना' अथवा 'प्रह्लादी' भी कहते हैं। इनके दो पुत्र हुए—विश्वरूप तथा वृत्र। विश्वरूप इतना विद्वान् था कि एक बार बृहस्पति के अप्रसन्न होकर चले जाने

पर इन्द्र ने विश्वरूप को (असुर कन्या का पुत्र होने पर भी) देवगुरु बना दिया। बाद में उसकी स्वामीभक्ति में संदेह होने पर इन्द्र ने विश्वरूप का वध कर दिया। इसीसे असंतुष्ट होकर विश्वकर्मा ने घोर तप करके 'इन्द्र शत्रु' पुत्र प्राप्त करने की कामना की। वह दूसरा पुत्र वृत्र हुआ जो इन्द्र का महानतम शत्रु वृत्रासुर बना। किंतु राष्ट्रपति इन्द्र के नाश में राष्ट्र का व्यापक अहित जानकर विश्वकर्मा ने अपने पुत्र वृत्रासुर के नाश के लिए स्वयं इन्द्र को ऋषि दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाकर दिया, जिससे वृत्रासुर का नाश हुआ। विश्वकर्मा की यह राष्ट्रभक्ति बेजोड़ है। राष्ट्र-हित के लिए स्वयं अपने पुत्र का बलिदान करने वाले उन भारत के महानतम शिल्पी विश्वकर्मा को सारे राष्ट्र की किंवा समूचे विश्व की वन्दना समर्पित हो।

भूमिहीनों को भूमि बांटने वाला सन्त विनोबा

महाराष्ट्र ने अनेक सन्तों को जन्म दिया। उन्हीं की महान् परम्परा में एक महान् सन्त धरती पर नंगे पांव घूमता-फिरता हुआ अपने महान् संदेश से धरती के बेटों को जगाता रहा। उस सन्त के भूदान आंदोलन से कोई सहमत हो अथवा न हो पर उस सन्त के प्रकाण्ड पाण्डित्य, सात्त्विक विनय, हृदय की मानवता तथा आत्मबल के विषय में दो मत नहीं हो सकते।

महाराष्ट्र के एक निर्धन घर में, शीत ऋतु में एक दिन रसोई घर में बैठी हुई एक माता रसोई कर रही थी। उसी चूल्हे के पास बैठा हुआ उसका 16 वर्ष का जवान बेटा आग ताप रहा था। उस लड़के को कुछ कागज फाड़कर अग्नि में डालते देखकर वह माँ अवाक् रह गयी। 'अरे विन्या, यह क्या कर रहा है—मैट्रिक की सनद फाड़कर जला रहा है?' 'हाँ माँ! मैं मैट्रिक का प्रमाणपत्र जला रहा हूँ?

'अरे बेटा, तेरे दस वर्ष के परिश्रम का फल है। इसके बिना तुझे नौकरी नहीं मिलेगी।' 'हाँ माँ! मैं नौकरी करने के लिए पैदा नहीं हुआ हूँ। अपनी विद्या से जनता-जनार्दन की सेवा करूंगा।' और सचमुच वह जनता-जनार्दन की सेवा के लिए जीवन अर्पण करने वाला सन्त विनोबा आज विश्व के रंगमंच पर महानतम महापुरुषों की कोटि में गणना करने योग्य है।

सन्त विनोबा का सन्देश है—'भारत भूमि में मनुष्य का जन्म पाना तो दुर्लभ ही है, यहाँ कीड़े-मकोड़े का जन्म पाना भी दुर्लभ है। यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँ की धूलि में जन्तु का जन्म लेना भी भाग्य की बात है क्योंकि सत्पुरुषों के पांव इस धरती पर पड़े हैं।' ऐसा वाक्य मैंने दुनिया की किसी और भाषा में नहीं पढ़ा। हर एक देश में मातृभूमि के लिए प्रेम होता है। परन्तु 'इस भूमि पर जन्तु का जन्म पाना भी दुर्लभ है'—ऐसा भाव अन्यत्र नहीं मिलेगा। भाईयो! ऐसी पुण्यभूमि में जन्म पाना है तो वैसे ही पुण्य के काम किया करो। हमारा घर, परिवार, सम्पत्ति, जमीन—ये सब चीजें हमारी नहीं हैं। ये सबकी सेवा के लिए हमारे पास आई हैं।

योगियों के लिए भी अति दुर्लभ उस महान् सन्त विनोबा को हमारी हृदयहारी वंदना।

धरती को अपने फण पर धारण करने वाले महासर्प—अनन्त

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को अनन्त चतुर्दशी उत्सव आता है। यह अनन्त शेषनाग कौन है जो धरती को अपने फण पर धारण कर रहा है? यह गंभीर विचार का विषय है। सहस्र फणधारी कमल तन्तु के समान श्वेत वर्ण, मणिमण्डित मौलि, एक कुंडल धर, नील वस्त्रधारी, अनन्त नाग शेष पुराणों में भगवान् का संकर्षण विग्रह माना गया है जो जगत् का आधार है, संपूर्ण पृथ्वी भगवान् शेष के एक फण पर सरसों के कण के समान टिकी हुई है। प्रलय के समय उनके फूत्कार मात्र की अग्नि से विश्व सूखे गोबर के समान भस्म हो जाता है। प्रभु का यह रूप प्राणतत्त्व का अधिष्ठान माना जाता है। पौराणिक रूपकों पर विचार करने से कुछ बड़े विलक्षण आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक अर्थ निकलते हैं। समुद्र के भीतर 'अनन्त' या 'शेष' नाम वाले सहस्रफण वाले सर्प पर विष्णु सो रहे हैं, उनकी नाभि से कमल निकला है और उस कमल पर ब्रह्माजी बैठे वेद गा रहे हैं।

महामनीषी डॉ. भगवानदास ने इसका बड़ा रोचक अर्थ किया है। आकाश को समुद्र भी कहते हैं। इस आकाश समुद्र में किरण सहित सूर्य स्वयं कमल पुष्पवत (तथा ऐसे अनेक अन्य ग्रह रूपी पुष्प) प्लवमान हैं, तैर रहे हैं। उनके ऊपर चेतनमय 'आदित्य नारायण' आदिशक्ति से उज्जीवित जीवों के बीज समूह, लेटे हैं, **ध्येयः सदा सवितृमण्डल मध्यवर्ती। नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः**। शास्त्र का कथन है कि सविता मंडल (सूर्यमंडल) के मध्य में बैठे हुए कमलासन वाले भगवान् नारायण का सदा ध्यान करना चाहिये। उस सूर्य नारायण की नाभि से सप्त रश्मिरूपी कमलनाल निकलती है। एक-एक के सिरे पर एक-एक ग्रह है। उनमें से एक पृथ्वी भी है। यह भी कमल सदृश है। बर्फ के गोले पर यदि कमल को उलटा कर पत्र फैलाकर रखा जाए तो आधुनिक धरती के गोले का रूप ही दिखाई देगा। इस कमल में पृथ्वी नामक ब्रह्म के अंड ब्रह्माण्ड की सूत्रात्मा पार्थिव ब्रह्मा बैठे हैं, यह पृथ्वी ही उनका कमलासन है। 'पृथ्वी पद्ममुच्यते' 'आकाश समुद्र में अनंत शेष' नामक महासर्प, असंख्य मंडल बांधे हुए प्रत्यक्ष ही फैला है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह चैतन्य शक्ति ही अनन्त सर्प है जो सब ब्रह्मांडों को सतत घुमा रही है। ज्योतिष-शास्त्र की दृष्टि से 'मिल्की-वे', 'देवपथ', 'आकाशगंगा' का रूप महासर्प का सा है, उसी के हजारों फणों, मण्डलों-चक्रों में से एक; एक के सिर पर रखा हुआ उसका एक अणु हमारा सौर जगत् है। उसे 'शेष' इसीलिए कहते हैं कि अनेक बार सृष्टि, स्थिति, लय होते ही रहते हैं, पर उस अनंत का नाश नहीं होता, वह सदा शेष रह जाता है। प्रलय के बाद 'शिष्ट' शेष बचे तत्त्वों से नई सृष्टि होती है। इस 'शिष्ट' बचे हुए मनु के आदेश को

भी 'शिष्टाचार' कहा जाता है। महाप्रलयों में भी आकाशरूपी समुद्र में प्रधान मूल प्रकृति रूपी अनंत 'शेष' 'शेष' रह जाता है। काल प्रवाह रूपी गरुड दिन-रात रूपी दो पक्षों से सदा उड़ता हुआ, छोटे-छोटे सर्परूपी कुंडलित चक्रवत् युगों को खा जाता है, पर अनंत शेष को नहीं खा सकता। सब कुछ नाश हो जाने पर अंततोगत्वा ब्रह्म तत्त्व ही बचता है। अतः शेष को शेष भगवान् भी कहा गया। उन्हीं 'अनंत' को सान्त की सादर वन्दनाएं समर्पित हों।

अलौकिक प्रज्ञा के स्वामी सन्त अप्पय दीक्षित

इस पुण्यभूमि भारत में समय-समय पर अति दुर्लभ महान् आत्माओं का जन्म हुआ करता है। भाद्रपद मास की पूर्णिमा दक्षिण भारत के एक अलौकिक सन्त मनीषी अप्पय दीक्षित के जयंती उत्सव के कारण पावन हो गई है। दक्षिण भारत के उत्तर आरकोट जिले के अरणी नामक स्थान के निकट ही 16वीं शती में अप्पय दीक्षित का जन्म हुआ था। उनका नाम दक्षिण भारत के सबसे महान् नामों में गिना जाता है। वे संस्कृत के 104 ग्रंथों के लेखक थे, वेदांत विषयक उनके ग्रंथों से उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य स्पष्ट झलकता है। उनके वेदांत ग्रंथों में 'चतुर्मत सार-संग्रह' विख्यात है। उसमें 'न्यायमुक्तावली', 'न्यायमयूखमल्लिका', 'नयमणिमाला' तथा 'नय मंजरी'—4 भाग हैं। अप्पय दीक्षित संस्कृत साहित्य, कविता, अलंकार, दर्शन—सभी में अद्वितीय थे। अलंकारशास्त्र पर उनका 'कुवलयानन्द' सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। उनकी शिव-स्तुति की कविताएं बड़ी लोकप्रिय हैं। उनका वेदांत भाष्य 'परिमल' नाम से प्रसिद्ध है। एक बार वे अपने ससुराल के गांव में गए। लोगों ने इस प्रकार स्वागत किया कि जैसे कोई देवता गांव में पधार रहे हों। बहुत लोग अप्पय दीक्षित को भगवान् शिव का अवतार मानते थे। जब वे दक्षिण भारत के प्रसिद्ध तिरुपति मंदिर में गए तो वैष्णवों ने उन्हें शैव मानकर उनको अन्दर आने की अनुमति नहीं दी। प्रातः होते ही लोगों ने वहाँ विष्णु की जगह शिव की मूर्ति पाई। श्री दीक्षित के चरणों में गिरकर उन्होंने मूर्ति को पुनः विष्णु रूप में परिवर्तित कराया। जयपुर में श्री अप्पय दीक्षित ने वल्लभ के अनुगामियों से शास्त्रार्थ किया। उनका ग्रंथ 'सिद्धांतलेश' शंकरमत का सार है। वे भारत के महान् ज्योतिर्धरों में से एक थे। उन्हीं की वंश-परम्परा में हुए हैं आधुनिक भारत के महानतम लोक-शिक्षक, जगद्गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती।

उन महान् प्रज्ञान के अक्षय भंडार, अलौकिक तत्त्वदर्शी श्री अप्पय दीक्षित को गीर्वाण भारती संस्कृत एवं गौरवशाली भारतीय संस्कृति के सभी सपूतों की अनन्त श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हों।

प्रकाशित : वीर प्रताप (जालन्धर)

21-12-1959

यश के अमर तरानों में गूंजता हुआ ऋषि दधीचि का बलिदान

फूल का सौभाग्य इसी में है कि मुरझाने से पूर्व, कलियों के बिखरने से पहले, सुगन्धि के लुट जाने से पहले तथा रूप के विकृत हो जाने से पहले-पहले ही वह देवता के चरणों पर चढ़ जाए। देह नश्वर है, इसे एक-न-एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। अतः जब यह शरीर भरपूर जवानी में हो तभी इस जीवनरूपी पुष्प के किसी महान् आदर्श के चरणों पर समर्पित हो जाने में ही उसकी चरितार्थता है। परहित सर्वस्व लुटाने की महान् शिक्षा देने वाले महर्षि दधीचि की वाणी है—

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्म न यशः पुमान
ईहेत् भूतदयया स शोच्यः स स्थावरैरपि।

अर्थात्, हे देव शिरोमणियो! जो मनुष्य इस विनाशी शरीर से दुःखी प्राणियों पर दया करके मुख्यतः धर्म का संपादन तथा उसके साथ ही गौणतः यश का लाभ नहीं करता, वह तो जड़ पदार्थों किंवा पेड़-पौधों से भी गयाबीता है।'

इन्हीं पुण्यलोक महर्षि दधीचि के अभूतपूर्व बलिदान का ही पावन स्मरण कर महाकवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा था—

सुना है दधीचि का वह त्याग
हमारी जातीयता का विकास
पुरंदर ने पवि से है लिखा
अस्थि युग का मेरा इतिहास

यह सच है कि हमारी जातीयता का विकास इस स्तर तक हो चुका था कि देश कार्य या देव कार्य में अपनी रीढ़ की हड्डी तक दान देने वाले महर्षि दधीचि जैसे महापुरुष भी पैदा हो गए थे। उन्हीं हुतात्मा महर्षि दधीचि के बलिदान का यश देवराज इन्द्र ने बिजली (वज्र) के चमकीले अक्षरों में नीले आकाश के सीने पर अमिट रूप से लिख दिया है।

अमृतः स हि वंशो यो देवार्थे याति संक्षयम्—देवकार्य में जिस वंशलता ने समूल भेंट चढ़ा दी उसने अमर पद प्राप्त कर लिया। श्रुति भगवती की इस शाश्वत घोषणा को अपने ज्वलन्त जीवन द्वारा चरितार्थ करने वाले हुतात्मा महर्षि दधीचि विश्वभर के बलिदान-वीरों के मुकुटमणि हैं। वैदिक युग के उन पुण्यश्लोक ब्रह्मर्षि का प्रतिदिन प्रातःकाल पावन स्मरण करते हुए भारत के कोटि-कोटि नर-नारी आज तक भी गाते हैं—**ऋषि नमामि दध्यं च देवानामुपकारकं**, अर्थात् देवताओं का उपकार करने वाले प्रातःस्मरणीय ऋषि दधीचि को सादर नमस्कार है। उन्हीं स्वनामधन्य ऋषि की सुभग अर्चना का पर्व 'दधीचि जयन्ती' प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की शुक्ल-अष्टमी को आता है।

पौराणिक गाथा

प्रजापति कर्दम की कन्या शान्ति के गर्भ से अथर्वा ऋषि का जन्म हुआ। उन्हीं के गृह में परम तपस्वी, शिवभक्त दधीचि ऋषि का जन्म, भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन हुआ। दधीचि ऋषि मानव सभ्यता के उषाकाल में ही प्रकट होने वाली तेजस्वी विभूतियों में से एक हैं, क्योंकि उनका यश ऋग्वेद तक में गूँजता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जब दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित किए बिना कार्यारम्भ किया तो ऋषि दधीचि वापस अपने आश्रम लौट गए थे। उन शिवभक्त दधीचि की तपस्या से कम्पित होकर इन्द्र ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए अलम्बुषा नामक अप्सरा को भेजा था। किन्तु सब व्यर्थ रहा। स्वार्थी इन्द्र ने उन्हें समाप्त करने का भी प्रयत्न किया किन्तु तपस्तेज के आगे इन्द्र भी निस्तेज होकर चला गया। वृत्रासुर संग्राम में जब बार-बार इन्द्र पराजित हुआ तो पुनः दधीचि ऋषि की शरण में आया। उन तपोपूत महात्मा की अस्थि का बना हुआ वज्र ही वृत्रासुर को मार सकता था। घुटने टेककर, झोली फैलाकर 33 कोटि देवताओं के स्वामी इन्द्र ने कहा—'हम आपत्ति में पड़कर आपसे भीख मांगने आए हैं। हमें आपके शरीर की अस्थियाँ चाहिए।' उदारचेता ऋषि ने शरणागत इन्द्र के पिछले कृत्यों का स्मरण तक न करते हुए देव तथा देश के हित के लिए इन्द्र की बात मान ली। योग द्वारा उन्होंने प्राण चढ़ा लिये तथा उनके सम्पूर्ण शरीर पर नमक छिड़क दिया गया। जंगली गायें उनके चर्म को चाट गईं। तब विश्वकर्मा ने दधीचि के मेरुदण्ड से इन्द्र के लिए वज्र बनाया जिसके द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया।

इतिहास-दर्शन

इन्द्र-वृत्रासुर की कथा में हमें वैदिक युग की एक महान् घटना के दर्शन होते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास के लेखक श्री रांगेय राघव के मत में भारत के संस्कृत बोलने वाले आर्य ही देव थे। उन्होंने अनेक बार असुरों की परम्परा के ईरान (आयरान, आर्यान, पारसीक अथवा पार्श्व देश) के लोगों ने याद

रखा। उन्हीं ने देव (सुर) को राक्षस माना तथा असुर (अहुर) को देवता मानकर पूजा। उनका ईश्वर भी 'अहूर मज्दा' या सबसे बड़ा असुर (अहुर) है। देव जाति जब ईरान की ओर बढ़ी तो उनका असुरों से संघर्ष हुआ। वहाँ कुछ समय वे वरुण असुर के शासन में रहे। देवों ने स्वराज्य स्थापित करना चाहा। वरुण की मृत्यु के बाद बल वृसय के पुत्र वृत्र ब्यस ने देवों को खेती के लिए नदियों का पानी देना बन्द कर दिया। उस वृत्रासुर को ऋषि दधीचि की अस्थि से बने वज्र द्वारा मारकर इन्द्र राजा हुआ। इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं एक पद था, प्रारम्भिक इन्द्र अस्थि से लड़ा था, परवर्ती इन्द्र अयस से। यह बात भी विचारणीय है कि इन्द्र के वज्र का आकार भी मानव शरीर के मेरुदण्ड से मिलता-जुलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी वर्णन है—'देव सूर्य के, मनुष्य सोम के और असुर अग्नि के उपासक थे। पारसी (असुर) अभी तक भी अग्निपूजक हैं।

आध्यात्मिक रूपक

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के मन्त्र 1.116.12 तथा 1.119.9 में ऋषि दधीचि द्वारा अश्विदेवों (अश्विनी कुमारों) को मधुविद्या प्राप्त होने का वर्णन है। स्व. पं. शिवशंकर, भूतपूर्व वेदाध्यापक गुरुकुल कांगड़ी, के मतानुसार दिन और रात्रि अश्व (सूर्य) के दो पुत्र हैं। वही अश्विदेव हैं। दध्यङ् और दधीचि एक ही वस्तु है। ईश्वरीय तत्त्व जानने वाले को दध्यङ् कहते हैं—**दधानीति दधिः धाता विधाता परमात्मा, तमंचित पूजयति सम्यङ् जानातीति दध्यङ** है अथवा जो दधि के समान सम्पूर्ण विकृत पदार्थों के तत्त्व को पहुँचा हुआ है वह दध्यङ् है। विद्या स्वयं ही मधु के समान मधुर है। जैसे तीक्ष्ण दंश वाली लाखों मधुमक्खियों के दंश से बिना डरे ही परिश्रम करने वाले व्यक्ति को कठिनाई से मधु प्राप्त होता है वैसे ही विद्यारूपी अमृत को पाने के लिए तप की आवश्यकता है, दिन और रात्रि रूपी काल को बांध कर रखने में विद्वान् ही समर्थ है। कहा जाता है कि **राजा कालस्य कारणम्** किन्तु सत्य यह है कि **विद्वान् कालस्य कारणम्।**

दधीचि ऋषि की अस्थि से वृत्रासुर हनन की घटना के सांकेतिक अर्थ भी विचारणीय हैं। ऋग्वेद के 1.80.16, 1.84.13, 1.84.14, 6.16.44 तथा 9.108. मंत्रों में इस महान् ऋषि के आदर्श बलिदान की झांकी मिलती है।

जैसे मरण के पश्चात् भी अस्थियाँ चिरकाल तक अवशिष्ट रहती हैं वैसे ही विद्वान् की विद्याएँ भी स्थिर रहती हैं। पृथ्वी पर से विद्वान् के उठ जाने के उपरान्त भी इनके पीछे इनकी विद्या रूपी अस्थियाँ रह जाती हैं, जिनकी सहायता से जीवात्मा इन्द्र नाना विघ्नरूपी वृत्रों का संहार करता है। ये विद्याएँ शिष्यों के हृदय में रहती हैं। शिष्य ही विविध कलाओं से सुभूषित पर्वत हैं जिनमें विद्यारूपी धाराएं सदा निकलती रहती हैं। शिष्यों का शरीर ही कुरुक्षेत्र (कर्मक्षेत्र) है जिसके हृदय के

शय्यर्णवान् सरोवर है। इन्द्ररूपी जीवात्मा विद्वानों के हृदय में दधीचि की विद्यारूपी अवशिष्ट अस्थि को पाकर उसके द्वारा दुष्टेन्द्रियरूपी वृत्रासुर का हननकर, परम विजय प्राप्त करता है।

उन्हीं परमोपकारी, धर्मत्राता, राष्ट्ररक्षक ब्रह्मर्षि दधीचि का संदेश है—

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैक्षणभंगुरैः।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैं मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः।।

अर्थात् जगत के धन, जन, शरीर आदि पदार्थ क्षणभंगुर हैं। ये अपने किसी काम नहीं आते। ओह! यह कैसी कृपणता है, कितने दुःख की बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरों का उपकार नहीं करता।

दधीचि जयन्ती के पवित्र पर्व पर ज्ञान सर्वस्व बलिदानी, वीर, उदारचेता ब्रह्मर्षि दधीचि के चरणों में हमारे हृदय की प्राणपुष्प समर्पिणी नीराजनाएँ सादर समर्पित हों।

13 सितम्बर, 1959 को
दैनिक 'वीर प्रताप' (जालन्धर) में प्रकाशित

भारतीय सभ्यता इतिहास की प्राचीनतम सभ्यता है, उसकी संस्कृति मानव की समृद्धतम संस्कृति।

—प्रो. ओबराय

महर्षि वाल्मीकि का दिव्य ज्ञान

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार मिचलेट ने वाल्मीकि रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी हैं, उसे रामायणरूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है, यूनान छोटा और तंग है तथा वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रन्थ, जिसमें कहीं लय भंग नहीं। वहाँ एक अपार शान्ति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द्र है जो सब जीवों पर प्रेम, दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

संस्कृत पद्य के प्रथम सूत्रधार महर्षि वाल्मीकि ने इस अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की, जिसकी सात्त्विक सुन्दरता और आध्यात्मिक ऊँचाइयों ने कालान्तर में अनेक विद्वानों और कवियों का मार्गदर्शन किया। विश्वभर के साहित्य में रामायण जैसा मनमोहक और कोई ग्रन्थ नहीं है। कोई ऐसा आदर्श नहीं जो महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में न दिखाया हो।

वाल्मीकि का जन्म

इनका जीवन-वृत्तान्त कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। कुछ पुराणों के अनुसार, यह माना जाता है कि वे पहले रत्नाकर नाम के एक डाकू थे, जो अक्सर अनजान राहगीरों को लूट लेता था और उनको मार भी देता था। देवर्षि नारद से भेंट के बाद वाल्मीकि के अन्दर का सोया हुआ सन्त अचानक जाग गया। जब रत्नाकर नारदजी को मारने के लिए उद्यत हुआ तो नारदजी ने उससे पूछा कि आप यह पाप क्यों कर रहे हैं? इस पर रत्नाकर ने उत्तर दिया कि यह लूट-मार और हत्याएं वह केवल अपने परिवार को पालने के लिए कर रहा है। नारद ने कहा कि एक बार वह अपने परिवार के सदस्यों से पूछ आए कि क्या वे उसके पाप के भागीदार होंगे? जब रत्नाकर की पत्नी और बच्चों ने उसके पाप का भार लेने से इनकार कर दिया

तो रत्नाकर नारद के पांवों में गिर पड़े और उनसे ज्ञान देने की याचना की। नारद ने उन्हें ज्ञान दिया और उनका नाम बदलकर 'राम' रख दिया। यहीं से रत्नाकर के जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन शुरू हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि महापुरुषों के जीवन में एक घटना से परिवर्तन आता है और फिर वे प्रगति के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं। इस छोटी घटना ने क्रूर डाकू रत्नाकर को महर्षि वाल्मीकि बना दिया। इस प्रकार छोटी-छोटी घटनाओं से अचानक भोग-विलास में डूबे, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन गये, एक अनपढ़-फूहड़ आदमी महाकवि कालिदास बना, बंगाल का नास्तिक बाबू नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द बना, एक सरल-सादा लड़का मूलशंकर स्वामी दयानन्द सरस्वती बना और बचपन के बिगड़े हुए मोहनदास, महात्मा गांधी बन गये। इसी प्रकार तुलसीदास के जीवन में भी एक छोटी सी घटना ने उन्हें महान् सन्त गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। कुछ पूरा ज्ञात नहीं है कि रत्नाकर का जन्म कहाँ हुआ था, किन्तु यह पक्का है कि उनके भीतर का कवि उनकी नारद से भेंट के बाद ही प्रस्फुटित हुआ था। हर सन्त का कुछ भूतकाल होता है और हर पापी दुष्ट का भविष्य होता है। उसमें भी अचानक सुधार आ सकता है। यह कहना कठिन है कि कब किस रत्नाकर के भीतर से महर्षि वाल्मीकि प्रकट हो जाएं।

पद्य का जन्म

हर कवि धरती पर प्रभु का सन्देशवाहक होता है। कवि अपनी आत्मा और हृदय पूर्णतया अपने गीतों में उड़ेल देता है, इसलिए किसी कवि का अवतरण मानवता के लिए एक वरदान होता है। इससे भी अधिक धन्य है काव्य, जो उस कवि को अजर-अमर बना देता है। ऋषि वाल्मीकि महाकाव्य रामायण के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए हैं। श्री अरविन्द घोष के अनुसार—यह बड़ा अद्‌भुत संयोग है कि रामायण का प्रादुर्भाव बहुत ही वेदना और मर्मस्पर्शी करुणा की स्थिति में हुआ। एक बार वन में वाल्मीकि ने एक शिकारी द्वारा तीर मारने से घायल दो क्रौंच-पक्षियों में से एक को तड़प-तड़पकर मरते देखा तो उनके मन की करुणा और दुःख इन शब्दों में काव्य के रूप में फूट पड़े—

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौंञ्चमिथुनादेकमवधीः कामओहितम्।।

ऐसा मानते हैं कि इन पंक्तियों के आधार पर ही वाल्मीकि ने पूरी रामायण की रचना की। प्रसिद्ध साहित्यकार मोनियर विलियम्स लिखते हैं—'रामायण महाकाव्य की सरलता जो संस्कृत पद्य की ऊँचाइयों को छूती है, इसमें वीर रस के दृश्य बहुत सुन्दर ढंग से संजोए हुए हैं, मानव की आन्तरिक भावनाएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं और बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है।' इस प्रकार यह एक सर्वोत्तम काव्यरचना

है। यह फ्रांसीसी इतिहासकार लिखते हैं, 'रामायण एक विशाल और लहलहाते हुए उद्यान की तरह हैं जिसमें कई प्रकार के फल और फूल है, जहाँ शुद्ध जलधारा बहती है और जहाँ आनन्दपूर्ण भ्रमण की पूरी सुविधा है।' आध्यात्मिक विचारक महर्षि वाल्मीकि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाशपुंज हैं। उन्हें अक्सर योगवासिष्ठ का रचयिता भी माना जाता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'योगवासिष्ठ वेदान्त पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है।' यह प्राचीन भारत की भारतीय दर्शन के विषय में बहुत उत्तम कृति है।

नैतिक ज्ञान

रामायण में एक उन्नत सभ्य समाज का चित्रण मिलता है जिसमें भौतिक प्रगति के साथ मानसिक उन्नति भी देखने को मिलती है। किन्तु ये दोनों शक्तियाँ अध्यात्म और वैचारिक शुद्धता की सीमा में अपना प्रभाव दिखाती हैं। प्रो. ग्रिफिथ ने लिखा है—'रामायण पूरे विश्व में अनूठा काव्य है जिसमें आदर्श और उच्च चरित्र के पात्र भगवान् राम और सीताजी के रूप में हैं। इस ग्रन्थ में काव्य और नैतिकता बहुत सुन्दर ढंग से गुंथे हुए हैं और एक-दूसरे को उन्नत करने का प्रयास करते हैं।'

महर्षि वाल्मीकि एक महान् सन्त थे जिन्होंने समाज को नैतिक जागरण का संदेश दिया। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अनैतिक और पापी लोगों को चुनौती दी।

राजनीतिक दर्शन

वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य के माध्यम से हमें एक सुन्दर सुयोजित रामराज्य की कल्पना दी, जो भारत की प्रमुख विचारधाराओं का सार रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी रामराज्य का आह्वान किया था। वाल्मीकि अराजकता और राष्ट्रीय नियमों के उल्लंघन का घोर विरोध करते थे। रामायण के अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि अराजक जनपद के विषय में लिखते हैं—'किसी भी अनियोजित राज्य में युवा अपने माता-पिता का सत्कार नहीं करते, विद्वान् लोगों की जनहित सभाएं नहीं होतीं, नगर उदास और कान्तिहीन से लगते हैं और उद्यानों में फल-फूल पैदा नहीं होते हैं, ऐसे राज्य में व्यापारी अपना व्यापार ठीक से नहीं कर पाते, साधु-संन्यासी अपना जप-तप नहीं करते और धार्मिक-सामाजिक पर्व ढंग से नहीं मनाए जाते।' महर्षि वाल्मीकि के अनुसार, एक आदर्श राज्य को एक कुशल नैतिक राजा, सारी जनता और अपने मंत्रियों के सहयोग से कुशलतापूर्वक चला सकता है।

महर्षि वेदव्यास का राष्ट्रदर्शन

'भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भागीरथ हैं। जिस प्रकार इस देवनिर्मित देश को किसी पुरा-युग में भागीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा पवित्र किया था, उसी प्रकार पुराण-मुनि वेदव्यासजी ने भारतीय लोक साहित्य के आदि-युग में हिमालय के बद्रिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथगा गंगा का पहले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना के द्वारा देश के आर्य-वाङ्मय को उससे पवित्र बनाया। ज्ञानरूपी हिमवान् के उच्च शिखरों पर बहने वाले दिव्य जलों को मानो वेदव्यास भूतल पर ले आए। उनके द्वारा पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती लोक के कंठ में आ विराजी।' ज्ञानमार्तण्ड भगवान् वेदव्यास के पावन चरणों पर श्री वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा चढ़ाई हुई यह हृदयहारी भाव-प्रसूनांजलि कितनी अनूठी है।

जहाँ भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विभाजन किया; महाभारत जैसे अगाध ज्ञान-भण्डार की रचना की; श्रीमद्भागवत महापुराण जैसे भक्ति के सुधा-सिंधु से मानवता के हृदय की क्यारियों को हरा-भरा कर दिया; वेदान्त दर्शन की रचना द्वारा विश्व मनीषा के मस्तक पर भारतीय तत्त्वज्ञान की विजय पताका फहराई; व्यास स्मृति, पुराण संहिता एवं अध्यात्म रामायण की सर्जना द्वारा विश्व के धर्म वाङ्मय को समृद्ध किया; वहाँ उन महामुनि व्यास ने भारतीय राष्ट्र की ऐसी अद्भुत वंदनाएं गाई हैं कि उनके श्रवणमात्र से आज भी भारतीयों के हृदय में मातृभूमि के अनन्त प्रेम का अगाध अमृतोदधि हिलोरे लेने लगता है।

सौ-सौ स्वर्गों से श्रेष्ठ भरतखण्ड

विष्णु महापुराण में महर्षि व्यास का कथन है—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते, भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात।।

अर्थात् 'स्वर्ग के 33 कोटि देवता भी यही गीत गाते हैं कि भारत भूमि पर जन्म पाने वाले लोग धन्य हैं। वे कितने सौभाग्यशाली हैं कि वे उस भारत में जन्मे हैं जो स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) का स्वाभाविक सरल मार्ग है। अतः भारतखण्ड के मनुष्य

निश्चय ही हम देवताओं से भी ऊँचे हैं।' अभी तक तो मनुष्य देवताओं की स्तुतियाँ गाते थे पर धन्य हैं पूज्य ऋषि वेदव्यास, जिनके वाङ्मय में हम स्वर्ग के देवताओं को भारतभूमि की स्तुतियाँ गाते हुए पाते हैं। इससे ऊँची राष्ट्रभक्ति क्या हो सकती है जब स्वयं देवता भी राष्ट्र की झुक-झुककर वन्दनाएँ करते हों!

भारत दर्शन ही भगवान् दर्शन

महर्षि वेदव्यास ने देशभक्ति तथा देवभक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया है। भारत स्वयं भगवान् का देश है, प्रभु का दिव्य लीलाधाम है। यहाँ के मानवों की प्रशस्ति में, भारत में जन्म के लिए तरसते हुए देवता गाते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं, प्रसन्न एषां रिचदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे, मुकुन्द से वौपयिक स्पृहा हि नः।

(श्रीमद्‌भागवत पुराण)

अर्थात् 'अहो! यह भारतवासी कितने भाग्यशाली हैं कि उन्हें स्वयं भगवान् के देश में जन्म मिला है। धन्य हैं ये कि इन्हें स्वयं अपने हाथों से भगवान् मुकुन्द की सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसके लिए हम देवता तक भी तरसते रहते हैं।'

पृथोस्तु राजवैन्यस्य तथेक्ष्वा कोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुन हुषस्य च।।
तथैव मुचुकुंदस्य शिवेरौशनीरस्य च
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा,
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
रोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च।।
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणा बलीयणाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारतभारतम्।।

अर्थात् 'आओ हे भारत! अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्तिगान सुनाता हूँ—वह भारत इन्द्र, मनु वैवस्वत, पृथुवैन्य, मांधाता, नहुष, मुचुकुन्द और औशीनर शिवि को ऋषभ, ऐल, नृग, कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेकानेक बलवान क्षत्रिय वीरों का प्यारा है।'

जीवित राष्ट्र

भगवान् व्यास का कथन है **मृतं राष्ट्रमराजकम्**—अर्थात् अराजक (बिना राजा के) राष्ट्र मरे हुए के समान है। शान्तिपर्व में व्यासदेव का एक गीत है—'यदि राजा न पालयेत।'

धर्म की जड़ राजा की सुव्यवस्था पर टिकी हुई है। राजा के बिना अराजकता फैल जाए तथा लोग एक-दूसरे को खा जाएं।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजमयादेव न खादन्ति परस्परम्।

अर्थात्, हे राजन्! धर्म ही लोक में राज का मूल है और राजा के भय से ही प्रजाएं एक-दूसरे को खा नहीं जाती हैं।

राजधर्म

व्यासदेव का अर्थगम्भीर वचन है—'जब राजा भली प्रकार दण्ड नीति का पालन करता है तभी सत्ययुग आ जाता है। राजा का आसन राष्ट्र का ककुद है। राजा की उस आदर्श आसन्दी की रक्षा में रहकर प्रजा जिस धर्म का पालन करती है उसका एक चतुर्थांश राजा को प्राप्त होता है।

सर्वे त्यागा राज धर्मेषु दृष्टा, सर्वाः दीक्षा राज धर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः, सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्ठाः।।

प्रजा ही राजा है

भगवान् व्यास ने राजतन्त्र के भीतर ही प्रजातन्त्र के महान् सिद्धान्त का समन्वय कर दिया—'राजा का शरीर प्रजाएं हैं। अपने आपको बचाने के लिए राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा का भी सर्वोत्तम शरीर राजा ही है। राजा को पुष्ट करके वे अपने-आपको ही बढ़ाती हैं।'

राजा कालस्य कारणम्

व्यासजी की लोकविश्रुत सूक्ति है—

कालों वा कारणं राज्ञो राजा व कालस्य कारणम्।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्।।

अर्थात् 'क्या राजा का कारण काल है या काल का कारण राजा, इस विषय में संशय मत करो। राजा ही काल का कारण है।' सच है कि कोई महान् प्रतापी राजा अपने आदर्श राज द्वारा काल के चक्के को जैसा चाहे घुमाकर सत्ययुग को ला सकता है।

वीरभोग्या वसुन्धरा

इस धरती को वीर पुरुष ही भोग सकते हैं, कायर नहीं। व्यासजी की नीति है—

चराणां अन्नं अचराः द्रष्ट्रिणां अपि अदंष्ट्रिणः।
बुधानां अबुधाश्चापि शराणां चैव भीरवः।।

अर्थात्, चर प्राणी अचरा भोजन करते हैं, दांतोंवाले बिना दांतों वालों को खा जाते हैं, समझदार लोगों के लिए मूर्ख ही भोजन है, शूरवीरों के लिए कायर ही भोजन है।

अतः राष्ट्रीय जीवन में कायरता एक लानत है, दुर्बल राष्ट्र को अन्य राष्ट्र खा जाएंगे।

जाग्रत् युवक

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास का संदेश है कि जहाँ जवान जागते हैं वही राष्ट्र जागते हैं—

युवक यत्र जागर्ति, युवको यत्र पश्चति।
तत्र राष्ट्र भवेन्मूनं सर्वदा सुख संयुतम्।।

अर्थात्, जहाँ जवान जाग्रत है, जहाँ जवान आंख खोलकर देखते हैं वही राष्ट्र निश्चय ही सदा सुखी रहता है।

भाग्य और भगवान् निछावर

भगवान् व्यास ने हमारे सामने हरिश्चन्द्र और शिवि, मान्धाता एवं पृथु जैसे आदर्श नृपतियों के गौरवशाली चरित्र रखे जो अपनी प्रजाओं की किंवा प्राणीमात्र की सेवा के लिए भाग्य और भगवान् को भी निछावर करने को उद्यत हैं—

न त्वहं कामये न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्।।

अर्थात् 'हे प्रभो! मैं न तो राज्य की कामना करता हूँ, न स्वर्ग की तथा न ही मोक्ष की। मेरी तो एकमात्र यही कामना है कि मैं दुःख से तप्त प्राणियों के दुःख का नाश कर सकूँ।

भारत राष्ट्र का अनन्त यश गाने वाले राष्ट्रद्रष्टा महर्षि वेदव्यास का अपना यश भी अनन्त है। जब तक धरती सूर्य की प्रदक्षिणा करती है तब तक उनका यश रहेगा। वे भारत के गौरव सर्वस्व हैं। हमारा समस्त राष्ट्रीय गौरव ही उनके ज्ञान-चक्षुओं में समा गया है।

जैसे सागर में खड़ा हुआ मनुष्य सागर से ही जल का लोटा भरकर सागर को अर्घ्य चढ़ा देता है वैसे ही महामुनि वेदव्यास की पावन स्मृति में हम उन्हीं के ज्ञानोद्यान के दो-एक पुष्प सजल नयनों से उन्हीं के चरणों में सादर चढ़ाकर ही अपने वन्दना-व्याकुल हृदय की भावांजलि समर्पित करते हैं।

21 जुलाई, 1959 को
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

भगवान् गौतम बुद्ध

भगवान् बुद्ध मानवता की फुलवारी के सुन्दरतम पुष्पों में से एक हैं। मानव इतिहास की महानतम विभूतियों में वे अन्यतम हैं। इनके माध्यम से भारत का शाश्वत धर्म मूर्तिमान हो उठा और विकृत रूढ़ियों के कूड़े-कचरे से उबर कर सच्चा मानवीय धर्म ऐसे निर्मल और सात्त्विक रूप में प्रकट हुआ जिसके सामने न केवल भारत नतमस्तक हुआ वरन् दुस्तर पर्वतों ने और अगाध समुद्रों ने भी उस धर्म के लिये मार्ग छोड़ दिए और वह विश्वधर्म बनकर प्रकाशित हुआ।

भारत-नेपाल सीमा पर कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य में राजा शुद्धोधन के घर जन्म पाने वाले बालक गौतम अथवा सिद्धार्थ को अपने छोटे से कपिलवस्तु राज्य का राज मोहासक्ति में नहीं बांध सका। वे राज्य-वैभव से विरत होकर चीवर पहनकर फकीर की भांति घर से निकले और साधना की पूर्ति होने पर वे आने वाले युग-युग के लिए एशिया के धर्म-सम्राट एवं मानवता के महानतम परिव्राजक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

सिद्धार्थ के गृह-त्याग का हेतु सामान्य वैराग्य नहीं था। अन्य साधकों को कभी जीवन में कुंठा के आघातों से वैराग्य होता है तो कभी व्यक्तिगत दुःख से छुटकारा पाने के लिये वे वैराग्य धारण करते हैं। सिद्धार्थ को न अपनी व्यक्तिगत कुंठा ने आघात पहुँचाया और न ही वे व्यक्तिगत दुःख-निवृत्ति के लिए परिव्राजक बने। वे समूची मानवता को जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के विषम दुःख-चक्र से छुड़ाने के लिये अपने राज वैभव को लात मारकर संन्यासी बने।

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय धर्मचक्र प्रवर्तनायः

सिद्धार्थ ने एक सच्चे जिज्ञासु के समान कई गुरुओं—आलार कालाम, उद्दक रामपुत्त के गुरुकुलों में शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। किन्तु उन्हें मुक्ति मार्ग की प्राप्ति नहीं हुई। वे चलते-चलते गया से कुछ मील पहले निरंजना नदी के तट पर पहुँचे और छः वर्ष तक कठोर तपस्या की। आचार्य रुद्रक के पांच विद्यार्थी भी इनके साथ शिष्य बनकर आ गये थे। उन्होंने आहार की मात्रा घटाते-घटाते चावल का एक कण मात्र लेने का व्रत लिया। फिर केवल पत्ते खाकर, फिर केवल जल

पर, फिर केवल वायु पर निर्वाह करने लगे। उनका शरीर सूखकर कंकाल मात्र रह गया था। एक दिन शरद पूर्णिमा की रात्रि को मगध की एक राजकुमारी सुजाता खीर का एक पात्र लेकर वन देवता के पूजन के लिए आयी। सिद्धार्थ के कंकाल शरीर को ही साक्षात् वनदेवता समझकर उसने खीर का पात्र उनके सम्मुख समर्पित किया। सिद्धार्थ ने अकस्मात् उस खीर को खा लिया जिससे उनकी सूख रही अंतड़ियों में खीर जैसा गरिष्ठ पदार्थ जाने से उन्हें रक्तातिसार अर्थात् खूनी पेचिश हो गयी। उनके पांचों शिष्य यह सोचकर कि गुरु ने व्रत भंग कर दिया है, उनका साथ छोड़ दिया। सिद्धार्थ अपने मलिन और दुर्बल शरीर को धोने के लिए घिसटते हुए निरंजना नदी के तट तक आए, किन्तु आंत की दुर्बलता के कारण अचेतावस्था में उनका शरीर नदी की धारा में बहने लगा। कुछ आगे जाकर उनका शरीर नदी की धारा के बीच में एक शिला पर अटक गया। अर्द्धरात्रि को उन्हें स्वप्न हुआ कि इन्द्र वीणा बजा रहा है। तार ढीली होने के कारण संगीत बड़ा भद्दा निकलता था। तार कसने पर संगीत मीठा होने लगा। पूरी कस जाने पर संगीत उत्तम और मधुर हो गया। तनिक अधिक कसने पर संगीत तीखा, और कसने पर और तीखा, कुछ और कसने पर तार टूट गये और सिद्धार्थ का स्वप्न भी टूट गया। सिद्धार्थ उठकर नृत्य करने लगे—'मुझे जीवन का रहस्य-स्वर्णिम 'मध्यम मार्ग' मिल गया। जीवन की वीणा के तारों को न उतना ढीला छोड़ो कि जीवन लम्पट एवं चरित्रहीन हो जाए और न ही तपस्या में इतना कसो कि इन्द्रियाँ ही सूख जाएं और जीवन का तार टूट जाए। सिद्धार्थ का यह मध्यम मार्ग गीता के मध्यम मार्ग की ही पुनर्प्रतिष्ठा है। कपिलवस्तु का राजवैभव एक अतिसीमा थी और चिथड़े पहनकर, निराहार रहकर शरीर को कंकाल बना देना दूसरी अतिसीमा है। अति का आचार ही अत्याचार होता है। संयमहीन व्यक्ति समाज पर अत्याचार करता है, समाज के लिए अभिशाप बन जाता है तथा अति कठोर तपस्या से शरीर सुखाने वाला अपने प्रति अत्याचार करता है। सिद्धार्थ ने जाना कि जीवन की नौका दोनों अतियों के चट्टानी तटों से बचकर बीच धार में मध्यम मार्ग में चलनी चाहिये।

मध्यम मार्ग की उपलब्धि के पश्चात् वे गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे यह दृढ़ संकल्प करके बैठे कि पूर्ण बुद्ध हुए बिना इस आसन को नहीं छोड़ूंगा। उनकी परीक्षा के लिए मार (कामदेव) ने अपने प्रलोभनों के साथ उनके मन पर आक्रमण किया किन्तु सिद्धार्थ विचलित नहीं हुए। पुनः मार ने भयंकर भय की माया रचकर उन्हें विचलित करना चाहा, किन्तु भय तथा प्रलोभन-दोनों पर विजय प्राप्तकर इसी बुद्ध पूर्णिमा के दिन उन्हें अनन्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। बुद्ध हो जाने पर उनका मुखमण्डल सत्य के प्रकाश से देदीप्यमान हो उठा। सिद्धार्थ 'गौतम बुद्ध' बन गये। शाक्य मुनि भगवान् अमिताभ हो गये। साधना का पथिक लक्ष्य पर पहुँचकर 'तथागत' हो गया।

ज्ञान-प्राप्ति के उपरान्त भगवान् बुद्ध सारनाथ की ओर चले। उन्होंने कहा—मैं वाराणसी जाऊंगा। वहाँ वह प्रदीप ज्योतित करूंगा जो सारे संसार को ज्योति देगा। मैं वाराणसी जाकर वह दुंदुभि बजाऊंगा जिससे मानव जाति जागृत होगी। वहाँ ऋषिपस्तन, सारनाथ में भगवान् बुद्ध के वे पांचों शिष्य, जो निरंजना नदी के तीर पर उनका साथ छोड़ गये थे, पुनः उनके मुखमण्डल का तेज देखकर उनकी ओर आकर्षित हुए। भगवान् ने उन्हें स्नान कराने के उपरान्त प्रथम छः को धर्म दीक्षा दी। भगवान् बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की घोषणा की।

प्रथम आर्य सत्य यह है कि संसार में दुःख है। प्रत्येक सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है, प्रत्येक संयोग वियोग में बदल जाता है, प्रत्येक जीवन बुढ़ापे में बदल जाता है, प्रत्येक बुढ़ापा मृत्यु में बदल जाता है और मृत्यु अनेक दुखदायी जनम-मरण के चक्रों में घुमाती रहती है।

दूसरा आर्य सत्य है कि दुःख न शाश्वत है और न आकस्मिक। यदि दुःख शाश्वत होता तो इसका नाश नहीं होता अथवा उससे छुटकारा असम्भव हो जाता। यदि आकस्मिक होता तो इसका कोई भी कारण खोजा नहीं जा सकता था। इस प्रकार कारण का निवारण हुए बिना दुःख से निवृत्ति असम्भव हो जाती है। भगवान् बुद्ध ने बताया कि दुःख के दो प्रमुख कारण हैं—तृष्णा और अविद्या। तीसरे आर्य सत्य में भगवान् ने बताया कि तृष्णा की अग्नि शान्त हो जाने पर दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती है, जिसे 'निर्वाण' कहते हैं। चौथे आर्य सत्य में भगवान् ने दुःख निवृत्ति का उपाय—निर्वाण की साधना के अष्टांगिक मार्ग का विधान किया।

(1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वाणी, (4) सम्यक् कर्मान्त, (5) सम्यक् आजीविका, (6) सम्यक् प्रयत्न, (7) सम्यक् स्मृति और (8) सम्यक् समाधि। संक्षेप में इसी को अष्टांग मार्ग की सम्यक् प्रज्ञा, सम्यक् शील एवं सम्यक् संकल्प के त्रिरत्न नाम से प्रसिद्धि मिली।

पवित्र ज्ञान, पवित्र चरित्र और पवित्र कर्म की त्रिवेणी का स्वर्णिम सूत्र है अहिंसा। मन-वाणी-कर्म से किसी भी प्राणी को दुःख न देना। यह अहिंसा मात्र आचार के सर्वोच्च सिद्धान्त के रूप में नहीं वरन् परम धर्म है।

भगवान् बुद्ध जब एक किशोर बालक सिद्धार्थ के रूप में एक उपवन में टहल रहे थे तो उनके सौतेले भाई देवदत्त के बाण से घायल हंस को उन्होंने बचाया था। उसके जख्मों को अपने नेत्रों के जल से धोया था तथा उस नन्हे पक्षी की पीड़ा की अनुभूति हेतु अपने अंग में तीर चुभोकर देखा था। तभी उनके मुंह से प्राणीमात्र के प्रति करुणा की वाणी प्रस्फुटित हुई। पीर सबन को एक-सी। उनका अहिंसा मार्ग ही आज विश्व शान्ति का एकमात्र उपाय है। क्रोध से क्रोध शान्त नहीं किया जा

सकता। अग्नि से अग्नि को बुझाया नहीं जा सकता तथा कीचड़ से कीचड़ को साफ नहीं किया जा सकता।

भगवान् रूवेला होकर मगध की राजधानी राजगृह में पहुँचे। वहाँ के राजा बिम्बिसार को शिष्य बनाया। वहीं उन्हें दो तेजस्वी विद्वान् शिष्य प्राप्त हुए। सारिपुत्र और मोदगुल्यायन। वहीं एक बार तपस्यालीन भगवान् महावीर के भी दर्शन किये। सम्बोधि के एक वर्ष पश्चात् भगवान् कपिलवस्तु गये तथा राजा शुद्धोधन एवं अपने पुत्र राहुल को भी भिक्षु पद की परिव्रज्या दी, श्रावस्ती के एक व्यापारी अनाथपिंड ने जेतवन विहार भगवान् को भेंट किया। भगवान् बुद्ध ने बौद्ध संघ का निर्माण किया जिसका ध्येय मंत्र हो गया—

बुद्धं सरणं गच्छामि। धम्मं सरणं गच्छामि। संघं सरणं गच्छामि।

कौशल के राजा प्रसेनजित् शिष्य बन गये। वैशाली की नर्तकी आम्रपाली का निमन्त्रण स्वीकार कर भगवान् ने ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटा दिया। भगवान् के पधारने से आम्रपाली को अनुभव हुआ कि आज वह वैशाली गणराज्य के राजाओं से भी ऊँची हो गई है। 80 वर्ष की अवस्था में भगवान् ने कुशीनगर (उत्तरप्रदेश) में दो (साल के) वृक्षों के नीचे लेटकर महानिर्वाण लाभ किया। अपने प्यारे देश भारत के प्रति उन्होंने अपने अन्तिम उद्गार प्रकट किये।

'चित्रं जंबूद्वीपं मनोहरं जीवितं मनोहराणाम्

यह भारत देश कितना सुन्दर है तथा यहाँ मनुष्यों का जीवन कितना मनोहारी है।

भगवान् का मानवता को अंतिम संदेश है—'अत्तः दीपो विहरथ' हे मानव! अपनी आत्मा के दीपक के प्रकाश में, अपने विवेक के दीपक के आलोक में संसार में विहार करो।

आज भी विश्व के कोने-कोने में बुद्ध के महान् स्मारक उनके धर्म दिग्विजय की घोषणा कर रहे हैं—

लुम्बिनी नेपाल में जन्मभूमि, अफगानिस्तान में बामियान में संसार की सबसे बड़ी 175 फुट ऊँची बुद्धमूर्ति, ब्रह्मदेश में संसार का सबसे मूल्यवान स्वर्णमंदिर श्वेडेगान पेगोड़ा, लंका में अनुराधापुरम में बोधि वृक्ष, सिंहगिरि गुहामंदिर में अजन्ता शैली के भित्तिचित्र, श्रीपाद पर्वत पर भगवान् बुद्ध के चरणों का तीर्थ। थाई देश में नीलम मणि की मूर्तियाँ, वियतनाम में सहस्रभुज भगवान् बुद्ध, इंडोनेशिया में संसार का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर बोरोबुदुर, चीन में दो सौ से अधिक अजंता शैली की बौद्ध गुफाएं, तिब्बत में लामा धर्म, मंचूरिया में मंजुश्री की मूर्तियाँ, मंगोल देश में बौद्ध पाण्डुलिपियाँ, साइबेरिया के बौद्ध विहार,

जापान, कोरिया में जीवन्त बौद्ध धर्म, ईरान एवं अरब में मूर्ति के लिये बुद्ध से 'बुत्त' शब्द का प्रचलन, बाइबिल में भारतीय युवक भिक्षुओं थेरापुत्तों अर्थात् स्थविर पुत्रों का वर्णन, अशोक द्वारा सीरिया, मिस्र, मैसेदोनिया, इपिरस, सिरैनिया, उत्तर अफ्रीका में प्रचारक भेजना, जर्मनी में मैक्समूलर, राइस डेविड्स, ओल्डन वर्ग, शोपेनहावर की बौद्ध रचनाएं, इंग्लैण्ड के सर एडविन आर्नोल्ड की लाइट आफ एशिया, जानमेस फील्ड, इलियट, एडिथ सिटवैल, डब्ल्यू वी. यीटस की बौद्ध काव्य रचनाएं अमरीका के अल्डुअस हक्सले तथा रूस के निकोलस रोरिक का अपनी महान्‌विद्वत्ता के साथ बुद्ध भक्त बनना, इंग्लैण्ड का महानतम दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल की यह घोषणा कि यदि उन्हें किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो वे बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करेंगे। ये सब तथ्य घोषणा कर रहे हैं कि भगवान् बुद्ध सदा सर्वदा अजर-अमर हैं और उनका अविनश्वर संदेश विश्वमंगलकारी है।

'भारत ने चीन में एक भी सैनिक नहीं भेजा। खून का एक कतरा नहीं बहाया। किसी की आंखों में आंसू की एक भी बूंद नहीं डाली। फिर भी चीन दो हजार साल तक उसके प्रभाव में रहा।'

—अमरीका में चीन के पूर्व राजदूत हयू शिह

मानवता भारत रूपी पालने में फली-फूली है। मनुष्य को वाणी यहीं से मिली है और मनुष्य का इतिहास भी यहीं से निकला है। गाथाओं की तो दादी रहा है और परम्पराओं के मामले में दादी की भी माँ। मनुष्यता की सारी रचनात्मक धरोहरें भारत में ही हैं।

—मार्क ट्वेन्

भगवान् बुद्ध

हिंसा से उन्मत्त पृथ्वी आज चारों ओर
नित्य निठुर द्वन्द्व देते दारुण दुःख घोर।
घोर कुटिल पंथ पर बढ़ते हैं लोग,
लोभ के जटिल बंधन बांध रहे भोग।
सभी प्राणी कातर हैं चाहें एक बार,
तेरा हो धरती पर पुनः अवतार।
करो त्राण, महाप्राण, अमृत संदेश,
एक बार पुनः गूंजे देश औ' विदेश।
जन गण के हृदय का प्रेम पारिजात,
अक्षय मधुकोष से भर कर अवदान।
तेरे आलोक में पंखुड़ियाँ खोल,
दान करे मधु गंध मुक्त अनमोल।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तदेव,
दिव्य दूत, पुण्य के प्रतीक एकमेव।
धरती के उर के सब कलंक और पंक,
धो डालो करुणा की धार से निःशंक।।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी उक्त प्रार्थना में करुणावतार भगवान् बुद्ध का श्रद्धापूर्वक आह्वान करते हैं—आज पृथ्वी पुनः हिंसा से उन्मत्त हो गई है। मानवता के द्वन्द्व बड़े निष्ठुर हो गये हैं, दुनिया बड़े कुटिल तथा लोभ के जटिल बन्धों वाले मार्ग पर चल रही है। आज प्राणी आपके पुनावतार के लिए कातर पुकार रहे हैं। हे अनन्त जीवन के स्वामी! इन प्राणियों का त्राण करो, अपनी आशा की चिरन्तन वाणी को पुनः गुंजाओ। आओ, आज तुम्हारी ज्योति में प्रेम पद्म अपने मधुकोष से भरकर खिल उठे। हे शांत, हे मुक्त! अपनी अनन्त करुणा में धरती तल के सारे कलंकों को धो डालो।

सचमुच निखिल मानवता को प्रेम, शांति, करुणा और प्रज्ञा की अमर सम्पत्ति लुटाने वाले, विश्व के कोटि-कोटि शांति पिपासुजनों को निर्वाण की शीतल सुधा पान कराने वाले, करुणावतार भगवान् बुद्ध का जन्म मानवता के इतिहास की एक अद्वितीय घटना है। यह भी विश्व इतिहास का क्रूर व्यंग्य है कि सारे विश्व की मनीषा पर अपना अखण्ड अधिकार का धर्म स्वयं अपनी जन्मदाता की जन्म भूमि में पूर्णतया लुप्त हो गया। वास्तव में भगवान् बुद्ध के महान् व्यक्तित्व व संदेश का सम्यक् मूल्यांकन प्रायः नही हो पाया और अतिशय दुःख का विषय यही है कि यदि उन्हें सबसे अधिक गलत किसी ने समझा तो स्वयं उन्हीं के शिष्यों ने। ईश्वरीय ज्ञान की पावन विभूति भगवान् बुद्ध को स्वयं ईश्वर के अस्तित्व तक से इनकार करने वाला नास्तिक कहना तो स्वयं सत्य का बड़ा अपमान है।

युग के महानतम हिन्दू

यह मानना एक भयंकर भूल है कि भगवान् बुद्ध ने हिन्दू धर्म के विरोध में एक नए धर्म की नींव रखी। बौद्ध दर्शन के प्रकांड पाश्चात्य पण्डित श्रीराइस डेविड्स लिखते हैं—गौतम की सारी शिक्षा-दीक्षा ब्राह्मण धर्म (उपनिषद् धर्म) की थी। वह स्वयं अपने आपको उस सनातन धर्म के सबसे ठीक ज्ञाता मानते थे तथा उनके लिए यह साधिकार कहा जा सकता है कि वे महानतम, योग्यतम एवं उत्कृष्टतम हिन्दू थे।

उनका उपनयन संस्कार भी हुआ था। उन्होंने ब्राह्मण गुरुओं से वेद-वेदांगों की शिक्षा भी पाई थी।

सच्चाब्राह्मण

भगवान् बुद्ध ने लिखा है—'सुखा सामञ्जता लोके अथोब्रह्मण्यता सुखा' अर्थात् लोक में श्रमणता सुखकारी है और ब्राह्मणता सुखकारी है। वे फिर कहते हैं—'वाहित पापोति ब्रह्मणो' अर्थात् सच्चा ब्राह्मण वह है जिसने पाप को धोकर बहा दिया है।

भगवान् बुद्ध उपनिषदों की महान् परम्परा के महान् उत्तराधिकारी थे। उन्हें उस परम्परा से पृथक् करके समझा नहीं जा सकता। उपनिषदों की जिस परम्परा का उन्होंने समर्थन, प्रतिनिधित्व, परिवर्धन एवं विकास किया उससे तोड़कर उन्हें समझना उनके प्रति भ्रांति को बढ़ाना है। उपनिषद् ज्ञानधारा ही उनकी जन्मदात्री माँ, उनका लालन करने वाली धाय एवं उनके समस्त दर्शन की प्राणवायु है।

भगवान् बुद्ध ने किसी नये मौलिक मार्ग को खोजने की गर्वोक्ति नहीं की। तथागत ने अत्यन्त विनय से कहा—'मैंने प्राचीन ऋषियों के ही सनातन मार्ग को खोज निकाला है।'

अपने ग्रंथ 'बुद्ध धर्म' में श्री एडमण्ड होम्स नामक पाश्चात्य विद्वान् ने हमें चेतावनी दी है कि 'उपनिषद् ज्ञानधारा को समझे बिना भगवान् बुद्ध को समझना बुद्ध एवं उनकी शिक्षा के सार को ही आंखों से ओझल कर देना है।....उपनिषदों के महान् हिमालय तुल्य तत्त्वज्ञान की भूमिका में ही हम बुद्ध के उन महान् विचारों की विकास-सरणी को समझ सकते हैं।' अपने अध्याय 'बुद्ध के बारे में भ्रांति' में वे लिखते हैं कि बुद्ध का जीवनदर्शन अपने सभी महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर उपनिषदों के उस महान् आध्यात्मिक जीवनदर्शन से मेल खाता है।

सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन ने उपनिषद् दर्शन और बौद्ध दर्शन में निम्नलिखित समानताओं की ओर अंगुलि निर्देश किया है—

1. दोनों किसी व्यक्ति या पुस्तक से ऊपर अपने निजी अनुभव को महत्त्व देते हैं।

2. दोनों ने रूढ़ियों तथा यज्ञादि कर्मकाण्ड को ज्ञान की अपेक्षा गौण मानकर उसकी उपेक्षा की है।

3. दोनों स्वीकार करते हैं कि परमतत्त्व को बुद्धि से नहीं जाना जा सकता।

4. दोनों का कथन है जीवन का परम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है।

5. दोनों कर्म सिद्धांत एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

6. भगवान् बुद्ध अपने वचनों एवं संवाद में उपनिषद् के भावों का प्रयोग करते हैं।

ईश्वर का अस्तित्व

सामान्यतः बौद्ध दर्शन नास्तिक दर्शन माना जाता है। किन्तु भगवान् बुद्ध का चरित्र ऐसे आस्तिक का चरित्र है कि जो भी उनके सम्पर्क में आया उसकी नास्तिकता सदा के लिए धुल गई। ईश्वर के विषय में आपके मौन का तात्पर्य केवल यह है कि अनादि-अनंत ब्रह्म का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। वैदिक ऋषियों ने भी उस निरुपाधिक ब्रह्म के वर्णन में अपनी हार मान करके 'नेति-नेति' कहा था।

स्पष्ट है बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है। इसलिए प्रत्येक धार्मिक और मांगलिक कार्य के समय तथा पूजा-संध्या के आरम्भ में भगवान् बुद्ध का स्मरण किया जाता है। यथा—जम्बू-द्वीप भरतखण्डे आर्य्यावर्त्तैकदेशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बुद्धावतारे.....।

दिनांक मई 23, 1956

भगवान् बुद्ध को भगवान् शंकराचार्य की श्रद्धांजलि

धराबद्धपद्मासनास्थांघ्रियष्टिः,
नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती,
स बुद्धः प्रबुद्धोस्तु सच्चित्तवर्ती।

भगवान् शंकराचार्य दशावतार की स्तुति करते हुए भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में कहते हैं—पृथ्वी पर पद्मासन बांधकर जिसने एकाग्रता और प्राण संयमपूर्वक नासिका के अग्रभाग पर दृष्टिस्थिर की थी, जो कलियुग के योगियों में चक्रवर्ती हुए थे, वह महाज्ञानी बुद्ध मेरे हृदय देश में विराजमान हों।

करुणावतार भगवान् बुद्ध को हिन्दू धर्म के दशावतारों में स्थान देना भारत के राष्ट्र धर्म का अभूतपूर्व चमत्कार है। जिन बुद्धदेव एवं उनके बौद्ध धर्म को नास्तिक एवं वेदनिन्दक माना जाने लगा था उन्हीं के चारित्रिक गौरव को अपना अलौकिक अर्घ्य चढ़ाते हुए भारत के पुराणकर्ताओं ने भगवान् बुद्ध को भगवान् विष्णु का अंशावतार घोषित करके राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को सबल बनाने का महानतम कार्य किया है।

गरुड पुराण की भगवान् तथागत को श्रद्धांजलि है—

वासुदेवः पुनर्बुद्धः संमोहाय सुरद्विषाम्
देवादीनां रक्षणाय, अधर्म हरणाय च।। (1/149/39)

अर्थात् सुरद्वेषी असुरों को सम्मोहित करने के लिए, देवगणों की रक्षा करने के लिए तथा अधर्म का हरण करने के लिए भगवान् वासुदेव (नारायण) ही पुनः बुद्ध रूप में अवतरित हुए। मत्स्यपुराण की पूजाञ्जलि भी इतनी ही भावपूर्ण है।

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
बुद्धो नवमको यज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः।। (47/247)

अर्थात् धर्म की व्यवस्था करने तथा असुरों का संहार करने के लिए भगवान् विष्णु ने नवम अवतार धारण किया। भगवान् बुद्ध यज्ञों में तपस्यापूर्ण पुष्कर दृष्टि रखने वाले हैं। पुष्कर के कई अर्थ हैं—जल, जलाशय, कमल, बाण, सूर्य आदि। बुद्ध देव ने यज्ञों का खण्डन करके तप पर बल दिया। अतः यह अर्थ हो सकता है कि वे यज्ञों के प्रति तपस्या रूपी बाणों की दृष्टि रखने वाले हैं। वस्तुतः बुद्धदेव ने स्वयं यज्ञों का खण्डन न करके यज्ञों में प्रचलित पापपूर्ण पशुबलि का ही प्रबल खण्डन किया। अतः पुष्करेक्षणः का यही भाव भी है।

विधि की सीमा में अन्यों पर अनुग्रह दया है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

बुद्ध जयन्ती

मैं डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, लोकसभा सदस्य को बुद्ध जयन्ती महोत्सव के विषय में उनके विचारों के लिए साधुवाद और बधाई देना चाहता हूँ। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उनकी मान्यता है कि बुद्ध जयन्ती महोत्सव वास्तव में बुद्ध परिनिर्वाण तिथि के रूप में मनाना चाहिए न कि बुद्ध के जन्म दिन के रूप में।

मैं इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों से इन कारणों से सहमत नहीं हूँ—

1. हम महापुरुषों का जन्मदिवस पूरे उल्लास से मनाते हैं न कि उनका मृत्यु-दिवस। हमारी संस्कृति में भी यही प्रथा रही है कि हम सदैव महान् आत्माओं और महापुरुषों के जन्मदिवस ही बड़े उल्लास और हर्ष से मनाते रहे हैं। उनके मृत्यु दिवस या मुहर्रम पर कोई हर्ष-उल्लास नहीं होता।

2. वैशाख की पूर्णिमा केवल बुद्ध भगवान् का निर्वाण दिवस ही नहीं है, इसी दिन उनका जन्म हुआ था और इसी दिन उन्हें परम ज्ञान भी हुआ था।

3. मैं उनके इस तर्क से सहमत नहीं हूँ कि जयन्ती शब्द केवल जन्मदिन से सम्बन्धित है। वास्तव में जयन्ती शब्द संस्कृत के मूल शब्द जय (विजय) से निकला है। जयन्ती का अर्थ है जय या विजय का दिन। हमारा इतिहास दर्शाता है कि हम अनेक सांस्कृतिक विद्वानों और नायकों की जयन्ती मनाते रहे हैं। जिन्होंने राष्ट्र का सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान किया। भगवान् बुद्ध सारे विश्व के लिए महान् सांस्कृतिक अग्रदूत रहे इसलिए यह उपयुक्त ही है कि उनका जन्म दिवस बड़े हर्ष और उल्लास से मनाया जाए।

4. जन्म दिन के लिए उचित शब्द होगा 'जन्म जयन्ती' और मृत्यु दिवस का शब्द 'श्राद्धदिवस' महापुरुषों की जयन्ती भी पूरे देश में हर्ष-उल्लास और खुशी से मनायी जाती है किन्तु उनके श्राद्धदिवस केवल उनके परिवार के निकट सदस्य ही मनाते हैं और कहीं पर भी उसे राष्ट्रीय उत्सव नहीं माना जाता। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महर्षि वेदव्यास, वाल्मीकि या शंकराचार्यजी की जयन्ती बड़ी

धूम-धाम से मनायी जाती है, उनके श्राद्धदिवस के बारे में किसी को कोई ज्ञान भी नहीं। हाँ, कुछ बलिदानी वीरों के बलिदान दिवस भी मनाये जाते हैं, जिन्होंने मातृ भूमि के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया।

5. क्या इस वर्ष पड़ने वाला महोत्सव वास्तव में बुद्ध का 2500 वाँ जन्म दिन या मृत्यु दिन है? यह भी एक ऐतिहासिक शोध का विषय है और डॉ. मुकर्जी के वक्तव्य को पक्का वेदवाक्य नहीं माना जा सकता। कई अन्य इतिहासकारों ने कहा है कि यह 2500 वाँ महोत्सव बुद्ध के जन्म या मृत्यु काल से पूरा मेल नहीं खाता है। कोई इतिहासकार नहीं मानते कि बुद्ध का निर्वाण सन् 487 B.C. से पहले हुआ था। इस प्रकार उनका परिनिर्वाण 2443 वर्ष पहले हुआ था न की 2500 वर्ष पहले जैसी कि डॉ. मुकर्जी की मान्यता है।

6. अब जब कि पूरे विश्व प्रेस ने यह बड़े जोर-शोर से प्रचार कर दिया है कि 2500 वीं बुद्ध जयन्ती 24 मई 1956 को मनाई जाएगी, इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों का विशेष लाभ नहीं रहता।

7. यह खेद की बात है कि विश्वव्यापी महापुरुष भगवान् बुद्ध का जन्म वर्ष सही ढंग से ज्ञात नहीं, किन्तु यह सत्य है कि वैशाख पूर्णिमा की रात्रि जब पूरा अन्तरिक्ष और धरती, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित थी, एक प्रकाश की किरण के रूप में दया और करुणा के सागर बालक सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का धरती पर अवतरण हुआ। उन्होंने जन्म के 36 वर्ष बाद वैशाख पूर्णिमा के दिन ही बोध या बुद्धत्व प्राप्त किया। महात्मा बुद्ध जीवन काल के 80 वर्ष पूरे करने पर वैशाख पूर्णिमा के दिन ही अपना शरीर त्याग कर परम ज्योति में विलीन हो गये। लाखों, करोड़ों लोग उन्हें भगवान् अमिताभ 'असीम प्रकाश के स्वामी' के नाम से पूजते हैं।

आइये, हम इस विश्वविख्यात विभूति भगवान् बुद्ध को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करें वैशाख पूर्णिमा के इस महोत्सव को बुद्ध जयंती, बुद्ध पूर्णिमा या बुद्ध रजत शताब्दी के रूप में मनाएँ।

23 मई, 1956

आत्मजयी भगवान् महावीर के कालजयी संदेश का दिव्य दिग्विजय

भारतीय संस्कृति के गौरवसर्वस्व, त्याग, तपस्या, तितिक्षा के तीर्थकल्प तीर्थंकर, जीव दया के दिव्य अवतार, मानवी मनीषा के मणिमुकुट, निर्वाण की कैवल्य शान्ति के राकेश भगवान् महावीर वर्द्धमान, अपने निर्वाण की रजत शताब्दी के वर्ष में अपनी रजत चन्द्रिका की दिव्य रश्मियों के द्वारा दुःखी मानवता को पुनः शान्ति का सुधापान करने का आमंत्रण दे रहे हैं।

भगवान् महावीर भारतीय अध्यात्म वाटिका के एक सुन्दरतम पुष्प थे जिन्होंने भारत के सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक चिरंतन आदर्शों को प्रत्यक्ष अपने जीवन में प्रतिफलित कर उन्हें एक नूतन रस एवं माधुर्य के साथ भावी मानवता के लिए अमोघ वरदान के रूप में दिया। जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव तो भगवान् विष्णु के अवतार ही थे तथा बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान् श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। भगवान् महावीर वैशाली गणराज्य के कश्यपगोत्रीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ तथा वसिष्ठगोत्रीय माता त्रिशला के तेजस्वी पुत्र थे जिन्हें सभी प्रकार के दैवी गुणों के वर्द्धन के कारण 'वर्द्धमान' नाम से विभूषित किया गया। बंग देश का वर्द्धमान मण्डल उन्हीं के दिव्य प्रचार के कारण इसी पावन नाम से मण्डित हुआ। एक मत के अनुसार यह प्राचीन मगध देश भी भगवान् बुद्ध एवं महावीर के विहार के कारण ही बिहार प्रदेश बोला जाने लगा।

प्रश्न है कि आज के अतिभौतिकवादी और यान्त्रिक सभ्यता के युग में, जब प्रत्येक मूल्य को उपयोगिता के निकष पर तथा विज्ञान की वेधशाला की परीक्षणनली में जांचा-परखा जाता है तब पचीस सौ वर्ष पहले के अरण्य बहुल भारत देश में दिगम्बर रूप में विहार करके तपस्या द्वारा निर्वाण लाभ करने वाले किसी साधु बाबा का आज के अत्याधुनिक विज्ञान-विकसित सभ्य मानव के लिए क्या महत्त्व है?

क्षत्रियत्व की नूतन व्याख्या—महावीर एवं बुद्ध

क्षत्रिय वह है जो क्षिति को क्षत-विक्षत होने से त्राण करे—**क्षतात् किल त्रायते इति क्षत्रियः।** प्राचीन काल के क्षत्रियों ने धनुष-बाण, खड्ग, भाला आदि

धारणकर क्षिति का त्राण किया था, किन्तु धरती पुनः-पुनः युद्धों, महायुद्धों से क्षत-विक्षत होती ही रही। भगवान् महावीर एवं बुद्ध ने क्षिति को क्षत्रों से बचाने का अभिनव प्रयोग किया। उन्होंने अपने राज वैभव एवं ऐश्वर्य को लात मारकर, मारक अस्त्र-शस्त्रों को त्यागकर, त्याग-तपस्या एवं अहिंसा व्रत द्वारा अपने भीतर की ऐसी अलौकिक वीरता को जगाया जिसके सम्मुख बड़े-बड़े सम्राट एवं साम्राज्य श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। उन्होंने मानव के मन से उस हिंसा एवं वैररूपी विष को ही धोने का संकल्प किया जिसके कारण धरती पुनः-पुनः अपने ही बेटों के रक्त से रंजित होती रही।

शूरः शस्त्रेण जयति वीरः मनोबलेन च।
महावीरः आत्म शक्त्या, संजयति भुवनत्रयम्।।

भगवान् महावीर अनेक महापुरुषों के प्रेरक

भगवान् महावीर भगवान् बुद्ध से 35 वर्ष पूर्व अवतरित हुए थे। भगवान् महावीर ने अपने 72 वर्षीय जीवन के 12 चातुर्मास्य राजगृह में बिताए। एक बार जब वे राजगृह के वैभार शिखर पर उग्र तप में लीन थे तब भगवान् बुद्ध एक नवयुवक साधक के रूप में घूमते हुए राजगृह के गृद्धकूट शिखर से नीचे उतरे तथा उन्होंने ऋषिगिरि की कालशिला पर खड़े उग्र तप करते हुए बहुत से जैन साधु (निर्ग्रन्थ महात्मा) देखे। बुद्धदेव ने उन तपस्वी साधुओं से वार्तालाप किया। यह घटना उन्होंने कपिलवस्तु के न्यग्रोआराम में पहुँचकर महानाम शाक्य को सुनाई। भगवान् बुद्ध के जीवन एवं संदेश पर उनके अग्रज भगवान् महावीर के जीवन एवं दर्शन की कितनी सुस्पष्ट छाप है, इस पर बड़े-बड़े इतिहासज्ञ भी विस्मित हैं। बौद्ध धर्म प्रचारात्मक धर्म बन गया जिसके कारण सारे संसार में फैल गया। जैन धर्म संस्कारात्मक धर्म ही रहा जिसके कारण यह अन्य देशों में उतना नहीं फैला। किन्तु, इसके पवित्र संदेश का परोक्ष प्रभाव अनेक देशों के महापुरुषों पर पड़ा। भगवान् महावीर के शान्ति एवं प्रेमतत्त्व की छाप बुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस, जरथ्रुस्त्र एवं ईसा पर सुस्पष्ट परिलक्षित होती है।

श्रमण-परम्परा

आत्मविकास हेतु श्रम करने वाला साधक 'श्रमण' कहा जाता है। जैन तीर्थंकरों को श्रमण की संज्ञा दी जाती है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार—

संतुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्ता स्तितिक्षवः।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणाः जनाः।।

अर्थात्, श्रमण जन सदा संतुष्ट, करुणा एवं मैत्री भावना से युक्त, शान्त, दान्त, तितिक्षु, आत्मानन्द वाले और समदृष्टि होते हैं। यह 'श्रमण' शब्द प्राकृत में

'समण' तथा मागधी में 'शमण' हो गया है। अतः इस शब्द के अर्थ में भी एक चमत्कार पैदा हो गया है।

(क) श्रमण = जो तप रूपी श्रम करे। इसमें श्रम के गौरव की महत्ता है, जिसकी आज अत्यधिक आवश्यकता है।

(ख) समण = जो प्राणीमात्र में सम भाव रखता है तथा किसी प्राणी को क्लेश नहीं देता। आज विश्व समता के लिए तरस रहा है।

(ग) शमण = जो सदा शम (शान्ति) में प्रतिष्ठित है तथा शान्ति का पुजारी है। विश्व शान्ति आज ऐसे शमण की बाट जोहती है।

श्रम द्वारा न कोई भूखा रहेगा, न भिखारी बनेगा तथा न ही चोर या ठग। वह अपने परिश्रम की कमाई पर जिएगा।

समभाव द्वारा प्राणी किसी अन्य प्राणी की न अवहेलना करेगा तथा न हिंसा।

शम (शान्ति) व्रत द्वारा मानव न अत्याचार करेगा तथा न महायुद्ध की दावाग्नि भड़काएगा।

विदेशों में श्रमण पद का गौरव

भारत की श्रमण-परम्परा का गौरवशाली इतिहास रहा है। इससे प्रभावित होकर अनेक देशों में यह आदरसूचक पद प्रचलित हो गया—

1. चीनी यात्रियों के वृत्तांत में 'श्रमणेर' शब्द प्रयुक्त हुआ।

2. अरब इतिहास में 'शमब' एवं 'शमनान' शब्द प्रयुक्त हुआ।

3. साइबेरिया के बौद्ध मठों में अभी तक पुजारी को 'समण' कहा जाता है।

4. इजराइल में 'सरमद' नामक एक महान् सन्त हुए।

5. जर्मन देश का नाम 'शर्मण' या 'श्रमण' से व्युत्पन्न हुआ (मैक्समूलर का संकेत)। 'अरब और भारत के संबंध' नामक ग्रन्थ (लेखक मौलाना सुलेमान नदवी) के पृष्ठ 176 पर लिखा है—'संसार में पहले दो ही धर्म थे—एक समनियन, दूसरा कैल्डियन। समनियन लोग पूर्वी देशों में थे। खुरासानवाले इनको बहुवचन में 'शमनान' और एकवचन में 'शमन' कहते हैं।'

6. यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में 'सरमनाई' (श्रमण) नामक सम्प्रदाय है। वे नगरों और घरों में नहीं रहते, वृक्षों की छाल से अपने को ढकते हैं तथा जल अपने हाथों से मुंह तक ले जाकर पीते हैं। वे न विवाह करते हैं न सन्तानोत्पत्ति।'

7. इजरायल में ईसा के जन्म से पूर्व तीन प्रकार के भारतीय प्रचारक कार्यरत

थे—(क) ऐसीन (सनातनधर्मी संन्यासी), (ख) थेरापुत्त (स्थविरपुत्र, बौद्ध भिक्षु), (ग) सादूसिज (Sadducees) (जैन साधु)।

हिंसा के सिद्धान्त (खून के बदले खून) में विश्वास करने वाले यहूदियों के वंश में ईसा मसीह जैसा प्रेम का अवतार कैसे उत्पन्न हो गया? ये पहेली तभी हल होती है जब ईसा के मस्तिष्क पर बौद्ध एवं जैन साधुओं द्वारा अंकित प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। यहूदियों के पूजा-गृह को 'सिनागॉग' (Synogogue) कहा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति है श्रमण (समन)+उपाध्याय अर्थात् तपस्वी गुरुओं का स्थान।

बाइबिल की जीवदया गाथा पर सुस्पष्ट जैन प्रभाव

बाइबिल की कथा के अनुसार एक बार हजरत मूसा तूर पर्वत पर खुदा से मिलने जा रहे थे। मार्ग में बहुत सी चींटियाँ उनके पांव के नीचे आकर कुचली जा रही थीं। मूसा ने सोचा कि वे खुदा से शिकायत करेंगे कि उन्होंने इतनी छोटी-छोटी चींटियाँ क्यों बना दीं? ऊपर पहुँचने पर मूसा ने देखा कि एक चींटी खुदा से आर्त पुकार कर रही है कि 'हे परमात्मा! तुमने इतना भारी मूसा क्यों बना दिया जो एक पांव रखते ही सैकड़ों चींटियों को कुचल डालता है।' मूसा लज्जित हो गया। जीवदया की इस कथा पर कितना मार्मिक प्रभाव जैन दर्शन का है यह किसी से छिपा नहीं है।

जर्मन देश का नाम ही डॉ. मैक्समूलर के मत में शर्मण या श्रमण शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। कोलब्रुक नामक पश्चिमी विद्वान् ने 18वीं सदी में 'जैन धर्म का अनुशीलन' नामक ग्रन्थ लिखकर पश्चिमी जगत् का ध्यान पुनः भगवान् महावीर के संदेश की ओर आकृष्ट किया। उनके पश्चात् जॉर्ज बुह्लर नामक जर्मन विद्वान् ने डॉ. हर्मन जैकोबी को सहायक के रूप में साथ लेकर, सारे राजस्थान एवं अन्य स्थान में जैन साहित्य भण्डार की खोज की तथा पांच सौ से अधिक जैन प्राकृत हस्तलिखित ग्रन्थ उन्होंने खरीदकर बर्लिन विश्वविद्यालय, जर्मनी को भेंट दे दिये। इस प्रकार जर्मनी में भी जैन साहित्य पर शोध का एक महान् केन्द्र बन गया।

जैकोबी के शब्दों में, 'अहिंसा की सीमा केवल मनुष्य जाति तक ही नहीं थी, इसका विस्तार जीव मात्र तक भी था। बौद्ध और जैन—दोनों ही किसी जीव को मारना पाप समझते हैं, परन्तु केवल जैन ही 'अहिंसा' को उसके विस्तृत अर्थ में 'परमोधर्मः' मानते हैं और इसके परिणामों को अन्त तक ले गये हैं।'

जर्मन विद्वान् हेल्मथ फॉन ग्लाजनाप्प ने लिखा है, 'भगवान् महावीर, जिन्होंने भारत के विचारों को उदारता दी, आचार को पवित्रता दी, मानवीय गौरव को बढ़ाया, उसके आदर्श को परमात्म पद तक पहुँचाया, जिन्होंने मानव-मानव के

भेद को मिटाया, सभी को धर्म और स्वतन्त्रता का अधिकारी बनाया, जिन्होंने भारत के अध्यात्म संदेश को अन्य देशों तक पहुँचाने की शक्ति दी तथा सांस्कृतिक स्रोतों को सुधारा। उन पर जितना भी गर्व करें, थोड़ा ही है।'

इटली निवासी डॉ. फर्नेण्डो बेल्लिनी फिल्प्पी की श्रद्धांजलि है—'सचमुच महावीर का जीवन अनंत वीर्य से ओत-प्रोत है। उनके अनन्त वीर्य ने ही सत्य और अहिंसा के शाश्वत धर्म को सफल बनाया, जो काल को भी चुनौती देता है।' जर्मन विद्वान् अर्नेस्ट लेगैन ने कहा है, 'भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्मविकास में अग्रसर दार्शनिक तथा तत्कालीन प्रचलित सभी विधाओं में पारंगत थे।'

इसी प्रकार डॉ. हेनरिक जिम्मर, श्री मैथ्यू मेके (इंग्लैण्ड), डॉ. अल्फ्रेड डब्ल्यू. पार्कर, डॉ. अल्बेर्टा पोग्गी (जेनेवा), डॉ. फिलक्स वेल्गी, श्री हर्बर्ट वारेन आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने करुणावतार भगवान् महावीर के अलौकिक संदेश को श्रद्धा के भाव सुमन चढ़ाए हैं। श्री फ्रेंक आर. मेनसेल (Frank R. Mansell) ने आंग्लभाषा में अपनी काव्यमय श्रद्धांजलि में भगवान् महावीर की गौरव-गीतिका गायी है—

Dispender of darkness	हे तम के हर्ता, हे भगवान्,
Gladdener of hearts	हृदयों के आनन्दप्रदाता,
Bringer of hope	आशा के संदेश दूत हे,
Illumination of the worlds	हे भुवनों के ज्योतिदाता
Truth personified	सत्यमूर्ति, हे सत्यनारायण
Like the sun in splendour	ज्योति ज्वलन्त हे प्रभासूर्य
Bright Mahavira	हे दिव्य दयानिधि महावीर
We bow to thee	हम सब जग का तुमको प्रणाम।

जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्यजी

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।

जातियों के उत्थान-पतन, उनके जीवन दर्शन की श्रेष्ठता अथवा तुच्छता पर निर्भर है। श्रेष्ठ जीवन दर्शन को प्राप्त करके भी जो जाति उसे जीवन में साकार नहीं करती वह उन्नत नहीं हो सकती। अतः एक महान् दर्शन को जीवन्त रूप प्रदान करने के लिये किसी दृष्टिवान महापुरुष, किसी दार्शनिक ऋषि अथवा द्रष्टा का अवतरण अतीव महत्त्व का है। इस दृष्टि से भारत में जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य का अवतरण भारत के विगत दो सहस्राब्दियों के इतिहास की महानतम घटना है।

अद्वितीय लोकनायक

इस महादेश की कोटि-कोटि सन्तानों को जागरण मंत्र सुनाकर अपने वर्चस्व के प्रभाव से पुनः खड़ा कर देने वाले महापुरुषों में भगवान् शंकराचार्य भगवान् कृष्ण के पश्चात् आने वाले महानतम लोकनायक कहे जा सकते हैं। केवल 12 वर्ष की अल्पायु में ही धर्मरक्षा एवं राष्ट्र जागरण का संकल्प लेकर घर से निकल सारे भारत की उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, तीन बार प्रदक्षिणा कर तथा धर्मविजय का शंख फूंक समूचे भारत को पुनः आर्य हिन्दू धर्म में प्रतिष्ठित करना इतिहास का वह अद्वितीय कार्य है जिसके कारण वे इतिहास के यशो मन्दिर में चिरन्तन काल तक पूजित होते रहेंगे।

वेद ज्ञान के रक्षक

वेद, विश्व का आदि ज्ञानकोश तथा भारतीयों की प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। विकृत बौद्ध धर्म के कुप्रभाव के कारण वेदों की निन्दा की जा रही थी। त्रयो वेदस्य कर्तारः, भाण्ड, धूर्त, निशाचराः। अर्थात् तीनों वेदों के कर्ता भाण्ड, धूर्त तथा निशाचर हैं। शंकराचार्य के समकालीन महान् पंडित कुमारिल भट्ट एक बार जा रहे थे कि ऊपर से एक मकान के झरोखे से एक भारतीय नारी का गर्म-गर्म अश्रु बिन्दु गिरकर उनके गात्र पर पड़ा। उन्होंने नेत्र उठाकर देखा, वह राजा सुधन्वा की रानी रोकर कह रही थी—हाय! क्या करूं, कहाँ जाऊं, कौन वेदों का उद्धार

करेगा? कुमारिल भट्ट ने शेष जीवन वेदों के उद्धार के लिए लगाया। उस एक नारी के विलाप में स्वयं भारतमाता का विलाप था। श्रुति माता के उद्धार के लिये भगवान् शंकर ने जो कार्य किया वह विश्व इतिहास में बेजोड़ है। जाति की लुप्त श्रद्धा को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले इन विलक्षण धर्मदूत के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—शंकराचार्य ने राष्ट्र के ज्ञान-संगीत-वेद की निगूढ़ अन्तर्ध्वनि को पा लिया था। मैं सदा ऐसा समझता हूँ कि उन्हें अल्पायु में ही एक दृष्टि प्राप्त हो गई थी तथा उसी ज्ञान दृष्टि के सहारे उन्होंने प्राचीन अध्यात्म-संगीत को पुनः प्राप्त कर लिया था। संक्षेप में, उनका समूचा जीवन कार्य वेदों तथा उपनिषदों के सौन्दर्य का ही सजीव स्पन्दन है।

अखण्ड भारत के अमर द्रष्टा

भारत भर में पैदल घूमकर इस अनोखे परिव्राजक शंकराचार्य ने विकृत बौद्ध धर्म के नास्तिकवाद को पराजित किया तथा इस महान् सुविशाल देश के चारों कोनों पर बद्रिकाश्रम, रामेश्वर, जगन्नाथपुरी तथा द्वारिका में 4 मठ स्थापित कर दिये जो भावी तीर्थयात्रियों के लिए पावनधाम बन गये। इन धामों ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारे भारत की सांस्कृतिक एकता कायम करने में योगदान दिया वह इतिहास की वाचाल वाणी भी वर्णित नहीं कर सकती। शंकर ने भारत की अनेकानेक भिन्न-भिन्न विचार-सरणियों का अद्भुत समन्वय करके भारत को वह धर्म दिया जो विश्व के असंख्यात झंझावातों तथा तूफानों के बीच भी विनष्ट न हो सका।

राष्ट्र में अद्वैत भावना के संचारक

भगवान् शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त ने उन्हें विश्व मनीषा का मणिमुकुट सिद्ध कर दिया। उसी अद्वैत दर्शन के द्वारा उन्होंने समाज में एकता का मंत्र फूंका। जब तक धनी तथा निर्धन का अभेद, ब्राह्मण तथा शूद्र का अभेद, स्त्री तथा पुरुष का अभेद नहीं होता तब तक आत्मा तथा परमात्मा का अद्वैत सिद्ध हो ही नहीं सकता। प्रत्येक नागरिक यदि राष्ट्र के प्रति अद्वैत भावना रखे अर्थात् राष्ट्र को द्वैत (दूसरा, पराया) न समझे तो राष्ट्र का कभी पराभव नहीं हो सकता। काशी में स्वयं भगवान् ने एक चाण्डाल को गले लगाकर अद्वैत दर्शन का क्रियात्मक रूप दिखाया था।

समाज में सहिष्णुता के प्रचारक

भगवान् शंकराचार्य चरम सीमा के सहिष्णु थे। वे राष्ट्र हित एवं सत्य साधना के लिये शास्त्रार्थ करते थे, केवल कुतर्क के लिये नहीं। मण्डन मिश्र द्वारा प्रारम्भ में कटुवचन प्रयोग करने पर भी शंकराचार्य मंद-मंद मुस्कराते रहे। उन्होंने बौद्धों से शास्त्रार्थ किये किन्तु महात्मा बुद्ध की वन्दना की। वे बलप्रयोग के द्वारा किसी का

मत परिवर्तन नहीं करते थे। वे हाथ में वेद तथा भगवा पताका धारण करने वाले एकाकी संत एक ओर थे तथा अनेक राजाओं के समर्थन एवं सहायता से फैला हुआ विकृत-राष्ट्रद्वेषी बौद्ध धर्म दूसरी ओर था। किन्तु शंकराचार्य की ज्ञानदृष्टि, उदारता एवं सहिष्णुता ने सभी को जीत लिया। हिन्दू धर्म के भी अनेक मत-मतान्तरों को उन्होंने पंथ देवोपासन में सम्मिलित किया। विष्णु, सूर्य, शंकर, शक्ति तथा गणेश में से जो जिसका इष्टदेव है, वह उसी को पूजे तथा शेष देवों के प्रति सहिष्णुता, उदारता एवं आदर का भाव रखे। पंच मन्दिर बनाने की प्रथा भी शंकराचार्य से प्रारम्भ हुई। शिवभक्त 'शिवपंचायत' बनाते जिसमें चारों कोनों में चार देवों के मन्दिर तथा केन्द्र में शिव मंदिर बनाते। इसी प्रकार विष्णु भक्त, विष्णु पंचायतन, सूर्य भक्त सूर्य पंचायतन आदि बनाते।

मातृभक्ति एवं मातृ भूमि—भक्ति के संदेशवाहक

भगवान् शंकराचार्य की मातृभक्ति विलक्षण थी। अपनी महान् माता की आज्ञा एवं आशीर्वाद से वे मातृभूमि भारत का भाग्य निर्माण करने के लिये निकले थे। अपने आध्यात्मिक गौरव में वे भारतमाता की पूजा के साथ-साथ जगन्माता की पूजा में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार ये जन्ममाता, भारतमाता एवं जगन्माता के पुजारी बने।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पोषक

एक बौद्ध भिक्षु से शास्त्रार्थ करते हुए भगवान् शंकराचार्य बताते हैं कि किस प्रकार बौद्धों ने भारत के बाहर के तथाकथित विदेशियों को भारत पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। वे कहते हैं, 'शक और हूण बौद्ध धर्म में इसलिये दीक्षित नहीं हुए कि उन्हें बौद्ध धर्म प्रिय था अथवा उन्हें भगवान् बुद्ध से प्रेम था या वे अपने जीवन को आलोकित करना चाहते थे, किन्तु उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनी राजनीति के चंगुल में फंसाया....इसी अपनेपन के कारण तो तुम उनके अत्याचारों में सहयोग देते रहे। कनिष्क ने बौद्ध धर्म का पुनःसंस्कार भी किया और साथ ही भारत की स्वाधीनता का भी गला घोंटता रहा....।'

वे जानते हैं कि यदि भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा बनी रही, उसकी सामाजिक व्यवस्था बनी रही तो यह सदैव के लिये हमारे चंगुल में नहीं रह सकेगा। इसके विपरीत स्वतंत्रता की चाह को समाप्त करने का सबसे सरल मार्ग है—राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता का विनाश। इन शब्दों में जगद्गुरु शंकराचार्य की महान् राष्ट्रीय दृष्टि के दर्शन होते हैं।

तत्कालीन चीनी आक्रमण के सफल निरोधक

उस काल में भी चीनी राजा के द्वारा हिमालय की सीमा का अतिक्रमण हुआ था, बद्रीनाथ के लोग त्रस्त थे, भगवान् शंकराचार्य ने बद्रीनाथ के नारदकुण्ड में

डुबकी लगाकर भगवान् विष्णु की मूर्ति निकाली, उसकी वहाँ के मन्दिर में प्रतिष्ठा की, वहीं पर एक महान् मठ स्थापित कर दिया तथा बद्रीनाथ को तीर्थयात्रा का महान् धाम बना दिया जिससे वर्ष भर में लोग यहाँ श्रद्धा के साथ जाते रहे तथा पुनः किसी आक्रामक को भारत की सीमा पर अतिक्रमण करने का साहस न हो। आज पुनः चीन ने भारत की सीमा का अतिक्रमण किया है। क्या शंकराचार्य के देशवासी चीनी अतिक्रमण को उखाड़ फेंकने का पुनः शिव संकल्प करेंगे?

भारत-राष्ट्र का अनुभवसिद्ध उद्घोष है—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतस् सशरं-धनुः।
इदं क्षात्रं इदं ब्रह्मं शास्त्रादपि शरादपि॥

अर्थात् मेरे आगे चारों वेद है, उनके पीछे शरयुक्त धनुष है, मेरे पास ब्रह्म-तेज है और क्षात्र-तेज भी है। आसुरी शक्तियों को कभी शास्त्र द्वारा तो कभी शस्त्र द्वारा निरस्त करते हुए मैं (राष्ट्र) प्रगति पथ पर प्रयाण करता हूँ।

× × ×

भारत की मृत्युंजयी संस्कृति ही विश्वशांति का एकमात्र साधन है।

—प्रो. ओबराय

जगद्गुरु शंकराचार्य की दार्शनिक प्रतिभा

विश्व में जगद्गुरु शंकराचार्य से अधिक व्यापक आत्मा कदाचित ही कोई अन्य हुई है। वे विश्व के महानतम धर्म-द्रष्टाओं तथा आध्यात्मिक देवदूतों में प्रथम पूजा के पात्र हैं। भगवान् कृष्ण के पश्चात् भारतीय संस्कृति के महानतम उद्धारक वही हुए हैं। उनका अद्वितीय अद्वैत दर्शन जो वैदिक ज्ञान-वाटिका का सुन्दर पराग है, चिन्तन के क्षेत्र में अपना उपमान नहीं रखता। भगवान् शंकराचार्य एक कवि, एक दार्शनिक, एक संत, एक मनीषी, एक धर्मसुधारक तथा सांस्कृतिक देवदूत—वे इन सबका अद्‌भुत समन्वय थे।

भगवान् शंकराचार्य भारत के मानस सम्राट हैं। भारतीय दर्शन तथा उसी के कारण विश्व दर्शन को जो उनकी देन है, उसकी तुलना विश्व के इतिहास में अन्यत्र नहीं है। उनका चित्र भारत के ज्ञान-सूर्य का चित्र है, भारत के मुक्तिदाता का चित्र है, भारतीय संस्कृति के विश्व विजय हृदयहारी का चित्र है। उनकी स्तुति में भारत के संस्कृत कवियों ने गाया है—

पद्मासीनं प्रशान्त यमनिरतमनंगारि तुल्य प्रभावम्।
फालेभस्मांकर्ता भस्मित रुचिरमुखां भोजनिन्दी वराक्षम्।
कम्बुर्ग्रीव कराम्यामविहत विलसत्पुस्तकं ज्ञान-मुद्रा,
वन्धं गीर्वाणमुख्यैर्नत जन-वरदं भावये शंकराचार्यम्।।

अर्थात्, पद्मासन लगाये हुए प्रशान्त मूर्ति, यम-नियम में लगे हुए साक्षात कामदेव को भस्म करने वाले शंकर के तुल्य प्रभाव वाले मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाए हुए, भस्मित सुन्दर मुख कमल वाले, नील कमल के समान आंखों वाले, शंख के समान ग्रीवा वाले, एक हाथ शोभायमान पुस्तक लिए और दूसरे हाथ में ज्ञान मुद्रा में ज्ञान उपदेश करते हुए, बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा भी बन्दना के योग्य, शरण में आने वालों को महान् वरदान देने वाले उन भगवान् शंकराचार्य का मैं चिन्तन करता हूँ।

सन् 1934 में, अखिल भारतीय दर्शन सम्मेलन में पूर्व और पश्चिम के बड़े-बड़े दार्शनिक एकत्रित हुए थे। उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे प्रसिद्ध पश्चिमी दार्शनिक डाक्टर मेकेंजी। उस सभा में सभी ने एकमत से यह प्रस्ताव पास किया

कि शंकराचार्य दुनिया के महानतम दार्शनिकों में से एक होने के कारण सम्मेलन में उनका एक विशाल चित्र लगाना चाहिए।

शंकर का सिद्धान्त

भगवान् शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त का सार आधे श्लोक में कह दिया—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रंथं कोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

अर्थात्, जो करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है मैं उसे आधे श्लोक में ही कह देता हूँ। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा यह जीव ही ब्रह्म है, वह अपर (पराया या अन्य) नहीं है। जीव के भीतर के ब्रह्म को जगाना, मानव के भीतर के भगवान् को जगाना, नर के भीतर के नारायण को जगाना वेदान्त का उद्देश्य रहा है। ईश्वर कोई सातवें आसमान पर न हो कर घट के भीतर समाया हुआ है। उसे जानना, उसी का लाभ प्राप्त करना ही सच्चा स्वराज्य है, सच्चा स्वास्थ्य है, सच्ची स्वतन्त्रता है। अपनी आत्मा के सिवा किसी अन्य का दास बनने में गुलामी है। आत्मज्ञान एवं आत्मलाभ में ही मुक्ति है। वेद कहता है—अयमात्मा ब्रह्म। यह आत्मा ही ब्रह्म है।

जगत् प्रपंच

आचार्य शंकर कहते हैं एक समय था यह जगत् नहीं था; एक समय है यह है, एक समय होगा जब पुनः नहीं होगा। अतः यह तीनों कालों में सत्य नहीं। भासमान होते हुए भी असत् होने से माया है, धोखा है। शंकर को मायावादी कहना सत्य का गला घोंटना है। शंकर ने माया को माया कह कर उसको त्यागने तथा ब्रह्म को प्राप्त करने का आदेश किया है। शंकर माया के पुजारी नहीं, ब्रह्म के पुजारी हैं अतः ब्रह्मवादी हैं।

भारतीय संस्कृति के मुक्तिदूत

(क) शंकराचार्य का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने हिन्दुत्व को पौराणिक धर्म से मोड़कर उपनिषदों की ओर उन्मुख किया। जैसे गीता ने बीसवीं सदी में आकर, लोकमान्य के हाथों नवीनता प्राप्त की थी वैसे ही शंकराचार्य के हाथों उपनिषदों की शिक्षा नवीन हो गई।

(ख) अद्वैतवाद को प्रमुखता देते हुए भी उन्होंने विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य पर स्तोत्र लिखे, जिससे हिन्दुत्व में समन्वय लाने का आग्रह प्रकट होता है।

(ग) वे आध्यात्मिक सुधारक संत थे। उन्होंने शक्ति मन्दिरों में बलि देने की प्रथा का अनेक स्थानों पर अवरोध किया था।

(घ) बौद्ध संघों के अनुकरण पर उन्होंने संन्यासियों के संघ स्थापित किए तथा भारत की भौगोलिक एकता को प्रत्यक्ष करने के निमित्त देश की चार दिशाओं में चार पीठ भी स्थापित किये।

(ड़) बौद्ध धर्म के विकृत वज्रयानी सम्प्रदाय में जो मद्य, मांस, मछली, मैथुन, माया, मुद्रा इत्यादि का खुला प्रयोग हो रहा था, भगवान् शंकराचार्य ने ऐसे विकृत पाखण्डी सम्प्रदायों का उन्मूलन कर भारत की धर्म गंगा को कलुषित होने से बचा लिया।

आज भगवान् शंकराचार्य की पावन जन्म जयन्ती पर हम अपना तन-मन-प्राण ही अपने उन मुक्तिदूत के चरणों में सादर चढ़ाते हैं।

12 मई 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

भारत का भविष्य

क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का लोप हो जायेगा और उसके स्थान पर काम रूपी असुर और विलासिता रूपी राक्षसी राज करेगी। धन उसका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता ही उनकी पूजा पद्धति होगी और मानवता उनकी बलि-सामग्री हो जायेगी। ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हो सकती।

—स्वामी विवेकानन्द

विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रम

रात्रि की निस्तब्धता को भंग करती हुई, एक कुटिया में से रुदन की ध्वनि आ रही थी। भीतर एक वृद्धा थी जिस के नेत्रों की ज्योति मन्द हो चली थी। उन ज्योति-हीन नेत्रों के भीतर से उष्ण आंसुओं की धार बहाती हुई वह रो रही थी। उसका इकलौता जवान लड़का जो उसके जीवन का एकमात्र आश्रय था, बर्बर शकों के आक्रमणों में मारा गया था। अचानक द्वार खटखटाने की ध्वनि हुई। बुढ़िया ने पूछा, इस अर्द्धरात्रि में कौन है? उत्तर मिला, 'माँ!' मैं हूँ। माँ शब्द मात्र से ही बुढ़िया का हृदय आनन्द से झूमने लगा। भावाकुल दशा में वह द्वार की ओर दौड़ी। एक सुन्दर, इकहरा बदन, दुहरी छाती वाला युवक बुढ़िया का चरण स्पर्श करने लगा। बुढ़िया ने उसे हृदय से लगाकर प्रेमाश्रुओं से अभिनन्दन किया। 'बेटा तू जीवित है?' 'माँ! मैं तेरी सेवा के लिए आया हूँ।' 'पर बेटा, इतने दिनों गुम रहा?' 'नहीं माँ', युद्ध भूमि में व्यस्त रहा? 'बेटा, तेरी आवाज कुछ बदल गई है?' हाथ से स्पर्श करते हुए माँ ने पुनः कहा—'तेरा शरीर भी कुछ बड़ा है।' माँ! काल बीतने से कुछ अन्तर हो ही जाता है।' यह कहकर नवयुवक ने बुढ़िया के चरण दबाने शुरू किए। रात्रि भर बुढ़िया की सेवा कर प्रातःकाल नवयुवक ने कहा—'मैं राजदरबार में नौकरी के लिए जा रहा हूँ, संध्या को आऊंगा।' माँ को कुछ सन्देह तो हुआ किन्तु नवयुवक का प्रेम तथा सेवाभाव देखकर उसने यही सोचा कि मेरे अपने पुत्र के सिवा और कोई ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। प्रतिदिन रात्रि को नवयुवक आकर माँ की सेवा करता तथा सूर्योदय होते-होते वह चला जाता। एक दिन बुढ़िया को पता चल ही गया कि वह नवयुवक और कोई नहीं, स्वयं दुःखभंजक, न्यायदर्शी, महाराज शकारि विक्रमादित्य हैं जो रात्रि को भेष बदलकर अपनी प्यारी प्रजाओं के दुःख भंजन के लिए घूमते हैं तथा दुःखियों के आंसू पोंछते हैं। अपना सारा वात्सल्य उस तेजस्वी युवक पर लुटाते हुए वृद्धा ने रून्धे कण्ठ से कहा—महाराज! आप सारे भारत के चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी मेरी जैसी भिखारिन की झोंपड़ी में पधारे तथा स्वयं मेरे पुत्र बनकर मेरी सेवा करते रहे। मैं अपना सर्वस्व देकर भी इस उपकार का बदला नहीं चुका सकती। हे विक्रम! जब तक चाँद और सूरज रहें तेरा नाम अमर रहे। वृद्धा के लुप्त ज्योति

नेत्रों से कृतज्ञता के शीतल अश्रुबिन्दु गिरने लगे। उस वृद्ध माता के आशीर्वाद में स्वयं भारतमाता का अपने इस तेजस्वी पुत्र के लिये आशीर्वाद निहित था। संभवतः उसी के प्रताप से आज तक महाराज विक्रमादित्य भारत की कोटि-कोटि सन्तानों के हृदयदेश पर राज्य कर रहे हैं। विक्रमादित्य नाम में ही कुछ जादू है जो गत 20 शताब्दियों से भारतीयों के हृदय में एक अद्भुत प्रेरणा प्रवाहित करता रहा है। भारतीय हृदय के लिये विक्रमादित्य केवल ऐतिहासिक व्यक्ति ही न रह कर राष्ट्रीय जीवन का एक उज्ज्वल ध्येयतारा भी बन गया है। पिछले 1000 वर्षों की पराधीनता की लम्बी विकराल रात्रि में भी उसी प्रकाशमान आदित्य के दर्शन के लिए तरसते हुए ही हम जीवित रहे हैं। श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी के शब्दों में, विक्रमादित्य का तेजस्वी नाम भारतीयों के मानसपटल पर अमिट रूप से अंकित हो चुका है। उसका कारण समझाते हुए वे लिखते हैं—भगवान् परशुराम में दिव्य तेज था किन्तु वे इतने भयानक थे कि जनगण इनसे प्रेम नहीं कर सकते थे। श्रीकृष्ण में देवत्व भी था, वे धर्मरक्षा के लिए कृत संकल्प थे, किन्तु उन्होंने स्वयं ताज नहीं पहना। अशोक ने धर्मरक्षा की किन्तु राज्य तो उसे पहले ही सुरक्षित रूप से बाप-दादा से मिला था। विक्रमादित्य का प्रभाव इन सब से अधिक हुआ क्योंकि वह पूर्ण मानव था। उसने शकों को खदेड़ कर एक शक्तिशाली एकछत्र राज्य का निर्माण किया, उसने साहित्य एवं कला को महान् प्रोत्साहन दिया और धर्म की रक्षा की, सब से बढ़कर दुखियों एवं दीनों का दुःख दूर किया। वह परशुराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा अशोक की स्मृतियों का समन्वय बन कर आया तथा उसने राष्ट्र के हृदय में प्रेम तथा श्रद्धा का एक अलौकिक स्थान बना लिया।

नववर्ष प्रतिपदा का मंगलमय पर्व कितना माधुर्यपूर्ण तथा उल्लासप्रद है। अपने उस गौरवशाली अतीत की स्मृति मात्र से कोटिशः भारतीयों के वक्षस्थल गर्व से फूल उठते हैं, ग्रीवाएं स्वाभिमान से उन्नत हो जाती हैं तथा अपने पूर्व पुरुषों के स्नेह से स्पंदित उनका छोटा सा भावुक हृदय एक बार उस स्वर्ण युग प्रणेता, हूण-शक प्रभृति दुष्टदल-विजेता, नवसंस्थापक, धर्मरक्षक, प्रजावत्सल सम्राट-श्रेष्ठ वीर विक्रमादित्य के पुण्य स्मरण से पुलकित होकर नृत्य करने लगता है। विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रमादित्य कौन हैं? यह विश्व के इतिहासकारों को चुनौती है। आज से 2015 वर्ष पहले भारतीय इतिहास में एक नूतन युग का प्रारंभ करने वाले महाराज विक्रमादित्य अवश्य ही कोई अमित तेजस्वी, महाप्रतापी महापुरुष हुए होंगे। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं। जिस विक्रम का न्याय लोक विश्रुत है, जिसके भूमि में दबे हुए सिंहासन पर अनजाने में बैठ जाने पर गड़रिये का लड़का भी सदा न्याय कर सकता है, जिसके राज्य में प्रजा सर्वाधिक सुखी एवं सम्पन्न थी, जिसकी वैताल पचीसी की कथाएं आज तक घर-घर में कही-सुनी जाती हैं, जिसकी प्रशस्तियाँ आज तक मध्य भारत के लोकगीतों में

गूंजती हैं, जो महाकवि कालिदास का परममित्र एवं साहित्यिकों तथा कलाकारों का अपूर्व आश्रयदाता था, उस महान् विक्रमादित्य को भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उनके लिए और कोई राजा, महाराजा कल्पित भले ही हो, पर विक्रमादित्य तो उन सब के लिए एक यथार्थ सत्य है। उनके लिए न केवल वह 2015 वर्ष पूर्व जीवित था अपितु उनके हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में वह आज भी जीवित है। भगवान् राम के पश्चात् रामराज्य का कोई सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उन्होंने देखा है तो वह सम्राट विक्रमादित्य के समय में। जिस संवत् में हमारी जाति की पिछले दो सहस्र वर्षों की कहानी अंकित है। जिस संवत् के अनुसार आज तक हमारे धार्मिक कृत्य होते हैं, जिस संवत् का वर्णन हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में भी पाया जाता है, जिस संवत् के पवित्र नाम का उच्चारण कर हम सारे शुभ संकल्प करते आए हैं, जो केवल पत्थर के शिलालेख पर ही नहीं हमारे हृदय पटलों पर भी अमिट रूप से अंकित हो चुका है, उस महान् विक्रम संवत् के प्रणेता कोई कल्पित विक्रमादित्य हों यह कितना हास्यास्पद है, संवत् का प्रणयन एक जाति की जीवन गाथा में एक अविस्मरणीय घटना होती है। वह युगों तक अपनी छाप छोड़ जाता है। अतः विक्रम संवत् एवं उसके प्रणेता सम्राट विक्रमादित्य का भरत-सुतों की संस्कृति में एक अमर स्थान प्राप्त कर लेना संवत् तथा संवत्-प्रणेता, दोनों की ऐतिहासिकता के पक्ष में सबसे प्रबल प्रमाण है।

कोई भर्तृहरि शतक के अमर गायक योगीराज गोरखनाथजी के अमर शिष्य भर्तृहरिजी को सम्राट विक्रम का बड़ा भाई मानते हैं। भर्तृहरि के संसार से विरक्त हो जाने पर विक्रम ने अवंति का सिंहासन ग्रहण किया तथा पश्चिमोत्तर की ओर से आने वाले शकों को परास्त कर उन्होंने शकारि की उपाधि प्राप्त की। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित हिन्दू संस्कृति अंक में यही मत व्यक्त किया गया है।

पण्डित भगवद्दत्त (रिसर्च स्कालर) का मत है कि ईसा से 56 वर्ष पहले आंध्र प्रदेश के प्रतापी राजा शूद्रक ने विदेशी आक्रमणकारियों को भारत से बाहर धकेल कर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तथा विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। पुराणों में सम्मान के साथ विक्रम संवत् को ही कृत संवत् (कृत युग, सतयुग का संवत्) तक कहा गया है।

डॉ. जायसवाल तथा श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के मतानुसार आंध्रवंश के महाराज गौतमी पुत्र सातकर्णि ने प्रथम शती ईसा पूर्व में उज्जैन, मध्यप्रदेश के शक महाक्षत्रप नहपान को परास्त करके विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तथा विक्रम संवत आरम्भ किया। चूंकि उज्जैन के मालवगणों ने शकों को परास्त करने में उसकी सहायता की थी इसीलिए इसी संवत् का दूसरा नाम मालव संवत् प्रसिद्ध हुआ। इस मत में संभाव्य सत्य भी है किन्तु एक बात बड़ी विचित्र है।

श्री विद्यालंकार तथा श्री जायसवाल, दोनों इसी विक्रमादित्य को शालिवाहन मानते है। वस्तुस्थिति यह है कि शालिवाहन तो जाति से स्वयं शक था। कर्नल टाड के मत में शकराज 'गज' जिसके नाम से गजनी बसा, उसी (गज) का पुत्र शालिवाहन भाग कर भारत आया, उसने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया तथा महाराष्ट्र के तीर्थ पैठण में राजधानी बनाई। इसी शालिवाहन ने शक संवत्सर चलाया जो विक्रम संवत् से 78 वर्ष पीछे है। यह बड़ी दुःख भरी वार्ता है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार ने भारत को विदेशी बर्बर शकों के आक्रमण से मुक्त कराने वाले शकारि विक्रमादित्य के संवत् को मान्यता न देकर, बर्बर आततायियों के स्मारक शक संवत् को राजकीय संवत् घोषित कर दिया है। भारतीय प्रज्ञा के लिए यह एक लांछन की बात है।

20 मार्च, 1958 को
दैनिक 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित

शस्त्र द्वारा रक्षित राष्ट्र में शास्त्र चिन्तन हो सकता है।

—चाणक्य

जहाँ शस्त्र बल नहीं, वहाँ शास्त्र रोते हैं।

—दिनकरजी

स्वयमेव मृगेन्द्रता

सिंह स्वयं अपने बल से ही मृगेन्द्र बनता है।

महाकवि कालिदास की वैज्ञानिक प्रतिभा

संस्कृत साहित्य गगन के देदीप्यमान दिवाकर महाकवि कालिदास भगवती सरस्वती के हीरक मुकुट के परमोज्ज्वल हीरे हैं। साहित्यिकों के शिरोमणि, नाटक-स्रष्टाओं के गौरव तथा कलावन्तों के अमर प्रेरक के रूप में कविकुल भालतिलक महाकवि कालिदास विश्व साहित्य के इतिहास में एक अद्वितीय विभूति हैं। उनकी उदात्त कल्पना, हृदयहारी भावुकता, कलारुचिर उपमाएं तथा सजीव चित्रांकन कला—यह गुण उनके राष्ट्रीय गौरव तथा विश्व प्रेम से समन्वित होकर उन्हें मानवता की ऐसी अमूल्य आत्मा बनाते हैं जो सदा प्रेम में ही जीती रही तथा संगीत में ही श्वास लेती रही। भारतीय संस्कृति का सत्यम् शिवम् तथा सुन्दरम् अपने पूर्ण रूप से महाकवि कालिदास के शाश्वत महाकाव्य 'रघुवंश', उनके अमर गीतिकाव्य 'मेघदूत' तथा उनके अविनश्वर नाटक 'शकुन्तला' में अमिट रूप से अंकित है।

किन्तु विश्व के सर्वोच्च कलाकार होते हुए भी कालिदास की दृष्टि वैज्ञानिक भी थी, यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है। इलाचन्द्र जोशी का कथन है कि—'कालिदास की जो मैं सबसे बड़ी विशेषता मानता हूँ, वह यह थी कि उनके अन्तर में परिपूर्ण रसमयता की अखण्ड धारा प्रवाहित होते रहने पर भी वे सच्चे वैज्ञानिक की तरह विश्व के चारों कोनों से सभी विषयों का सही-सही ज्ञान प्राप्त करने की असीम उत्सुकता लिए रहते थे। कोई भी विषय चाहे वह रसायन हो या ज्योतिष, वनस्पतिशास्त्र हो या पक्षी विज्ञान, भूगोल हो या इतिहास, राजनीति हो या धर्मनीति, साहित्य हो या विज्ञान—उनकी सर्वग्राही पैनी दृष्टि से बचा नहीं रह सकता था।'

अनेकता में एकता के दर्शन

ज्ञान के अनन्त भण्डार की अनन्त शाखाएं हैं। उन सबमें ज्ञान संपादन करने का उद्देश्य था विश्वदर्शन की खोज। सृष्टि के वैविध्य के भीतर एक की खोज। जिस एक परम सत्ता को वे अपने अन्तर्जगत् में देख रहे थे उसी को वे बाहर की जड़ प्रकृति में भी देखने के लिए आकुल थे।

भूगोल

जहाँ बाइबिल धरती को चपटा कहती है वहाँ भारतीय वाङ्मय में 'भूगोल' शब्द ही भूमि के गोल होने का परिचायक है। कालिदास पहले कवि थे और बाद में भूगोलवेत्ता। किन्तु उनके काव्य में भूगोल के नदी, पर्वत और देश इतनी सुन्दरता के साथ चित्रित हुए हैं कि स्वयं भूगोल भी उनके रूप पर अपनी जान न्योछावर कर बैठे। लार्ड मैकमोहन द्वारा भारत के उत्तरी सीमान्त पर मैकमोहन रेखा की सीमा निर्धारित करने से सहस्रों वर्ष पूर्व उस अमर कलाकार ने भारत की भौगोलिक सीमाओं का अपने साहित्य की तूलिका से अमिट रूप से अंकन कर दिया था। गिरिराज हिमालय के स्तवन में वे अमर कलावन्त गीत के माध्यम से नृत्य कर उठते हैं—

अस्त्युतरस्यां दिशि देवात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।

उस महाकवि के अमर वाङ्मय में हमें जिस भारत के दर्शन होते हैं उसकी उत्तर दिशा में विश्व भर के पर्वतों का राजा साक्षात् देवमूर्ति हिमालय इस महान् देश के रक्षक के रूप में खड़ा है, सुदूर पूर्व में पूर्व सागर है जो आज बंगाल की खाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तट पर बंग जाति के लोग बसते हैं, जिनके नाम से बाद में वह बंगाल कहलाया। इस महान् भारत देश के चरणों को दक्षिण का महोदधि पखार रहा है। उस अमर चितेरे कालिदास ने दक्षिण पठार के दोनों तटों पर झूमते हुए नारिकेल के वृक्षों की हरीतिमा का जो हृदयहारी चित्र प्रस्तुत किया है, उस पर आज भी मन कुर्बान हो जाना चाहता है। पूर्व के तट पर कलिंग और पाण्ड्य राजाओं के बलशाली राज्य हैं। सुदूर दक्षिण में भगवान् शंकराचार्य की जन्मभूमि नारिकेल के झुरमुटों से सुशोभित केरल प्रदेश के दर्शन होते हैं। भारत के मानचित्र में उस अनोखे भूगोलवेत्ता ने भारत के पश्चिमी तट को 'अपरान्त' नाम से सुशोभित किया है। इस महादेश के पश्चिमोत्तर में वक्ष नदी पार पार्श्व देश (फारस) है जहाँ की लम्बी दाढ़ियों वाले घुड़सवार बड़े प्रसिद्ध हैं। उसी दिशा में हूण और कम्बोज जाति के लोग भी बसते हैं। नगाधिराज हिमालय में उस महाकवि ने उसकी कैलास, गौरीशंकर, गन्धमादन, मन्दार, मेरु तथा सुमेरु जैसी गगनचुम्बी चोटियों का जो चित्र खींचा है, उस शब्दचित्र के दर्शन मात्र से ही हृदय को स्वर्ग के शीतल पवन का स्पर्श लाभ होता है। कालिदास के शाश्वत साहित्य में भारत की अमृत-तोया नदियों का कल-कल निनाद भी श्रवणगोचर होता है। पुण्यतोया भागीरथी, सदानीरा सिंधु, कृष्णवर्णा कालिन्दी, साकेतशोभिनी सरयू, सुधास्रोतस्विनी सरस्वती इत्यादि अमृत की निर्झरिणियों के स्मृतिस्नान से ही जीवन का समस्त कलुष-कल्मष धुल जाता है। त्रिवेणी संगम के कलारुचिर चित्रण से स्वयं काव्य भी धन्य हो उठा है—

क्वचितप्रभा चांद्रमसी तमोभिच्छायाविलीनै शवीलकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेश्विवालक्ष्य नभः प्रदेशाः।

अर्थात्, गंगा-यमुना के संगम में कहीं पर चांद की शीतल चांदनी वृक्षों की छाया में से छन-छनकर अधःतलों को सुशोभित कर रही है, वहीं अन्य स्थलों पर शरत्कालीन आकाश में छाए हुए मेघों में से नीलाम्बर के नीले टुकड़े दिखाई दे रहे हैं।

भगवान् राम की लंका से अयोध्या तक की विमान यात्रा भूगोल की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री प्रदान करती है।

'मेघदूत' जैसे रसभीने काव्य में मेघ की यात्रा के बहाने कवि पाठक को मेघ के झीने-झीने पंखों पर बिठाकर सारे गगन की यात्रा कराता है, साथ ही भारत भर का भावप्रेरक परिचय भी प्रदान करता जाता है।

महाकवि कालिदास के रम्य काव्य में भारतीय भूगोल के अतिरिक्त संसार के अन्यान्य देशों की भौगोलिक स्थिति का भी वर्णन बड़ा सुन्दर है।

नक्षत्र विज्ञान

ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है—**वेदस्य चक्षुःकिल शास्त्रमेतत्।** महाकवि कालिदास ने जहाँ अपने गीतों में मानवीय मन की अगाधता का संगीतमुखर चित्र खींचा है वहाँ उसके काव्य में अनन्ताकार के दीप्तिमान नक्षत्रों का गीत भी गूंज रहा है। भगवान् अंशुमालि के सौर परिवार के नवग्रह उस अमित तेजस्वी सूर्यनारायण की सभा के नवरत्न हैं। जैसे आकाश में आदित्य की सभा में नवरत्न चमकते हैं वैसे ही धरती पर अमित तेजधारी विक्रमादित्य की सभा में दीप्तिमान नवरत्न चमक रहे हैं। कविकुलरत्न कालिदास ने जहाँ गगन के नवरत्न का चित्रण किया है, वहाँ धरती के प्रकाशमान नवरत्नों में वे स्वयं एक अन्यतम रत्न के समान जाज्वल्यमान हो रहे हैं। पर वस्तुतः उस महान् कवि मनीषी को केवल एक रत्न-मात्र कहना भी उनका लाघव है। कविवर बच्चन ने लिखा है—

ओ उज्जयिनी के वाग्जयी जगवंदन।
तुम विक्रम नवरत्नों में
यह इतिहास पुराना,
पर अपने सच्चे राजा को,
अब जग ने पहचाना,
थे तुम वह आदित्य, नवग्रह
जिसकी देते फेरी।
तुमसे लज्जित शतविक्रम के सिंहासन ओ उज्जयिनी....

महाकवि कालिदास के साहित्य में सूर्य, चन्द्र, भूमि, मंगल, बुध, बृहस्पति, राहु, केतु इत्यादि ग्रहों का वर्णन है। मंगल को लाल रंग का होने से 'अंगारक' कहा

गया है। राहु, केतु को बुरा फल देने वाला कहा गया है। नक्षत्रों में चित्रा, विशाखा, पुष्य, फाल्गुनी, रोहिणी इत्यादि का वर्णन है। स्वाति नक्षत्र की जलधारा में चातक की चकित पुकारों का वर्णन बड़ा मनोहारी है। 'कुमारसम्भवम्' में धूमकेतु के कुप्रभाव का भी संकेत है।....वाले शेर को सुरद्विष (राहु) की उपमा दी गई है। अब भारतीय पौराणिक कथाओं में कहा गया है कि राहु ही चन्द्रमा को ग्रसने वाला दैत्य है जिसके कारण चन्द्रग्रहण होता है। वास्तव में पृथ्वी की परिक्रमा करने से चन्द्रमा के ग्रह पथ की रेखा तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने से पृथ्वी की ग्रहपथ की रेखा जब परस्पर काटती है तब वहाँ बनने वाले कोणों को ही राहु तथा केतु माना गया है। ऊपर वाले ग्रहपथ रेखा कोण से सूर्यग्रहण तथा नीचे वाले ग्रहपथ रेखा कोण से चन्द्रग्रहण होता है। इन्हीं में से एक को 'राहु' तथा दूसरे को 'केतु' कहते हैं। चन्द्रग्रहण के वास्तविक कारण का कविप्रवर कालिदास को कितना सम्यक् ज्ञान था। यह 'रघुवंश' के निम्न श्लोक से भी नितान्त स्पष्ट है। भगवान् राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वह सीता को वन में छोड़ आए। लक्ष्मण के संकोच पर प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

अवैमि चैना मनघेति किन्तुलोकापव दों बलवान मतो मे।
छाया हि भूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुर्द्धमतः प्रजाभिः।।

अर्थात्, मैं जानता हूँ कि सीता पूर्णतया निष्पाप है किन्तु लोकापवाद बड़ा बलवान होता है। पृथ्वी की ही छाया चन्द्रमा पर पड़ती है पर उसे ही लोग चन्द्रमा का मल (चन्द्रग्रहण) मान लेते हैं।

कालिदास ने सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्रों एवं आकाशगंगा का वर्णन भी किया है। चन्द्रमा जब रोहिणी के सम्पर्क में आता है तो उसका सौन्दर्य कई गुणा बढ़ जाता है। 'रघुवंश' में चन्द्रमा को औषधियों एवं वनस्पतियों का स्वामी कहा गया है। द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शन को कालिदास ने **नेत्रोत्सवः सोम३वद्वितीयः** कहकर वर्णन किया है। कालिदास को यह भी ज्ञात था कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है।

'रघुवंश' में वर्णन है—

हरि दश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बाल चन्द्रमाः।

कालिदास ऋतु-विज्ञान के भी ज्ञाता थे। 'ऋतुसंहार' में संवत्सर को ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त—षड्ऋतुओं में विभाजित किया गया है। कालिदास फलित ज्योतिष के भी ज्ञाता थे। उनके ज्योतिष ज्ञान का प्रमाण उनके निम्नलिखित वचनों से मिलता है—

दृष्टि प्रपतिं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।

वे अन्यत्र पांच ग्रहों की उच्च स्थिति होने का वर्णन करते हैं—

ग्रहस्ततः पंचभि रुच्च संस्थै ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी।
पुनः मैत्रे मुहूर्ते शशलान्छनेन योग गता सृतरफल्गुनीषु।।

भौतिक विज्ञान

कविकुल-गुरु कालिदास भौतिक तत्त्व विज्ञान के भी ज्ञाता थे। 'मेघदूत' में मेघ का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं—

धूम ज्योति सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।

क्या धुएं, प्रकाश, पानी तथा वायु का मेल ही मेघ नहीं है?

क्व मेघः में कवि ने यह भी ध्वनि पैदा की है कि मेघ केवल इन तत्त्वों के मेल के अतिरिक्त और भी कुछ है। उस क्रांतदर्शी कवि ने उसमें एक आत्मा के भी दर्शन किए हैं तथा कालिदास का मेघ विरही यक्ष की विरह-कथा को सुनता है तथा उसका संदेश भी बहुत दूर उसकी प्रेमिका के पास पहुँचाता है।

समुद्र में ज्वार-भाटा आने का कारण भी कालिदास को ज्ञात था—

हरस्तु किञ्चित्प्रवलिप्तुधैर्य्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।

ध्रुव प्रदेश में दीर्घकाल तक रहने वाले प्रभात का भी उन्हें ज्ञान था—

मेरोरूपान्तेष्विव वर्तमानमन्दोन्य संसक्तमहस्त्रिणयम्।

सूर्य की उष्णता से पानी भाप बनकर उड़ जाता है और वर्षा के रूप में बरसता है। 'कुमारसम्भवम्' में वर्णन है—

रवि पीत जला तपात्पयेपुनरोघेन हि युज्यते नदी।

'रघुवंश' में पुनः लिखते हैं—

सहस्त्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

अर्थात् सूर्य सहस्रगुणा करके बरसाने के लिए ही रस को खींचता है।

कालिदास को चुम्बक विज्ञान का भी ज्ञान था—

अयस्कान्तेन लोहवत्।

आयुर्विज्ञान

कालिदास को आयुर्वेद तथा वैद्यक का भी ज्ञान था। 'कुमारसंभवम्' में कहा है—

तस्मिन्नुरायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहत क्रियाः।
वीर्य्यवन्त्यौषाधानीव विकारे सान्निपातके।।

'मालविकाग्निमित्रम्' में सर्पदंश-चिकित्सा के विषय में कविप्रवर कहते हैं—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतस्यांरक्त मोक्षणम।
एतानि दष्ट मात्राणामायुध्यः प्रतिपत्तयः।।

जीवविज्ञान

कालिदास जीवविज्ञान के भी ज्ञाता थे। कोकिल के 'कुहू' रव पर संस्कृत के सभी कवि समान रूप से मुग्ध थे। प्रायः यह कहा जाता है कि 'कोयल गाती है' किन्तु अकेले कालिदास ने यह तथ्य बताया है कि कोयल नहीं गाती कोकिल गाता है। 'कुहू-कुहू' का कूजन पुरुष कोकिल के कंठ से निकलता है, स्त्री कोकिल के कंठ से नहीं। नर कोकिल अपनी प्रिया को रिझाने के उद्देश्य से कुहू-कुहू गाता है।

मनोविज्ञान

कविकुल भाल-कुंकुम कालिदास मन की अनन्त सृष्टि के अद्भुत चितेरे थे। मन का भावानुभाव संचारीभाव उनकी रत्नप्रसू लेखनी से अछूता नहीं रहा। अभी बीसवीं शती में प्रसिद्ध जर्मन मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड ने जिस अवचेतन मन का सिद्धान्त खोजा है, कालिदास 20 शती पहले ही उससे परिचित थे, दुष्यन्त का अभिशप्त अचेतन जब शकुन्तला को भूल चुका था तब सहसा उसके कानों में एक गीत की भनक पड़ी जिसे रानी हंसपादिका गा रही थी। उसमें भ्रमर के प्रति यह उपालम्भ था कि 'कमलिनी के प्रति पिछले अनुराग को भूलकर तुम आज आम की रसभरी मंजरी से लिपटे हुए हो।'

गीत सुनकर दुष्यन्त के हृदय में सहसा एक अनजानी-सी उदासी छा जाती है। वह कह उठता है—

रम्यणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्।
पर्युत्सकी भवति यत्सुखितोऽपि जतुः।
तच्चेतमा स्मरति नूनमबोध पूर्ण।
भावास्थिराणि जननांतर सौहृदानि।।

अर्थात्, मधुर शब्द सुनकर सुखीजन भी जो बरबस उत्सुक हो जाते हैं, उससे ऐसा लगता है कि ऐसे क्षणों में उनकी चेतना में किसी अज्ञात और जन्मान्तरीण प्रेम की स्मृति जाग उठती है जो पहले से ही उनकी भावात्मक अवचेतना में स्थिर थी।

वायुसंचरण विज्ञान

कालिदास के समय में वायुयान तो नहीं थे पर कभी भगवान् राम की विमान यात्रा तथा कभी मेघ की गगन यात्रा के बहाने कालिदास अपने पाठक को वायुसंचरण का भी आनन्द प्रदान करते हैं। सबसे अद्भुत बात यह है कि जिस

गगन पथ रेखा से होकर राम और सीता विमान यात्रा कर रहे होंगे यदि ठीक उसी मार्ग से हो कर आज कोई कला प्रेमी वायु यात्रा करे तो उन जल-थल के बदलते हुए दृश्यों की वैसी ही तस्वीर उसे देखने को मिलेगी जिसका वर्णन कालिदास ने बिना वायुयान में बैठे ही कर दिया था।

अर्थ विज्ञान

कवि-मनीषी कालिदास अर्थविज्ञानवेत्ता भी थे। उन्होंने 'निक्षेप' का वर्णन किया है। यदि किसी के पास अमानत के रूप में कुछ वस्तु या धन रखा जाए तो वह 'निक्षेप' कहलाता था। 'न्यास' का अर्थ भी धन जमा करना था। 'नीवी' का अर्थ सब खर्च निकालकर शेष बचत है। प्राचीन काल में बैंकों जैसा व्यवसाय भी चलता था।

कृषि विज्ञान

कालिदास ने कृषि का भी अच्छा ज्ञान प्रदर्शित किया था। अधिकांश जनता कृषि पर ही जीती थी। यव, धान, ईक्ष, तिल, गोधूम तथा केशर की शस्य होती थी। धान के भी कई प्रकारों का वर्णन है, जैसे—शाली, कलमा तथा निवारः। गन्ने से 'प्रचुर गुड़ विकारः' बनते थे। ईक्ष के खेत में काम करने वाली कृषक बालाएं महाराज रघु की कीर्ति के गीत गा रही हैं। काश्मीर तथा वक्षु की वादी पीले केशर की सुगन्ध भरी शस्य से झूम रही है। यह है कालिदास द्वारा प्रस्तुत किये गये वे अमर चित्र जिनके पुनः दर्शन करने के लिए प्रत्येक भारतीय के नेत्र सहस्राब्दियों से तरस रहे हैं।

29 नवम्बर 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' मासिक विशेषांक में प्रकाशित

सन्त ज्ञानेश्वर का सर्वात्म-दर्शन

यदि भारत ने विश्व भुवन में गौरव का पूज्य स्थान प्राप्त किया है तो राजनीतिज्ञों अथवा कूटनीतिज्ञों के कारण नहीं वरन् उन ब्रह्मज्ञानी सन्तों एवं आत्मदर्शी अवतारी महापुरुषों के कारण, जिन्होंने न केवल मानव-मानव के बीच की भेद भरी प्राचीरों को अपने अनन्त प्रेम के प्रवाह में बहा कर मानवात्मा को मुक्ति प्रदान की वरन् विश्व के कण-कण में, किंवा सृष्टि के अणु-अणु में 'अणोरणीयान्महतो महीयान् (कठ उपनिषद् 1/2/20)'— सूक्ष्मता से अधिक सूक्ष्म तथा महानता से भी अधिक महान् साक्षात परब्रह्म के दर्शन किए। यूनान, मिस्र, रोम, असीरिया तथा बेबिलोन की ध्वस्त संस्कृतियों के खण्डहरों के भीतर से आज भी इतिहास का महान् नीतिवचन गूंज रहा है। नश्वर पर आधारित संस्कृति सदा नश्वर है तथा अमृत से उद्भूत अविनश्वर आत्मतत्त्व पर केन्द्रित संस्कृति मृत्युंजय है, अविनाशी है, चिरन्तन जीवी है।

वेद में जिस ब्रह्म की वन्दना में गाया गया है—'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**', उसी अनन्त ज्ञान के मूर्तिमान अवतार पुण्यश्लोक सन्त ज्ञानेश्वर भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सर्वोच्च महापुरुषों की पंक्ति में भी अपनी प्रकार की एक अद्भुत अलौलिक विभूति हैं। केवल 21 वर्ष का उनका लघुजीवन विश्व में ऐसा आध्यात्मिक प्रकाश बिखेर गया है जिसके सम्मुख आज तक बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओं की आंखें चौंधिया जाती हैं।

आजकल के वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रायः 30-32 वर्ष की अवस्था में मनुष्य की दन्तावली में अकल की दाढ़ निकलती है जो मनुष्य की बुद्धि के परिपक्व होने की परिचायक है। प्रायः यह माना जाता है कि दुनिया के अधिकांश नेता इस आयु के पश्चात् ही प्रकाश में आए तथा उन्होंने विश्व के ज्ञान में कुछ वृद्धि की। आज के वैज्ञानिकों के इस तथ्य को चुनौती देते हुए भारत ने वामदेव, शुकदेव, शंकराचार्य, रामतीर्थ, विवेकानन्द तथा ज्ञानेश्वर जैसे बाल-ब्रह्मज्ञानी पैदा किए जिन्होंने अल्पायु में ही विश्व को चमत्कृत कर दिया। सन्त ज्ञानेश्वर ने तो कुल 21 वर्ष, 3 मास, 5 दिन इस धराधाम पर देह धारण किया। तिस पर भी केवल 15 वर्ष की अवस्था में जब उनके दूध के दांत अभी गिरे ही थे, उन्होंने गीता

ज्ञानेश्वरी नामक गीता पर जिस महान् भाष्य की रचना की उसका अवलोकन कर आज तक बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी दांतों तले अंगुली दबा कर रह जाते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर तो जन्म से ही मुक्त पुरुष थे। अपने जीवन के अल्पकालिक विद्युत् प्रकाश से वे मानवता के क्षितिज पर ऐसा आलोक छोड़ गए जो सदा सर्वदा पथभ्रष्ट मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा। उनकी जीवन रागिनी वेद की ऋचा के समान संक्षिप्त किंतु गहन-गंभीर, अनादि, अनन्त एवं रसानन्द पूर्ण है।

सन्तप्रवर ज्ञानेश्वरजी का जन्म एकनाथ, तुकाराम, नामदेव, समर्थ रामदास जैसे महान् सन्तों की जन्म भूमि महाराष्ट्र में हुआ। किन्तु इन सभी सन्तों में से सब से पहले जन्म लेने के कारण वे सब के प्रेरक रहे तथा महाराष्ट्र के धर्मगुरु बन कर आज तक पूजित हैं। उनका जन्म तो संवत् 1332 की भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन स्वयं भगवान् कृष्ण के जन्म दिवस पर मध्य रात्रि में ही हुआ। क्योंकि उसी दिन भारतीय जनगण भगवान् कृष्ण की जयन्ती मनाता है इसलिए सन्त शिरोमणि ज्ञानदेव का उनकी पुण्य निर्वाण तिथि मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी पर ही पावन स्मरण एवं पूजन किया जाता है। ज्ञानमूर्ति ज्ञानदेवजी के पूर्वज पैठण से 4 कोस की दूरी पर गोदावरी तट के वासी थे। इनके पिता विट्ठल पन्त ने वैराग्य भाव से बहुत छोटी आयु में ही युवा पत्नी का त्याग कर संन्यास लेने का निश्चय किया। कहा जाता है कि उनकी पत्नी ने स्वामी रामानन्दजी के दर्शन के समय जब उन्हें प्रणाम किया तो स्वामीजी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। जब उसने बताया कि उसके पतिदेव उसे त्यागकर चले गए हैं तो स्वामीजी ने विट्ठलपन्त से कहा—तूने अपनी सन्तानहीन युवा पत्नी को छोड़कर संन्यास का विचार किया है जो दोषपूर्ण है। मेरी आज्ञा से तुम दुबारा गृहस्थी बनो। भगवद्भक्त विट्ठलपन्त तथा उसकी साध्वी पत्नी रुक्मिणी बाई से ही ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ, सोमनाथ पुत्र तथा मुक्ताबाई पुत्री हुई। समाज के अत्याचार का दंश बड़ों-बड़ों को विचलित कर देता है। रूढ़ियों के दलदल में फंसे लोग प्रायः मुक्तात्मा महापुरुषों पर कीचड़ उछालते हैं। धर्म-ध्वजी पंडों ने विट्ठलपन्त तथा उसकी सन्तान की निन्दा की। संन्यासी की सन्तान कहकर उनको बहुत दुत्कारा। जब ज्ञानदेव 5 वर्ष के ही थे, सोपानदेव केवल 4 वर्ष थे, मुक्ताबाई केवल तीन वर्ष की नन्ही बच्ची थी तभी इन मासूम बच्चों के माता-पिता ने पुनः गृहस्थ प्राप्ति पर प्रायश्चित्त करने के लिए त्रिवेणी संगम में जीवित ही जल समाधि ले ली। चारों बच्चे अनाथ हो गए। कच्चा अन्न भिक्षा में मांग कर लाते तथा भगवद् भजन करके समय बिताते। कौन जानता था कि ये अनाथ ही किसी दिन नाथों के नाथ बनकर पूजित होंगे!

निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव तथा सोपानदेव यज्ञोपवीत संस्कार करवाना चाहते थे। आलंदी के पण्डे लोग इसके विरुद्ध थे। उन्होंने सलाह दी कि तुम पैठण जाओ।

वहाँ के विद्वान् ब्राह्मण यदि तुम्हारे उपनयन की व्यवस्था कर देंगे तो हम लोग भी उसे मान लेंगे। पैदल यात्रा करते भगवन्नाम कीर्तन करते यह भक्त भाई-बहिन मण्डली पैठण पहुंची। ब्राह्मणों ने द्वेषवश कहा कि यदि तुम लोग अपने ऊपर हंसने वाले लोगों को, कुत्तों और चाण्डालों को, सभी लोक-लाज को छोड़कर भूमि पर लेटकर प्रणाम करो तो शुद्ध हो सकते हो।

कुछ दुष्टों ने उस बालभक्त मण्डली से छेड़छाड़ शुरू की। एक ने ज्ञानेश्वरजी से नाम पूछा तो उन्होंने कहा—ज्ञानदेव। दुष्टों ने एक भैंसे की ओर संकेत करके कहा—हमारे यहाँ तो यही ज्ञानदेव है। सन्त ज्ञानेश्वर ने हंसकर कहा—क्यों नहीं, यह भी तो मेरी ही आत्मा है। इसमें और मुझ में कोई भेद नहीं। इस पर एक दुष्ट ने भैंसे की पीठ पर दो साटे जमा दिए और ज्ञानदेव से पूछा—इन साटों की पीड़ा तुम्हें तो नहीं पहुंची होगी? आत्मदर्शी ज्ञानदेव ने पीठ दिखाई तो उस पर दोनों साटों की भीषण मार के रक्तिम चिह्न पड़े हुए थे। एक व्यक्ति ने कहा—यदि यह भैंसा भी ज्ञानदेव है तो यह भी तुम्हारे समान वेदमन्त्र गाए। ज्ञानदेव ने भैंसे की पीठ पर हाथ रखा तो वह ओंकार सहित वेदमन्त्र गाने लगा। इस पर सारे पण्डा लोग उस रहस्यदर्शी महात्मा के चरणों में नतमस्तक हुए। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण के घर श्राद्ध पर ज्ञानदेवजी ने उस ब्राह्मण के पितरों को सशरीर बुलाकर भोजन कराया। ज्ञानदेवजी की अनेक चमत्कारी घटनाएं प्रसिद्ध हैं। नेवासे में एक स्त्री अपने पति के शव को गोद में लिए विलाप कर रही थी। उसके पति का नाम सच्चिदानन्द था। ज्ञानेश्वरजी ने कहा—सच्चिदानन्द की मृत्यु नहीं हो सकती। उसके शरीर पर हाथ फेरने से वह उठ कर खड़ा हो गया। कहते हैं इसी सच्चिदानन्द बाबा ने आगे चलकर गीता ज्ञानेश्वरी को लिपिबद्ध किया। ज्ञानेश्वरजी का सब चमत्कारों से बड़ा चमत्कार तो यह 'गीता ज्ञानेश्वरी' ही है जो ज्ञान में शंकराचार्य की गीता के तुल्य है तथा भाषा व अलंकार तथा रसानन्द में विश्व साहित्य में बेजोड़ है। ज्ञानेश्वरजी ने सभी चमत्कार योगशक्ति से ही दिखाये थे पर जगत के उद्धार के लिए सरल मार्ग ही बताया। ज्ञानेश्वरी में गीता के 12वें अध्याय की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं— योग मार्ग से भी योगीजन अन्त में मुझे ही प्राप्त होते हैं, कुछ अधिक नहीं मिलता। कुछ अधिक मिलता है तो केवल कष्ट ही। भक्ति मार्ग ही सरल मार्ग है।

भगवान् कृष्ण के शब्दों में वे पुनः कहते हैं 'मेरे साथ समास होते ही जातिभाव का लोप हो जाता है।' इस प्रकार ज्ञानेश्वरजी ने घोषित किया कि गीता मनुष्य मात्र के लिये मोक्ष-द्वार खोलती है।

स्वयं ज्ञान के प्रखर सूर्य होते हुए भी ज्ञानदेव विनय की मूर्ति थे। अपने ही बड़े भाई निवृत्तिनाथ को गुरु मानने के पश्चात् उन्होंने उन्हें भाई नहीं कहा। उनके विषय

में ज्ञानदेव लिखते हैं। 'गुरुदेव के भोग के जितने पदार्थ हैं वे सब पदार्थ मैं स्वयं बनाना चाहता हूँ। मैं श्रीगुरु का भवन, द्वार, द्वारपाल, छत्र, छत्रधारी, चंवर डुलाने वाला, दीपक दिखाने वाला और ताम्बूल खिलाने वाला बनूं। गुरुदेव के नेत्र स्नेह से जो-जो रूप देखें वह सब रूप भी मैं ही बनूंगा और मरने पर इस शरीर की मिट्टी उसी भूमि में मिलाऊंगा जिस पर गुरुदेव के श्रीचरण अंकित होंगे।' संवत् 1353 मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी के दिन आत्मदर्शी सन्त ज्ञानदेवजी ने जीवित ही भू समाधि लेकर अपनी मुक्तात्मा को परमात्मा में सदा के लिए विलीन कर लिया। आज उन ज्ञानमूर्ति सन्त ज्ञानेश्वर की पुण्य तिथि पर उनके चरणों में हमारी कोटि हृदयाञ्जलियाँ समर्पित हों।

ज्ञान देवाय शान्ताय, वेद वेदान्त मूर्तये।
शुद्धाय, प्रबुद्धाय, ज्ञानेश्वराय नमोनमः।।

10 दिसम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'जब तक भारत उस परम पुरुष परमेश्वर की खोज में लगा रहेगा तब तक यह अमर रहेगा, इसका कोई नाश नहीं कर सकता।'

—स्वामी विवेकानन्द

आनंद विग्रह श्री चैतन्य महाप्रभु

काल की कठोर क्रूरताएं महापुरुषों को जन्म देती हैं। समूचे संसार को सभ्यता का प्रथम प्रकाश देने वाला यह महिमा मण्डित भारत देश कभी पराधीनता की शृंखलाओं में बंदी हो जाएगा, यह कौन जानता था? इस धर्मप्राण देश में ही हिन्दू धर्म के निष्ठावान पुत्रों को कभी तोपों और संगीनों का भय दिखाकर धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया जाएगा, इसका भी अनुमान किसे था? कौन जानता था कि समूची मानवता को अपना वात्सल्य लुटाने वाली भारत जननी के वक्ष पर लगभग एक हजार वर्ष तक बर्बर म्लेच्छों का अति निंद्य, नग्न नृत्य होता रहेगा? मध्यकालीन भारत का चित्र विदेशी आक्रमणों और विधर्मी अन्यायों का चित्र है। उसी चित्र में हमें प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर स्थित सनातन अक्षयवट के मूल में प्रहार होता दिखाई देता है, हकीकत राय के शीर्ष पर आरे चलते दिखते हैं, ऐश्वर्य के लिए धर्म को बेचने वाले मानसिंह और जयचन्द के दर्शन होते हैं, सम्भाजी की आंखें निकलती दिखाई देती हैं, बन्दा वैरागी की सत्तर लाख नस नाड़ी का कटना दिखाई देता है, गुरु अर्जुन का तप्त लोहे के तवों पर जलना दिखाई देता है, गुरु तेग बहादुर का शीर्ष छेदन भी दिखाई देता है, गुरु गोविन्द के नन्हे लाडलों का जीवित ही दीवारों में चुना जाना दिखाई देता है, नालन्दा के हजारों विद्यार्थियों को बोरे में बन्द करके समुद्र में फेंका जाना भी दिखाई देता है, पापी औरंगजेब का प्रतिदिन सैकड़ों जनेऊ तथा उतने ही शीश काटने का दृश्य भी दिखता है तथा दिल्ली की गलियों में दो-दो पैसे में माँ भारती के पुत्रों के शीशों के बिकने का हृदय-विदारक दृश्य भी खून भरी आंखों से देखना पड़ता है। वह चित्र कितना भयानक है, कितना बर्बरता पूर्ण है, कितना अमानुषिक है!

संकट की ऐसी विकराल रात्रि में ही भक्ति के पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ। अत्याचार तथा अनाचार के कठोर थपेड़ों ने भारतीय मानस का जो भीषण आलोड़न किया उसी हृदय मन्थन से भारत की आत्मा पुनः जागृत हुई तथा अध्यात्म के क्षीर-निधि से शीतलता, स्निग्धता तथा पावनता से परिपूर्ण भक्तिरूपी सुधाकर नवनीत बन कर प्रकट हुआ और फिर जो भक्ति की पावन भागीरथी

प्रवाहित हुई, उसमें असंख्यात जंगमतीर्थ रूप महापुरुष प्रकट हुए। भक्ति की दिव्य गंगाधारा में तैरते हुए तीर्थों के समान हमें दिखाई देते हैं भगवान् रामानुजाचार्य, स्वामी रामानन्दजी, सन्त कबीर, गुरु नानक, सन्त रैदास, नामदेव, रसखान, रहीम, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि सूरदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोसाईं विट्ठलनाथ, मीराबाई, दयाबाई, जयदेव, विद्यापति, बिल्वमंगल, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ रामदास, सन्त ज्ञानेश्वर इत्यादि-इत्यादि। ये तीर्थ स्वरूप महापुरुष जाति को संकट सागर से उबारने के लिये प्रकट हुए थे। जो व्यक्ति इन में से किसी एक भी नौका के सहारे लग गया वह पार हो गया। ये सभी महापुरुष उस परम ज्योति के दीप्तमान प्रदीप बनकर नैराश्य की काली रजनी में प्रकाश बिखेरने लगे। किंतु सं. 1542, फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को बंग भूमि के नवद्वीप नगर में जिस पूर्ण गौर चन्द्र का उदय हुआ उससे तो भारत का भाग्य ही बदल गया। उन श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की पावन गाथा बड़ी हृदयहारी और मनोमुग्धकारी है। उन गौरांग महाप्रभु का पावन चरित्र अगाध सुस्वादु रस का सागर है। उस सुधा सिंधु में से कोई कितना भी पान कर ले, वह अनन्त रत्नाकर सदा ही आनन्द की उर्मियों से छलकता रहता है। श्री श्री चैतन्य चरितावली के महान् लेखक श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के शब्दों में, 'महाप्रभु' अपने समय के प्रेमी और भावुक महापुरुषों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं।' उन रसावतार प्रेममूर्ति महापुरुष की झांकीमात्र भी मानव हृदय के सकल कलुष, कल्मष का प्रक्षालन कर हृदय सिंधु में दिव्यानन्द का संचार करने वाली है।

बंगभूमि का नवद्वीप नगर श्री चैतन्य देव की लीलाभूमि होने के कारण भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र की लीलाभूमि वृन्दावन के समान ही गौरांग भक्तों के लिए पूर्व भारत का वृन्दावन ही बना हुआ है। वहीं जन्म पाकर श्री चैतन्य देव ने अपनी बाल लीला की। वह बालक 'विश्वम्भर' पालने में पड़ा-पड़ा कभी रोने लगता तो स्त्रियों के 'हरिबोल-हरिबोल' गाने से तुरंत चुप हो जाता। नन्हे शिशु की रुचि देखने के लिए जब उस नवागत प्राणी के सम्मुख अन्न, वस्त्र, हथियार और पुस्तकें रखी गयीं तो उस तेजस्वी बाल विभूति ने तुरंत श्रीमद्भागवत पुराण पर हाथ रख लिया। बालक विश्वम्भर को माता शचीदेवी प्यार से निमाई कह कर पुकारा करतीं। अपने बालपने की उद्दाम चंचलता में वह नन्हा निमाई एक दिन गुड़मुड़ी मारे हुए काले सर्प पर जा बैठा और सर्प से खेलने लगा। वह भयंकर विषधर भी भय और विष को भूलकर आनन्द से झूमने लगा।

आनन्द मूर्ति निमाई का रूप हृदय को बड़ा लुभाने वाला था। उनका गौरवर्ण मुख पूर्णचन्द्र के समान था। जिस पर एक विश्वविमोहन-प्रेम तथा एक अमृतमयी मुस्कान सदा खेलती रहती थी। उन गौरांग देव में प्रारम्भ से ही एक ऐसी प्रेम की आकर्षक विद्युत् शक्ति विद्यमान थी जो पापी से पापी को भी उनके प्रति आकर्षित

होने को बाध्य कर देती थी। स्वजनों, प्रतिवेशियों तथा अभ्यागतों के लिए तो आनन्द विग्रह 'निमाई' नयनों के प्राणप्रिय तारक ही थे।

नन्हा निमाई बचपन में बड़ा नटखट था। एक बार यह 4 वर्ष की अवस्था में बहुत रोने लगा। माँ के पूछने पर बताया कि 'पड़ोसी पण्डितों के घर जो ठाकुरजी के लिए नैवेद्य बना है, उसे लेकर ही मैं चुप होऊंगा।' बिना पूजा किए नैवेद्य को लाकर बालक को देना बड़ा कठिन था। माँ ने बड़ा समझाया और डराया कि बिना पूजा की मिठाई खाने से बड़ा पाप होता है किन्तु निमाई न माना। अन्त में दोनों पड़ोसी पंडितों ने नैवेद्य उस बाल-गोपाल के सम्मुख रखा और उसने सभी सामग्रियों में से थोड़ा-थोड़ा आस्वाद लिया।

एक बार एक ब्राह्मण को घर में भोजन के लिए आमन्त्रित किया गया। तीन बार उसके सामने भोजन परोसा गया और तीनों बार जब वह आंखें मूंदकर 'श्रीकृष्णाय नमः' कहता तो वह नन्हा कृष्ण चैतन्य उसके अन्न को आकर खाने लगता। एक बार तो उसे कोठरी में भी बन्द कर दिया गया किन्तु उस निष्ठावान ब्राह्मण के कृष्णस्मरण करते ही तुरंत प्रकट हो गया और पकवान का भोग लगाने लगा। कहते हैं उस ब्राह्मण के विस्मय पर गौरांग ने उन्हें चतुर्भुज रूप में दर्शन भी दिए।

पाठशाला भेजने पर वह अलौकिक बालक खड़िया मिट्टी को शरीर पर मल लेता तथा माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक लगा कर कहता—'देख माँ! तेरे घर में एक परम वैष्णव आया है, कुछ भिक्षा दोगी?' मक्खन तथा छछिया भर छाछ का लोभ देकर जैसे गोपियां श्रीकृष्ण को नचाया करती थीं वैसे ही नदिया की रमणियां बंगाली मिठाई (सन्देश) का प्रलोभन देकर नन्हे निमाई का नृत्य देखा करतीं।

नवद्वीप के पार्श्व में सुरसरिता भागीरथी कल-कल निनाद करती हुई बहती है। वहाँ नहाने वाले भक्तों के वस्त्रों को उठाकर निमाई कभी वृक्ष पर जा बैठता, कभी पानी के छींटों से उनके परिधान भिगो देता, सूर्य को अर्घ्य देने वालों की नकल करता, कभी आंखें बन्द कर संध्या का स्वांग भरता। कभी-कभी वह ध्यान में बैठे हुए भक्तों के सामने से शिवलिंग की पिण्डी उठा लिया करता तथा कभी उनका भरा हुआ नैवेद्य स्वयं चट कर जाता। इस प्रकार कालिंदी के तट पर जैसी बाल-लीलाएं बालकृष्ण ने की थी वैसे ही विनोदमयी आनन्दवर्द्धिनी लीलाएं भागीरथी के तट पर बाल निमाई ने कीं।

एक दिन निमाई के बड़े भाई विश्वरूप पाठशाला से नहीं आए थे और माता गृह में भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। निमाई उन्हें बुलाने पाठशाला चला गया, पाठशाला में गुरु अद्वैताचार्य इन्हें देखकर मोहित हो गए। बालक की

दिव्य कांति ने उनके हृदय को जीत लिया था। अन्त में यही वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध अद्वैताचार्यजी गौरांग महाप्रभु के परम भक्त बन गए थे और सारा आयुष्य उन्हीं की पावन लीलाओं का आस्वाद लेते रहे।

भ्रातृ, विश्वरूप परम विद्वान् थे। उनके अन्तस्तल में वैराग्य की एक गुप्त गंगा बहुत काल से हिलोरें ले रही थी। वह सहसा फूट निकली। जाड़े की एक रात्रि को अपने वृद्ध माता-पिता तथा नन्हे निमाई को सोता छोड़कर विश्वरूप संन्यास के लिए गृह से निकल चले। स्वजनों ने बड़ा अश्रुपात किया, निमाई भी खूब रोया। बड़े पुत्र के ज्ञानी बनकर गृह त्यागने से माता-पिता को भय हुआ कि कहीं नन्हा निमाई भी पण्डित बन कर संन्यासी न बन जाए। अतः उन्होंने निमाई को पाठशाला में भेजना बन्द कर दिया। नन्हा बालक एक दिन गन्दगी के घूरे पर जा बैठा तथा टूटी-फूटी टोकरियों को सिर पर धारण कर लिया। माता-पिता तथा पड़ोस के लोगों के एकत्र होने पर निमाई बोल उठा—'माँ! मूर्ख बेटे से तुम और क्या आशा रख सकती हो, यदि पढ़ाओगी-लिखाओगी नहीं तो हम ऐसा ही कार्य करेंगे?' इस बात से माता-पिता लज्जित हुए और निमाई को पुनः पाठशाला भेजना प्रारम्भ कर दिया। माता रोते-रोते निमाई को कहा करती—'बेटा! हम वृद्धों का एकमात्र सहारा, हमारी अन्धे की लकड़ी तू ही है। तू भी विश्वरूप की तरह हमें धोखा मत दे जाना।'

माता-पिता नवयुवक निमाई को देखकर ही जीते थे। पिता सोचते, यह ग्यारह वर्ष का हो गया है, तनिक जवान हो जाने पर इसका विवाह करूंगा। किन्तु विधाता के मन में कुछ और ही बात थी। पाठशाला जाने से पहले जब निमाई पिता को प्रणाम करने आये तो देखा पिता ज्वरक्रांत हैं। पिता की जीवन यात्रा समाप्त होने वाली थी। भागीरथी के तट पर रोते हुए निमाई के सिर को अपनी छाती पर रखकर पिता बोले—'निमाई, मैं तुझे भगवान् विश्वंभर के हाथ सौंपता हूँ, वे ही तेरी रक्षा करेंगे।' फिर पिता ने पुण्यसलिला भागीरथी में अपनी नश्वर देह का विसर्जन किया। शचीमाता और निमाई अश्रु-विगलित नेत्रों से घर लौटे।

विद्याध्ययन से निमाई का पांडित्य सूर्य के तेज के समान चमकने लगा था। वाद-विवाद में वे बड़े-बड़ों को परास्त कर देते थे। उन्हीं निमाई पण्डित ने व्याकरण पर एक 'पञ्चीटीका' तथा टिप्पणी लिखी थी जिसका विद्वत्समाज में बड़ा मान हुआ। उन दिनों न्यायदर्शन का विशेष प्रचार था। न्याय पर 'दीधिति' महाग्रन्थ के रचयिता पं. रघुनाथ निमाई के सहपाठी थे। उन्हीं की टीका उन दिनों सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। निमाई भी न्यायदर्शन के महान् विद्वान् थे। एक दिन नौका पर गंगा पार करते हुए निमाई ने रघुनाथ के बहुत आग्रह करने पर उन्हें न्याय

पर लिखी हुई अपनी टीका सुनाई। वह सुनकर रघुनाथ रोने लगा। पूछने पर रघुनाथ ने बताया 'आपकी इस महान् टीका के होते हुए मेरी टीका को कौन पूछेगा? मेरी चिराभिलाषित आशा थी कि मेरा ग्रन्थ जगत् प्रसिद्ध हो। आज उस आशा पर पानी फिर गया।' यह शब्द सुनते ही उन करुणासिन्धु श्री चैतन्य देव ने हंसते-हंसते अपना ग्रन्थरत्न गंगा में बहा दिया और कहने लगे—'हे बन्धु! बस इतनी सी बात से आप दुःखी हो रहे हैं, आपकी प्रसन्नता के लिये तो मैं प्रचण्ड अग्नि में भी कूद सकता हूँ। यह साधारण-सी पोथी तो कोई मूल्य ही नहीं रखती।' रघुनाथ पंडित ने निमाई पंडित को गले से लगा लिया तथा प्रेम और पश्चात्ताप के अश्रुकणों से उनके गौरवर्ण श्रीविग्रह को भिगो दिया।

प्रवृत्ति की सार्थकता निवृत्ति में है। निवृत्ति की सार्थकता निर्वृत्ति (मुक्ति) में है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

प्रेमरसावतार श्रीकृष्ण चैतन्य

जिन महामहिम महापुरुष के विषय में कहा जाता है 'व्यासोच्छिष्टं जगद्त्रयं' (अर्थात् तीनों लोक व्यास भगवान् की जूठन मात्र हैं) उन्हीं जगद्गुरु भगवान् वेदव्यास का अमर वचन है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित्सुखसागरेऽस्मिन्, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

अर्थात् जिसका चित्त ब्रह्मानन्द के अपार सुख-सागर में लीन रहता है, उसके जन्म से तो उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जन्मदात्री माता धन्य-धन्य हो गई तथा (उसके चरणस्पर्श से) सारी धरती ही पुण्य-पावन हो उठी।

कोटिशः धन्य एवं शतकोटिशः वन्द्य हैं श्री श्री चैतन्य महाप्रभु जिनकी चरण धूलि के स्पर्श से न केवल बंगदेश या भारत अपितु समूची वसुन्धरा का भाग्य बदल गया।

चपल, चंचल, सुन्दर एवं विद्वान् निमाई पण्डित आते-जाते वैष्णवों से पूछ बैठते 'किं तावत् वैष्णवत्वम्' वैष्णवता किसे कहते हैं? कभी पूछते, 'ऊर्ध्वपुण्ड्रेन किं स्यात्' ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाने से क्या होता है? बेचारे वैष्णव परेशान रहते। उनका एक पुराना मित्र मुकुन्ददत्त प्रश्नों की बौछार के भय से गंगास्नान के लिए जाते हुए रास्ते में इन्हें देख कर रास्ता बदल लेता। एक बार निमाई पण्डित ने ऊँचे स्वर में कहा, 'अच्छा बेटा, हमें अवैष्णव समझ कर हमसे दूर भागते हो! कितने दिन तक इस तरह हमसे दूर रहोगे? एक दिन हम भी वैष्णव होंगे और ऐसे वैष्णव होंगे कि तुम सदा पीछे-पीछे फिरते रहोगे।'

निमाई पंडित गृहस्थी बन चुके थे। उन्हीं दिनों श्री ईश्वरपुरी नाम के महान् भक्त-सन्त नवद्वीप में पधारे। वे निमाई के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गए। निमाई उन्हें घर लिवा लाए तथा उनका यथोचित सत्कार किया। पुरी महोदय ने उन्हीं दिनों निमाई को 'श्रीकृष्ण लीलामृत' के मधुर रस का पान कराया। निमाई के हृदय में भी भक्ति के अंकुर फूटने लगे। निमाई पण्डित ने अपनी शिष्यमण्डली के संग पूर्वी बंगाल की यात्रा की तथा अनेकों को हरिनाम का पावन मंत्र दिया। पीछे

सर्पदंश से पत्नी का देहान्त हो गया। उन्हीं दिनों नवद्वीप में एक कश्मीरी दिग्विजयी पण्डित पधारे। वह पण्डित नवद्वीप को भी विजय करने आया था। निमाई पण्डित ने उस केशव कश्मीरी को गंगा-महिमा पर कविता करने को कहा। फिर उसके गर्व को खर्व करने हेतु उन्होंने उसकी कविता में गुण और दोष, दोनों ढूंढ़ निकाले। बूढ़ा दिग्विजयी उस नवयुवक निमाई के चरणों में नतमस्तक हो गया। माँ का घर बहू के बिना सूना हो गया था। उसी शची माता के वात्सल्यपूर्ण अनुरोध से ही निमाई पण्डित ने विष्णुप्रिया जी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। किन्तु उनके जीवन का सारा प्रेम तो किसी अलौकिक प्रेमी के चरणों पर चढ़ने के लिए आकुल था।

विजयादशमी का पावन दिन था। निमाई पण्डित पिता का पिण्डदान करने के लिए गया जी में पधारे हुए थे। वहाँ इन्हें तीव्र ज्वर आ गया। इनकी आज्ञा से इनके दो शिष्य दो ब्राह्मणों के चरण धोकर चरणोदक ले आए। उस चरणोदक का पान करते ही यह लीलावतार तुरंत अच्छे हो गए। वहाँ भीड़ में से निकल कर श्री ईश्वर पुरी जी महाराज ने इन्हें आलिंगन किया। बस उसी स्पर्श से श्री चैतन्य देव के महान् जीवन में चैतन्यता का बीजारोपण हो गया। यह बीज नवद्वीप में लौटकर आने पर कुछ अंकुरित और परिवर्धित हुआ। नीलांचल (जगन्नाथपुरी) में वह पल्लवित, पुष्पित और अमृतमय फलों वाला बन गया। उसके सुधामय सुस्वादु फलों से कोटि-कोटि जीव तृप्त हुए तथा उनकी आध्यात्मिक बुभुक्षा शान्त हुई। उसी चैतन्य के वृक्ष की नित्यानंद और अद्वैत रूपी दो बड़ी-बड़ी शाखाओं ने सम्पूर्ण देश को सुखमय और शान्तिमय बना दिया था।

श्री ईश्वरपुरी का मन्त्र पाकर तो अब नवद्वीप में लौटकर भी निमाई पहले जैसे निमाई नहीं रहे थे। उनके हृदय से प्रेम-भक्ति का ऐसा स्रोत फूट निकला था जिसमें सारा नवद्वीप आप्लावित हो रहा था। कृष्णप्रेम की अजस्र अश्रुधारा में उनका पाण्डित्य धुल कर बह गया। निमाई पण्डित का प्रसिद्ध विद्यालय उजड़ गया। पाठशाला में भी संकीर्तन-सुधा का ही वर्षण होता। उन दिनों नवद्वीप में सर्वत्र यही गूंजता—

हरि हरि बोल, हरि हरि बोल।
मुकुन्द माधव, गोविंद बोल।।

अक्षर और शब्द पढ़ाते-पढ़ाते निमाई उस 'अक्षर ब्रह्म' और 'शब्द ब्रह्म' तक जा पहुँचे थे। मृदंग बजता, मुरचंग बजता, ढोल की ध्वनि गूंजती और श्री चैतन्य अपने पैरों में घुंघरू बांध नृत्य करते हुए 'हरि हरि बोल' की पावन ध्वनि को उच्चारते। नवद्वीप की गली-गली में संकीर्तन की धुन गुंजा कर उन्होंने भक्ति भागीरथी को मानव के गृह-गृह तथा हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में पहुँचा दिया। भारत

को श्री चैतन्य देव की यह महानतम देन है कि उन्होंने हिन्दू धर्म को भेद-भाव के बन्धनों से मुक्त कर जनगण-सुलभ बनाने के निमित्त उसे ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की कन्दराओं अथवा जनसाधारण के लिए दुर्लभ ऊँचे भवनों से उतारा। अब तो गौरांगदेव श्रीकृष्ण प्रेम में पागल हो गए थे और सदा प्रेम-वारुणी का पान किए हुए, उसके मद में भूले से, भटके से, उन्मत्त से बने हुए प्रायः लोकबाह्य प्रलाप सा करने लगते। एक सच्चे प्रेमी को प्रियतम का वियोग असह्य हो उठता है। संत कबीर के शब्दों में 'नाम-वियोगी न जिए, जिए तो बाउर होय।' प्रेम-वियोगी चैतन्य अब 'बाउर', बावले ही हो गए थे। उनके प्रेमोन्माद की प्रथम कृपा-किरण का अधिकारी उन्हीं की पाठशाला का विद्यार्थी रत्नगर्भाचार्य बना। गौरांग के आलिंगन करते ही वह भी उन्मत्त हो गया। शची माता तथा बहू विष्णुप्रिया दोनों रोतीं कि न जाने हमारे गौरांग को क्या हो गया है? कोई कहता, वायु का प्रकोप है, कोई कहता मस्तिष्क विकार है। पड़ोस के वयोवृद्ध श्रीवास पण्डित उन्हें देखने गए। उन आनंदमूर्ति को देखने मात्र से ही उनका हृदय हिलोरें लेने लगा तथा अन्तःकरण उमड़ने लगा। श्रीवास पण्डित ने कहा—'हे शची माता! तुम धन्य हो, तुम्हारे पुत्र में भक्ति के पूर्ण लक्षण हैं।' गौरांग देव बोले—'सदा प्रभु-प्रेम में विकल होकर मैं रोया करूं यही मेरी हार्दिक इच्छा है।' श्रीवास पण्डित ने रोकर कहा—हे महाप्रभु! हमें भी इस पागलपन का आशीर्वाद दें। अब तो श्रीवास के गृह में संकीर्तन का अनुपम अमृत बरसने लगा। उन्हीं दिनों गौरहरि के पावन प्रेम से खिंचे हुए अनेक भगवद्प्रेमी नवद्वीप में आने लगे। गौरांगदेव को स्वप्न आया कि नित्यानंद अवधूत नवद्वीप पधार रहे हैं। वे अपनी भक्तमण्डली के संग नित्यानंद जी की खोज में निकले। नित्यानंद का जन्म राढ़देश में हुआ था तथा वे छोटी अवस्था में ही संन्यासी बन गए थे। ब्रज की यात्रा में इन्हें ज्ञात हुआ कि नवद्वीप में अमृतवर्षी गौरचन्द्र का उदय हुआ है। उन्हीं गौरांगदेव की खोज में वे नवद्वीप आए थे। नित्यानंद तथा निमाई दोनों गौरवर्ण थे, दोनों की आकृति अत्यन्त लुभावनी थी, दोनों में प्रेमोन्माद अद्भुत था, दोनों के सुन्दर काले नेत्र और लम्बे काले घुंघराले बाल थे। सब से बढ़कर दोनों का हृदय एक था। इन दोनों महापुरुषों का महामिलन बड़ा हृदयहारी है। शची-माता को तो जैसे अपना खोया हुआ बड़ा पुत्र विश्वरूप ही मिल गया हो। वे प्यार से नित्यानंद को निताई बुलाया करती। निमाई, निताई की यह जोड़ी साक्षात् कृष्ण-बलराम की जोड़ी के समान थी। वे दोनों महाभागवत जब हाथ पकड़कर संकीर्तन नृत्य करते तो नवद्वीप में माधुर्य की मंदाकिनी बह उठती। इन्हीं दिनों विश्वरूप के गुरु अद्वैताचार्य जी भी पुनः गौरांगदेव की प्रेम पयस्विनी से कृतकृत्य हुए। वे वृद्ध भी दोनों भुजा उठाकर मस्ती से संकीर्तन लीला करने लगे। इस प्रकार श्री गौरांग के चैतन्य वृक्ष की यह दो बलवान शाखाएं नित्यानंद और अद्वैत जनगण को शीतल शान्ति प्रदान करने लगीं। गली-गली में कीर्तन का मधुर

स्वर गूंजने से कुछ लोगों ने काजी को इसके विरुद्ध भड़काया। किन्तु गौरांगदेव के दर्शन मात्र से वह काजी भी पावन मन वाला हो गया।

भक्ति की पावन गंगा ने वर्ण भेद की थोथी दीवारों को तो गिरा ही दिया था, अब धर्म भेद के बाहरी बन्धनों को भी बहा दिया। कृष्ण-भक्ति वाला यवन भी एक नास्तिक हिन्दू से श्रेष्ठ है। कबीर जी के शब्दों में—

नाम जपत कुष्ठी भलो, चुइ-चुइ गिरै जो चाम।
कंचन देह किस काम की, जिहि मुख नाहीं राम।।

एक यवन भक्त गाता था, 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण...'

एक अत्यन्त सुन्दरी वरांगना ने देखा। वह चार दिन निरंतर उसके पास जाती रही और एकान्त में उससे प्रेम की भीख माँगती रही। किन्तु वह प्रतिदिन 3 लाख जाप करने का अभ्यासी उस वेश्या के हाव-भाव से कैसे विचलित हो सकता था। अंत में वह वेश्या स्वयं उस भक्त के चरणों में गिर गई तथा अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना करने लगी। श्री चैतन्य चरणों के प्रताप से यह यवन भक्त हरिदास इतनी महान् एवं अविचल आस्था वाला महापुरुष बन गया था। हरिदास के कृष्ण प्रेम को देखकर मुसलमान शासक जलते-कुढ़ते। उन्होंने हरिदास को कई भय तथा कई प्रलोभन दिखाए किन्तु उसका कहना था, 'आप मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े करवा दें, तो भी जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं हरिनाम नहीं छोड़ सकता। काजियों के हुक्म से हरिदास को बाजारों में होकर घुमाया गया और निरन्तर बेंतों से मार देकर हरिदास के शरीर की खाल उधेड़ी गई, किन्तु हरिदास के मुख से निरन्तर यही ध्वनि निकलती थी 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे...' उनके शरीर से खून की धाराएं बह रही थी किन्तु उनके मुख से आह तक न निकली। वे निरन्तर हरि ध्वनि कर रहे थे। इससे भी बढ़कर वे अपने को दण्ड देने वालों के कल्याण के लिए भी प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। अंत में जब मुल्कपति (मुसलमान शासक) ने हरिदास जी से इतना घोर दण्ड देने के लिए क्षमा मांगी तो इस महान् भक्त ने कहा—'इसमें आपका क्या दोष है? मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही दुःख-सुख भोगता है।'

गोविन्द मिलन की, यही तेरी बरिया।
अतर काज, किते न काम।
कर साधु संगत, भज केवल नाम।

—गुरु नानकदेव

गुरु रविदास के उपदेश आज के संदर्भ में

भारत धर्म-प्राण देश है। यहाँ की वाणी धर्म की वाणी है जबकि पश्चिम की भाषा राजनीति की भाषा है। वहाँ धर्म के कार्य भी राजनीतिक शैली से होते हैं। इसकी तुलना में भारत में समाज-नीति, राजनीति, लोक-नीति, व्यवहार-नीति सभी का माध्यम धर्म ही है। पश्चिम में सर्व-संग्रही, अधिक से अधिक धन एवं सत्ता का स्वामी, महान् गिना जाता है। जैसे सिकन्दर महान्, सीजर महान्, नेपोलियन महान्, बिस्मार्क महान् इत्यादि। भारत में सर्वस्व त्यागी, निष्काम, निर्लोभी सन्त को ही महान् मान कर पूजा जाता है। बुद्ध एवं महावीर, अशोक एवं चाणक्य त्याग से महान् बने। ऐसे पावन सन्तों-महन्तों ने ही भारत के निर्माण में अधिक बड़ा योगदान दिया है। मनु से महात्मा गांधी तक उनकी एक उज्ज्वल परम्परा है।

मध्यकालीन भारत के सन्तों में महात्मा रविदासजी का स्थान बड़ा ऊँचा है। वे कबीर, नानक, सूर, तुलसी के समकालीन, प्रेम दीवानी मीराबाई के प्रेरक, धन्ना और पीपा के संगी और भक्ति के महान् आचार्य स्वामी रामानन्दजी के अनन्य शिष्य थे। हिन्दी-साहित्य का भक्तिकाल अनेक दृष्टियों से स्वर्णकाल माना जाता है। भक्ति में जैसे भक्त का हृदय ही बोल उठता है वैसे ही भक्तिकाल में इस धर्म-प्राण देश के हृदय की पुकार साहित्य के माध्यम से गूंज रही थी। उस काल में जात-पांत की भेद-भरी दीवारें भक्ति-भागीरथी के अजस्र प्रवाह में बह गईं तथा मानवता के भीतर की एकात्मता के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए। इसी काल में नामदेव दर्जी, दादू, धुनियां, कबीर जुलाहा, गोरा कुम्हार, धन्ना जाट एवं रविदास चमार जैसे पुण्यश्लोक भक्तरत्न हुए, जो केवल भारत के ही नहीं, वरन् समूची मानव-जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले हुए।

भक्त रविदासजी ने 15वीं शताब्दी में काशी में जन्म पाकर कबीर के समान स्वामी रामानन्दजी की भक्ति-मन्दाकिनी के पावन स्पर्श का लाभ लिया। जन्म से ही साधु-सेवी होने के कारण इनके क्रोधी पिता ने इनको घर से निकाल दिया। एक साधारण घास-फूस की झोंपड़ी में रविदासजी जूते गांठते रहते थे और जूते की सिलाई के प्रत्येक त्रोप के साथ भगवन्नाम भी स्मरण करते रहते। वे तीर्थ यात्रा पर

जाने वाले सन्तों-महात्माओं को बिना मोल के जूते बनाकर दे देते थे। सन्तों की इस निष्काम सेवा को वे भगवान् की पूजा मानकर करते थे। गीता में भगवान् ने कहा है—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**' अर्थात्, मानव अपने स्वाभाविक कर्म से भगवान् की पूजा करके सिद्धि को प्राप्त करते हैं। रविदासजी इसके ज्वलन्त आदर्श थे। इनके पास ही एक ठाकुरजी की छोटी सी मूर्ति पड़ी रहती थी। काम से थककर वे अपने ठाकुरजी से प्रेमाश्रु पुलकित वाणी में बातें किया करते थे।

रविदासजी जाति से छोटे होते हुए भी भक्ति के प्रताप से इतने ऊँचे बन गये कि आज तक सारे भारत के मन्दिरों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ प्रवक्ताओं के मुख से उनके भक्तिपद आदर से गाये जाते हैं।

रविदासजी कहते हैं—

जाति भी छोटी, कर्म भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कह रविदास चमारा।।

वर्ण-व्यवस्था

आज वर्ण-व्यवस्था आधुनिक समाज-शास्त्रियों की तीखी आलोचना का विषय बन गया है, किन्तु रविदास जैसे सन्तों के चरित्र यह सिद्ध करते हैं कि भारत में भक्ति एवं अध्यात्म के क्षेत्र में वर्ण कोई बाधा नहीं थी। छोटे वर्ण का व्यक्ति भी ईश्वर-भक्ति का पूर्ण अधिकारी था तथा उसी के माध्यम से वह केवल उच्च वर्णों के लिए ही नहीं वरन् सारे विश्व के लिए पूजनीय बन सकता था। रविदासजी ने आज के तथाकथित नेताओं के समान वर्ण-व्यवस्था का तिरस्कार न कर अपनी वर्ण मर्यादा का पालन करते हुए भगवद् भजन के चमत्कार से ऊपर उठने का मार्ग दर्शाया। इसके विपरीत आज के कुछ नेता ऊँचा उठाने वाली भगवद् भक्ति का तिरस्कार कर वर्ण-व्यवस्था को ही व्यर्थ धिक्कारने लगते हैं। रविदासजी कहते हैं—

तुम चन्दन हम एरण्ड बापुरे, संग तुम्हारे बासा।
नीच रूंख से ऊंच भये हैं, गन्ध सुगन्ध निवासा।।

जाति ओछा, पांति ओछा, ओछा जनम हमारा।
राजा राम की सेव न कीन्हीं, कह रविदास चमारा।।

भगवद्-भजन से सब जातियाँ पवित्र होती हैं, यह रविदासजी का निश्चित मत है।

बामन वैश्य, शूद्र अरु क्षत्रिय, डोम चण्डाल मलेच्छ किन सोई।
होइ पुनीत भगवत-भजन ते, आप तरे, तारे कुल दोई।।

निर्धनता एवं अर्थ-शुचिता

आज के घोर आर्थिक युग में एक ओर आर्थिक संकट और दूसरी ओर अर्थ-लोलुपता, आर्थिक भ्रष्टाचार एवं आर्थिक शोषण का दृश्य दिखाई देता है। आधुनिक काल के जर्मन अर्थ-चिन्तक कार्ल मार्क्स ने कहा है कि 'अर्थ ही सब समस्याओं का मूल है तथा अर्थ के असमान वितरण के कारण कुछ लोग अर्थ के अभाव से निर्धनता का दुःख भोग रहे हैं और कुछ लोग अर्थ के प्रभाव से पूंजीपति बनकर निर्धनों का शोषण कर रहे हैं। अतः निर्धनों एवं अभावग्रस्त लोगों को रक्त-क्रान्ति के द्वारा धनिकों के धन-धान्य एवं परिवारों को लूटने का अधिकार है।' अर्थ की असमानता के कारण जगत् में अशान्ति है। अर्थ की समानता हो जाने पर ही शान्ति हो सकेगी। इसकी तुलना में भारतीय ऋषियों एवं सन्तों का दृष्टिकोण भिन्न है। जहाँ कार्ल मार्क्स कहता है कि अर्थ ही सब समस्याओं का मूल है, वहाँ भगवान् शंकराचार्य ने भी कहा है, '**अर्थमनर्थं भावैय नित्यम्**' अर्थात् नित्य यही भावना करो कि अर्थ ही सब अनर्थों का मूल है। वास्तव में अर्थ साधन है, साध्य नहीं। अर्थ किसी महान् अर्थ के लिए लगे तभी सार्थक है, अन्यथा अनर्थ, व्यर्थ, या निरर्थ है। पश्चिम में लोग अर्थ-संग्रह में ही महानता मानते हैं किन्तु भारतीय परम्परा में अर्थ ने धर्म को सदा नमस्कार किया है। यहाँ धर्म-साधक अर्थ को धर्म में बाधक जानकर स्वतः ही निर्धनता का वरण करते हैं, तथा अर्थ की गुलामी से मुक्त रह धर्म की सिद्धि प्राप्त करते हैं। उन पर निर्धनता लादी नहीं गई वरन् वे स्वयं अपनी स्वेच्छा से ही कम से कम धन पर निर्भर रह कर आत्मविकास कर महान् बनते हैं। अर्थ-लोलुपता से मनुष्य स्वार्थी बनता है। स्वार्थ बढ़ने पर पाप का पैसा कमाने वाला भ्रष्टाचारी एवं अर्थ-शोषक बन जाता है। अतः निर्धनता का स्वेच्छया वरण कर लेने अथवा सन्तोषरूपी सद्गुण को धारण कर लेने पर ही अर्थ-शुचिता का पालन हो सकता है। कार्ल मार्क्स ने कहा है कि अभाव ही सब आर्थिक अपराधों का कारण है, अर्थात् निर्धन ही विवश होकर चोरी करता है।

महात्मा रविदास का चरित्र एवं सन्देश इसके नितान्त विपरीत है। स्वयं निर्धन होते हुए भी तनिक अर्थ लोभ न रखते हुए अर्थ की पवित्रता का आचरण करने वाले वे अनोखे सन्त थे। उनकी निर्धनता देखकर एक महात्मा उन्हें पारसमणि दे गये तथा उनके एक लोहे के औजार को स्पर्श कर सोना बनाकर भी दिखा दिया। निर्लोभी सन्त, भक्त रविदासजी ने उसे स्पर्श तक नहीं किया। वे महात्मा रविदास की कुटिया के छप्पर में पारसमणि को खोंस कर चले गये। एक वर्ष पश्चात् वे महात्मा लौटे। उनकी कल्पना थी कि रविदास की कुटिया के स्थान पर एक विशाल महल खड़ा होगा। किन्तु वे देखकर विस्मित हो गये कि रविदास की वही फूस की झोपड़ी है तथा उसी प्रकार वे हरिनाम गाते हुए जूता गांठ रहे हैं।

महात्माजी के पूछने पर रविदासजी ने कहा कि तुम्हारी अमानत वहीं पड़ी है। कृपया उसे ले जाओ, मुझे व्यर्थ की चिन्ता में मत डालो।

महात्मा रविदास का सिद्धान्त वचन है—

हरि-सा हीरा छाड़ि के, करे आन की आस।
ते नर यमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास।।

इसी प्रकार कहते हैं कि रैदासजी (रविदास) ने गंगा-स्नान के लिए जाने वाले एक सेठ को जूता बिना मोल के दे दिया तथा कहा कि मेरी एक सुपारी गंगा मैया को चढ़ा देना। जन-श्रुति के अनुसार गंगा मैया ने भक्त रैदास की भेजी हुई सुपारी ग्रहण करने के लिए जल से बाहर हाथ निकाला तथा प्रतिदान में एक बहुमूल्य कंगन दिया। कहते हैं कि सेठ ने वह कंगन रैदासजी को वापस न करके राज-दरबार में देकर बदले में धन-राशि चाही। राजा ने सेठ से कहा कि इस जोड़ी का दूसरा कंगन लाओ अन्यथा तुम्हारे वध की आज्ञा दे दी जाएगी। इस पर सेठ को सारा भेद खोलना पड़ा तथा रैदासजी की महिमा सारे नगर में फैल गई। महात्मा रैदासजी स्वयं कंगाल होते हुए भी निर्लोभी होने के कारण अर्थ-शुचिता के अवतार थे। न उन्हें कंगन का लोभ था न प्रतिष्ठा का। दूसरी ओर सेठ धनी होने पर भी लोभी होने के कारण कंगन में बेईमानी कर बैठा। परिणामस्वरूप कंगन भी खोया तथा प्रतिष्ठा भी खोई।

निर्लोभी निष्पाप है।
जहाँ लोभ तहं पाप।।

नास्तिक युग में जीवन्त प्रभु विश्वास

रविदासजी का जन्म भक्ति काल में हुआ, किन्तु वह काल साहित्य की दृष्टि से भक्ति काल होते हुए भी इतिहास की दृष्टि से अत्याचार का काल और जन साधारण की दृष्टि से घोर संकट काल था। उसी काल में राम जन्मभूमि और कृष्ण जन्म भूमि के मन्दिरों को तोड़ा गया, काशी-विश्वनाथ के मन्दिर का भंजन किया गया, नारियों का शीलहरण, नागरिकों पर अत्याचार, गुरु अर्जुन एवं तेग बहादुर जैसे सन्तों को तप्त लोह एवं सूली, गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों का प्राचीर में चुनवाना, हिन्दुओं पर जजिया नामक अतिरिक्त कर इत्यादि उस युग के संकट का भयावह चित्र प्रस्तुत करते हैं। शासकों के अत्याचार और जनता के हाहाकार के दिव्य उपचार के रूप में ही इस धर्म-प्राण देश का हृदय भक्ति की वाणी में सृष्टि के कर्तार को पुकारने लगा।

मनुष्य नास्तिक दो परिस्थितियों में होता है। सुख में भोगों के प्रलोभन से ईश्वर को भूल जाता है। दुःख में संकटों के भय से वह ईश्वर भक्ति के पथ से विचलित हो जाता है। मध्यकाल में विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार से भयभीत

होकर लोग ईश्वर को भूलने लगे थे। आज भौतिकवाद की चकाचौंध में सांसारिक भोगों की चमक-दमक से प्रलुब्ध होकर लोग नास्तिक बन रहे हैं। महात्मा रविदास की ईश्वर-भक्ति-पूरित जीवन्त आस्थामयी वाणी मध्यकाल के संकट पीड़ित नास्तिकों के लिए जितनी उपयोगी थी, आज 21वीं शताब्दी के भोगी-विलासी नास्तिकों के लिए भी उतनी ही उपयोगी है। वे भगवान् को अपना जीवन-सर्वस्व मान कर अपने हृदय के प्रेम का अर्घ्य चढ़ाते हैं—

रैंदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अह निशि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद।।

वे नास्तिक जग को उद्‌बोधन करते हुए कहते हैं।

मुकुन्द मुकुन्द जपहु संसार।
बिनु मुकुन्द तनु होई अऊलार।
सोइ मुकुन्द मुक्ति का दाता।
सोइ मुकुन्द हमरा पित माता।।
जीवत मुकुन्दे मरत मुकुन्दे।
ताके सेवक कउ सदा अनन्दे।
मुकुन्द मुकुन्द हमारे प्रान।
जपि मुकुन्द मसतकि नीसान।

महात्मा रविदास जैसे सन्तों ने मध्यकाल के अत्याचारों की आंधियों में संकटापन्न, म्रियमाण भारतीय समाज को प्रभु आस्था का भक्ति रसामृत पिलाकर बचा लिया।

महात्मा रविदास कबीर के समान एकेश्वरवाद के प्रबल समर्थक थे तथा ईश्वर के भिन्न-भिन्न नामों के पीछे एक ही परम सत्ता के उपासक थे। वे गाते हैं—

कृष्ण करीम रहीम राम हरि, जब लगि एक न पेखा।
वेद, कितेब, कुरान पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा।

कर्म एवं धर्म का समन्वय

जीवन में प्रायः कर्म एवं धर्म के बीच एक खाई दृष्टिगोचर होती है। संसार के कर्मों में लगे हुए लोग प्रायः यह बहाना करते हैं कि उन्हें धर्म के लिए फुरसत ही कहाँ है? दूसरी ओर धर्मात्मा लोग प्रायः साधु-सन्त बनकर संसार के कर्तव्य कर्मों से उपराम हो जाते हैं। महात्मा रविदास के जीवन में कर्म एवं धर्म का समन्वय था। वे भगवद् भक्ति के साथ-साथ अपने जातिगत व्यवसाय चर्म-कर्म को करते रहते थे। मध्यकालीन सन्तों में प्रायः सभी कुछ न कुछ आजीविका हेतु कर्म करने वाले ही थे।

महात्मा रविदासजी ने अपनी भक्ति के प्रताप से बहुत ऊँचा पद प्राप्त कर लिया। किन्तु उन्होंने अपना जातिगत व्यवसाय तब भी नहीं छोड़ा—

मेरी जाति कुट वांढला,
ढोर ढुवंता बनारसी आस-पासा।
अब विप्र परधान तिहि करहिं,
दण्डउति,
तेरे नाम सरणाइ
रविदासानुदासा।

भक्त एवं भगवान् का शाश्वत प्रेम सम्बन्ध

रविदास अपने प्रसिद्ध पद में गाते हैं—

प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन हम बन मोरा।
जैसे चितवत चन्द्र चकोरा।।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।
जाकी ज्योति बरै दिन राती।।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा में भी नितान्त निरहंकार

चित्तौड़ की महारानी रत्न कुंवरी (झाली रानी) जो विश्व विश्रुत प्रेम योगिनी मीराबाई की सास थी, वह अपने पति महाराणा कुम्भा के साथ काशी में गंगा स्नान हेतु आई। वहाँ महात्मा रविदासजी के कीर्तन एवं उपदेश से प्रभावित होकर उन्हें गुरु बनाने का संकल्प किया। इस पर उनके साथ आए कुछ ब्राह्मण पुरोहित आपत्ति करने लगे। महाराणा ने कहा कि यदि रविदासजी अपने कीर्तन द्वारा भगवान् को साक्षात् प्रकट कर सकें तभी उन्हें गुरु धारण किया जाएगा। महात्मा रविदास ने भक्ति की मस्ती में आत्मविभोर होकर गाया—

मैं तै तोरि मोरि असमझि सौं, कैसोई करि निस्तारा।
कह रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत अधारा।।

झाली रानी रविदासजी को गुरु धारण कर चित्तौड़ ले गई। वहाँ मीराबाई ने भी रविदासजी से प्रेरणा प्राप्त की। मीराबाई ने भी अपने पदों में गाया है—

मेरो मन लागो गुरु सों, अब न रहूंगी अटकी।
गुरु मिल्या रैदासजी म्हाने, दीनी ज्ञान की गुटकी।।

चित्तौड़ में महात्मा रविदासजी की छतरी अभी तक प्रतिष्ठित है। महात्मा रविदासजी राज-परिवारों में सम्मानित होने के उपरान्त भी अपना चर्म-कर्म प्रतिदिन करते ही रहते थे। इनके भक्तों ने जब उनसे आग्रह किया कि अब व्यवसाय की कोई चिन्ता न होने के कारण उन्हें जूता गांठने का काम छोड़ देना चाहिए, तो उन्होंने आंखों में आंसू भरकर उत्तर दिया—मुझसे भगवान् की पूजा क्यों छुड़वाते हो। सचमुच ही रविदासजी ने अपने कर्म को ही उपासना बना लिया था और वे गीता के शब्दों में—'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'—को चरितार्थ कर रहे थे। किन्तु प्रतिष्ठा के शिखर पर भी उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं छू पाया था। उनका मार्मिक पद है—

जब लग नदी न समुद्र समावै, तब लग बढ़ै हुंकारा।
जब मन मिल्यो राम सागर सौं, तब यह मिटी पुकारा।।

संतों की वाणी में भारत की आत्मा गूंजती है।

—प्रो. ओबराय

सन्त रविदास (रैदास) का साधनात्मक रहस्यवाद

भारत की अध्यात्म वाटिका में भांति-भांति के सुन्दर सुवास भरे पुष्प खिलते रहे हैं। उन पुष्पों में सन्त रविदासजी का स्थान अनन्यतम है। माघ पूर्णिमा के दिन दो महान् आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ। एक काशी के मध्यकालीन ब्रह्मदर्शी सन्त रविदासजी तथा दूसरे बंगाल के भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक अध्यात्म विभूति स्वामी प्रणवानंदजी जिनका जन्म सन् 1896 में हुआ।

सन्त रैदास एक उच्च कोटि के रहस्यवादी सन्त-कवि थे। आत्मा की परमात्मा से मिलने के लिए छटपटाहट काव्यात्मक भाषा में वर्णित होने पर रहस्यवाद के नाम से जानी जाती है।

जो आंख सारे विश्व को देखती है वह बेचारी अपने आपको नहीं देख सकती। जब आंख स्वयं अपने आपको देखने के लिए व्याकुल हो उठे तो बड़ी ही विचित्र दशा होती है। जब जीव सारे विश्व को खोजता-खोजता थक जाता है और परम तत्त्व को नहीं पा सकता तब अन्तर से आवाज आती है—'तत्त्वमसि'— वह तू ही है। जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान है, जब तक स्वयं हमारे अपने ही नेत्रों में प्रकाश नहीं है तब तक बाहर का सारा प्रकाश भी अन्धकार ही है। रहस्यदर्शी सन्त रैदास ने काशी नगरी की एक तुच्छ झोंपडी में जूता गांठते-गांठते भी उस विराट विभु की अनन्त लीला का रहस्य पा लिया था जहाँ वर्ष भर की सारी पूर्णिमा ही पूर्णत्व को पाने वाले ब्रह्मज्ञानी सन्तों-महात्माओं के जन्म के साथ सम्बन्धित है, वहाँ माघ पूर्णिमा ब्रह्मदर्शी महात्मा रविदासजी के पुनीत स्मरण के लिए पवित्र है।

जगत् का मिथ्यात्व

मानवता को जागरण का मंत्र देते हुए सन्त रविदास गाते हैं—

का तू सौवे जाग दिवाना, झूठी जीवन सत्त करि जाना।
जिन जन्म दिया तो रिजक उमड़ावे, घट-घट भीतर रहट चलावे।
एक ईश्वर की सत्ता के बिना, सब जगत और जीवन झूठा है।

थोथी काया, थोथी माया, थोथा हरि बिन जनम गवाया।
थोथा पण्डित, थोथी बानी, थोथी हरि बिन सवै कहानी।

एकतत्त्ववाद

रविदासजी एक ही चिन्मय सत्ता को स्वीकार करते थे तथा नाम-रूपों के भेद के कारण उस अखण्ड एकतत्त्व में भेद नहीं मानते थे—

कृष्ण, करीम, राम, रहीम, हरि, जब लग एक न पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा!

मानव की मूलभूत एकता

रैदासजी अध्यात्म के क्षेत्र में जाति-पांति का भेद भाव बिल्कुल स्वीकार नहीं करते थे। उस एकतत्त्व के सम्मुख सभी एक जैसे हैं कोई भी छोटा-बड़ा नहीं। देह चर्म के भीतर के तत्त्व को पहचानने वाले इस चर्मकार सन्त ने गाया—

रे चित! चेत अचेत काहे, बालक को देख रे!
जाति ते कोई पद नहिं पहुंचा, राम भगति बिसेख रे।।

स्वयं अपने बारे में उनकी स्वीकारोक्ति है—

जाति भी छोटी, करम भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे ते प्रभु ऊंच कियो है, कह रैदास चमारा।।

विश्वात्मा से मिलने की व्याकुलता

महात्मा रविदासजी उस आनन्दघन से मिलने को अत्यन्त व्याकुल हैं। वे रो-रो कर गाते हैं—

सब घट अन्तर रमसि निरन्तर, मैं देखन नहीं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कह उपकार न माना।
मैं तै तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कहि रैदास कृष्ण करुणामय, जै जै जगत अधारा।

उस प्राण-प्राणेश्वर से मिलने की प्रेम-पीर कोई सच्चा प्रेमी ही जान सकता है—

सो कहा जानै पीर पराई, जा के दिल में दर्द न आई
दुखी दुहागिनी होई पिय हीना, नेह निरति करि सेव न कीना।।
स्याम प्रेम का पन्थ दुहेला, चलन अकेला, कोई संग न हेला।।

गुरु नानकदेव कहा करते थे—

'आखां जीवां, बिसरे मर जांवां।' उसी भाव को अपने गीत के माध्यम से गाते हुए संत रैदास कहते हैं—

दरसन तोरा जीवन मोरा, बिन दरसन क्यूं जिवै चकोरा।
साधो सतगुरु सब जग चेला, अबकै विसुरै मिलन दुहेला।
रैदास रात न सोइये, दिवस न करिए स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिए, छांडि सकल प्रतिवाद।।

कर्म सिद्धान्त

ब्रह्म-लाभ करने के लिए रैदासजी कर्म, भक्ति और ज्ञान—तीनों भागों का महत्त्व मानते हैं। कर्म-सिद्धान्त की घोषणा करते हुए वे सन्त गाते हैं—

जो कुछ बोय, बुनिये सोई, ता में फेर-फार कस होई।
छाड़िये-कूर, भजै हरि-चरना, ताकौ मिटै जनम अरु मरना।

उपनिषदों में धर्म मार्ग को '**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया**' कहा गया है। उसे सन्त रैदास कहते हैं—

आगे पन्थ खरा है झीना, खांडे धार जैसा है पैना।
जिस ऊपर मारग है तेरा, पन्थी पन्थ संवार सवेरा।।

पुष्टिमार्ग

केवल कर्म के भरोसे मुक्ति को कमाया नहीं जा सकता। प्रभु की कृपा की बड़ी आवश्यकता है। रैदास पुकारते हैं—

प्रतिज्ञा प्रतिपाल प्रतिज्ञा चिह्न, जुम भगति पूरन काम।
आस तोर भरोस है, रैदास जै जै राम।।

वे पुनः कहते हैं—

तुम चन्दन हम एरंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगत से परताप महातम, आवै बास सुबासा।।

अनन्यता

अपने आप को सर्वभावेन प्रभु के चरणों में चढ़ाने वाले सन्त रैदास गाते हैं—

जो तुम तोरो राम! मैं नहिं तोरौं।
तुम सौं तोरि कवन सौं जोरौं।
तीरथ वरत न करौं अन्देसा,
तुम्हरे चरन-कमल का भरोसा।
जहं जहं जाऊं तुम्हारी पूजा
तुम सा देव अन्य नहीं दूजा।

मैं अपनो मन हरि सौं जोर्‌यो, हरि सौं जोरि सवन सौं तोर्‌यो।
सब ही पहर तुम्हारी आसा, मन क्रम वचन कहै रैदासा।।

उनके शब्दों में अनन्यता की कसौटी है—

हरिजन हरिहि और न जानै, तजै आन तन त्यागी।
कह रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी।।

पराविद्या का चमत्कार

रैदासजी अपनी तुच्छ झोंपड़ी में बैठे-बैठे जूते गांठते-गांठते ही पराविद्या को प्राप्त कर गए थे। उन्होंने अपने मन को प्रभु की ही पाठशाला में पढ़ाया था—

चल मन, हरि चटसाल पढ़ाऊं।
गुरु की साटी, ग्यान का अक्षर,
बिसरै तो सहज समाधि लगाऊं।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊं।

सर्व हरिमन जगत्

प्रभु की लाली को देखने के लिए गए हुए सन्त रैदास स्वयं भी उसके संग लाल हो गए थे। सब ओर उसी को देखते हुए वे गीत के माध्यम से नाच उठते हैं—

ऐसो कछु अनभौ कहत न आवै।
साहिब मिलै तो को बिलगावै।
सब में हरि है, हरि में सब हैं,
हरि अपना जिन जाना।
साखी नहीं और कोई दूसरे,
जानन हरि सयाना।

चन्द्रमा को चांदनी से अलग करके किसने देखा है? दीपक को बाती से अलग करके किसने प्रकाश को जाना है? नभ को नीलिमा के बिना कौन देख सका है? अपने हृदय वीणा के स्पन्दनों में बिठा विभु की अनन्त लीला के द्रष्टा महात्मा रविदास गुरु अनादि अनन्त के विद्युत्प्रकाश से अलग करके कौन पहचान सकेगा? आज चर्म के भीतर के अनन्त का मर्म जानने वाले रहस्यद्रष्टा रैदास के चरणों में हमारी अनन्त कोटि भाव सुमनांजलियाँ सादर समर्पित हों।

13 फरवरी 1960

दैनिक 'वीर प्रताप' (जालन्धर) में प्रकाशित

अनन्त रहस्य के द्रष्टा सन्त रैदास

काशी अघनाशी ने हमारे सांस्कृतिक इतिहास के अनेक रोमांचकारी दृश्य देखे हैं। नीलकण्ठ भगवान् विश्वनाथ की इस नगरी में एक कबूतर को बचाने के लिए अपने हाड़-मांस को तुला पर चढ़ाते राजा शिवि की तथा सत्य धर्म की रक्षा के लिए चौराहे पर खड़ा होकर अपने आपको स्त्री तथा इकलौते पुत्र समेत एक चांडाल के हाथ बेचते हुए सत्य प्रेमी राजा हरिश्चन्द्र को भी देखा। काशी की जनाकीर्ण वीथियों को वह दृश्य नहीं भूला होगा जब भगवान् शंकराचार्य की परीक्षा लेने को स्वयं भगवान् शंकर चांडाल का वेश धारण कर आचार्य शंकर का मार्ग रोक कर खड़े हो गए तथा काशी के धर्मध्वजी पण्डे तथा पण्डित उसकी छाया के स्पर्श के भय से चतुर्दिक भागने लगे थे और युवक संन्यासी शंकराचार्य ने उस पतित चांडाल को भुजाओं में भरकर आलिंगन किया था। उन्हीं की परम्परा में आए थे भगवान् रामानुजाचार्य। वे प्रतिदिन गंगा स्नान करने के पश्चात् एक शूद्र को आलिंगन कर लेते। पूछने पर वे कहा करते—जल स्नान से तो तन शुद्धि होती है पर मन की शुद्धि के लिए ऊँचे से ऊँचे ब्राह्मण को नीचे से नीचे शूद्र का आलिंगन कर आत्मा की सार्वभौम एकता की शिक्षा लेनी चाहिये।

शक्ति और भक्ति की, कर्म एवं ज्ञान-वैराग्य की इसी महान् शिवपुरी में स्वामी रामानन्दजी गाया करते थे—

रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि सके जो जानन हारा।
जाति-पांति पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरिका होई।

इन्हीं महान् गुरु के चरण स्पर्श से जिस फकीर के ज्ञान कपाट खुल गए वह पुण्यश्लोक संत-कवि कबीर गाया करता था—

एकै बूंद, एक मल-मूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक जोति तैं सब उत्पन्न, को ब्राह्मन, को शूद्रा।।

इस रहस्यवादी अलमस्त फकीर ने जान लिया है—

कौम छत्तीस एक ही जाति, ब्रह्म बीज का सकल पसारा।

समता एवं समरसता की यह रागिनी जब पंजाब में गुरुनानक की रबाब से तथा काशी में कबीर के हथकरघे के ताने-बाने की तार-तार से झंकृत हो रही थी तभी काशी में एक अन्य महान् ब्रह्मज्ञानी सन्त का उदय हुआ। यह महात्मा रविदासजी, कबीर, नानक के समकालीन, प्रेमदीवानी मीरा के प्रेरक तथा धन्ना और पीपा के संगी थे।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल इसलिए भी स्वर्णकाल माना जाता है कि उस काल में जाति-पांति की भेद भरी दीवारें भक्ति भागीरथी के अजस्र प्रवाह में बह गईं तथा मानवात्मा के भीतर की एकात्मता के दर्शन प्राप्त हुए। इसी काल में नामदेव दरजी, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा, गोरा कुम्हार, धन्ना जाट एवं रैदास चमार जैसे पुण्यश्लोक भक्तरत्न हुए जो केवल हिन्दूजाति का ही नहीं वरन् समूची मानव-जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं।

सन्त रविदासजी एक विराट चिन्मय सत्ता के उपासक थे। उनका कथन है कि जब तक हम उस एक तत्त्व को नहीं पहचानते हैं तब तक जो कुछ देखते हैं वह भ्रम ही भ्रम है।

अनन्त रहस्य के द्रष्टा : सन्त रैदास

कृष्ण, करीम, रहीम, राम-हरि, जब लग एक न पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा।।

सृष्टि में सब ओर उसी लीलामय की अनन्त लीला देखकर जब भक्त उस चिन्मय तत्त्व को पाने के लिए तड़प उठता है तब हृदय की दशा बड़ी विचित्र हो जाती है। भक्तों की भक्ति समझी जा सकती है पर वेदांतियों का भक्ति विरह तो समझ से ऊपर की वस्तु है क्योंकि उनकी तो अपने आप से ही मिलने की तड़प है। यह तो वैसे ही है जैसे आंख स्वयं अपने आप को देखने के लिए आकुल हो उठे। स्वामी रामतीर्थ ने इसी अवस्था का वर्णन करते हुए गाया है—

मेरा इक यार और मैं भी, एक ही बस्ती में बसते हैं,
मगर किस्मत का चक्कर है, कि दर्शन को तरसते हैं।

कवि इकबाल ने इसी तड़प को अपने गीतों में साकार करते हुए कहा है—

ढूंढ़ता फिरता हूं मैं इकबाल अपने आप को,
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूं मैं।।

उस विराट् की प्राप्ति के लिए अनेक साधनाएं बताई जाती हैं, उन में माला फेरना, नमाज पढ़ना, पूजा-अर्चना करना इत्यादि कई प्रकार का कर्मकाण्ड भी सम्मिलित है। प्रभु के प्यारे रविदासजी इस बाह्याडंबर की आवश्यकता नहीं मानते—

तसबी फेरो प्रेम की, दिल में करौं नमाज,
फिरौं सकल दीदार को, उसी सनम के काज।।

क्योंकि हरि तो अन्तर में ही समाया हुआ है। इसलिए बाहरी क्रियाओं का क्या लाभ है।

तौजी और नमाज न जाऊं, न जानूं धरि रौजा
बांग जिकर तब ही नें बिसरी, जब तें यह दिल खोजा।।

उस अन्तर के नारायण को पाने का एक ही मार्ग है—

प्रेम की कठिन डगरिया
जिस के इश्क आसरा नाहीं,
क्या नमाज क्या पूजा।।

अन्तर के पट खुल जाने पर, भीतर कुरेल करने वाले हंस का साक्षात् हो जाता है। उस अवस्था में तो 'नानक लीन भयो गोविन्द सौं ज्यों पानी संग पानी।' आत्मा-परमात्मा के उस महा मिलन पर्व पर सन्तप्रवर रविदासजी गाने लगते हैं—

मन ही पूजा मन ही धूप।
मन ही सेऊं सहज स्वरूप।।

आह्लाद के दर्पण में आह्लाद के दर्शन करने वाले अनश्वर प्रेमी के अनन्त प्रेमामृत को पाने वाले वे रहस्यदर्शी महात्मा रविदास आत्मा एवं परमात्मा की मूलभूत एकता से अनुप्राणित दृश्यमान द्वैतलीला कौतुक देख कर गीत के माध्यम से नृत्य कर उठते हैं—

प्रभुजी! तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी! तुम घन, हम वन मोरा, जैसे चितवत चन्द चकोरा।
प्रभुजी! तुम दीपक हम बाती, जा की जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी! तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभुजी! तुम स्वामी, हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

चन्द्रमा को चांदनी से अलग करके किसने देखा है? दीपक को बाती से अलग करके किसने प्रकाश को जाना है? नभ और उसकी नीलिमा में भी कौन अन्तर देख सका है? इसी प्रकार हृदय के स्पन्दनों में विराट् की अनुभूति पाने वाले महात्मा रविदास को विराट के विद्युत्प्रकाश से अलग करके कौन पहचान सकेगा? 'प्रियतम की लाली में मैं' भी हो गई लाल, को चरितार्थ करने वाले सन्त रविदास अनन्त रहस्य के दर्शन से स्वयं भी अनन्त रहस्य बन गए हैं।

अनन्त की वन्दना। अनन्तद्रष्टा की वन्दना। विश्ववन्द्य की वन्दना।

जब नानक ने भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाए

प्रायः मुगल काल को मुसलमानी राज्य का स्वर्ण काल माना जाता है। किन्तु भारत के निर्लिप्त सन्तों ने उसका जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसका दर्शन कर हृदय दहल उठता है। उन सन्तों को किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। अतः उन ब्रह्मज्ञानी सन्तों-महात्माओं की साक्षी सभी अन्य तथाकथित इतिहासों के प्रमाण से भी अधिक प्रामाणिक है। वास्तव में देखने की आंख उन्हें ही मिली है जो तथ्यों को देख कर उनका निर्भीकता से वर्णन कर सकते हैं। वे सच्चे साक्षी (आंख वाले) माने जा सकते हैं।

मध्यकाल में जाति को संकट सागर से उबारने के लिए जिन महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ उनमें पुण्यश्लोक गुरु नानकदेव का नाम सर्वाधिक पूज्य नामावली में अर्चना करने योग्य है। पंजाब वेदों, उपनिषदों एवं गीता की धरती है। उत्थान एवं पतन के भीषण भाग्यचक्र के पश्चात् पुनः वेद एवं गीता की उस धरती पर वेद के शाश्वत संदेश को लोकभाषा में गाने हेतु वेदी कुल में ही एक महान् संत का आविर्भाव हुआ। वह धरती उन पुण्यश्लोक संत गुरुनानक के चरणों को चूम कर पुनः धन्य हो उठी।

वेदी कुल

पंजाब का वेदी वंश भगवान् रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा में आने वाले सूर्यवंशी क्षत्रियों का ही एक कुल था। गुरु नानकदेवजी के सुपुत्र बाबा श्रीचन्दजी जब अकबर के विरुद्ध 25 वर्षों तक संघर्ष करने वाले वनवासी राणाप्रताप से मिलने मेवाड़ में गए तो महाराणा प्रताप का नैतिक बल बढ़ाते हुए उन्होंने प्रताप का प्रेम से आलिंगन किया तथा बताया कि हम दोनों रघुकुल गौरव रामचन्द्र महाराज की संतति होने के कारण भाई-भाई हैं। उन्होंने वंश का संक्षिप्त इतिहास भी बताया। जब लव और कुश की सन्तानों को किसी राजनीतिक उथल-पुथल में लाहौर (लवपुर) त्यागना पड़ा तो एक शाखा नेपाल चली गई जो आज तक वहाँ राज करती है। दूसरी शाखा राजस्थान में चली गई और राज्य करने लगी। उन्हीं सूर्यवंशियों की परम्परा में बप्पा रावल, राणा सांगा, राणा प्रताप इत्यादि हुए थे।

इन्हीं सूर्यवंशी क्षत्रियों की एक तीसरी शाखा काशी की ओर चली गई तथा वहाँ वेद शास्त्र इत्यादि का ज्ञान प्राप्त कर वेदी कहलाई। उसी वेदी कुल में ही गुरु नानक देवजी का जन्म हुआ था।

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक काम, क्रोधादि पांच शत्रुओं के नाश के लिए व्रत धारण किया जाता है। इन्हीं दिनों भीष्म पितामह ने शरशय्या से धर्मोपदेश दिया था। भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था और इसी दिन पृथ्वी के नेत्र पुष्करराज में महान् मेला लगता है—इत्यादि अनेक विशेषताओं के साथ इसका सम्बन्ध है।

उक्त घटनाओं से इस आश्रम का सम्बन्ध होने से आश्रम की तथा इसकी महत्ता और भी विकसित होकर भारतीय जनता को त्याग, तपस्या, सेवा, धर्म, अहिंसा तथा योगविद्या का संदेश दे रही है।

देश का राजनीतिक चित्र

गुरु नानक एक महान् संत थे। उनका प्रत्यक्ष की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके अपने दो शिष्यों—बाला एवं मरदाना में से एक मुसलमान था। उनकी अपनी ही प्रसिद्ध उक्ति है।

प्रथमहिं अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले कौन मन्दे।

इसलिए ऐसे महान् सन्त का किसी से कोई द्वेष नहीं हो सकता। पर उस युग में कुछ ऐसी भीषण राजनीतिक आपदाएं आईं जिन को ब्रह्मज्ञानी गुरु नानक भी आंख से ओझल नहीं कर सके। वे स्वयं कहते हैं—

कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिया।
कूड अमावस सच्च चन्द्रमा, दीसे नांहि के चढ़िया।।

अर्थात् कलियुग का यह काल छुरे के समान तीक्ष्ण है, राजा कसाई बन गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् सब ओर अधर्म का ही बोल-बाला है। झूठ की काली अमावस्या की रात है। जिसमें सचाई का चन्द्रमा कहीं भी उदित दिखाई नहीं देता।

हऊ भालि बिकनी होई, अन्धेरे राह न कोई।
बिच हउमैं दुःख रोई, कहू नानक किस विध गति होई।।

गुरु नानक कहते हैं, मैंने बहुत ढूंढ़ा, खोजा किन्तु सब तरफ पाप का अन्धेरा छाया हुआ है, उसमें कोई धर्म की राह दिखाई नहीं देती। अहंकार में सारा जग दुःख पा रहा है। हाय, इस संकट से मुक्ति कैसे होगी?

यह बाबर के आक्रमण काल का चित्र है—

पाप की जंझ ले काबलो धाया, जोरी मंगै दान वे लालो।
सरम धरम दोए छप्प खलोए, कूड फिरै परधान वे लालो।।

वह क्रूर आक्रमणकारी बाबर अपने साथ पाप की सेना लेकर काबुल से भारत पर चढ़ आया। वह बलात्कार से धन-सम्पत्ति मांगता है। शर्म (लोक-लज्जा) और धर्म, दोनों भाग कर छिप गए हैं। अर्थात् उस अत्याचारी के सामने शर्म और धर्म को भी शर्म आती है। सब तरफ झूठ एवं पाप ही प्रधान है।

गुरु नानक के थोड़े काल बाद गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा था—'नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहिं।' गुरु नानक ने मुगल राजाओं को कसाई कहा तो तुलसी ने उन्हें चोर कहा—

वेद धर्म दूरि गये। भूमि भूप चोर भये।

गुरु ने जनता की दुरावस्था का चित्र बड़ा मार्मिक खींचा है—

राजे शींह, मुकद्दम कुत्ते। जाए जगाइन बैठे सुत्ते।

सोई हुई या निश्चिंत बैठी हुई निरीह, निरपराध जनता पर मुगल राजे भूखे शेर के समान टूट पड़ते थे और उनके मुकद्दम शिकारी कुत्तों के समान शिकार में उनकी मदद करते थे।

नारी की बड़ी दुर्दशा की गई—

जिन सिर सोहन पट्टियां, मांगी पाए सिन्धूर,
से सिर काती मुन्नियन, गल विच आवे धूड़।

जिन भारतीय महिलाओं (हमारी माँ-बहिनों) के सिर में सुन्दर बालों की पट्टियाँ शोभा पाती थीं और उनकी मांग में सौभाग्य सूचक सिन्दूर शोभित होता था, उन्हीं देवियों के शीशों को कृपाण की धार से मूंड डाला गया है तथा उनके गले में धूल झोंक दी गई है।

यह रक्त के आंसू लाने वाला चित्र और भी कितना भंयकर है—

दूतां नूं फरमाया, लै चलै पत गंवाए,
बाबर वाणी फिर गई, कोयर न रोटी खाए।

भारत में मुगलों के अत्याचारी शासन के मूल संस्थापक नर-पिशाच बाबर ने अपने दूतों को कहा कि इन नारियों की पत छीन कर इन का सौभाग्य लूट कर ले जाओ। उस बाबर ने ऐसी घोषणा कर दी। तब किसी कुंवर (राजकुमार) को रोटी नसीब नहीं होती थी।

मुक्ति की आशा

देश का यह चित्र देख कर गुरु नानक रो उठे। पर वे निराश नहीं हुए। उन्हें अपनी महान् आत्मा तथा देश की आत्मा का बड़ा विश्वास था। उसी अदम्य आत्म विश्वास के भरोसे वे निहत्थे संत ही ललकार उठे—

कीड़ा थाम देवे पातशाही।

लश्कर करे स्वाह।

एक तुच्छ से तुच्छ बालक भी एक पूरी बादशाही को थाम सकता है और सारे लश्कर को स्वाह कर सकता है! इससे दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति का भी छिपा हुआ आत्मबल जाग सकता है। जातियाँ इसी आत्म विश्वास के सहारे जीवित रहती हैं। दशम गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसी आत्म विश्वास के सहारे गर्जना की थी—

चिड़ियों से मैं बाज मराऊं,
सवा लाख से एक लड़ाऊं,
तब गुरु गोविन्दसिंह कहाऊं।

गुरु नानक द्वारा प्रदान किए गए नैतिक बल एवं गुरु गोविन्दसिंह द्वारा जाति को धर्म युद्ध के लिए प्रदान की गई चमचमाती खड्ग के संयुक्त सामर्थ्य से ही भीषण अत्याचार का हृदय विदारक चित्र बदला जा सकता है।

15 नवम्बर 1959
'मिलाप' में प्रकाशित

पिछले हजार वर्षों के दौरान हम केवल भावुकतापूर्ण साहित्य की रचना कर सके हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि देश ने केवल मृदु साहित्य को ही प्राथमिकता दी और इसके फलस्वरूप पिछले हजार वर्षों के दौरान लिखे गये अधिकांश साहित्य को यदि निचोड़ा जाय, तो उससे केवल आंसू ही निकलते हैं।

गुरुनानक देव का रहस्यवाद

मानवता को सर्वप्रथम ज्ञानालोक प्रदान करने वाले ऋषि-मुनियों की पावन चरण धूलि जिस धरती को पवित्र बनाती रही है उसी पंचनद प्रदेश में मध्यकाल में एक अभिनव ऋषितुल्य लोक शिक्षक का आविर्भाव हुआ। पुण्यश्लोक सन्त कवि गुरु नानक, युगों से वेद की ऋचायें गाने के लिए प्रख्यात परम पवित्र 'वेदी' कुल में जन्म लेकर पुनः इस महादेश के विस्मृत सन्देश को समस्त भूमंडल में गुंजाने के लिए आए थे।

जब मुगल महीपों के काले-काले बादल भारताकाश में छाए हुए थे और चतुर्दिक दुःख, दास्य, दैन्य, दौर्बल्य की विकराल रात्रि का साम्राज्य था, उस समय आशा के क्षितिज में आस्तिकता एवं आकांक्षा की स्वर्णिम रश्मियों को बिखेरते हुए बाल-रवि के समान गुरु नानक देव का उदय हुआ।

जब से मानव ने अपने अज्ञान भरे पृथु नेत्रों को खोलकर सृष्टि को प्रथम बार निहारा है तब से लेकर आज तक एक प्रश्न सदा उसकी बुद्धि को चुनौती देता रहा है। वह प्रश्न है 'क्या इस दृश्यमान नश्वर जगत् के पीछे कोई ऐसी अजर-अमर अविनाशी सत्ता है जिसके बोध में सृष्टि के रहस्य की कुंजी छिपी हुई है?' इस अनादि प्रश्न का उत्तर विश्व के महानतम मनीषियों ने देने का प्रयत्न किया है। भारतीय चिन्तन धारा में समय-समय पर अनेकानेक तत्त्वदर्शियों ने इस एक प्रश्न के अनेक समाधानकारक उत्तर दिए। परन्तु वे अनेक उत्तर मिल कर एक ही सत्य की ओर संकेत कर रहे हैं। अतः इस पहेली का भारतीय उत्तर तत्त्वरूप से एक ही है। उस एक की अर्चना करते हुए नानक देव कहते हैं—

एक ओंकार सतिनामु करता पुरुखु
निरभउ निरवैरु अकाल मूरति
अजूनी सैभं गुरप्रसादि।।

उसी एक ओंकार तत्त्व के विषय में गुरु नानक कहते हैं—

एक ओंकार हमारा खाविंद, जिन हम बनत बनाये।
उसको त्याग अवर को लागे, नानक सो दुःख पाये।

भगवान् शंकराचार्य के 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' के समान ही गुरु नानक की घोषणा है—

ज्यों सपना अरु पेखना, ऐसा जग को जान।
इस में कछु सांचो नहीं, नानक बिन भगवान्।।

पर वह अमर तत्त्व है कहाँ? क्या सातवें आसमान पर है? नहीं, वह तो सब सांसों की सांस है, जीव में ही छिपा हुआ है—

घट में बसे सूझे नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक या संसार को, भयो मोतिबा बिन्द।।

यह मानव देह भगवान् का मन्दिर है—

काइआ महलु मन्दरू धरू हरि का, तिसु महि राखि जोति अपार।
नानक गुरुमुखि महलि बुलाइऐ, हरि मेले मेलणहार।।

वे पुनः गाते हैं—

मन मन्दरु तनु वेस कलंदरु, घट ही तीरथ नावां।
एक सबदु मेरे प्रानि बसत है, बाहुड़ि जनमन आवां।

माया के आवरण से ही हमारे पृथु नेत्रों को उस परम तत्त्व के दर्शन नहीं होते। इसी कारण हम दुःख भी पाते हैं—

साधो एह जग भरम भुलाना
राम नाम का सिमरन छाड्यो
माया हाथ बिकाना।

जीवन अनेक जन्मों के मलिन संस्कारों से पुनः विषय रूपी विष को ही खाने दौड़ता है—

अन्तर बसे न बाहरि जाई
अमृत छोड़ि काहे विषु खाई।।

पर गुरु नानक तो निरन्तर अपने प्यारे के प्रेम में लीन हैं, वे सच्चिदानंद की लीला के सांझीदार हैं। उनका नशा बड़ा अद्भुत है—

जेते नशे संसार के उतर जाहीं प्रभात
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात

नानक का तो प्राणाधार ही वही है उसका नाम लेने में ही नानक का जीवन है—

आखां जीवां विसरे मर जावां
सो मैं बिसर न जाई।

विरह

अपने प्राणप्यारे पति का वियोग न सहकर गुरुनानक की आत्मारूपी वधू पुकारती थी—

रंडिया एह न आखियन, जिनके चलन भर्तार।
रंडियां सोई नानका, जिन बिसर्यो करतार।।

वे पुनः विरह की वाणी में पुकारते हैं—

जब लगि दरसु न परसै प्रीतम, तब लगु भूखि पिआसी,
दरसनु देखत ही मन मानिआ, जल रसि कमल विगासी।

गुरु नानक उसी परम ज्योति के द्रष्टा थे जिसके बारे में उनकी साक्षी है—

सब महं ज्योति ज्योति है सोई।
तिसके चानणि सबमहिं चानण होई।।

गुरु नानक एक प्रेमिका के समान अपने सच्चे पति के लिए तरसते हैं—

सभनि धरि सहु बसे सह बिनु घटु न कोई
नानक ते सोहागनी जिन्हा गुरमुखि परगटु होई

चिर वियोग के पश्चात् प्रेमी और प्रियतमा का मिलन हुआ—

नानक लीन भयों गोबिन्द सों
ज्यों पानी संग पानी

परमात्मा से तदाकार हुई उनकी आत्मा जगत् के सपने में गाफिल पड़े हुए जीवों को जागरण का सन्देश देती हुई आज भी कह रही है—

जागो रे जिन जागना, अब जागन की बारि।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवण पांव पसारि।।

क्या उस जागरण के मुक्ति दूत का सन्देश कोई नानक का देशवासी सुनेगा?

प्रणाम! शत-शत प्रणाम गुरु नानक देव को तथा शतकोटि प्रणाम उनके प्यारे गोविन्द को। किन्तु सबसे प्रथम प्रणाम उसको जो आज नानक की वाणी सुनकर नानक बनने को परमाकुल है।

15 नवम्बर 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

तुलसीदास : भक्तिमार्ग के अमर संवाहक

कोई भी राष्ट्र अपनी प्राचीन संस्कृति की धरोहर को भुला नहीं सकता। ज्ञान के अमर भंडार को जिसमें धर्म, दर्शन, कला और साहित्य बहुत सुन्दर ढंग से संजोये होते हैं, भूलना या इसकी रक्षा न करना अक्षम्य होता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कुछ समय ऐसा भी रहा है जब विदेशी आततायी शक्तियों ने भारत पर अपना शासन स्थापित कर लिया जिसके फलस्वरूप कुछेक भारतवासियों ने इन विदेशी शक्तियों के सामने घुटने टेक दिए। ऐसे ही क्षणों में जब दासता, आपसी झगड़े, धर्म, जाति के नाम पर संघर्ष और मुस्लिम शासकों की बन्दूक और तलवार के बल पर दमन-नीति बढ़ी हुई थी, निजी स्वार्थ और अज्ञान बढ़ रहा था, उस समय भारत के क्षितिज पर एक ऐसी किरण का उदय हुआ जिसने कालान्तर में भारतीयों को झकझोर कर विदेशी दासता एवं शारीरिक और मानसिक तमस से जगाया। उसके शब्दों ने मुरझाए चेहरों को नई शक्ति दी और डूबते हुए राष्ट्र को सहारा दिया। उनके संदेश से इस धरा पर एक नयी चेतना आ गई और पूरा विश्व संगीतमय दोहों और चौपाइयों के स्वर से गुंजित हो उठा। वे हमारी संस्कृति के महान् रक्षक थे और उन्होंने हमारे धर्म और विश्वास को एक नयी दिशा दी।

प्रख्यात सन्त-कवि—तुलसीदास, जो गोस्वामी तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध थे, वे आध्यात्मिक जागरण के महान् सन्देशवाहक थे, जिनकी विचारधारा का प्रभाव न केवल भारत, अपितु अनेक राष्ट्रों पर भी पड़ा। वे एक कवि एवं दार्शनिक, श्रेष्ठ संत एवं धार्मिक गुरु और समाज-सुधारक थे। उन्होंने भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक विचारधारा पर बहुत प्रभाव डाला। प्रख्यात पश्चिमी विद्वान् डॉ. ग्रियर्सन जिन्होंने भारतीय साहित्य का विपुल अध्ययन किया है, तुलसीदास को भगवान् बुद्ध के बाद सबसे महान् सांस्कृतिक नायक मानते हैं, जिन्होंने अगली कई शताब्दियों के लिए दर्शन एवं सांस्कृतिक विचारधारा पर अपना प्रभाव छोड़ दिया है। उनकी प्रेरणा और विचारधारा का प्रभाव इतना प्रबल और विस्तृत है कि तुलसी रामायण का पाठ बड़े-बड़े महलों से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक बड़ी श्रद्धा व आस्था से होता है।

भारत के इस महान् सपूत का जन्म श्रावणी शुक्ला सप्तमी, विक्रम संवत् 1554 में हुआ था। कुछ हिन्दी साहित्य ग्रन्थों में उनका जन्म विक्रम संवत् 1589 में भी दिखाया गया है। यह खेद की बात है कि पक्के ऐतिहासिक ज्ञान और आधार के बिना हिन्दी साहित्य के इस महान् लेखक का जन्म स्थान अभी तक ठीक प्रकार से निर्धारित नहीं किया गया है। किन्तु आधुनिक प्रमाणित साहित्य और प्रपत्रों के आधार पर यह माना जाता है कि तुलसीदास स्वयं एक शुक्ल संध्या ब्राह्मण थे, जो भारद्वाज गोत्र के आत्माराम दुबे और हुलसी (सोरन, ईटावा जिला उत्तर प्रदेश के निवासी) के पुत्र थे।

तुलसीदास के जीवन में अचानक एक मोड़ आया जिसने उनकी जीवनधारा पूर्णतया बदल दी। उनकी पत्नी रत्नावली ने एक दिन अत्यधिक मोह-ममता और कामवासना के विषय में उनकी काफी भर्त्सना की। उसकी डांट-डपट ने तुलसीदास के मन में एक बड़ा परिवर्तन ला दिया—

अस्थि-चर्म मय देह मम्, तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होति न तौ भव-भीति।।

अर्थात्, आप मेरे हाड-मांस के शरीर में जितनी प्रीति रखते हैं, वैसा ही प्रेम यदि श्रीराम के लिए हो तो आपके सब भव-संकट दूर हो जाएंगे।

यह वाक्य तुलसीदास के मन में एक जादू की तरह समा गया। वे उसी क्षण से भगवान् राम के परम भक्त बन गए। कई महान् संतों की जीवनी पढ़ने से हमें दिखता है कि छोटी सी घटना से उनके जीवन में एक नया मोड़ आ गया। जैसे एक घटना ने क्रूर मानसिक वृत्ति वाले रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया, भोग विलास में लिप्त राजकुमार सिद्धार्थ को महात्मा बुद्ध, मोटी बुद्धि वाले व्यक्ति को कालिदास, बंगाल के घोर नास्तिक नरेन्द्र बाबू को स्वामी विवेकानंद, सरल प्रकृति बालक मूलशंकर को महर्षि दयानन्द, बिगड़े हुए वकील मोहनदास को महात्मा गांधी बनाया, उसी प्रकार एक घटना ने कामवासना में लिप्त तुलसीदास को गोस्वामी तुलसीदास बना दिया।

एक कवि परमात्मा का महान् संदेशवाहक होता है। उसकी कला निष्प्राण और बेकार होगी, यदि वह केवल कल्पना के महलों में बंद रहे। तुलसीदास का साहित्य भारतीय संस्कृति में स्वर्णिम शब्दों में लिखा गया है। हिन्दी भाषा के अग्रणी काव्य-रचयिता होने के कारण वे भारतीय संस्कृति एवं साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय स्थान रखते हैं।

रहस्यवाद

तुलसीदास मुख्यतः एक धार्मिक शिक्षक और रहस्यवादी विद्वान् थे, क्योंकि

सभी धार्मिक सिद्धान्त किन्हीं रहस्यवादी धारणाओं पर आधारित होते हैं। यहाँ पर तुलसीदास की 'सर्वोच्च शक्ति : ईश्वर' के बारे में विचार ध्यान देने योग्य है। वे रामानुजाचार्य की विशिष्टाद्वैत धारणा से प्रभावित थे और मानते थे कि सर्वोच्च शक्ति, जो पूरे विश्व की नियन्ता है, केवल एक ही स्रोत से सृजित हुई है। वे अद्वैत मार्ग के उपासक थे। यही ब्रह्म के रूप में परम शक्ति और विचारधारा भारत की पुण्यभूमि से पूर्णतः जुड़ी हुई है।

इस प्रकार तुलसीदास भक्ति-मार्ग का सुन्दर मार्गदर्शन करते हैं—

सगुनहि अगुनहि नहीं कछु भेदा, गावहीं मुनि पुरान बुद्ध बेदा।

वे जीवात्मा की परम सत्ता के विषय में शंकराचार्य की विचारधारा मानते हैं कि हर जीव केवल परम शक्तिमान ईश्वर का ही प्रतिरूप है—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

वे समझाते हैं कि जब जीव अपने भीतर उस अजर-अमर अविनाशी शक्ति का आभास कर लेता है तो जीवात्मा, परमात्मा के साथ एकरूप हो जाती है—

जानत तुम्हहि, तुम्हइ होइ जाई।

शंकराचार्य की तरह तुलसीदास भी परमात्मा और जीवात्मा का अंतर और सब दुःखों का कारण माया को ही मानते हैं। किन्तु जहाँ शंकराचार्य माया को सब अज्ञान का मूल कारण समझते हैं, तुलसीदास माया को ब्रह्म की सृजन शक्ति मानते हैं। वे मानते हैं कि सारी सृष्टि ब्रह्म और माया के सहयोग से ही बनी हुई है, लेकिन ब्रह्म की तरह माया पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है, माया ब्रह्म की दासी के समान है और उसी की इच्छानुसार कार्य करती है। इसलिये ब्रह्म को मायापति मानते हैं। ब्रह्म अपनी कृपा से अज्ञान या माया को एक क्षण में समाप्त कर सकते हैं।

तुलसीदास की सोच, मनन, अद्वैतवाद से थोड़ी भिन्न है। वे मानते हैं कि ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से जीवात्मा ब्रह्म से एकात्म हो जाता है किन्तु वह पूर्ण ब्रह्म नहीं बन जाता। तुलसीदास ने भक्ति मार्ग का पुरजोर समर्थन किया। जिसके अन्तर्गत ब्रह्म और जीव का एकात्म पूरी तरह नहीं होता। यदि ब्रह्म और जीव वस्तुतः एक ही हैं तो जीव द्वारा ब्रह्म की उपासना का कोई औचित्य नहीं रहता।

नैतिक गुण—किसी राष्ट्र की एकता और अखंडता उसके सुदृढ़ नैतिक गुणों पर ही आधारित होते हैं। जब कभी नैतिक मूल्यों में गिरावट आई, सामाजिक व्यवस्था निष्क्रिय व निर्जीव सी हो जाती है। तुलसीदास ने राष्ट्र एवं समाज की वास्तविक शक्ति को अच्छी प्रकार समझा और मुख्य नैतिक गुणों को सरल 'अवधी' भाषा में काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया।

तुलसीदास एक प्रबुद्ध संत थे। वे समझाते हैं कि कर्म का फल उसकी अन्तर्निहित भावना पर आश्रित होता है।

जिन्ह के रही भावना जैसी,
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।। मानस, 1/240/4

वे एक महान् कर्मयोगी थे, कर्म की प्रधानता को बहुत मानते थे।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।। मानस, 2/218/4

वे कट्टर सत्यनिष्ठ थे। सत्य सर्वोच्च नैतिक गुण है वे मानते थे—

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।।

मानव में संवेदना और करुणा भाव के विषय में वे कहते हैं—

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये जब लग घट में प्राण।।

तुलसीदास कहते हैं कि कोई वचन देकर या आश्वासन देकर उससे पीछे नहीं हटना चाहिए।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।। मानस 2/27/4

सामाजिक गुण—यह खेद का विषय है कि हमारे समाज से धर्म और पारंपरिक धार्मिक क्रियाएं घटती जा रही हैं। विशेषतया भारत में धार्मिक उपदेशों के स्थान पर स्वार्थवादी शक्तियाँ उभर रही हैं।

तुलसीदास ने कभी स्वार्थवादी, भौतिकवादी धर्म नहीं सिखाया। वे आम जनता के कवि थे अतः सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को बहुत महत्त्व देते थे। उनके अनुसार गृहस्थ नैतिक गुणों को सीखने की सर्वोत्तम पाठशाला है। वे गृहस्थ में पत्नी का कर्तव्य समझाते हैं।

सादर सास ससुर पति पूजा।
नारी धरम कछु और न दूजा।

अच्छे सुसंस्कृत पुत्र के कर्तव्य भी उनकी प्रखर सूझ-बूझ के बाहर न थे।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी।। मानस, 2/41/7

सच्चे मैत्री धर्म को उन्होंने सुन्दर ढंग से समझाया है—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।। मानस, 4/6/1

तुलसीदास द्वारा बताई गई सच्ची मैत्री सदा ही समय की कसौटी पर खरी उतरी है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखि अहिं चारी।। मानस 3/4/7

तुलसीदास के अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। पूर्णज्ञान प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है—

गुरु बिन भव निधि तरहीं न कोई

उदारता एवं दान देने के महत्त्व को तुलसीदासजी इस प्रकार बताते हैं।

तुलसी या संसार में कर लीजो दो काम।
देने को टुकड़ो भलो, लेने को हरि नाम।।

तुलसीदास उच्च कोटि के नैतिक सन्त थे। वे सबमें प्यार, भाईचारे और ईश्वर में पूर्ण निष्ठा का उपदेश देते थे। वे हर प्राणी में प्रभु का दर्शन करते थे।

तुलसी या संसार में सबसे मिलिये धाय।
न जाने किस रूप में नारायण मिल जाय।।

तुलसी को मानव मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान था। इसलिए वे अच्छी संगति-सत्संग का विशेष महत्त्व मानते थे।

एक घड़ी आधी घड़ी आधी से पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरे कोटि अपराध।।

तुलसीदास के व्यक्तित्व और उपदेशों पर मनन करने से यह स्पष्ट होता है कि वे भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में अग्रणी थे, वे सामाजिक जागरण के नायक थे। कई महापुरुषों ने राष्ट्र निर्माण में बहुत योगदान दिया है, इनकी कीर्ति इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों से लिखी है। इन महापुरुषों में तुलसीदास का विशेष स्थान है। उनका पूरी मानवता के लिए और विशेष भारत के कल्याण कार्य में इतना महान् और अद्वितीय योगदान है कि उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

गोस्वामी तुलसीदास का राजनीतिक दर्शन

कोटिशः वन्दित, जनगण पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी की आध्यात्मिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक देन के विषय में तो विश्वभर के हिन्दी विद्वान् एकमत हैं। साहित्य एवं संस्कृति के सूर्य गोस्वामी तुलसीदास की कुछ राजनीतिक क्षेत्र में भी महान् देन है। इस विषय में अभी बड़े-बड़े इतिहासकार भी संशयग्रस्त हैं।

श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति जैसे प्रख्यात लेखक भी समय-असमय लिख बैठते हैं कि तुलसीदास को राजनीति के विषय का कुछ ज्ञान न था। उनके लिए तो '**कोउ नृप होऊ हमहि का हानी।**' तुलसी की राजनीतिक बेहोशी का यह चित्र बड़ा अन्यायपूर्ण है।

श्री रामधारी सिंह दिनकर जैसे सुलझे हुए विद्वान् भी इसी भ्रान्ति के शिकार हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' में वे लिखते हैं—

इस काल (भक्ति-काल) में सन्तों और कवियों को यह जानने की तनिक भी उत्सुकता नहीं थी कि देश में राज्य किसका चल रहा है? वे हरि भजन में मस्त हैं और जनता में भक्ति भावना का प्रचार कर रहे हैं। उनमें भक्ति के लिए उत्साह तो है किन्तु विदेशियों को भगाने की तनिक भी चिन्ता नहीं। तुलसीदास और राणा प्रताप कुछ समय के लिए समकालीन थे किन्तु तुलसीदास ने राणा प्रताप का नाम भी सुना था या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।'

गोस्वामी तुलसीदासजी चाहे प्रत्यक्षतया राजनीति के क्षेत्र में नहीं आए तथा न ही राजनीति उनकी जीवन दिशा थी फिर भी भारतीय जनगण के उस काल में एकमात्र प्राणरक्षक होने के कारण वे राजनीतिक गतिविधियों से पूर्णतया अछूते नहीं रह सकते थे।

भारत का सच्चा इतिहास केवल राजाओं, रानियों, युद्धों और अत्याचारों का किस्सा मात्र नहीं है। जो इतिहास आजकल हमारे बच्चों को इतिहास के नाम पर पढ़ाया जाता है उसमें कुछ विलासी अथवा अत्याचारी राजाओं-रानियों के ही किस्से हैं। इस भारत के इतिहास में हमें भारत के दर्शन बिल्कुल नहीं होते। समाज

की क्या अवस्था थी, यह किंचित मात्र भी ज्ञात नहीं होता। साहित्य ही समाज का सच्चा दर्पण है। यदि साहित्य सम्राट् तुलसीदास का साहित्य सच्चा साहित्य है तो उसमें भारतीय समाज का चित्र प्रतिबिम्बित है। केवल पहचान की आंख चाहिए। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में वह काल एक भीषण संकट बनकर आया था। वैसे तो भारत में पहले ही कई आक्रमणकारी आ चुके थे, किन्तु वे भारतीय समाज में घुल-मिल गए थे। मुस्लिम आक्रमण के साथ भारत की सीमाओं के भीतर पहली बार ऐसे लोग आकर बसने लगे थे, जो आचार, विचार, धार्मिक आस्था तथा सांस्कृतिक आदर्श—सभी में भारतीय समाज से भिन्न थे तथा जो न अपनी भिन्नता को त्यागने के लिए राजी थे और न ही भारतीयों को स्वयं अपनी भिन्नता को रखते हुए अपने आचार धर्म पर चलने की छूट तक देने के लिए तैयार थे, वरन् वे तो इस धरती का खाते-पीते, किसी अन्य देश तथा धर्म में आस्था रखते हुए इस धरती के बेटों को भी तलवार की नोक से अपने धर्म और संस्कृति का गुलाम बनाने के लिए कटिबद्ध थे। गोस्वामी तुलसीदास ने दूरदर्शिता से देख लिया कि हिन्दुत्व का नाश होने से भारतीयता का नाश हो जाएगा और भारत का नाश होने से विश्व मानवता का विनाश हो जाएगा।

रक्त की वर्षा

गुरु नानकदेवजी गोस्वामी तुलसीदास के पूर्वगामी थे तथा कुछ वर्षों के लिए उनके समकालीन भी माने जाते हैं, उन्होंने अपनी वाणी में उस युग के भयानक चित्र का संकेत दिया है—

कलि काली, राजे कसाई, धर्म पंख धरि उड़ि रह्या।
कूड़ अमावस सच चन्द्रमा, दीसे नहीं कहीं चढ़्या।।

अर्थात्, जहाँ युग छुरे की धार है, राजे कसाई हैं, धर्म उड़ गया है और झूठ की काली अमावस में सत्य का चन्द्रमा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, वहाँ जनसाधारण की कितनी दुर्गति होती होगी? गुरु नानक लिखते हैं कि 'हत्या के गीत गाए जाते हैं। केसर के स्थान पर रक्त की वर्षा होती है। साक्षात् मौत ने ही बाबर के रूप में भारत पर आक्रमण किया। यह घोर कलियुग है, सत्य बोलने वालों को सताया जाता है और भगवान् का नाम लेने वालों को समाप्त कर दिया जाता है।'

प्रसिद्ध यूरोपीय इतिहासकार डॉ. फर्कुहर ने लिखा है कि 16वीं सदी में हजारों सशस्त्र मुस्लिम फकीर घूमा-फिरा करते थे। वे युद्धों में भी भाग लेते थे। जब युद्ध नहीं होते तो वे अपने धार्मिक जोश में हिन्दू संन्यासियों के मठों पर हल्ला बोल देते थे और उन्हें कत्ल कर देते थे। काशी के प्रसिद्ध धर्मगुरु स्वामी मधुसूदन सरस्वती ने इस बारे में अकबर से शिकायत भी की थी।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने लगभग सवा सदी के लम्बे जीवनकाल में आगरा तथा दिल्ली के सिंहासन पर लगभग छः शासकों का शासन देख लिया था।

बचपन में उन्होंने वीर राणा सांगा की मृत्यु देखी। बाबर और हिमाँयु का राज्यकाल अपनी युवावस्था में देखा। बाद में उन्होंने शेरशाह और अकबर का शासन देखा और वृद्धावस्था में जहाँगीर और शाहजहाँ का राज्यकाल भी देखा और उनके अत्याचारों को भी देखा। और विशेषकर अकबर की कूटनीति को भी देखा। वह साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा राजपूत समाज को अपना वशवर्ती बना रहा था। वे दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों कहने में ही अपना आत्महित तथा अपनी विद्या-बुद्धि की सार्थकता समझने लगे थे। ऐसी भयावह स्थिति में गोस्वामी तुलसीदास एक आशा की किरण के रूप में उभरे। और रामराज्य का आदर्श समाज के सामने रखा।

आर्थिक दुर्दशा

गोस्वामीजी ने 'कवितावली' में उस काल की आर्थिक दशा का हृदय विदारक चित्र खींचा है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
वनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविकाविहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, कहाँ जाई का करी ?
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु !
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।

अर्थात् किसान को खेती नहीं थी, नौकर को नौकरी नहीं मिलती थी, भिखारी को भीख नहीं मिलती और व्यापारी को व्यापार नहीं था। बेकार हुए लोग दुःखी मन होकर एक-दूसरे से पूछते थे—कहाँ जायें, क्या करें? गरीबी का राक्षस रावण सबको काल का ग्रास बनाकर खा जाना चाहता है। ऐसी पाप की भीषण ज्वाला को देखकर तुलसीदास प्रभु से कृपा के लिये प्रार्थना करता है।

नैतिक पतन

उँचे-नीचे करम, धरम, अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी।

अर्थात् लोग पेट भरने के लिये सब ऊँचे-नीचे कर्म, धर्म-अधर्म करते अपने बच्चों को भी बेच देते हैं। यह समाज के नैतिक पतन और निराशा का चित्र है।

पारिवारिक आदर्शों के लुप्त हो जाने से—

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं।
ससुरारि पियारि लगी जब तें, रिपुरूप कुटुम्ब भये तब तें।

अर्थात् पुत्र माता-पिता का तभी तक आदर सत्कार करते हैं जब तक उसे अपनी पत्नी का चेहरा नहीं दिखता। फिर बाद में उसे ससुराल प्यारा लगता है। अपने माता-पिता, भाई-बहिन शत्रु तुल्य लगते हैं।

भीख की प्रथा

तुलसी के शब्दों में—

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।

निर्धनता एवं अकर्मण्यता के कारण समाज में भिक्षा मांगना शुरू हो गया था। माता-पिता बच्चों को बुलाकर पेट भरने के लिये उन्हें भिक्षा मांगने की कला सिखाते हैं।

स्वेच्छाचारी राजे

उस काल के शासन का चित्र भी आंखें खोलने वाला है—

नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दण्ड बिडंब प्रजा नित ही।।

अधिकांश राजे एवं नवाब अधर्मी, पापाचारी एवं अनैतिक हो गये थे। अनैतिक राजा धर्म को भूलकर प्रजा को दण्ड और बल से सताते हैं।

वे पुनः लिखते हैं—

कालु कराल, नृपाल कृपाल न। राज समाजु बड़ोई छली है।।

एक अन्य प्रसंग में तुलसीदास जी कहते हैं—यह बड़ा कराल समय है, जब राजा क्रूर हो जाते हैं। न्यायालय, मंत्री, कर्मचारी सब भ्रष्ट हो गये हैं।

गोस्वामीजी दारुण दुःख से कहते हैं—

वेद-धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये।
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की।।

अर्थात् वैदिक धर्म समाप्त हो गया, चोर, डकैत राजा बन गये हैं। सज्जन दुःखी है। पाप पनप रहा है।

डाके और कत्ल

उस काल के डाके और हत्याओं का स्मरण कर दिल दहल जाता है—

मारग मारि, महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारिके हीयो।

जो राहगीरों की हत्या करते हैं, साधुओं को मारते हैं या अनुचित ढंग से पैसा बटोरते हैं।

गोस्वामीजी की ऐसे डाकुओं को चेतावनी है कि याद रखो शंकर के कोप से पाप का पैसा तुम्हारे हृदय को जलाकर बाहर निकालेगा। यह पक्का परीक्षित नियम है।

राष्ट्रीय चरित्र का अभाव

राजनीतिक अचेतनता तथा राष्ट्रीय चरित्र के अभाव के कारण लोग अवसरवादी बन गये थे। मंथरा के निम्न वचनों में कर्तव्यशून्य अवसरवादियों की प्रसिद्ध युक्ति है—

कोउ नृप होऊ हमहि का हानी।
चेरी छांड़ि अब होब की रानी।। मानस 2/15/6

कुबड़ी मंथरा की इसी उक्ति के अनुरूप अनेक राजपूत सैनिक यही युक्ति देते थे कि हमें केवल सेवा करनी है। चाकरी चाहे प्रताप की हो या अकबर की—हमें तो लड़ना ही है। हमें कोई राज तो करना नहीं।

गुलामी को लानत

गुलामी की रोटियों पर पलने वाले लोगों को गुलामी से ही प्यार हो चला था। गोसाईंजी ने हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है—

हम पंखपाई पींजरनि तरसत अधिक अभाग हमारी।

मुक्ति की स्वतंत्र उड़ान के लिये समर्थ पंख होते हुए भी हम (पंछी) पिंजरे के घृणित सुखों के लिये तरस रहे हैं, यह हमारा कितना बड़ा दुर्भाग्य है।

स्वातन्त्र्य मंत्र

गोसाईंजी ने भारत को मुक्ति मंत्र दिया—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

पराधीन होकर रहना एक पाप है। ऐसा व्यक्ति स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता।

वे पुनः चेतावनी देते हैं—

अरि बस दैउ जिआवत जाही।
मरनु नीक तेहि जीवन चाही।। मानस 2/20/2

अर्थात् दैव जिसको शत्रु के वश में रख कर जिलाता है, उसके लिए तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।

वीर व्रत

वीर व्रत की महिमा राष्ट्र रक्षा के लिए है—

निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।

आदर्श राजा

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।

तुलसी के रघुपति राघव राजा राम के गायन ने हमें राम जैसे आदर्श राजा का स्मरण दिलाया जो सब प्रकार से दैत्यों का नाश करने वाले हैं—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।।

प्रजातंत्र

राम जैसे आदर्श राजा भी प्रजा से कहते हैं—

जो अनीति कछु भाषौं भाई, तो मोही बरजहु भय बिसराई।।

एक चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुलेआम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीतिपूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय होकर सम्राट को भी वर्जित कर दें—एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है।

सत्याग्रह

जब रावण सीता को बहुत डराता है तो सीता सत्याग्रह की वाणी में कहती है—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असिघोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा। मानस 5/9/3

सीताजी ने कहा—हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड के समान पुष्ट तथा विशाल है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है।

भारत माँ के बेटे : सगे भाई

हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रताप ने देखा कि मुगल सेनापति होकर मानसिंह आया है। उसे देखते ही प्रताप ने क्रुद्ध होकर कहा—'पापी! अपनी माँ-बहिन को यवनों को देने वाले, देशद्रोही, जातिद्रोही, आज तुम्हारा मान मर्दन करके ही

छोड़ूंगा।' चेतक को देखते ही मानसिंह पलायन कर गया। शाहजहाँ सलीम किसी प्रकार घोड़े पर से किए प्रताप के भाले के वार से बच गया। मानसिंह और सलीम तो बच गये, किन्तु महावत मारा गया और हाथी युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग गया। बड़ा अपमान हुआ मानसिंह का। मानसिंह ने प्रतिज्ञा की कि अब एक विशाल सेना लेकर राणा प्रताप का सर्वनाश करके छोड़ूंगा।

उस समय राजधानी आगरा में थी और आगरा की एक धर्मशाला में तुलसीदासजी की रामायण कथा चल रही थी। उन्हें जब यह जानकारी मिली कि मानसिंह ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की है, तब उन्होंने अपना व्यक्ति भेजकर मानसिंह को बुलाया। पर मानसिंह के पास समय कहाँ? तथापि मानसिंह एक दिन कथा सुनने आया। तुलसीदासजी रामायण का प्रसंग कहते-कहते एक अन्य प्रसंग कहने लगे। भगवान् राम ने लंका विजय के पश्चात् हनुमान, सुग्रीव, विभीषण को साथ लेकर अयोध्या में प्रत्यावर्तन किया। तब भगवान् राम ने भरत के समक्ष सुग्रीव एवं विभीषण की प्रशंसा की। सुग्रीव के संबंध में कहा, 'मैंने अग्नि को साक्षी करके इसके साथ मित्रता की है। यदि यह मित्रता न होती तब हनुमान भी नहीं मिलते, वानर सेना भी हमारे पक्ष में नहीं आती, लंका विजय भी नहीं होती, सीता वापस नहीं आती। अतः सुग्रीव मेरा बहुत प्रिय मित्र है। यह विभीषण तो लंकापति दशानन का भाई है। यदि विभीषण यह भेद नहीं बताता कि रावण के पेट में अमृत कुंभ है, तब रावण तो मरता नहीं। इन दोनों ने ही मेरी सहायता की है। इनके सहयोग से ही हम लोग सकुशल वापस लौटकर आ सके हैं।

राम सराहे भरत उठी मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषण कीसपति तुलसी मरत ग्लानि।।

राम ने तो सुग्रीव तथा विभीषण को मित्र बताया और भरत उन्हें राम के समान पूज्य समझकर ही उनको प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े, किन्तु विभीषण और सुग्रीव दोनों ग्लानि से मर रहे थे कि कहाँ भरत जैसे पूज्य भाई जिन्होंने निष्कटंक राज्य हाथ में पाकर भी राजधानी से दूर नन्दीग्राम में योगी-मुनि की तरह जटामण्डित होकर, भूमिशयन कर, सिंहासन पर पादुका स्थापित कर राज्य का संचालन किया और कहाँ हम अपने-अपने स्वार्थों के लिये सगे भाइयों को मरवाने वाले बने। इसलिये भरत जब उन्हें प्रणाम करने जा रहे हैं, तब वे ग्लानि एवं अपराधबोध से दबे जा रहे हैं। ठीक वैसे ही तुलसीदासजी के पाठ में बैठे हुए मानसिंह के मन का चोर पकड़ा गया। तुलसीदासजी ने कहा—आज भी देश की यही अवस्था चल रही है। भाई कह रहा है भाई का सर्वनाश करके ही दम लूंगा नहीं तो मैं राजपूत का बच्चा ही नहीं। यह राजपूत एक दिन देश की ढाल था, देश का रक्षक था। आज वही राजपूत देशद्रोही बनकर म्लेच्छों की पदसेवा में लग गया है। सभा में बैठा मानसिंह आंखें भरकर रोने

लगा। पाठ समाप्ति के पश्चात् गोस्वामीजी के निकट आकर चरण पकड़कर मानसिंह बोलने लगा, 'मैंने भयंकर अपराध किया है। आज में पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ।' तुलसीदासजी ने कहा, 'चिन्ता नहीं। इस ग्लानि से बचने का अभी भी उपाय है।' मानसिंह ने पूछा, 'वह उपाय कौन सा है? मैंने सारा जीवन प्रताप का विरोध किया है। अब उसकी शरण में जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसके अलावा और कोई उपाय है तो बताएं?'

तुलसीदासजी ने कहा, 'अकबर की राजनीति से तुम अब अवकाश ग्रहण करो। उसके पश्चात् समस्त भारतवर्ष की तीर्थयात्रा करो ताकि तुम्हारा देशद्रोहिता, जातिद्रोहिता और भ्रातृद्रोहिता का पाप सदा के लिये धुल जाए। तुम अपनी अन्तिम समाधि हरिद्वार की हरकी पैड़ी में बनवाना ताकि सुरेश्वरी गंगा के पावन जल से अनन्तकालपर्यंत निरवधि (निरन्तर) तुम्हारे देशद्रोह, भ्रातृद्रोह एवं जातिद्रोह के पाप का परिक्षालन होता रहेगा।'

आप सब हरकी पैड़ी पर जाने से मानसिंह की छतरी देखेंगे। अनेक लोग भी कहते हैं—'इस विश्वासघाती की छतरी यहाँ क्यों? इसका कारण हुआ तुलसीदासजी की आज्ञा। मानसिंह के भ्रातृद्रोह के प्रायश्चित्त के लिए ताकि उसके पाप गंगा से धुलते रहें और भी एक कारण है, मानसिंह चाहते थे कि लोग उसे उसके अधम कार्य के लिये चिरकाल तक धिक्कार देते रहें। तुलसीदासजी ने यह चमत्कार करके दिखा दिया। उन मुक्तिदाता तुलसीदासजी की जय। जो यह संदेश देती है कि विचार और साहित्य की शक्ति एक राष्ट्र का इतिहास बदल सकती है।

रामचरितमानस विश्व के सबसे बड़े कंगाल का महानतम दान है जिसके बिना साहित्य रंक रहता और समाज अकिंचन।

× × ×

जिन मुगल सम्राटों को इतिहास में महान् मुगल कहकर सम्बोधित किया जाता है उन्हें गुरु नानक, तुलसीदासजी, गुरु गोविन्दसिंह एवं संत कवियों ने चोर, लुटेरे, पापी और हत्यारे के रूप में चित्रित किया है। अतः हमें राग-द्वेष से मुक्त इन सन्तों की वाणी के आधार पर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिये।

—प्रो. ओबराय

कविता करिके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला

कविकुल भाल कुंकुम श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास भारत, भारती एवं भारतीयता के प्राण हैं। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार भगवान् वेदव्यास एक विशाल वटवृक्ष के समान सर्वत्र अपनी सुशीतल छाया फैलाए हुए दृष्टिगोचर होते हैं उसी प्रकार मध्यकालीन भारत के इतिहास से लेकर आज तक गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दी एवं हिन्दू समाज को अपने दिव्य साहित्यरूपी अश्वत्थ की सुविशाल एवं शक्तिदायिनी हरीतिमा के नीचे आश्रय दिए हुए हैं। भगवान् वेदव्यास के विषय में कहा जाता है **व्यासोच्छिष्टं जगत्त्रयं** अर्थात् तीनों जगत का जितना ज्ञान है वह भगवान् वेदव्यास की जूठन मात्र है। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च प्रतिभा का दर्शन तो तुलसी में है, अन्यत्र तो उनकी जूठन मात्र ही दिखाई देती है। जैसे वेदव्यास आज से 5 हजार वर्ष पूर्व हमारे सांस्कृतिक उद्यान के कुशल माली बनकर आए तथा उन्होंने जाति के बिखरे हुए ज्ञान को एकत्र करके आगे आने वाली पीढ़ियों को दान दिया उसी प्रकार तुलसीदास ने अपने नानापुराण निगमागमसम्मत दिव्य रामचरितमानस में हिन्दू जाति का सारा सांस्कृतिक वैभव संचितकर तथा मध्यकालीन पराधीनता के भयंकर युग में उस सांस्कृतिक पूंजी को बचाकर, सजा-संवारकर भावी सन्तानों को दान कर दिया। हिन्दू जाति को जीवनदान देने वाले वे हमारे सच्चे प्राणदाता एवं मुक्तिदाता हैं।

भक्तमाल के प्रसिद्ध मालिकामणि श्री नाभादासजी की सूक्ति है—

संसार अपार के पार को, युगम रूप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीकि तुलसी भये।

तुलसीदासजी के प्रिय मित्र, प्रसिद्ध मुसलमान कवि अबदुर्रहीम खानखाना भी अपनी तपःपूत लेखनी का अर्घ्य चढ़ाते हैं—

रामचरित मानस विमल सन्तन जीवन प्राण।
हिंदुवान को वेद सम, यवनन प्रगट कुरान।।

× × ×

गूंजो फिर बन कर राम नाम, जन गण की वाणी में प्रकाम।
नवराष्ट्र जागरण के हेतु, तुलसी तुम गूंजो धाम धाम।।

राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी अपनी वाणी का अर्घ्य चढ़ाते हुए गाते हैं—

हे वाल्मीकि के पुनर्जन्म क्या नगर नगर क्या ग्राम ग्राम।
बज रही भक्ति की मधुर बीन क्या भवन भवन क्या धाम धाम

× × ×

क्या राज भवन क्या रंक द्वार सब ओर समाहत तुम समान।
क्या ज्ञानी गृह विज्ञानी गृह युग वाणी से तुम बने गान।।

× × ×

कितनी अनन्य थी परम भक्ति, जब देखा बंशी सजी हाथ।
बोले तो धनुष बाण कर में, तब तुलसी मस्तक झुके, नाथ।।
रीझे होंगे-खीझे होंगे, इस शिशु हठ पर वे प्रणत पाल।
घनश्याम मुग्ध हो बने राम, तब झुका तुम्हारा भक्त भाल।।

× × ×

शैवों, वैष्णवों में चला द्वन्द्व, तुम सद्वैष्णव आए उदार।
बिछुड़े हृदयों को मिला दिया; हो गए एक पा स्नेह तार।।
मिट गया कलह, छा गई शान्ति; तुमने दी वह ममता अपार।
भारत मां की बिखरी कलियां हो गईं एक पा स्नेह तार।।
श्री तुलसी सुचि सन्त समागम, अद्भुत अमल अनूप।
सूरदासजीवन फल पायो, दर्शन जुगल स्वरूप।।

कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय ने गोस्वामीजी का जयगान कर स्वयं भावुकता का भी परम कल्याण कर दिया है—

बन राम रसायण की रसिका
रसना रसिकों की हुई सफला
अवगाहन मानस में करके
जनमानस का मल सारा टला
बनी पावन भाव की भूमि भली,
आ भावुक भावुकता का भला
कविता कर के तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसी की कला

तुलसी की काव्य कला को पुष्पांजलि भेंट करते हुए श्री जगन्नाथदास रत्नाकर लिखते हैं—

सब्दनि की बारी, चित्रसारि भूरि भावन की
सरबस सार सारदा की निपुनाई की।
दास तुलसी की नीकी कविता उदार, चारु
'जीवन आधार औ' सिंगार कविताई की।।

प्रख्यात वीररस वर्षिणी कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी एक लम्बी काव्यमय कुसुमांजलि में गाती हैं—

औ' करोड़ों कण्ठ से निकला, निनाद कि राम की जय।
सत्य की जय, शील की जय, औ' नयनाभिराम की जय

हिल उठे तब पाप के घर, ढह गए मिथ्या पुजारी।
बन गया सम्राट उर उर का, कि जो जन्मा था, भिखारी

पूर्व-पश्चिम क्या? दशों, दिशि शुभ्रतुलसी राज्य फैला
हिल सका अब तक न जो, ऐसा सुदृढ़ साम्राज्य फैला।।

आज भी कहते करोड़ों, कंठ हो कर भक्ति में लय
जयति जय, जय जयति जय, महाराज तुलसीदास की जय।

ओ जगत यदि चाहता यह, नाश तेरे त्रास का हो,
छोड़कर सब वासनाएं, दास तुलसीदास का हो

आज है संसार की आशा, लताएं शुष्क झुलसीं।
हे प्रभो फिर भेज दो तुम, एक हुलसी, एक तुलसी।।

महात्मा गांधी के लिए तो तुलसी का मानस जीवन-मंत्र था। वे कहते हैं, 'तुलसीदास की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और उसे मैं अद्वितीय ग्रन्थ मानता हूँ। गीता और तुलसीदास की रामायण के संगीत से जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है वैसी और किसी से नहीं।'

भूदान के प्रणेता सन्त विनोबा महात्मा तुलसीदासजी के यश में कहते हैं—

'भारतीय साहित्य के इतिहास में तुलसीदास की रामायण का एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और यह उस भाषा का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। अतः राष्ट्रीय दृष्टि से इस ग्रन्थ का स्थान अद्वितीय है ही, पर भारत के करोड़ों लोग इसे वेदतुल्य प्रामाणिक मानते हैं। यह नित्य परिचित तथा धर्म-जागृति का एकमात्र आधार है, अतः धर्म दृष्टि से भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है।'

डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि 'आधुनिक काल में तुलसीदास के समान दूसरा ग्रन्थकार नहीं हुआ है।'

रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्स (मेलर्बन, इंग्लैण्ड) ने लिखा है—

'वह हमारे केवल प्रशंसा के पात्र नहीं, प्रेम के भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इस का ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी साहित्य में ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासाद से लेकर एक निर्धन की कुटिया तक इतना अधिक प्रसार हो।'

डॉ. जे. एम. मैकफी ने अपने ग्रन्थ 'द रामायण ऑफ तुलसीदास आर द बाइबिल ऑफ नॉर्दर्न इंडिया' की भूमिका में लिखा है—

'गोस्वामी तुलसीदासजी के ग्रन्थों में भक्ति का जो उच्च और विशुद्ध भाव नजर आता है उससे बढ़कर उच्च भाव और कहीं नहीं दिखलाई देता।' डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र की काव्य-प्रतिभा तुलसीदास के स्तवन में नृत्य करने लगती है—

उपमा में कालिदास, दण्डी पद सौष्ठव में,
भारवि का श्रेष्ठ अर्थ गौरव में नाम है,
किन्तु तुलसी की प्रतिभा का तीर्थराज पाके
तीनों की त्रिवेणी हुई पावन ललाम है।
यों तो काव्य गगन में सूर भी हैं चन्द भी हैं,
भावना कबीर आदि की भी अभिराम है,
तुलसी को देख के ही पर हम जान पाये,
कवि क्यों कहाया पर मेरा विश्व धाम है।

मध्यकालीन भारत की ज्ञान-गंगा के भागीरथ, सच्चे आध्यात्मिक अर्थ में 'कवि' के सुनाम को धन्य करने वाले, भारत एवं भारती के भाग्यविधाता श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी को हमारे वन्दना-व्याकुल हृदयों की कृतज्ञ पुलकांजलि सादर समर्पित हो।

22 अगस्त 1961
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

कविकुल भाल कुंकुम गोस्वामी तुलसीदास की कमनीय कीर्ति

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में कोटिशः वन्दित जनगण-पूजित श्री गोस्वामी तुलसीदासजी का पावन नाम एक जादू का नाम है। उन पुण्यश्लोक सन्त शिरोमणि ने हमें जो कुछ दिया, उतना पिछली चार शताब्दियों में अन्य कौन दे सका है? संस्कृति की फुलवाड़ी के समस्त प्रफुल्ल पुष्पों का रस संचय करके जो अनूठा मधु हिन्दू जाति को दान दिया वह विश्व इतिहास का अद्वितीय दान ही है, उस मानस मधु का पान कर दुःख, दास्य, दैन्य, दौर्बल्य से जकड़ी हुई मरणासन्न हिन्दू जाति सभी शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से मुक्त होकर मृत्युंजय बन गई।

मध्यकालीन भारत के महान् आचार्य एवं गीता की मधुसूदन टीका के प्रख्यात रचयिता श्रीपाद मधुसूदन सरस्वतीजी गोस्वामी तुलसीदासजी के दर्शन कर उनकी प्रशस्ति में गा उठे—

आनन्द काननें ह्यस्मिन जंगमस्तुलसी तरुः।
कविता मंजरी यस्य राम भ्रमर भूषिता।।

अर्थात्, आनन्दकानन में कोई तुलसी नाम के चलते-फिरते वृक्ष (गोस्वामी तुलसीदासजी) हैं, जिनकी कविता रूपी मंजरी पर सदा रामरूपी भौंरे गूंजते रहते हैं।

अष्टछाप के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि श्री नन्ददासजी, जो गोस्वामीजी के चचेरे भाई भी थे तथा शेष सनातन धर्म के पास एक साथ पढ़ने वाले होने के कारण उनके सहपाठी, गुरु-भाई भी थे, गोस्वामीजी के प्रति कृतज्ञता के फूल चढ़ाते हुए कहते हैं—

श्रीमद्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद वन्दे।
सेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाई अनन्दे।।

रामचरित जिन कीन्ह ताप त्रय कलिमल हारी।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप पुरारी।।

राखी जिन की टेक मदनमोहन धनुधारी।
वाल्मीकि अवतार कहत जेहि सन्त प्रचारी।।

नन्ददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई।।

भक्तशिरोमणि सूरदास तथा संतप्रवर तुलसीदास का मिलन तो मध्यकालीन इतिहास की मधुरतम घटना है। ब्रजभूमि में पधारने पर गोस्वामीजी का कृष्णलीला गायन में तल्लीन महाकवि सूरदास से साक्षात् हुआ। यह ब्रज तथा अवधी के मिलन, किंवा साक्षात् राम और कृष्ण के मिलन के तुल्य था। दोनों महान् विभूतियों ने परस्पर आलिंगनकर एक-दूसरे को आंसुओं की गंगा-यमुना में नहला दिया। उस अवसर पर महाकवि सूरदासजी ने गोस्वामीजी के अभिनन्दन में जो कुछ गाया वह सचमुच एक महान् की महान् को श्रद्धांजलि है—

धन्य भाग मम सन्त सिरोमणि चरण कमल तकि आयऊं।
बदन प्रसाद-सदन दृग भरि लखि सुख सन्दोह समायऊं।।
दया दृष्टि ते मम दिसि हेरेउ तत्त्व स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम-संसय मूल नसायो।।
हरि लीला गायो तेहि सुनि तनु पुलकित मानस धीर।
सुधा समान वचन कहि पोवेउ, सुमिरत सिय रघुबीर।।
श्री तुलसी सुचि-सन्त समागम अद्भुत अमल अनूप।
सूरदासजीवन फल पायो दरसन जुगल स्वरूप।।

गोस्वामी तुलसीदासजी का ही समकालीन श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिका का तृषित चकोर महाकवि रहीम अकबर के नवरत्नों में से एक था। वह गोस्वामीजी का महान् मित्र एवं प्रशंसक था। जब गोस्वामी तुलसीदासजी के पास एक निर्धन ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाहार्थ आर्थिक सहायता की कामना से आया तो गोस्वामीजी ने उसे रहीम के पास भेज दिया तथा एक पंक्ति लिख दी—

सुरतिय नरतिय नागतिय यहि मांगत सब कोय।।

अर्थात्, सभी जाति की स्त्रियाँ यही चाहती हैं कि कन्या किसी अच्छे वर-घर को प्राप्त होवे।

कविवर रहीम ने उस विप्र को धन तो दिया ही, दोहा पूरा करके तुलसीदास के पास वापस भेजा—

सुरतिय नरतिय नागतिय यहि मांगत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।।

अर्थात्, सभी जाति की स्त्रियाँ यही चाहती है कि उनके घर में तुलसी जैसा महान् पुत्र होवे तथा वे तुलसी के समान हुलसित होकर उस पुत्ररत्न को गोद में लिये फिरें।

भक्ति रस के छलकते हुए समुद्र महाकवि रसखान की रसभरी भावांजलि कितनी मधुर है—

सुरतरु लतान चारि फल है फलित किधौं,
काम धेनु धारा सम नेह उपजावनी।
किधौं चिन्तामननि की माल उर सोभित,
विसाल कंठ में धरे हैं ज्योति झलकावनी।
प्रभु की कहानी ते गोसाईं की मधुर बानी,
मुक्त सुखदानी 'रसखानि' मनभावनी
खांडकी खिजावनी-सी कंदकी कुढ़ावनी-सी,
सिताको सतावनी-सी, सुधा सकुचावनी।

रामचरितमानस के दर्शन कर महाकवि तोष के हृदय का तोष कितने सुन्दर भाव-पुष्पों में प्रकट हुआ है—

यह खानि चतुष्फल की सुखदानि, अनूपम आनि हिये हुलसी।
पुनि सन्तन के मन भृंगन को, अति मंजुल नाल लसी तुलसी।
अस मानुष के तरिबे कहँू, 'तोष' भई भव सागर के पुलसी।
सब कामन-दायक काम दुहा, सम राम कथा बरनी तुलसी।

प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार विंसेन्ट स्मिथ लिखते हैं—

'फारसी के अधिकांश कवियों की तुच्छता एवं अपवित्रता से मुंह मोड़कर उस हिन्दू की तेजस्वी पवित्र कृति की ओर ध्यान देने से हृदय को बड़ा सुख होता है— वह महान् कवि मध्यकालीन हिन्दू काव्य के चमत्कृत कानन का ऊर्ध्वतम गगनचुम्बी दिव्य तरु है। उसका नाम 'आइने-अकबरी' में या किसी मुस्लिम इतिहासकार के पृष्ठों में या फारसी इतिहासकारों के आधार पर लिखी हुई यूरोपीय लेखकों की पुस्तकों में नही मिलेगा। फिर भी वह हिन्दू, भारत में उस युग का महानतम महामानव था—अकबर से भी अधिक महान् क्योंकि उस महाकवि द्वारा कोटि-कोटि लोगों के हृदयों तथा मनों को विजित करने का कार्य एक ऐसी विजय है जो एक सम्राट् द्वारा युद्ध में प्राप्त की हुई समस्त विजयों से भी अनन्त गुणा अधिक महान् है।

जार्ज ग्रियर्सन लिखते हैं—'यदि हम तुलसीदास के आधुनिक काल पर प्रभाव को मापदण्ड मानकर चलें तो भी वे एशिया के तीन या चार महानतम लेखकों में से एक ठहरते हैं....समूची गंगा की वादी में तुलसी की रामायण का इंग्लैण्ड में बाइबिल की अपेक्षा भी अधिक प्रचार है।'

आधुनिक काल में एक संस्कृत कवि श्री दशरथ शास्त्री ने संस्कृत के पद्य-पुष्पों से तुलसीदासजी की नीराजना की है—

श्रुति स्मृति पुराणाक्ष; कलौ देवगिरां हरः।
जनता सुख-बोधाय तुलसी गिरिजापतिः।।
सूक्तिपादादको तुंगतरंगैः क्षालितांतरः।
कलिजानां नृणामासीतुलसी तुलसीप्रियः।
सम्भवत्या बुद्धवोयोगे दत्तो ज्ञाने शुकोऽभवत्।।
विधौ कात्यायनः कान्तौ ग्लौरन्यः तुलसी लसी।।

महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तो कहते हैं कि तुलसीदास की पावन कला का वरदान पाकर कविता भी धन्य-धन्य हो उठी—

बन राम रसायन की रसिका।
रसना रसिकों की हुई सफला।
अवगाहन मानस में करके,
जनमानस कमल सारा टला।
बनी पावन भाव की भूमि भली
हुआ भावुक भावुकता का भला
कविता करके तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसी की कला।

'साकेत' महाकाव्य के अमर रचयिता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने गोस्वामीजी की वन्दना में गाया है—

प्रस्फुटित करके हमारा पुण्य पूर्णादर्श,
हृदय को तुमने दिया है अमृत हस्त स्पर्श
राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र,
पर न हमसे भिन्न है, साकेत का गृह चित्र।
प्रकृति पट पर अन्तर्जगत का दृश्य,
धन्य वह संगीतमय सत्काव्य हृदय स्पृश्य।
धन्य भारतवर्ष की प्रतिमा प्रकाश विलास,
धन्य राम चरित्र मानस धन्य तुलसीदास।।

कविवर सोहनलाल द्विवेदी ने तुलसी को अपनी अर्चना के पुष्प चढ़ाए हैं—

जब मुगल महीपों के बादल छाए,
भारत नभ में अपार,

दासता पराजय गृह विग्रह से
गहराया तम का प्रसार।
तब राम नाम का अमृत ले,
आए गौरव गाते अमन्द्र,
मृतहत जनता को मिले प्राण,
चमके तुम बन सौभाग्य चन्द्र।।
गूंजो फिर बनकर राम नाम
जनगण की वाणी में प्रकाम।
नव राष्ट्र जागरण के हेतु,
तुलसी तुम गूंजो धाम-धाम।।

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अपने 'तुलसीदास' नामक प्रबन्धकाव्य में गीत के माध्यम से मानो नाच उठते हैं—

जागो, जागो आया प्रभात,
बीती वह बीती अन्ध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात, पूर्वांचल,
बांधो बांधो किरणें चेतन,
तेजस्वी हे तमज्जिजीवन,
आत भारत की ज्योतिर्धन माहिमाबल।
काल के शर से विंधकर,
यह जागा कवि अशेष-छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएंगी,
निश्चेतन निज तन मिला विकल
छलका शत शत कल्मष के छल
बहती जो वे रागिनी सकल सोएंगी।।

श्री विवुधेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने तुलसी जन्म का चित्रण किया है—

जाग उठी धरती मां धीरे से चीख पड़ी,
मानो थी वह पीड़ित प्रसव की पीड़ा से।
देवों की वाणी शुभ-कौन हुआ, किसने अवतार लिया ?
बोला नभ तुलसी ने....(अपूर्ण)

31 जुलाई 1960
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

भारत माता के अमर सपूत स्वातंत्र्य-गौरव महाराणा प्रताप

सूरमाओं के देश राजस्थान का स्मरण होते ही आंखों के सामने जलती बालू वाले महामरुस्थल का चित्र आ जाता है। लगभग डेढ़ लाख वर्गमील में फैली हुई तप्त रेत और नाचती मरीचिका में पौरुष भरी लच्छेदार मूंछों वाले, बहादुरी में शेरों को शरमाने वाले वीर शिरोमणि पैदा हुए। राजपूत साक्षात् फौलाद, पिघला तो पानी, जमा तो वज्र।

चप्पे-चप्पे में पानीपत, कण-कण में बलिदान तथा जर्रे-जर्रे में जौहर की गूंज लिए, राजस्थान अपने शौर्य का आप ही स्मारक बना हुआ है। उसके मध्य में चित्तौड़, विंध्याचल की भुजा, पारियात्त की शक्ति का प्रतीक अरावली के माथे के तिलक के समान अपने हृदय में स्वातंत्र्य सदाबहार स्मृतियों को संजोये हुए खड़ा है। स्वातंत्र्य के इस मन्दिर को वीरों ने अपने हृदय रक्त से सींचा है और वीरांगनाओं ने अपने सुहाग सिन्दूर से संवारा है।

धन्य है राजस्थान, सौ बार धन्य है मेवाड़, हजार बार धन्य है अरियों के चित्त को तोड़ देने वाला चित्तौड़ दुर्ग, लाख बार धन्य है वहाँ का सिसोदिया वंश जिस का यश बाप्पा रावल, रावल खमान, समर सिंह, रानी पद्मिनी, राणा सांगा इत्यादि के पावन चरित्रों में आज तक गूंजता है, पर कोटिशः धन्य है बाप्पा रावल के कुल की अक्षुण्ण कीर्ति की उज्ज्वल पताका, रजपूती आन एवं शौर्य का पुण्य प्रतीक, महाराणा सांगा का पावन पौत्र, स्वातंत्र्य की ज्वाला पर सर्वस्व समर्पण करने वाला मेवाड़ का सिंह महाराणा प्रताप, जिन का ज्योतिर्मय बलिदान युगों तक मानवता को मुक्ति का उज्ज्वल पथ दिखाता रहेगा। कविवर जयशंकर प्रसाद ने उस वीरवर के यश में गाया है—

कहो कौन है ? आर्यजाति के तेज सा,
देश भक्त जननी का सच्चा पुत्र है।
भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा।

मसि मुख में ले अहो!
लेखनी क्या लिखे!
उस पवित्र प्रातः
स्मरणीय सुनाम को।
नहीं, नहीं, होगी
पवित्र यह लेखनी,
लिख कर स्वर्णाक्षर
में नाम 'प्रताप' का।
तुम अपने प्रताप को
विस्मृत हो गए।
अरे कृतघ्न बनो मत
उस को भूल के।
यह महत्त्व मय नाम
स्मरण करते रहो।

यह तो आधुनिक काल के कवि की श्रद्धांजलि हुई। स्वयं प्रताप के युग में अकबर के नवरत्नों में सर्वमान्य, अकबर के संरक्षक बैरमखान के पुत्र, स्वयं अकबर की सेनाओं के सेनापति खानखाना अब्दुर्रहीम, जो अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे, उन्होंने स्वयं अकबर का सेनापति होते हुए स्वातंत्र्य गौरव महाराणा प्रताप के यश में लिखा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विसंभर ऊपरे रखियो निहचो राण।

अर्थात्, हे राणा, धर्म सदा धरती पर रहेगा और धर्म के कारण धरती भी टिकी रहेगी लेकिन खुरसाण (मुगल) वंश का राज्य सदा रहने वाला नहीं है, यह नष्ट हो जायेगा। इसलिए हे महाराणा! अमर विश्वंभर महादेव पर अपना निश्चय दृढ़ रख कर धर्म के लिए युद्ध करते जाओ।

इस श्रद्धांजलि से प्रताप का सच्चा गौरव प्रकट होता है, जब शत्रु का सेनापति उसका यश गाता है। स्वयं अकबर के दरबार में बैठा हुआ कवि पृथ्वीराज भी इस वीर व्रती महापुरुष का यश गाता रहता था।

अकबर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मान कर उसे महान् कहने वाले तो इतना तक कह छोड़ते हैं कि 16वीं शती में अकबर ने वही काम किया जो महात्मा गांधी ने 20वीं शती में किया। इन भोले बन्धुओं को यह कभी नहीं भूलना

चाहिए कि नौरोज के मेले में पाप कानन के पुजारी अकबर को धड़ाम से नीचे गिराकर उसकी छाती पर कटार तानने वाली वीर राजपूतनी किरणमयी का हृदय अकबर का रोना सुनकर द्रवित न हो गया होता तो भारतवर्ष का इतिहास ही कुछ और होता। अकबर की कूटनीति तो इतिहासकार बदायुनी आसफ खां के निम्न शब्दों से प्रकट हो जाती है—

'किसी की ओर से सैनिक क्यों न मरे, थे वे हिन्दू ही और प्रत्येक स्थिति में विजय इस्लाम की ही थी।'

उस धूर्त धर्म-शत्रु के विरुद्ध गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक धर्म क्रान्ति जगाई तथा महाराणा प्रताप ने एक राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ किया। 25 वर्ष तक वन-वन की खाक छानते फिरना, पत्थर की शिलाओं पर सोना, घास-पात की रोटियाँ और शीत, घाम, वर्षा, सूखा सभी कुछ सहते हुए भी भारत माँ की अर्चना में कोई अन्तर न आना—किस महापुरुष ने इतना बड़ा बलिदान किया है? राजस्थान के लोक गीतों में आज तक वहाँ की भोली-भाली रमणियाँ गाती हैं—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप,
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै सांप।

'हे माँ! तू ऐसा पुत्र पैदा कर जैसा महाराणा प्रताप, जिसके पराक्रम से भयभीत हुआ वह पापी अकबर भी रात्रि के समय घबरा कर उठ खड़ा होता है, जैसे उसके तकिए के नीचे कोई सांप हो।'

मेवाड़ के कण-कण में जिस का यश अंकित है और कोटि-कोटि भारतवासियों के हृदय मन्दिर में जिसकी भव्य स्वातन्त्र्य मूर्ति प्रस्थापित हो चुकी है उस कोटिशः वंदित वीर-कुल भाल तिलक महाराणा प्रताप को हमारी कोटि-कोटि हृदयांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

1 अगस्त 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

बलमुपास्व

बल की उपासना करो—**वेद**

देश गौरव महाराणा प्रताप

प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति, वीर शिरोमणि, महाराणा प्रताप का नाम भारत के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं गौरवास्पद है। वे स्वदेशाभिमानी, कुशल राजनीतिज्ञ, रण कुशल, स्वार्थ त्यागी, दृढ़ प्रतिज्ञ तथा सच्चे क्षत्रिय थे। स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वे झुकना नहीं जानते थे। वे अकेले राजपूत थे जिन्होंने अकबर का दासत्व स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अकेले ही मुगलपति अकबर की प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं को सेवक बनाने वाली कूटनीति का मुंह-तोड़ उत्तर दिया। शहँशाह अकबर ने इस वीर को अनेकों प्रलोभन दिए पर रजपूती आन का पक्का वह सम्राट्, हिन्दुत्व का वह गौरवमय सूर्य सदा अडिग रहा।

अद्‌भुत शौर्य एवं स्वाभिमान का वर्णन सुनकर अकबर का सेनापति मानसिंह प्रताप से मिलने आया। एक झील के किनारे भोजनशाला बनाई। राजकुंवर अमरसिंह आयोजन के लिए नियुक्त हुआ। भोजन आरम्भ हुआ। महाराणा की अनुपस्थिति पर मानसिंह ने कारण पूछा तो कुंवर अमरसिंह का उत्तर था—'पिताजी को शिरवेदना है अतः वे आने में असमर्थ हैं'। मानसिंह को बात समझते देर न लगी। बोला—'अब इस सिरदर्द की दवा लेकर ही लौटूंगा।' इतने में राजस्थान केशरी बाहर निकले और मूंछों पर ताव देते हुए बोले—मैं उस व्यक्ति के साथ बैठकर कैसे भोजन कर सकता हूँ जो रजपूती शान से गिर कर यवनों का सम्बन्धी बन गया है, अपनी बहिन-बेटियों की डोली भेजकर, बप्पा रावल के वंशज के साथ भोजन करना चाहता है।

सचमुच मानसिंह दवा लेकर हल्दीघाटी में आ पहुँचा। पर उस प्रताप पुंज के सम्मुख अधिक टिक न सका। हल्दीघाटी में घमासान युद्ध हुआ। एक ओर एक लाख यवन और वे भी असीमित गोला-बारूद सहित और दूसरी ओर केवल 22000 हिन्दू योद्धा जिनके हाथों में बर्छी, भाले, बाण सुशोभित थे।

अनेकों वीर हँसते-हँसते मातृदेवी पर बलिदान हो गए। नित्य प्रति एक से बढ़कर एक वीर नायक के नेतृत्व में मुगल सेना नई युद्ध सामग्री लेकर आई पर

देशधर्म पर मरने वाले राजपूत वीरों ने धन के लिए लड़ने वाले कायर यवनों के छक्के छुड़ा दिये।

प्रताप के पास अब केवल ८००० वीर बचे थे। शेष सभी की स्वातन्त्र्य यज्ञ में आहुति हो गई थी। दिन का तीसरा प्रहर था। प्रताप कई घन्टों से निरन्तर अरिदल का शिरछेदन कर अपने खड्ग की पिपासा शान्त कर रहे थे। वे कुछ थक गए थे। अब भी उनकी अर्धचन्द्रिका पलभर का भी विश्राम न करती थी। प्रताप वार पर वार किए जा रहे थे। सहसा यवनों की एक बड़ी टुकडी ने हिन्दूकुलपति महाराणा को घेर लिया। स्वामी को विपत्ति में लख महाराणा प्रताप के एक अभिन्न सरदार झालापति ने कहा, 'स्वामी! आप प्राण रक्षा कीजिए। आपके मेवाड़ में न रहने से हिन्दू जाति का दीपक सदा के लिए बुझ जाएगा। आप शीघ्रता कीजिए और इस संकट से अपने को मुक्त कीजिए।' प्रताप बोले, 'मैं कायर की मौत नहीं मरना चाहता, मातृ भूमि की रक्षा के लिए मैं प्राण-पण लगा दूंगा। अब झालापति ने एक और युक्ति लगाई। बोले— महाराणा! आप कृपया मुझे अपना ताज पहनने का सौभाग्य प्रदान कीजिए। प्रताप बोले, 'क्यों नहीं, जब मातृभूमि के लिए सारा राज्य न्योछावर कर दिया है तो मुकुट की क्या बात है।' वह स्वर्णरत्न जड़ित किरीट अब झालापति के सिर पर सुशोभित था। उन्होंने झट अपनी तलवार से चेतक की पूंछ काट दी। महाराणा प्रताप का प्यारा चेतक व्यथा से पीड़ित हो युद्धक्षेत्र से बाहर भागा।

इधर झाला के सिर पर प्रताप का ताज देख मुगल सैनिक उसे ही प्रताप समझ कर उस पर टूट पड़े। कुछ काल तक शत्रुओं का सामना करने के पश्चात् भारत माँ के इस सपूत ने स्वामी और देश की रक्षा के लिए वह अनोखा बलिदान दिया जिसे इतिहास सदा स्मरण रखेगा।

स्वामीभक्तों एवं दानवीरों की नामावली में दूसरा नाम महाराणा के प्रिय मित्र एवं परम उदार मंत्री भामाशाह का है, जिसने ऐसे संकट में, जबकि हिन्दू गौरव दीप प्रायः बुझा जा रहा था, महाराणा प्रताप की, अपने अनेकों पूर्वजों द्वारा संग्रहित अपार धनराशि से सहायता की। हिन्दूकुलपति महाराणा प्रताप के पास सम्पूर्ण धन- दौलत एवं सैनिक सामग्री समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने अपनी प्यारी मातृभूमि चित्तौड़ को छोड़कर अन्यत्र जीवन यापन करने का निश्चय कर लिया था। वे अपने सभी साथियों एवं सरदारों सहित अपनी जननी, जन्मभूमि छोड़कर जा रहे थे। वे एक बार रुके, अश्रु विगलित नेत्रों से मेवाड़ को देखा, मन ही मन में प्रणाम किया और फिर बढ़ चले। तभी उन्हें पीछे से आवाज सुनाई दी। भामाशाह पुकार कर कह रहा था 'ओ मेवाड़पति, हिन्दू नाम के आश्रयदाता, तनिक ठहरो, इस दास की एक विनती सुनते जाओ।' पास आने पर वह महाराणा के चरणों पर गिर पड़ा और बोला, 'धर्मावतार, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार हो। एक बार फिर

मेवाड़ की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाए। इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपये की सम्पत्ति दरबार की दी हुई पड़ी है, उसी से एक बार फिर सेना एकत्र की जाए और मेवाड़ के उद्धार का उद्योग किया जाय।'

भामाशाह का कथन सुनकर प्रताप गद्‌गद हो गए और भामाशाह को गले लगा लिया, बोले—'तुम धन्य हो। तुम्हारा त्याग अविस्मरणीय है।'

प्रताप अपने मंत्री के आग्रह से एक बार फिर मेवाड लौट पड़े और उस पुण्य राशि से मेवाड़ का पुनरुद्धार किया।

देश एवं जाति पर तन-मन एवं धन अर्पण करने वाले इन वीरों के उज्ज्वल नाम इतिहास पटल पर सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे।

9 जून 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

हे पुण्य आर्यभूमि! तेरा अध:पतन कभी नहीं हुआ। राजदण्ड भग्न हुए और दूर फेंके गये, शक्ति की गेंद इस हाथ से उस हाथ पर गई, पर भारत में राजदरबार में और राज सिंहासन का प्रभाव इने-गिनो पर ही पड़ा; असंख्य जन समुदाय उच्चतम से लेकर निम्नतम तक—सभी को उसी अपरिहार्य मार्ग का—उस जातीय जीवन-धारा का अनुगमन करना पड़ा जो कभी धीमी और अर्धचेतन तो कभी प्रखर और जागरित हो बहती रही।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

यही बात 'हिन्द स्वराज्य' में गांधीजी कहते हैं—'भारत कभी गुलाम नहीं रहा। केवल कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ही अपने को अंग्रेजों का गुलाम समझते हैं।'

श्रीकृष्ण चन्द्र-चन्द्रिका का तृषित चकोर कविवर रहीम

एक महापुरुष का जन्म मानवता के भाग्याकाश में चमकने वाली उज्ज्वलतम विद्युल्लेखा है। मानवता के इतिहास की महानतम घटना है, विश्व इतिहास का पवित्रतम पर्व है। आज का शुभ दिवस एक महान् आत्मा के पुण्य स्मरण के लिए पवित्र है। आज से पूरे 402 वर्ष पूर्व आज के ही दिन महान् कृष्ण भक्त कवि खानखाना अब्दुल रहीम, सुप्रसिद्ध कविवर का जन्म हुआ।

उत्तर भारत की प्रसिद्ध उक्ति है—

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या शूर।
नहीं तो जननी बांझ रह, काहे गंवावे नूर।।

उक्त पद्य में यह भावना दी गई है कि एक सच्ची माता को या तो एक भक्त पुत्र उत्पन्न करना चाहिए या एक दानवीर बालक या एक शूरवीर सन्तान। अन्यथा माँ का बांझ रहना ही अच्छा, व्यर्थ ही अपना नूर गंवाने से क्या लाभ है?

यह एक अद्‌भुत संयोग का विषय है कि कविवर रहीम भक्त, दाता और शूरवीर एक साथ तीनों ही थे। ऐसे विलक्षण महापुरुष संसार में विरले ही मिलते हैं।

महान् भक्त—दिल्ली से भगवान् कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा की ओर जाते हुए नई दिल्ली से निकलते ही मथुरा रोड पर ही इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि बनी हुई है। श्रीकृष्ण के चरणों में प्राण प्रसून चढ़ाने के लिए जाने वाले भक्तों को मार्ग में इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि पर भी दो-एक भाव पुष्प चढ़ाना योग्य है। इस महान् भक्त का जन्म तो लाहौर में अकबर के संरक्षक बैरमखां के गृह में हुआ किन्तु बैरमखां की मृत्यु के पश्चात् अकबर के सेनापति तथा उसकी राजसभा के नवरत्न मण्डल के उज्ज्वल रत्न बनने पर आप आगरे में रहे जहाँ पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदासजी से आपकी स्नेह-मैत्री बढ़ी किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी के साकेतवास के दो वर्ष पश्चात् ही दिल्ली में रहीम ने भी इस असार संसार को

त्याग दिया। तभी से उनकी समाधि दिल्ली की भूमि को पवित्र कर रही है। रहीमजी की रामभक्ति भी स्तुत्य है—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।

एक हाथी को स्नान के पश्चात् अपने ऊपर पुनः धूलि उड़ाते देख कर रहीम का विस्मय अध्यात्मपरक हो गया। शायद हाथी भी भगवान् राम की चरण धूलि को ढूंढ़ रहा है।

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।।

गंगा मैया से कोई धन मांगता है कोई जन मांगता, कोई पुत्र-परिवार मांगता है, पर रहीम की मांग निराली है—

अच्युत चरण तरंगिणी, शिव सिर मालती माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।

राम और कृष्ण में कोई अन्तर तो है ही नहीं पर रहीम के इष्टदेव तो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज ही थे।

जित रहीम चित अपनो, कीन्हों चतुर चकोर।
निशि वासर लागँ रहें, कृष्ण चन्द्र की ओर।

रहीम का चित-चकोर जिस कृष्णचन्द्र के दर्शन के लिए तृषित था, उसके नयन चातक भी उसी घनश्याम के लिए तरसते थे—

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आय पथिक फिरि जाए।।

रहीम ने अपने प्राण प्यारे मनमोहन की स्तुति में संस्कृत के सुन्दर सुस्वर गीत गाए हैं—

रत्नाकरस्तव गृहं, गृहिणी च पद्मा, किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीर वामनयनाहृत मानसाय, दत्तं मनो, यदुपते कृपया गृहाण।।

अर्थात्, हे जगदीश्वर! आप क्षीरसागर रूपी रत्नों के भण्डार (रत्नाकर) में रहते हैं, सारे संसार की सुख-समृद्धि, धन धान्य की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी आपकी गृहिणी हैं। हे सृष्टि के स्वामी! मैं आपको क्या भेंट करूं? हाँ, आपके पास सबकुछ है किन्तु आपका मन ब्रज की भोली-भाली पवित्रमना गोप-बालाओं ने चुरा लिया है। अतः हे भगवान्! मैं आप को अपना मन ही भेंट करता हूँ। हे यदुपते! कृपया इसे स्वीकार कीजिएगा, ठुकराइएगा मत।

एक अन्य पद्य में भक्त रहीम की मुक्ति के लिए प्रस्तुत की गई युक्ति, सारे भक्ति साहित्य में बेजोड़ है—

आनीता नटवन्मया तब पुरः, श्रीकृष्ण या भूमिका,
व्योमाकाशखखाम्बराब्धिवसवर, तब प्रीतये अद्यावधि।
प्रीतो यद्यसिः ताः कर्मक्ष्य भगवान्, तद वांछित देहि में,
नो चेद ब्रूहि कदापि मानय, पुनर्मामीहशीं भूमिकाम्।

अर्थात्, हे श्रीकृष्ण, हे नटनागर! मैंने आजतक आप की प्रीति के लिए आप के दरबार में बहुरुपिया बनकर 84 लाख योनियों में 84 लाख रूप बना कर नाच किये हैं। यदि आप उनमें से एक को भी देख कर प्रसन्न हुए हैं तो मेरी मन-वांछित मुक्ति मुझे दे ही दो और यदि आपको एक भी नाच पसन्द नहीं आया तो स्वयं अपने मुंह से कह दीजिएगा कि 'आगे से मेरे दरबार में ऐसे रूप बना कर कभी मत आया करो' ताकि मैं तब भी आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ।

रहीमजी की अध्यात्म दृष्टि भी बहुत ऊँची थी। भौतिक संसार के भौतिक विषयों की वह उलटी (वमन) से उपमा देते हैं जिसे कूकर सूकर आनन्द से खाते हैं—

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।।

संगति के प्रभाव को भी वे बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते थे—

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसो ही फल दीन।।

इस संसार रूपी पंकिल पारावार में रहते हुए भी मानव को पंकज के समान निर्लिप्त रहना चाहिए—

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहहुं जाई।
जल में जो छाया परे, काया भीजत नाहीं।।

अनोखा दानवीर—सन्त कवि रहीम दान में दूसरे कर्ण के तुल्य माने जाते थे। उनकी घोषणा है—

तब ही लौं जीवो भलो, दीवो होय न धीम।
जग में रहि बो, कुचित गति, उचित न होय रहीम।।

कहा जाता है कि गंग कवि को उनके एक कवित्त पर रहीमजी ने 36 लाख मुहरें दान में दे दीं, पर दान देते हुए उनकी आंखें नीची ही थीं। गंग कवि ने प्रश्न किया—

सीखे कहां जनाब जू, ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठे, त्यों त्यों नीचे नैन।।

रहीमजी का उत्तर स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है—

देनहार कोई और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पै करैं, तातें नीचे नैन।।

एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी के पास एक निर्धन ब्राह्मण आया। वह अपनी युवती लड़की के विवाह के लिए कुछ धन की सहायता चाहता था। गोस्वामीजी ने उसे रहीम के पास भेजा तथा एक पंक्ति लिख दी—

सुरतिय नरतिय नागतिय, यही मांगत सब कोय।

भाव यह था कि सभी जाति की स्त्रियाँ चाहती हैं कि उनकी पुत्री किसी अच्छे वर को प्राप्त हो। रहीमजी ने उस ब्राह्मण की सहायता तो की ही पर अपने हृदय की उदारता में यह लिख दिया—

सुरतिय, नरतिय नागतिय, यही मांगत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय।।

शूर शिरोमणि—रहीम अकबर के सेनाध्यक्ष रहे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर के भी सेनानायक थे। वे महान् योद्धा थे। पर समर भूमि की शूरता से भी बढ़ कर वे हृदय की वीरता के स्वामी थे। वे स्वाधीन चेतःमहापुरुष अकबर के सेनापति होते हुए भी अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी महाराणा प्रताप को लिखते हैं—

धर्म रहहि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, रखियो निहचो राण।।

हे राणा प्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) तो नष्ट हो जाने वाला है इसलिए अमर विश्वंभर भगवान् महादेव पर अपना दृढ़ निश्चय रख कर संघर्ष करते जाओ? आज प्रश्न उठता है कि भारत में मुसलमानों की समस्या का क्या हल है? क्या रहीम ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान, मुसलमान रहते हुए भी रहीम तथा रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खण्डित हो पाती? यदि आज पुनः रहीम की पावन स्मृति पर हम पथभ्रष्ट मानवों को कर्तव्य के आलोक पथ पर लाने में समर्थ हों तो खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के भाग्य क्षितिज पर मुस्कराने लगे।

जय रहीम, जय कृष्णचन्द्र, जय भारत देश।।

17 दिसम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

आत्मा के अमरगायक गुरु अर्जुनदेव

आज से पूरे 353 वर्ष पूर्व अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर में, रावी के तट पर जिस महान् विभूति, हुतात्मा गुरु अर्जुनदेवजी का रोमांचकारी बलिदान हुआ, उनके नश्वर शरीर का तिल-तिल कर तप्त लोह तवों पर जलती हुई बालुका तथा उबलते हुए तेल के कड़ाहों में होम हो जाने के पश्चात् भी उनकी आत्मा की अमरवाणी आज तक गूंजती हुई मृतप्राय प्राणियों में भी नवप्राण संचार करने में समर्थ है।

सिक्ख सम्प्रदाय के जिस विशाल भवन का शिलान्यास गुरु नानकदेव ने किया और जिसका कलश गुरु गोविन्दसिंह द्वारा स्थापित किया गया और उसकी उसारी में स्वयं अपने आप को ही चुनवा देने वाले पंचम गुरु श्री अर्जुनदेवजी का महत्त्व बहुत बड़ा है। वे सिक्ख जाति में बलिदानों की परम्परा के आदिप्रेरक कहे जा सकते हैं।

भारत की धर्म परम्परा को उनकी तीन महान् देनें हैं—श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जैसे महान् आध्यात्मिक ज्ञान भण्डार का सम्पादन, अमृतसर नगर का महत्त्वपूर्ण निर्माण एवं विकास तथा उनकी तीसरी देन बड़ी महान् है—धर्म रक्षा के लिए स्वयं अपने आप को बलिदान कर देना।

एक महान् कवि, कलाकार, संत एवं धर्म नेता होते हुए भी गुरुजी अत्यन्त विनयशील थे। वे कहते हैं—

पहिला मरण कबूल करि, जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास।।

ब्रह्म प्राप्ति के लिए जीव को पहले अपने तुच्छ अहंभाव को त्यागना पड़ता है, उसे सभी के चरणों की धूलि बनना पड़ता है, जीते जी मरण स्वीकार कर मरजीवा बनना पड़ता है। वे अन्यत्र कहते हैं—

जै तैनूं प्रेम खेलन दी चाह,
सिर धर तली गली मेरी आ।

एक बार गुरु नानकदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंदजी ने गुरु अर्जुनदेवजी की लम्बी दाढ़ी देखकर पूछा कि आप ने इतनी लम्बी दाढ़ी किसलिए रखी हुई है? वे मुस्करा कर बोले, 'आप जैसे संतों की चरण रज साफ करने के लिए।'

भौतिकवाद की अग्नि ज्वाला में जलते हुए मानवों को गुरुजी का संदेश है—

सगल सृष्टि को राजा दुखिया।
हरि का नाम जपत होइ सुखिया।।
अनिक माया रंग तिख न बुझावै।
हरि का नामु जपत आघावै।।

हरि स्मरण के बिना जीवन वृथा है। गुरुवाणी गूंज रही है—

बिनु सिमरन दिनु रैनि वृथा बिहाइ।
मेघ बिना जिऊं खेती जाइ।
गोविन्द भजन बिन वृथे सब काम।
जिऊं किरपन के निरारथ दाम।।

कवि गुरु की क्रान्त-दृष्टि ने पहचान लिया था कि एक ईश्वर ही सब जीवों का पिता है तथा सारी सृष्टि उसी की सन्तान है—

तू ठाकुर तुम महि अरदासि।
जीउ पिंडु सभु तेरी रासि।।
तुम मात पिता हम बारिक तेरे।
तुमरी कृपा महि सूख घनेरे।
कोई न जानै तुमरा अंतु।
ऊँचे ते ऊँचा भगवन्त।।
सगल समग्री तुमरै सूतर धारी।
तुम ते होइ सु आगिआकारी।।
तुमरी गति मिति तुम ही जानी।
नानक दास सदा कुरबानी।।

अपने प्रभु को अनन्य भाव से आत्म-समर्पण करते हुए गुरुजी गा उठते हैं—

तू मेरा सखा तू ही मेरा मीतु। तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीतु।
तू मेरा पति तू है मेरा गहणा। तुझ बिनु विमखु न जाइ रहणा।
तू मेरे लालन तू मेरे प्राण। तू मेरे साहिब तू मेरे खान।
जिउ तुम राखहु तिउ ही रहना। जो तुम कहहु सोइ मोहि करना।।

वेदान्त की महान् शिक्षा के अनुसार गुरुजी सच्चा पण्डित उसे ही मानते हैं जो अपनी आत्मा में ही ब्रह्म के दर्शन करता है—

सो पण्डित जो मनु परबोधे। राम नाम आतम महि सोधै।
राम नाम सारू रसु पीवै। उस पंडित के उपदेश जग जीवै।।

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा रचित एक 'सहस्रनामा' भी है जो महाभारत के विष्णु सहस्रनाम के आधार पर भगवान् के अनेक सगुण तथा निर्गुण नामों की बड़ी मनोहारी स्तुतियों की पावन मालिका है—

अचुत पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी।। मधुसूदन दामोदर सुआमी।।
रिखी केस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हरि रंगा।।1।।
मोहन माधव कृस्न मुरारे।। जगदीसर हरि जीउ असुर संघारे।।
जगजीवन अविनाशी ठाकुर घट घट वासी है संगा।।2।।
धरणीधर ईस नरसिंघ नारायण।। दाड़ा अग्रे पृथमि धराइण।।
बावन रूप कीआ तुधु करते सभही सेती है चंगा।।3।।
स्री रामचन्द्र जिसु रूप न रेखिआ।। बनमाली चक्र पाणि दरसि अनूपिआ।।
सहस नेत्र मूरति है सहसा इकु दाता सभ है भंगा।।4।।
भगति बछलु अनाथह नाथे।। गोपीनाथु सगल है साथे।।
वासुदेव निरंजन दाते बरनि न साकउ गुण अंगा।।5।।
मुकंद मनोहर लखमी नाराइण।। द्रोपती लज्जा निवारि उधारण।।
कमला कंत करहि कंतूहल अनद बिनोदी निह संगा।।6।।
अमोघ दरसन आजूनी संभउ।। अकाल मूरति जिसु कदे नाही खउ।।
अबिनासी अविगत अगोचर सभु किछु तुझही है लगा।।7।।
स्री रंग बैकुंठ के वासी।। मछु कछु कूरमु आगिआ अउतरासी।।
केसव चलत करहि निराले कीता लोड़हि सो होइगा।।8।।
निराहारी निरवैरु समाइआ।। धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।।
सावल सुन्दर रूप बणवहि वेणु सुनत सभ मोहैगा।।9।।
बनमाला विमूखन कमल नैन।। सुन्दर कुण्डल मुकट बैन।।
संख चक्र गदा है धारी महासारथी सतसंगा।।10।।
पीत पितंबर त्रिभवण धणी।। जगनाथु गोपालु मुखि भणी।।
सारिंगधर भगवान बीठुला मै गणत न आवै सरबंगा।।11।।

निहकंटकु निहकेवलु कहीरे।। धनंजै जलि थलि है महीरे।।
मिरत लोक पइआल समीपत असथिर थानु जिसु है अभगा।।12।।

पतित पावन दख भै भंजनु।। अहंकार निवारणु है भवखंडनु।।
भगती तोखित दीन कृपाला गुणे न कितही है भिगा।।13।।

निरंकारु अछल अडोलो।। जोति सरूपी सभु जगु मउली।।
सो मिलै जिसु आपि मिलाए आपहु कोइ न पावैगा।।14।।

एक भक्त मियां मीर उनसे प्रायः पूछता रहता था कि क्या उनके 'सुखमनी' सन्देश के अनुसार कोई प्रत्यक्ष जीवन बिता सकता है। अंतिम समय में उसने देखा कि तप्त तवों पर गुरुजी का पावन देह तिल-तिल कर के जल रहा है, किन्तु गुरुजी मुस्कराते हुए गा रहे हैं—

तेरा भाणा मीठा लागै, हरि नाम पदारथ नानक मांगै।।

मियां मीर आवाक् रह गया। गुरुजी ने कहा—'मियां मीर! मैं अपने प्रत्यक्ष जीवन को होम कर 'सुखमनी' पर भाष्य कर रहा हूँ। तेरा भाणा मीठा लागै। हरि नाम पदारथ नानक मांगै।'

आत्मा-परमात्मा की अभेदता का निरूपण करते हुए उन्हीं आत्मदर्शी निर्लिप्त संत ने लिखा है—

आपे गोपी आपे काना। आपे गऊ चरावै बाना।
आप उपावहि आपि खपावहि तुधु लेप नहीं इक तिलु रंगा।।

वह परम ज्योति स्वयं गुरु अर्जुनदेवजी के रूप में अवतरित हुई। स्वयं आनन्द विभोर हो कर आत्म गीत गाती रही तथा स्वयं बलिदान की अश्रु प्रेरक रोमांचकारी लीला कर के स्वयं अपने आपमें ही लीन हो गई। उसी ज्योतियों की ज्योति को हमारे वंदना-व्याकुल हृदयों की कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हों।

दीने मुहम्मदी का बेबाक[1] बेड़ा[2], न जेजों में[3] ठैरा न कुलजममें[4] अटका।
किये जिसने तै चलके सातों समुन्दर, वह डूबा दहाने में गंगा के आखिर।।

1. निर्भय
2. नौका
3. एक नदी का नाम
4. एक समुद्र का नाम।

महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ

जैसे सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करने के लिए राजर्षि भगीरथ के तपोबल से दिव्यालोक से निःसृत होकर सदा पावनी जाह्नवी, गंगा कलकल निनाद करती हुई भारत भूमि में प्रवाहित हुई तथा अपने पावन सलिलामृत के स्पर्श मात्र से उन सगर पुत्रों का उद्धार करती गई, उसी प्रकार मध्यकालीन भारत में विदेशी तथा विधर्मी अन्यायों एवं अत्याचारों से हत्प्राण हुए कोटि-कोटि भरत-सुतों का उद्धार करने के लिए इस धर्म प्राण देश की युगों की संचित कमाई से जो पावन भक्ति भागीरथी प्रवाहित हो चली, उसी ने कोटि-कोटि भारत सन्तानों को उस महान् संकट सागर से उबार लिया। जैसे गंगा की हजारों मील की लम्बी यात्रा के चप्पे-चप्पे पर तीर्थ हैं उसी प्रकार इस भक्ति-भागीरथी के रुचिर प्रवाह के पग-पग पर हमें मुक्तात्मा तीर्थ स्वरूप महापुरुषों के दर्शन होते हैं। उन अमर-विभूतियों की कोई भी यशोगाथा महाराष्ट्र के पुण्यश्लोक सन्त-महात्मा एकनाथ की अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

विक्रम की 17वीं शती में भक्ति-भागीरथी अपने पूर्ण यौवन पर थी। पंजाब की पुण्यभूमि सन्त शिरोमणि गुरु अर्जुनदेव के भक्ति पदों से गूंज रही थी, गंगा के तट पर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी का 'मानसामृत' पान कर जाति में चैतन्य संचरित हो रहा था, यमुना के तट पर प्रज्ञाचक्षु सूरदासजी अपनी हृदय वीणा के स्वरों को अपने एकतारों की झंकार में आंक रहे थे, चित्तौड़ की प्रेम वियोगिनी मीरा अपने माधवजी से मिलने के लिए परम व्याकुल हो उठी थी, राजस्थान में दादूदयालजी के पदों से लक्षावधि हृदयों को शान्ति लाभ हो रहा था, दिल्ली में रहीम और रसखान के हृदयहारी पद अभी वातावरण में गूंज ही रहे थे और महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर तथा नामदेवजी के पश्चात् सन्त तुकाराम, एकनाथ तथा समर्थ गुरु रामदास का युग आ चुका था।

महाराष्ट्र जीवन प्रभात में इन पूज्य सन्त-विभूतियों का स्थान एक साथ उगने वाले अनेक सूर्यों के समान है। महाराष्ट्र की कृतज्ञ जनता आज तक इन महाभागवत सन्तों के यश में गाती है—

ज्ञानेश्वर, एकनाथ, रामदास जय।
तुकाराम, नामदेव, पाण्डुरंग हरि।।

अर्थात्—भगवान् ज्ञानेश्वर, महात्मा एकनाथ, समर्थ रामदास, सन्त तुकाराम तथा भक्त नामदेव—ये साक्षात् श्रीहरि पाण्डुरंग के स्वरूप हैं।

महाराष्ट्र के महातीर्थ पैठण में ही भगवान् पाण्डुरंग के एक घनिष्ठ भक्त सन्त एकनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ था। एकनाथजी का प्रारम्भिक जीवन रामचरित मानस के अमर गायक श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी से बहुत मिलता है। तुलसीदासजी का जन्म गंगा तीर स्थित सौरों नगर में संवत् 1554 में हुआ तथा एकनाथजी का प्रादुर्भाव दक्षिण की गंगा, गोदा-गंगा (गोदावरी) के पावन तीर पर पैठण नगर में सं. 1589 में हुआ। इन दोनों महाभागवत महापुरुषों के बारे में किंवदन्ती है कि वे अमुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुए तथा एक वर्ष के भीतर ही दोनों के सिर से माता की वात्सल्यमयी शीतल छाया उठ गई। तुलसी-जननी हुलसी की मृत्यु के पश्चात् तुलसीदास का लालन-पालन कुछ समय दासी चुनियाँ ने किया था, पीछे उन्हें नरहरिदास तथा शेष सनातन प्रभृति गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। एकनाथजी के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् लालन-पालन दादा-दादी ने किया था। 6 वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा 12 वर्ष की अवस्था में उन्होंने रामायण तथा महाभारत की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। तभी उनके मन में तीव्र वैराग्य का स्रोत फूट निकला और वे जनार्दन स्वामी के दर्शनार्थ देवगढ़ पहुँचे तथा गुरु सेवा एवं योगाभ्यास करने लगे। तीर्थ-यात्रा करने के बाद वे 25 वर्ष की अवस्था में पैठण वापस आए तथा शेष आयुष्य ईश्वर भजन में बिताया। तुलसी तथा एकनाथ दोनों ने विवाह किया किन्तु दोनों ही गृहस्थाश्रम के मोहपाश से मुक्त हो गए थे। तुलसीदासजी ने रामकथा लिखी तथा एकनाथजी ने कृष्णकथा लिखी। तुलसीदासजी के रामचरित मानस का हिन्दी जगत में जैसा मान है मराठी जगत में 'एकनाथी भागवत' के लिए वैसी ही श्रद्धा है। तुलसी की पीयूष धारा का प्रवाह गंगा तथा यमुना के पुलिनों पर हुआ, एकनाथजी की अमृत स्रोतवाहिनी का प्रवाह गोदा-गंगा के तीर से हुआ। संवत् 1631 में जब तुलसीदासजी की रामायण अयोध्या में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई, उसी वर्ष काशी में एकनाथजी की नाथ भागवत निर्मित हुई। जहाँ तुलसीदासजी ने चौपाई छन्द में राम कथामृत छलकाया वहाँ एकनाथजी ने ओवी छन्द में श्रीकृष्ण लीलामृत संगीत मुखर कर दिया है। भारत की कोटि-कोटि सन्तानें इन दो भागवत भक्ति के अमर गायकों की चिर ऋणी रहेंगी। महाराष्ट्र के महलों से लेकर कुटियों तक सन्त शिरोमणि एकनाथजी की वाणी जनता की आध्यात्मिक प्यास बुझाती आई है और युगों तक उनकी वाणी की यह सुधा सलिला जनगण के हृदय की तृषा बुझाती रहेगी।

संवत् 1656 चैत्र कृष्णा 6 को महाभागवत, एकनाथजी महाराज ने गोदावरी के पावन तीर पर अपने नश्वर शरीर को त्यागा। 'नाथ षष्ठी' की इस पुण्य पावन तिथि पर हम उन भगवतदर्शी, महाभागवत महापुरुष के चरणों में कोटि-कोटि हृदयांजलियाँ समर्पित करते हैं।

ब्रह्म संगीत के अमरगायक गुरु तेगबहादुर

भारत ऋषियों एवं महात्माओं का देश है। उन निर्लिप्त सन्तों तथा अवतारी महापुरुषों का, जिन्होंने समय-समय पर अध्यात्म विकास की इस वाटिका, भारत भूमि पर प्रकट होकर लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को जीवन के चरम ध्येय का पुनर्स्मरण कराया। सिक्ख सम्प्रदाय के नवम गुरु श्री तेगबहादुर जो प्रत्येक भारतीय किंवा प्रत्येक मानव के लिये भी गुरु तुल्य हैं, पावनता, प्रेम, भक्ति एवं वैराग्य के मूर्तिमान देवता थे, जिन्होंने अपने अमर बलिदान द्वारा इस महादेश की जीवनधारा एवं विचारधारा, दोनों पर एक अमिट प्रभाव अंकित कर दिया। गीता एवं उपनिषदों का अमर सन्देश उनकी विमल वाणी में छलक रहा है तथा वे भारतीय संस्कृति के उस अमर तत्त्व के सजीव अवतार थे जिसकी प्रशस्ति में स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गाया—'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'

कोई आत्मज्ञानी ही हंसते-हंसते प्राण होम कर सकता है क्योंकि वह जानता है कि उसका आत्मा अजर-अमर अविनाशी है तथा विश्व के प्राणीमात्र को भयभीत करने वाली मृत्यु की विकराल छाया यदि उसे स्पर्श कर बैठे तो वह मृत्यु स्वयं मर जायेगी, किन्तु ब्रह्मवेत्ता अमृतजीवी आत्मा का बाल भी बांका न होगा।

अमृतसर में सम्वत् 1687 में जिस अमृत पुत्र का अवतरण हुआ उसे बहुत समय तक संसार ने पहचाना ही नहीं। अन्त में उनके एक भक्त ने बाबा बकाला में 'गुरु लाधो रे, गुरु लाधो रे' का घोष करते हुए उन के प्रकट होने की घोषणा की। सतलुज नदी के तट पर स्थित आनन्दपुर साहब नगर का दर्शन कर मैं कृतकृत्य हुआ। गुरु तेगबहादुरजी का बसाया हुआ यह नगर उनकी अलौकिक अक्षुण्ण कीर्ति का एक लौकिक स्मारक है। वहाँ जमीन से 8 फीट नीचे खाईनुमा मोरे बने हुए हैं। जहाँ गुरु तेगबहादुर जी अनेक वर्षों तक एकांत में तप करते रहे। वहीं गुरुद्वारा सीसगंज है जहाँ गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने पिता के शीश का अन्तिम संस्कार किया।

दिल्ली के चांदनी चौक के सीसगंज गुरुद्वारे के स्थान पर ही गुरु तेगबहादुरजी का बलिदान हुआ। उसके सामने ही चांदनी चौक का फव्वारा है जहाँ कभी बन्दा

बैरागी के खून का फव्वारा चला था। इस ऐतिहासिक स्थान से मैं कभी भी अपने सजल नयनों से इन बलिदानी वीरों को अश्रुमाल चढ़ाए बिना नहीं गुजर सका। हिन्दू जाति की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले उस महान् गुरु की प्रशस्ति में हृदय स्वयंमेव गाने लगता है—

इन्द्रप्रस्थे पुकराकाले, चांदनी चौकांतरैकदा,
गुरु वर तेगबहादुर, धमार्थे स्व बलिं ददात्।

गुरु तेगबहादुर से पहले 29 नवम्बर, 1675 के दिन, उनके बलिदान से केवल 3 दिन पूर्व, गुरुप्रवर के दो साथियों को भी धर्म हित हुतात्मा बनना पड़ा। एक थे स्वर्गीय भाई परमानन्दजी के पूर्वज भाई मतिदासजी जिन्हें चांदनी चौक के बीच में आरों से सिर से पैर तक चीर डाला गया। दूसरे भाई दयाला को उबलते हुए तेल के कड़ाहे में डाल कर भून डाला गया। गुरु महाराज ने शीर्ष बलिदान के समय गले पर एक कागज बांध रखा था। शीर्ष कटने के पश्चात् उसे खोला गया, उस पर लिखा था 'सिर दिया पर सार न दिया' अर्थात् सीस देकर भी धर्म के मान को बचा लिया। स्वयं गुरु गोविन्दसिंह ने कहा—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका
कीनों बड़ो कलू में साका।

अपने बलिदान की घड़ी में दिल्ली के रोते हुए नर-नारी को महान् बलिदान वीर ने अंतिम संदेश दिया—

संग सखा सब तज गए, कोई न निभयो साथ
कहु नानक इस जगत में, एक टेक रघुनाथ।

वे अन्यत्र कहते हैं—

सभ सुखदाता राम है, दूसर नाहिन कोई
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरन गति होई।।

वैराग्य

इन तपोपूत संत की वाणी में संसार के वैराग्य का संदेश गूंज रहा है—

जो उपजे सो बिनस है, पड़ो आज के काल,
नानक हरि गुण गाय ले, छोड सकल जंजाल।

भक्ति

उस हरि, राम, गोविन्द को गाने मात्र से सारे संकट मिट जाते हैं—

राम राम उर में गहो, जाके सम नहीं कोय।
जिह सुमिरत संकट मिटे, दरस तिहारो होय।।

मिलन की व्याकुलता

सच्चा भक्त भगवान् के बिना ऐसे तड़पता है जैसे पानी बिना मछली।

गुरु गोविन्द गाइओ नहीं, जनमु अकारथु कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि विधि जल कौ मीन।।

स्थितप्रज्ञ

साक्षात् गीता के स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए वे कहते हैं—

साधो! मन का मान तियागो, काम क्रोध संगत दुर्जन की
तातें अह निशि भागो, साधो! मनका मान तियागो।।

पुनः

सुख दुखु जिह परसै नहीं, लोभ मोह अभिमान।
कहु नानक सुनि रे मना, सो मूरत भगवान्।
उसतति निंदिआ नाहिजिहि, कन्चन लोह समानि।
कहु नानक सुनि रे मना, मुक्ति ताहि तै जानि।
हरख सोग जा कै नहीं, वैरी मीत समानि।
कहु नानक सुनि रे मना, मुकति ताहि तै जानि।
भै काहु कउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनी ताहि बखानी।

नर में नारायण

एक रहस्यदर्शी वेदान्ती के समान गुरु तेगबहादुर मानव को पुनः याद दिलाते हैं—

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा।
तोही संग समाई।।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है
मुकुर माही जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर,
घट में खोजो भाई। काहे....

अन्तर और बाहर में वही तत्त्व समाया हुआ है—

बाहर भीतर एके जानो,
यह गुरुज्ञान बताई।

कहो नानक बिन आपा चीह्ने
मिटे न भ्रम की काई
काहे रे बन खोजन जाई।

वह प्रभु सदा हमारे साथ ही हैं—

पतित उधारन भय हरन, हरि अनाथ को नाथ।
कहु नानक तिह जानीए सदा, बसतु तुम साथ।

वह नारायण घट-घट का वासी है—

घटि घटि मैं हरि जू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कबहु नानक तिहु भजु मना भउनिधि उतरहि पारि।

गुरु तेगबहादुर ने उस परम सत्य का अपने भीतर ही साक्षात्कार कर लिया था, अपने घट में ही ब्रह्म को पा लिया था। अतः वे ब्रह्मभूत महात्मा अत्याचारी मुगल शासकों के अत्याचार का उपहास करते हुए युग-युग तक अजर-अमर रहेंगे तथा उनका पावन नाम यश के अमर तरानों में सदा-सर्वदा गूंजता रहेगा।

जयतु जयतु गुरुतेग, धन्य बलिदान धृति
जयतु धर्म हिन्दुत्व, जयतु तव पुण्य स्मृतिः।
जयतु दिल्ली नगरस्थ शीर्षगंज गुरुद्वार
जयतु कीर्ति बलिदान-धवल यश अमर सदा।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः

यह आत्मा-परमात्मा-बलहीन को प्राप्त नहीं होता।

—वेद

दशमेश गुरु का अलौकिक भक्ति काव्य

इस धर्मभूमि भारत में धर्मरक्षार्थ सर्वस्व न्योछावर करने वाले बलिदानी-वीरों में दशमेश गुरु श्री गोविन्दसिंहजी का नाम सदा-सर्वदा के लिए अत्यन्त आदर एवं गौरव के साथ लिया जावेगा। आधुनिक पंजाब के विकृत वातावरण में गुरु गोविन्दसिंह जी का पावन चरित्र पंजाब की धरती के किंवा सारे भारत के लालों को कर्तव्य का आलोक पथ दिखाने के लिए ज्योति स्तम्भ के समान है। विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द ने अपनी 'कोलम्बो से अलमोड़ा' भाषणमाला में कहा कि सच्चा हिन्दुत्व का मूर्तिमन्त अवतार है तो गुरु गोविन्दसिंह, सच्ची भारतीयता का कोई इतिहास सुलभ आदर्श है तो गुरु गोविन्दसिंह। पंजाब, जहाँ एक ओर सन्तों-महात्माओं की धरती है, वेदों-उपनिषदों तथा गीता की धरती है। वहाँ वह दूसरी ओर विश्वविख्यात वीरों की धरती भी है। उसकी नदियाँ अभी तक भीम, अर्जुन, द्रोण, कृप, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, बन्दा वैरागी, रणजीतसिंह, हरिसिंह नलवा के यश गाती हैं। पंजाब ने सन्त एवं सेनानी का इतिहास दुर्लभ समन्वय कर के गुरु द्रोणाचार्य से गुरु गोविन्दसिंह तक महान् कर्मयोगियों तथा अध्यात्म शूरों की एक लम्बी परम्परा का निर्माण किया है। पंजाब की ही धरती पर कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा था—'**मामनुस्मर युध्य च**' अर्थात् हे अर्जुन! तू निरन्तर मुझे स्मरण भी करता रह और संग्राम भी करता जा। बिल्कुल इसी भाव को दर्शाते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने गाया—

धन्य जिओ तिंह को जग में,
मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

खालसा का उद्देश्य

त्याग, यज्ञ और बलिदान ही भारतीय संस्कृति का सार-सर्वस्व है। उसी बलिदान के निकष पर परख कर खूनी तलवार की भयावनी चुनौती के नीचे गुरु ने पाँच प्यारे चुने। वे मरजीवे अपने आप को धर्म की बलिवेदी पर चढ़ा चुके थे। गुरुवाणी में कहा है—

जै तैनूं पीव मिलन दी चाह,
सिर धर तली गली मेरी आ।

वे पाँच प्यारे अपनी तली पर अपना शीश रखकर ही आए थे। गुरु ने उन्हें अमृत छकाया तथा स्वयं भी उनके हाथ से अमृत छका। आनन्दपुर साहब में खालसा पन्थ का निर्माण करते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने घोषणा की—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जगे धर्म हिन्दुन, सकल धुन्ध भाजै।

स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए, इसी देश के अनादि धर्म की जागृति के लिए ही गुरु महाराज ने सशस्त्र सेनानियों का प्रबल दल 'खालसा' सजाया तथा इसी हेतु उन्होंने अपने पूज्यपिता व अपने चारों लाडलों तथा स्वयं अपना भी बलिदान दिया।

गो-ब्राह्मण रक्षा

गुरु महाराज का गो-रक्षा का व्रत उनकी ही अपनी वाणी में सुनिए—

यही देह आज्ञा, तुर्क खपाऊं,
गऊ घात का दोख, जग सों मिटाऊं,
यही आस पूरण करौ तुम हमारी,
मिटै कष्ट गौअन, छूटै खेद भारी।

अवतारवाद

हिन्दू धर्म-शास्त्रों के समान गुरु गोविन्दसिंह भी अवतारवाद के पोषक थे। अपने निम्न पद में तो उन्होंने गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य' श्लोक का भावानुवाद ही प्रस्तुत कर दिया है—

जब जब होत, अरिष्ट अपारा,
तब तब देह धरत करतारा।
आपन रूप अनन्तन धरहीं,
आपन मध्यलीन पुनि करहीं।

राम महिमा

इस राम और कृष्ण के देश में गुरु गोविन्द जैसे महान् देशभक्त एक संस्कृति रक्षक राम का विरुद गाए बिना कैसे रह सकते थे। अपने दशम ग्रंथ में उन्होंने रामायण को अपनी सुन्दर मधुर काव्यमयी भाषा में गाया है। रामायण कथा के अंत में गुरु गाते हैं—

राम कथा जुग जुग अटल,
सब कोउ भाखत नेत।

स्वर्गवास रघुवर किया,
सगली पुरी समेत।।
जो यह कथा सुने अरु गावे,
दुखपाप तट निकट न आवै।
विष्णुभक्त को यह फल होई,
आधि-व्याधि छू सके न कोई।।

कृष्ण स्तुति

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की विरुदावली गाने में तो गुरु गोविन्दसिंह कहीं-कहीं सूर, मीरा, रसखान के लोलित पदों के समान लोलित भावों को गाते हैं—

जो उपमा ब्रजनाथ की गाइ हैं,
और कवित्त न बीच घरैंगे,
पापन के तेउ पावन में,
कवि शाम भनै, कबहू न जरैंगे।
चिन्त सभैं मिटहै जु रही,
छिन में तिनके अघवृन्द टरैंगे।।
जो नर श्यामजुके परसे पग,
ते नर फेर न देह धरैंगे।।

भगवान् कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए गुरुजी लिखते हैं—

मुख जाहि निशापति के सम है,
वन में तिन गीत रिझयो अरु गायो।
ता सुर की धुनि निज स्रउवन में,
ब्रजहू की त्रिया सब ही सुनि पायो।
धाई चली हरि के मिलिबे कहुं,
प्रिय श्याम सबहिं मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो मृगना जुबती,
धोकवे कहुं घंटक हेर बनायो।

गुरुजी ने रास लीला का कला रुचिर वर्णन कितने सुन्दर शब्दों में किया है—

जब आई है कातक की रुत सीतल,
कान्ह तबै अति ही रसिया।

संग गोपन खेल विचार करयो,
जो हुतो भगवान् महा जसिया।
अपवित्रन लोगन के जिह के पग,
लागत पाप सबै नसिया।
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल,
निबारहु काम रहै बसिया।

उस लीला पुरुषोत्तम की लीला के दर्शन मात्र से सब काम निवारण हो जाता है।

दशम ग्रन्थ में गुरु गोविन्दसिंहजी कृत मुरली महिमा से प्रकृति भी आनन्द रस से आप्लावित हो रही है—

रुखन ते रस चूवन लाग,
झरै झरना गिरिते सुखदाई।
घास चुगैन मृगा बन के,
खग रीझ रहे, धुन जासुन पाई
देव गंधार विलावल सारंग की
रिझ के जिह तान बसाई।
देव सभै मिल देखता कौतक,
ज्यौं मुरली नन्दलाल बसाई।।

दशम गुरु भगवती दुर्गा की स्तुति करते हुए लिखते हैं—

नमो उग्रदन्ती अवंती सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी वाहिनी शत्रुहंती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़ंती।
नमो ऋद्धिदा, सिद्धिदा बुद्धिदेनी,
नमो काल के काल की कालछैनी।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गावें,
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पायें।।

भारतीय संस्कृति के अमर गायक भक्त शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह के जन्म

दिवस पर क्या हमारी हृदय वीणा की तारों पर उनका मधुर भक्ति-संगीत ध्वनित होकर हमारे देश तथा प्रदेश में भक्ति एवं प्रेम की मधुर स्रोतस्विनी बहा सकेगा!

16 जनवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'यहीं तो हमारी जाति के अन्तिम तथा सर्वाधिक तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह उदय हुए। वे महान् गुरु, धर्म के हेतु, दलितों के उद्धार हेतु अपना तथा अपने निकटतम स्वजनों का रक्त बहाने के पश्चात्, जब उन्हीं लोगों द्वारा उत्पीड़ित तथा परित्यक्त हुए जिनके हेतु यह रक्त बहाया गया था, तब वे विरक्त होकर, बिना अपने देश तथा समाज के विरुद्ध एक भी शब्द बोले, बिना असन्तोष का एक भी वचन कहे, दक्षिण में चले गये।

भारत के पुनर्गौरवीकरण के लिए आप में से प्रत्येक को गुरु गोविन्दसिंह बनना होगा, उनका सच्चा अनुयायी बनना होगा।'

× × ×

हिन्दू कौन ?

केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जायेगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहलाओगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलने वाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलाने वाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना ही लड़का विपत्ति में पड़ गया हो, केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके किये समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिये तैयार रहोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

अमर बलिदानी बन्दा वैरागी

मातृवेदी पर प्राण अर्पण कर वीर पुरुष जिस अमरता को प्राप्त करते हैं वह अतुलनीय है। वीरों का शरीर तो नष्ट होकर पंचतत्त्वों में मिल जाता है लेकिन उनका यश उन्हें सदा-सदा के लिए अजर-अमर एवं पूज्य बना देता है। वीर प्रसूता भारत भूमि में सदा से ही अनेकानेक महापुरुषों ने अपने अनुपम कृत्यों एवं बलिदानों द्वारा भारत के मस्तक को ऊँचा किया है। वीर बन्दा वैरागी भी इसी वीर परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। जिन्होंने अपने शरीर को सारहीन जान अपना जीवन देश-धर्म रक्षार्थ अर्पण कर जीवन सार्थक किया।

भारत के गौरवमय इतिहास में यूं तो अनेकानेक महापुरुषों के नाम आते हैं जिन्होंने स्वदेश स्वातंत्र्य के लिए जीवनाहुति दी या घोर तपस्या करके अमर तत्त्व लाभ किया लेकिन यदि कहीं वैराग्य और कर्म का अद्‌भुत सामंजस्य है तो बन्दा वैरागी में। यदि किसी वैरागी ने हाथ में तलवार लेकर शत्रुमर्दन किया है तो बन्दा वैरागी ने। छत्रपति शिवाजी बचपन से ही देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे, महाराणा प्रताप प्रारम्भ से ही देश की स्वाधीनता के लिए मर मिटने को कटिबद्ध थे। महात्मा बुद्ध व गुरुनानकजी बाल्यकाल से ही विरक्त थे लेकिन नन्हा वैरागी प्रारम्भ में एक सुप्रसिद्ध शिकारी था लेकिन हिरणी के शिकार के समय उसके गर्भ स्थित दो बच्चों का वध हो जाने की घटना से प्रभावित हो पूर्णतया वैरागी बन गया। सबकुछ त्याग जंगल में एक कुटिया बना कर एक साधु के शिष्यत्व में योग तपस्या करने लगा लेकिन जब गुरु गोविन्दसिंह जी के दो लाडले अपने नन्हे पुष्प जीवन मातृवेदी पर अर्पण कर अमरलोक सिधारे उस समय गुरुजी किसी साथी की खोज में अन-मनस्क भाव से चलते-चलते उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ वैरागी अपनी साधना में लीन था। गुरुजी ने बन्दा को योग छोड़ कर्तव्य मार्ग अपनाने के लिये कहा और अपने पुत्रों व गुरु तेगबहादुरजी के बलिदान का वृत्तांत कह सुनाया। बन्दा वैरागी की योग निद्रा टूटी और देश-प्रेम, जाति प्रेम उस वीर की धमनियों में हिलोरें लेने लगा। गुरु गोविन्दसिंहजी ने प्रसन्न होकर अपनी खड्ग वीर बन्दा वैरागी को देते हुए कहा—

यह लो अमर कटारी यवनों के लोहू से स्नात।
अब निश्चय मैं देख रहा हूं भारत का अरुण प्रभात।।

गुरु गोविन्दसिंहजी का कथन अक्षरशः सत्य निकला। वीर बन्दा वैरागी गुरुजी की पवित्र खड्ग हाथ में ले घोड़े पर सवार हो कर्तव्य क्षेत्र में कूद पड़ा और क्रूर मुगलों की नृशंसता का बदला लिया। उन पापियों को जिन्होंने गुरुजी के लाडलों को दीवारों में चुनवाया था अपनी अमर कटारी से समाप्त कर दिया।

बन्दा दक्षिण भारत से पंजाब में आए, गुरु गोविन्दसिंहजी अब अस्वस्थ हो चुके थे, बन्दा ने सिक्ख शूरों को उत्साहित व एकत्र किया और लाहौर पर आक्रमण कर दिया। मुसलमानों ने द्वेषवश बन्दा को अनेक प्रकार से लांछित करने का प्रयत्न किया। वे उन महापुरुष को क्रूर जादूगर और न जाने क्या-क्या कहते थे लेकिन उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा कि बन्दा लोकोत्तर शूर थे। बन्दा के धनुष से छूटे बाण कभी लक्ष्यच्युत नहीं होते थे।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कर्तव्य पथ अपनाने के लिए जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष की व्याख्या की है उसका साक्षात् उदाहरण बन्दा वैरागी थे जो सदा ही वैरागी रहे, वे प्रायः युद्धभूमि के समीप एक पहाड़ी पर ध्यानस्थ बैठे रहते। उनका स्वभाव निरन्तर एकांत में ध्यान करने का था लेकिन जब युद्ध में शत्रु बलवान आ पड़ते तब सिक्ख सेना के नायक उनको ढूंढ़ते। बन्दा अपने अश्व पर बैठकर तूफान की भांति आते थे और विपक्ष के प्रधान-प्रधान नायकों को अपनी खड्ग का शिकार बनाने के पश्चात् जैसे ही वे समझते कि अब मेरी आवश्यकता नहीं, वे लौट पड़ते और इस प्रकार दूर जाकर ध्यानस्थ हो जाते जैसे कोई घटना ही नहीं हुई हो। बन्दा सचमुच महारुद्र की भांति समरक्षेत्र में आते थे और आंधी की भांति सहसा अदृश्य हो जाते थे।

दिल्ली सम्राट बहादुरशाह प्रथम ने स्वयं सेना लेकर बन्दा का सामना किया और उन्हें पकड़ कर वह लोहे की जंजीरों में बांध हाथी पर ले जा रहा था। बड़ी कठिनता से छलपूर्वक बादशाह बहादुर शाह ने उस सिंह को बांधा था। महायोगी बन्दा ने अपने को संभाला। प्राणों को स्थिर किया और सुदृढ़ शृंखलायें खण्ड-खण्ड हो गईं। किसी के सावधान होने से पूर्व बन्दा ने समीप के यवन सैनिक को घोड़े से भूमि पर फेंक दिया। उसकी तलवार लेकर अश्वपीठ पर बैठ गए। बन्दा का सामना कौन कर सकता था? वीर बन्दा ने अपने सभी बन्दी साथियों को अकेले मुक्त कर लिया।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित निष्काम कर्मयोग का यदि कहीं सुन्दरतम आदर्श मिल सकता है तो बन्दा वैरागी से। वीर बन्दा वैरागी के नेतृत्व में सिक्ख सेना ने अनेक बार यवन दुर्गपतियों को परास्त किया। अनेक बार अपार सम्पत्ति उनके हाथ लगी। कई बार सेना नायकों ने अनुभव किया कि उन्हें बन्दा का स्थायी नेतृत्व प्राप्त हो जाए तो एक अजेय सिक्ख साम्राज्य स्थापित हो सकता

है। अनेक बार उन सरदारों ने बन्दा से अनुरोध किया कि विजय में मिले धन को बन्दा वितरित न करके स्वयं स्वीकार करे और विजित दुर्गों पर अधिकार करके अधिपति बने लेकिन बन्दा तो वैरागी थे और उनका यही उत्तर था—'मैं वैरागी हूँ और गुरु का बन्दा हूँ, मुझे धन और राज्य से क्या करना है?' वास्तव में बन्दा महान् वैरागी थे, विजय में मिले धन को कभी छुआ तक भी नहीं, यहाँ तक कि उनकी निजी आवश्यकताओं का भी दूसरों को ध्यान रखना पड़ता था। उनकी पत्नी तथा पुत्र का भरण-पोषण उस धन से होता था जो सरदार लोग स्वेच्छा से उनकी पत्नी को दे जाते थे।

मुगलशासक बन्दा के नेतृत्व में सिक्खों द्वारा अपनी पराजय देख मन ही मन क्षोभ करते। अतः कोई सीधा ढंग न देखते हुए कूटनीति से काम लेना चाहा। दिल्ली के सिंहासनासीन फरुखसियर ने काश्मीर के सूबेदार अब्दुलसदमखां को बन्दा वैरागी के विरुद्ध ससैन्य भेजा। उसने सिक्ख सरदारों के पास सन्देश भेजा। 'हमारी सिक्खों से कोई शत्रुता नहीं है सम्राट सिक्खों को उनके राज्य देने को प्रस्तुत हैं। हम तो केवल बन्दा को पकड़ना चाहते हैं। बन्दा सिक्ख नहीं है, उसने सिक्खों को भड़का कर सम्राट् का द्रोही बना दिया है।' दूरदर्शी बन्दा ने देख लिया कि अब सिक्खों में बुद्धि-भेद उत्पन्न हो गया है। युद्ध में पूरा उत्साह नहीं दिखाते। विवश होकर बन्दा ने दुर्ग में आश्रय लिया। सदमखां अपनी भेदनीति के सन्देश भेजने में लगा रहा। सिक्खों ने बन्दा से पूछा कि वह सिक्ख है या नहीं। बन्दा का उत्तर था, 'मैं गुरु का बन्दा हूँ, न इससे अधिक न कम।' सिक्खों ने शत्रु के बहकावे में आकर बन्दा को विधिपूर्वक धर्म स्वीकार करने के लिए कहा। लेकिन बन्दा का यही उत्तर था—धर्म ऊपर से स्वीकार नहीं किया जाता, वह हृदय से स्वीकार किया जाता है। मेरा धर्म कोई त्रुटि पूर्ण नहीं है और न कभी लौकिक कारण से मैं उसे बदलने को प्रस्तुत हूँ।' बन्दा के इस निर्भीक उत्तर को सुन सिक्ख बन्दा से रुष्ट हो गए और बहुत से प्रधान नायक अपने दल के साथ दुर्ग छोड़कर निकल गए किन्तु झूठे मुगल शासक ने उन्हें पकड़ कर बड़ी निर्दयता पूर्वक मार डाला। वास्तव में बहुत थोड़े सिक्ख थे जिन्होंने बन्दा को ठीक प्रकार से समझा और अन्त तक साथ दिया। किसी सैनिक ने शत्रु के बहकावे में आकर दुर्ग-द्वार खोल दिया। बन्दा और उनके 784 साथी पकड़ लिए गए। बन्दा को सिंह के पिंजरे में बन्द करके हाथी पर दिल्ली भेजा गया।

सम्राट् के अनेक प्रलोभन सच्चे सिक्खों को अपने कर्तव्य पथ से विचलित न कर सके और उन वीरों ने परधर्म स्वीकार करने की अपेक्षा जीवन बलिदान स्वीकार किया। सात दिनों तक यही क्रम चलता रहा। प्रतिदिन सौ वैरागी सिक्ख शूरों के सिर काटे जाते। धर्म के लिए मस्तक देना उन मनस्वियों को गौरव प्रतीत हो रहा था। विधर्मी के प्रलोभन उनके सामने तुच्छ सिद्ध हुए।

अन्त में 19 जून 1716 का वह मनहूस दिन आया जब कि वीर बन्दा शहर के बाहर लाए गए। बन्दा को भी अनेक प्रलोभन दिए गए और सेना के सेनापति पद को स्वीकार करने के लिए कहा गया। यह सब इस वीर पुरुष के सामने हेय था। क्रूरता से बन्दा के सम्मुख उसके इकलौते पुत्र को लाया गया और उसे मारने के लिए बन्दा से कहा गया। बन्दा ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। पापी जल्लाद ने बन्दा के देखते-देखते ही बाल पुष्प की छाती फाड़ कर उसका कलेजा निकाल कर बन्दा के मुंह में ठूंस दिया। वे बैरागी अधो-उन्मीलित नेत्र किए मानो कुछ देख ही न रहा हो। बन्दा का वध करने से पहले एक बार फिर बन्दा से मुसलमान धर्म स्वीकार करने के लिए कहा गया लेकिन उस वीर का यही उत्तर था—'शरीर तो नाशवान है मुझे शरीर का कोई भय नहीं, मैं तो आत्मा हूँ, आत्मा सदा अजर-अमर है।' यह सुनते ही अत्याचारियों ने तपाई हुई लोहे की सलाखों से बैरागी को पीटा और जब उसका सारा शरीर झुलस गया तो गर्म चिमटों से उसका मांस नोचा। वीर बन्दा इतने पर भी मुसकरा रहे थे। किसी ने पूछा—'इतनी पीड़ा मिलने पर भी तुम कैसे प्रसन्न हो?' बन्दा ने कहा—'जो आत्मा के स्वरूप को पहचानता है वह इस बात को जानता है कि आत्मा अमर है तथा दुःखातीत है।' इस उत्तर से सभी चकित रह गए। वैरागी के मुख पर वेदना का चिह्न तक नहीं था। वे शरीर के संसर्ग से कब के परे हो चुके थे। अन्त में उनके शरीर को अत्याचारियों ने हाथी के पैरों तले दबाया। बन्दा सच्चे शहीद हो गए।

धन्य हैं वे वीर जिन की वीरता और मातृवेदी पर बलिदान होने की प्रबल आकांक्षा को देख कर मुसलमान इतिहासकार मि. लतीफ ने कहा है—

इन वीरों ने लापरवाही से मौत का स्वागत किया—यही नहीं अपितु परस्पर शहादत का अमृत पीने के लिए एक-दूसरे से आगे बढ़ कर उत्सुकता प्रकट करने लगे।

इतिहास के पृष्ठ आज भी मुगल शासकों की क्रूरता, निर्दयता और पाप को व देश-धर्म पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले बांके रणवीरों का यशोगान कर रहे हैं। धर्म की रक्षा के लिए इन वीरों का यह बलिदान अमर है।

27 जून 1960 दैनिक

'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

गो-ब्राह्मण व हिन्दू-धर्म के रक्षक : पंजाब के कोहेनूर_किरीट नृपति महाराजा रणजीतसिंह

जिस पत्थर के टुकड़े का मूल्य आज तक कोई न लगा सका, जिस की छवि-छटा पर मुग्ध हो बड़े-बड़े साम्राज्य लुट गए, जो हीरक भारत की कृष्णा नदी से निकला पर जिसका नामकरण विदेशी लुटेरे नादिरशाह ने किया, जो माणिक्य विश्व के अनेक देशों में हत्या, लूटमार एवं रक्तपात का कारण बना तथा जो आज भी सात समुद्र दूर इंग्लैंड की साम्राज्ञी रानी एलिजाबेथ के हीरक मुकुट में सुशोभित है, उस विश्व के सर्वाधिक मूल्यवान हीरे कोहेनूर को यदि भारत के किसी हिन्दू सम्राट ने कभी धारण किया तो वे पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह ही थे। रणजीतसिंह पंजाब के एक मात्र नृपति थे जिन्होंने उस अमूल्य हीरे को अपनी कलगी में धारण किया तथा वे अन्तिम भारतीय राजा थे जिनके किरीट से विलग होने के तुरंत पश्चात् कोहेनूर को भी काला पानी मिल गया। पिछले 159 वर्षों से विश्व का वह सब से कीमती हीरा अपने स्वदेश से हजारों मील दूर इंग्लैंड के राजमुकुट की कारा में बन्दी पड़ा हुआ स्वदेश दर्शन के लिए सिसक रहा है। दूरदर्शी रणजीतसिंह जानते थे कि यदि वह हीरक राज शक्तियों के हाथ आता-जाता रहा तो सदा ही मानवता के रक्तपात का कारण बनता रहेगा। उन्हें स्मरण था कि लुटेरे नादिरशाह ने उस पाषाण खण्ड को प्राप्त करने के लिए सन् 1739 में दिल्ली में किस प्रकार सर्वसंहार कराया था, जब 9 दिन के अविराम नरसंहार से दिल्ली के गली-कूचों में रक्त की नदियाँ बहने लगी थीं। नादिरशाह के हाथ लगने के पश्चात् 74 वर्षों तक फारस-अफगानिस्तान आदि देशों में देश निकाला भोगकर जब यह भारत का अमूल्य हीरक फारस के सम्राट् शाहशुजा के साथ सन् 1813 में भारत आया तो चतुर रणजीतसिंह ने अपने देश की खोई हुई दौलत को युक्ति से पुनः हथिया लिया था। कोहेनूर का मूल्य पूछने पर रणजीत कहा करते, 'पांच जूतियाँ' जिसका अर्थ यह है कि कोहेनूर जिस भी व्यक्ति अथवा राज्य के पास रहेगा वहाँ हत्या, लूटमार, रक्तपात की अपमानजनक घटनाएं सदा होती रहेंगी। एक पत्थर के निर्जीव टुकड़े के पीछे होने वाले इतने भीषण नरसंहार को देखकर रणजीतसिंह ने दूरदर्शिता की अपनी एक ही चमकीली आंख से देख लिया था कि

माया को मायापति महेश्वर के चरणों में अर्पण कर देने से ही यह संहार लीला समाप्त हो सकती है।

इसलिए मृत्यु शय्या पर पड़े हुए रणजीतसिंह ने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की कि वह कोहेनूर हीरा जगन्नाथ पुरी के भगवान जगन्नाथजी के चरणों में चढ़ा दिया जाए। किन्तु इतिहास का विचित्र व्यंग्य यह है कि वह कोहेनूर हीरा आज भगवान् जगन्नाथ के चरणों पर न चढ़कर इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के शीर्ष पर चढ़ा हुआ भारतीयों के स्वाभिमान को चुनौती दे रहा है।

पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह का नाम अतिशय प्रेम एवं श्रद्धा का सूचक नाम है। पंजाब के स्वातंत्र्य एवं स्वाभिमान के लिए जीवन भर संग्राम करने वाले राजा अनंगपाल के पश्चात् पंजाब की जनता को रणजीतसिंह जैसा लोकप्रिय एवं प्रजावत्सल राजा अन्य नहीं मिला था। उस वीर शिरोमणि नृपति के राज्य में भारत की सेनाओं ने देश के पश्चिमोत्तर में दर्रा खैबर तक पहुँच कर उन बर्बर एवं आततायी लोगों पर शासन किया जो सदा से दूसरों पर शासन करने के आदी थे।

महाराजा रणजीतसिंह की विजयिनी सेनाएं उत्तर में काश्मीर की वादी से पार लद्दाख, वाल्टिस्तान तथा तिब्बत तक जा पहुँची तथा भारत शीर्ष को विदेशी आक्रमणों के भय से मुक्त कर दिया। यह महान् कार्य रणजीतसिंह को विश्व इतिहास में उनके योरपीय समकालीन सेनानायक नेपोलियन के तुल्य यश प्रदान करता है किन्तु जहाँ असम्भव को 'मूर्खों के शब्दकोश का शब्द' मानने वाले नेपोलियन को भी अंग्रेजों के हाथ पराजित होना पड़ा वहाँ अपनी कुशल राजनीति के कारण रणजीतसिंह अंग्रेजों के साथ संघर्ष से सदा बचते रहे।

महाराजा रणजीतसिंह न्यायशील और धर्मप्रिय शासक थे। प्रजा वत्सल राजा के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। हिन्दू धर्म पर उनकी गहरी आस्था थी। न्याय के मार्ग से वे कभी न हटे। उन्होंने जो आदर्श पंजाब के सामने रखा था, यदि पंजाब के निवासी उस पर चलते तो इस प्रांत की वर्तमान दुर्दशा न होती। हिन्दू व सिक्खों को उन्होंने सदा समान दृष्टि से देखा। गो-ब्राह्मण की वह सदा पूजा करते रहे। धर्म और मन्दिरों की उन्होंने सदैव रक्षा की। गंगाजल उन्हें उतना ही पवित्र था जितना किसी हिन्दू के लिए। पंजाब की समृद्धि और सुख-शांति के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ के लोग महाराजा रणजीतसिंह के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें।

दानवीरता

आज से 120 वर्ष पूर्व, 27 जून 1839 के दिन अपने स्वर्गारोहण की वेला में जिस अपूर्व दानी रणजीतसिंह ने कोहेनूर हीरा तक दान कर दिया! उसका समूचा जीवन ही दानवीरता की सुन्दर गाथा है। जब 2 नवम्बर 1780 के शुभ दिन अविभाजित पंजाब के गुजरांवाला नगर में रणजीतसिंह का जन्म हुआ, तो उनके

पिता महासिंह ने ब्राह्मणों को महान् दान तथा भोज दिए थे। शैशव में रणजीतसिंह चेचक के रोग से इस तरह ग्रसित हुए कि उनकी बायीं आंख ही चली गई उनके प्राण बचने पर महासिंह ने कांगड़ा तथा ज्वालामुखी के देवी मन्दिरों में बड़ा चढ़ावा चढ़ाया। जब रणजीतसिंह का राजतिलक एक ब्राह्मण के हाथों सम्पन्न हुआ तो उन्होंने पुनः बड़ा धन बांटा। लाहौर जीतने के पश्चात् रणजीतसिंह ने पिछले राजाओ के खजाने में पड़े हुए सारे सिक्के दान कर दिये। मुल्तान विजय करने पर उन्होंने 8 दिन के लिए लाहौर तथा अमृतसर में दीपमाला उत्सव किया तथा महाराज स्वयं गली-कूचों में घूम-फिर कर धन लुटाते रहे। 13 जुलाई 1813 के दिन पंजाबियों की पठानों पर प्रथम विजय प्राप्त होने पर लाहौर तथा अमृतसर में लगातार दो मास तक अपूर्व उत्सव मनाया गया तथा ब्राह्मणों को बड़े दान दिये गए।

धार्मिक अत्याचार का अन्त

महाराजा रणजीतसिंह का प्रधान सेनापति हरिसिंह 'नलवा' तो पठानों के लिए आतंक का पर्याय था। आज तक पठान तथा अफरीदी मातायें अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिए डराती हैं—'बच्चा! चुप कर जा, नलवा आ रहा है।'

जब नलवा को काश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया तो उसे यह जान कर बड़ा दुःख हुआ कि वहाँ के असंख्य हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना लिया गया था तथा उनके धर्म स्थानों को भ्रष्ट किया गया था। जहांगीर की बेगम नूरजहां ने श्रीनगर के शंकराचार्य मन्दिर को गिरा कर उसके संगमरमर के पत्थर से एक मस्जिद बनवा ली थी। कश्मीर के हिन्दुओं को पगड़ी पहनने या घोड़े की सवारी करने की भी आज्ञा न थी। महाराज के आदेश पर नलवा ने वह सारा दृश्य बदल दिया तथा लगभग पचास हजार बलात् मुसलमान बनाए हुए हिन्दुओं को पुनः शुद्ध कर के हिंदू बनाया।

प्रभु का दास

यद्यपि रणजीतसिंह बड़े महत्त्वाकांक्षी एवं स्वेच्छाचारी भी थे पर महाराजा के जीवन का धार्मिक पहलू बहुत कम लोगों को ज्ञात है। इन्हें ईश्वर में अविचल विश्वास था तथा वे प्रतिदिन गुरुग्रन्थ साहब तथा हिंदू धर्म शास्त्रों का पाठश्रवण करते थे। वे अपने आप को 'खालसा' का गुलाम मात्र समझते थे। अमृतसर के हरि मन्दिर में एक बड़ा सा ढोल पड़ा रहता था जो गुरु गोविन्दसिंहजी के काल का माना जाता था। महाराजा ने उस ढोल का नाम रणजीत रखवा दिया था जिस से यह प्रकट हो कि वे तो सिक्ख संप्रदाय के ढोल मात्र हैं। विनयी रणजीतसिंह ने अपने सिक्कों पर 'रणजीत सहाय' न लिखवा कर 'अकाल सहाय' लिखवाया था। उनके कई सिक्के नानकशाही तथा गोविंदशाही नाम से प्रसिद्ध थे।

विश्वास में परम धार्मिक, राज्य में धर्म निरपेक्ष

रणजीतसिंह कोई कट्टर पंथी अनुदार व्यक्ति न थे। उनके मन में सभी धर्मों के

लिए समान आदर का भाव था। रणजीतसिंह से पूर्व अमृतसर के अकाल तख्त से घोषित होने वाले 'गुरुमत्ता' का सिक्खों की राजनीतिक गतिविधि पर भी पूरा प्रभाव होता था। महाराजा ने यह निश्चय किया कि आगे से अकाल तख्त के निर्णयों का प्रभाव केवल सिक्खों के धार्मिक जीवन पर होगा। राजनीतिक जीवन में वे पूर्ण स्वतन्त्र रहेंगे। धर्म को राजनीति से पृथक् करने के उपरान्त भी रणजीतसिंह स्वयं धर्मात्मा ही थे, आक्रमण करने से पूर्व वे कुछ प्रसिद्ध संतों तथा योगियों के पास आशीर्वाद के लिए जाते तथा विजय के पश्चात् उन्हें तथा धर्म स्थानों को बड़े-बड़े दान देते।

धर्म स्थानों का संरक्षण

महाराजा अमृतसर की चुंगी से प्राप्त होने वाले चुंगीकर का एक भाग अमृतसर मन्दिर में 'कढ़ाह प्रसाद' के लिये भेज देते थे। पंजाब केसरी ने अमृतसर के हर मन्दिर के बड़े गुम्बद एवं कलश पर स्वर्ण पत्र चढ़वा कर उस मन्दिर को ऐतिहासिक स्वर्ण मन्दिर में परिवर्तित कर दिया। ज्वालामुखी के देवी मन्दिर की मरम्मत एवं रक्षा के लिए भी महाराजा ने बड़ा धन लगाया।

न्याय की दृष्टि में सब समान

एक बार स्वर्ण मन्दिर के कुछ नियमों को भंग करने के अपराध में महाराजा को सार्वजनिक रूप से अकाली फूलासिंह द्वारा कोड़े लगाए गए। एक बार एक मुसलमान लड़की से विवाह करने के पाप का प्रायश्चित्त करते हुए महाराजा ने अमृतसर में जाकर पुनः 'अमृत छक कर' शुद्ध हो दोबारा सिक्ख धर्म में प्रवेश किया तथा अपनी सोने की मूर्ति बनवा कर मथुरा के ब्राह्मणों को दान में दी।

दया का दिव्य गुण

रणजीतसिंह अत्यन्त उदार एवं दयालु राजा थे। अपने 40 वर्ष के राज्यकाल में उन्होंने एक भी व्यक्ति को मृत्युदण्ड नहीं दिया, चाहे स्वयं उनके जीवन पर कई बार आक्रमण हो चुके थे। एक बुढ़िया ने सुना था कि महाराजा पारसमणि हैं। भोली बुढ़िया घर की रसोई का तवा लेकर महाराजा की पीठ पर रगड़ने लगी कि स्पर्श से सोना बन जाय। उसके भोलेपन पर प्रसन्न होकर महाराजा ने उसे उसी के बराबर तौल का सोना दे दिया। आम के वृक्ष पर पत्थर मारने वाली एक बालिका का पत्थर महाराजा को लगा। महाराजा ने हंसकर कहा—जब निर्जीव वृक्ष भी पत्थर मारने पर फल देते हैं तो मेरे जैसे जीवित व्यक्ति को अधिक अच्छा व्यवहार करना चाहिए। महाराजा ने उस बाला को पर्याप्त पुरस्कार दे कर भेजा। एक अन्य कथा के अनुसार दुर्भिक्ष में महाराजा ने एक बूढ़े व्यक्ति के लिए एक भारी गंदम की बोरी स्वयं उठा कर उसके घर पहुँचा दी थी।

विनोद में भी धार्मिक

विनोद प्रिय महाराजा प्रतिवर्ष 'दाढ़ियों का मेला' लगाया करते थे, जिस में लम्बी दाढ़ी वाले लोगों को पर्याप्त पुरस्कार दिए जाते थे। बहुतों को दाढ़ी को दही से धोने के हेतु 8 आना प्रतिमास दिए जाते थे। कहा जाता है कि लाहौर के लाला रतनचन्द को उनकी लम्बी दाढ़ी के कारण महाराजा ने एक बहुत बड़ी जागीर प्रदान कर दी थी। प्रायः यह देखा जाता है कि काणे व्यक्ति को यदि काणा कहा जाये तो उसे बहुत चुभता है। किन्तु रणजीतसिंह गली के मासूम बच्चों से काणा कहलवाने से आनन्द मानते थे तथा उन्हें पारितोषिक भी देते थे।

जनता का धर्म

इतिहासकार स्टीनबैक के अनुसार महाराजा रणजीतसिंह के समय पंजाब की आबादी लगभग 35 लाख थी जिस में सिक्खों सहित हिन्दुओं की जनसंख्या मुसलमानों से तीन गुणा अधिक थी। सिक्ख हिन्दू जीवन परम्परा के ही अभिन्न अंग थे तथा सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से उनकी गणना सदा हिंदू नाम से ही होती थी।

गोवध निषेध

महाराजा के आदेश से गोवध कानूनन् बन्द था। रणजीत की सेना में भरती यूरोपीय अफसरों के लिए भी यह कड़ा नियम था कि वे गोमांस तथा तम्बाकू का सेवन बिल्कुल न करें। अपने परिवारों के सहित रहें तथा नौकरी के कार्यकाल में दाढ़ी मूंछ अनिवार्यतः रखें।

बीमारी में संतों के दर्शन

जब 1833 में महाराजा बीमार पड़े तो वे प्रतिदिन रावी के तट पर एक वैरागी के पास जाया करते थे। 1839 में उनकी अन्तिम बीमारी के समय बहुत से योगियों और ज्योतिषियों को बुला कर महाराजा के स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनायें करवाई गईं। अन्तिम समय की धार्मिक क्रियाओं का आंखों देखा विस्तृत वर्णन एक फारसी प्रलेख 'रोजनामचा—उमदत उल तवारीक' में दिया हुआ है जो कि लाहौर दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार लाला सोहनलाल सूरी द्वारा लिपिबद्ध किया गया था।

अंतिम दर्शन

स्वर्गवास के एक दिन पूर्व 26 जून 1939 को महाराजा ने 'आदि ग्रन्थ' और बाबा ग्रन्थ का पवित्र दर्शन किया तथा उन्हें शीर्ष नवाया। महाराजा ने भाईजी (भाई गोविंदराम) के कहने पर 8 लाख दान का एक संकल्प और पढ़ा। श्री सूरी के अनुसार सोने और चांदी के शृंगार और हौदों के साथ हाथी और सुन्दर घोड़े दान में दिये गये।

गंगाजल तथा गोदान

जब महाराजा को मृत्यु की दारुण वेदना प्रतीत हुई तो उन्होंने इच्छा प्रकट की कि उनके शरीर पर शीतल गंगाजल का एक घड़ा डाला जाये। फिर महाराजा ने 51 गाय, 1100 स्वर्ण मुद्राएं, बहुत से तेज गति वाले घोड़े तथा बहुत से कपड़ों के दान का संकल्प किया। महाराजा ने अपनी मृत्यु को निकट जान कर अपने संस्कार के लिये चन्दन की लकड़ी खरीद लेने का आदेश दे दिया।

कोहेनूर हीरे का दान

भाई गोविंदराम ने महाराजा को स्मरण कराया कि उन्होंने पहले कई बार यह इच्छा प्रकट की थी कि वे भारत के सभी तीर्थों का भ्रमण करेंगे तथा उस अमूल्य हीरे कोहेनूर को उड़ीसा के पुरी मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ को अर्पण करेंगे। लाला सोहनलाल सूरी के लिखे आंखों देखे वर्णन के अनुसार महाराजा ने तुरंत संकल्प किया तथा आदेश दिया कि कोहेनूर भगवान् जगन्नाथजी को भेज दिया जाय। दुर्भाग्य से कोहेनूर उस समय कोष प्रबन्धक मिस्सर बेली राम के पास था, जिसने उस समय झूठे बहाने करने प्रारम्भ किये तथा महाराज की मृत्यु के बाद कहा कि हीरा राज्य की सम्पत्ति होने के कारण महाराजा को उसे दान में देने का अधिकार नहीं था।

कुछ समय के पश्चात् महाराजा ने शीर्ष नवा कर अपने हीरों से जटित बाजू बन्दों को दान कर दिया जिन का मूल्य दो लाख रुपये था। साथ ही उन्होंने बहुत से कीमती आभूषण, दो हाथी, सोने के साथ तथा 5 लाख रुपया दान दे दिया।

भगवान् नारायण के अन्तिम दर्शन

अन्तिम दिन 27 जून 1939 को जब महाराजा अचेत हो गए तो भाई गोविन्द राम ने सुझाया कि सरकार (महाराजा) को अपनी दृष्टि अविनाशी परमेश्वर पर केन्द्रित करनी चाहिए। यह सुनने पर महाराजा ने अपने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाये और कहा कि उनके नेत्र भगवान् नारायण पर केन्द्रित हैं तब भाई साहब ने 'दिया बत्ती' क्रिया के लिए दीपक तैयार करने को कहा। महाराजा ने तुलसीदल से आच्छादित अपनी शय्या तथा सोने की मुद्राएं दान करने का संकल्प किया। फिर महाराजा के शीर्ष को गंगाजल तथा दही से स्नान करवाया गया।

राम, राम, राम

जब महाराजा के प्राण निकल रहे थे भाई गोविन्दराम ने उनके कान में तीन बार राम-राम का उच्चारण किया। महाराजा ने दो बार राम-राम बोला किन्तु तीसरी बार उनके ओष्ठ स्थिर हो गए तथा उनके प्राण नेत्रों के मार्ग से निकल गए। अन्तिम समय तक उनके नेत्र खुले रहे।

1 जनवरी 1960

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

भारत की जॉन ऑफ आर्क : रानी लक्ष्मीबाई

'कोमलता तेरा ही नाम है औरत शेक्सपियर ने कहा जो कि अंग्रेजी साहित्य का महान् जादूगर था। परन्तु अंग्रेजों और युद्ध के सेनापतियों ने, जो शेक्सपियर के देशवासी थे, विस्मय से महसूस किया कि शेक्सपियर का विश्वास गलत था जब मुश्किल से 23 साल की सुंदर और बहादुर जवान औरत, झांसी की महान् रानी के विरुद्ध युद्ध करते हुए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी तथा उसके अनुभवी मर्द सिपाहियों को जब उसकी तलवार काट रही थी और युद्धक्षेत्र में उनके अन्दर भय उत्पन्न कर रही थी तो उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की मजबूत नीवँ हिलती नजर आई। उन्होंने देखा कि माँ दुर्गा की तरह युद्ध की जो देवी है वह युद्ध कर रही है। शेक्सपियर के औरतों के प्रति दृष्टिकोण के विरुद्ध इतिहासकारों की कई पीढ़ियाँ यह घोषणा करती रही कि 'वीरता तेरा ही नाम है रानी लक्ष्मीबाई।'

यहाँ तक कि शेक्सपियर का जब जन्म ही नहीं हुआ था तब ब्रिटिश सेना उनका सामना कर चुकी थीं, एक बौखलाने और कुचल डालने वाली हार का। एक दूसरी जवान और बहादुर औरत के हाथों, जिसका नाम था 'जॉन ऑफ आर्क', जिसका अमर नाम स्वतंत्रता का श्रेष्ठ प्रतीक बन गया। दसियों लाख फ्रांसीसी मर्द और स्त्रियों ने युगों तक उस स्वतंत्रता की देवी को अपने हृदय-मंदिर में पूजा था। हरेक फ्रांसीसी बच्चा आज भी उसकी एक के बाद एक विजय को याद करता है और यह जानता है कि किस प्रकार विश्वासघाती कायर ब्रिटिश लोगों ने उसे जीवित जला दिया था। दोनों ही, रानी लक्ष्मीबाई और जॉन ऑफ आर्क किशोरी थीं जब उन्हें समय की पुकार ने विद्रोह के लिए खड़ा किया। दोनों में गहरी धार्मिक आस्था थी, श्रेष्ठ चरित्र था और साहसिक शक्ति थी। दोनों ने ही स्वयं युद्धक्षेत्र में सेना का नेतृत्व किया वह भी अक्सर पुरुषवेश धारण करके। दोनों की ही आत्माएं देशभक्ति से धधक रही थी, और दोनों की मृत्यु अपने शत्रुओं के हाथों एक शहीद के रूप में हुई और दोनों ही मामलों में वो शत्रु अंग्रेज (इंग्लिशतानी) थे। परन्तु रानी लक्ष्मीबाई, जिसे भारत की जॉन ऑफ आर्क कहा गया, वह कुछ और बढ़ कर थी। वह एक योग्य प्रशासक और महान् संगठनकर्ता थी जिसकी प्रशंसा मित्र और शत्रु दोनों ने समान रूप से की।

जॉन ऑफ आर्क की महानता को समझने में इतिहासकार और समालोचक एकमत नहीं थे। ब्रिटिश उसको एक धोखा मानते थे और उसकी दैवीय सहज वृत्ति को धोखा और बकवास बतलाते थे। दूसरी ओर झांसी की रानी ने अपने दुश्मनों से भी प्रशंसा अर्जित की। शक्तिशाली अंग्रेज सेनापति सर ह्यूरोज, जिसने रानी के विरुद्ध पूरे स्वतंत्रता संग्राम में युद्ध किया था, उसने प्रशंसा में भरकर कहा, 'वह उन तमाम विद्रोहियों में सबसे बहादुर और सबसे बहादुर आदमियों में से एक थी।' सी.ए. किनकेड जो प्रसिद्ध इतिहासकार व अफसर था उसने टिप्पणी की 'दुश्मन कमांडर से भी प्रशंसा पा लेना वास्तविक प्रशंसा है।' पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में लिखा है कि 'लड़कपन में रानी झांसी और जॉन ऑफ आर्क की हिला देने वाली कहानियों ने उनके मस्तिष्क को जकड़ कर प्रेरित किया था।' अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं कि 'एक नाम अन्य सभी नामों से ऊपर अभी भी आदरणीय है और यादगार में विख्यात है वह नाम है झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का, मात्र 23 वर्ष की लड़की जो युद्ध लड़ते हुए शहीद हुई। सबसे अच्छी और सबसे बहादुर विद्रोही नेता उसे कहा गया उन अंग्रेज सेनापतियों द्वारा जिन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध किया। 18 जून 1858 को यह बहादुर योद्धा स्त्री, वह भयरहित, अतुलनीय औरत सन् 1857 की क्रांति की एक सच्चे शहीद के रूप में युद्ध-स्थल में गिर पड़ी जिसने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपनी अन्तिम सांसों तक युद्ध किया। तब से लेकर अब तक हमारी धरती माता अपने पिता सूर्य के चारों ओर सौ बार प्रदक्षिणा कर चुकी है। समय में पूरी एक शताब्दी पश्चात् आज हम एक नयी शताब्दी की चौखट पर खड़े हैं। अपनी उस भारत माता की सबसे बहादुर बेटी को और सर्वश्रेष्ठ स्वतंत्रता की गाथा को अपनी अनन्त श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे हैं, जिसने वास्तव में भारत की स्वतंत्रता के पौधे को अपने रक्तिम देशभक्ति के खून से सींचा। निस्सन्देह सन् 1857 का महान् विद्रोह हमारा पहला स्वतंत्रता संग्राम था। वीर सावरकर ने भारत की एक सर्वोत्तम सेवा की जब वह इस अनोखे विद्रोह के पीछे की भावना को दुनिया के इतिहासकारों के सामने लाया। यह यन्त्रणादायक और दुर्भाग्यशाली है कि भारत सरकार द्वारा खरीदा हुआ एक इतिहासकार एस.एन. सेन, जिसने अपनी पुस्तक में इस महान् विद्रोह का वर्णन किया है, मात्र '1857' और इसमें वो इसे स्वतंत्रता संग्राम मानने में हिचकिचाता रहा है, कि यह एक विद्रोह से अधिक था। यह तथ्य उस विद्रोह के उन पांच महान नायकों से सिद्ध होता है जो अचानक उठ कर प्रकाश के केन्द्र में आ गये जिनके नाम हैं—बहादुरशाह जफर, तांत्याटोपे, लक्ष्मीबाई, नाना साहिब और कुंवर सिंह। इनमें से कोई भी ब्रिटिश साम्राज्य में श्रद्धा रखनेवाली सेना से सम्बन्धित नहीं था। 1857 का महान् विद्रोह सर्वस्व हरण किये गए लोगों द्वारा अपना राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त करने का उद्घोष था। 1857 के

नायकों के ताराग्रह में रानी लक्ष्मीबाई सबसे चमकता उभरता तारा है। विसेन्ट स्मिथ ने स्वयं स्वीकार किया है कि 1857 के तमाम सेनानायकों में रानी लक्ष्मीबाई सर्वश्रेष्ठ थी। रानी लक्ष्मीबाई का जन्म और पालन-पोषण एक मराठा ब्राह्मण परिवार में हुआ जो मध्यभारत में आकर बस गया था। मात्र 4 साल की आयु में उसके सिर से माँ का साया उठ गया। इसके बाद उसका पालन-पोषण उसके स्नेही पिता की देख-भाल में हुआ। उसे सौभाग्य मिला कि उसके बचपन की शिक्षा नाना साहिब और राव साहिब के साथ हुई जो कि पेशवा के गोद लिए हुए दो पुत्र थे।

वह अपनी अल्पायु में ही नाना साहिब की मुंहबोली बहिन हो गई। इस छोटी सुन्दर बालिका को क्षत्रिय राजकुमारों के समान सर्वोत्तम प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। नाना साहिब के साथ उसने घुड़सवारी, शिकार और युद्धकला की शिक्षा पाई। इस प्रशिक्षण ने उसे इतिहास में सर्वोच्च साहसिक भाग अदा करने के लिए तैयार किया।

एक सुन्दर जवान लड़की के रूप में, जिसमें साहसिक आत्मा थी, उस लक्ष्मीबाई का पेशवा बाजीराव की सहायता से झांसी के शासक गंगाधर राव से विवाह हुआ। वह झांसी जो बुन्देलखण्ड का एक छोटा राज्य था। यह अनाथ गरीब लड़की रातोंरात एक रानी हो गई। परन्तु और भी बड़े दुर्दिन उसकी जिन्दगी में आने बाकी थे। सन् 1851 में उसके एक सन्तान हुई जो जीवित नहीं रही। दो साल बाद गंगाधर राव की अचानक मृत्यु से यह सन्तानविहीन माता एक अन्धकारमय भविष्य लिए एक जवान विधवा हो गई। अपनी मृत्यु से एक दिन पहले उसके पति ने एक बच्चे को गोद लिया जो राज्य के मन्त्रियों, श्रेष्ठियों और राजनीतिक एजेण्ट मेजर एलिस और कैप्टेन मार्टिन की उपस्थिति में दामोदर राव के नाम से जाना गया। स्वयं राजा गंगाधर ने भी इसके बारे में ब्रिटिश गवर्नर जनरल को लिखा था। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य भारत में इतना ताकतवर हो चुका था कि फोर्ट विलियम के मुखिया ने अपने राजा की वफादारी को भुला देना वाजिब समझा और झांसी को अपने साम्राज्य में मिला लिया। लार्ड डलहोजी ने दामोदर राव को झांसी के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया और सात मार्च 1854 को झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने का हुक्म दिया। रानी जो कि मुश्किल से 18 वर्ष की थी उसने साहसपूर्वक गुंजायमान किन्तु मधुर वाणी में डलहोजी के एजेण्ट से कहा 'मैं झांसी दूंगी नहीं'।

4 जून 1857 को झांसी में विद्रोह शुरू हुआ, विद्रोहियों ने अंग्रेजों पर हमला किया और उन्हें तलवारों से काट डाला। उन्होंने झांसी पर कब्जा कर लिया। पर जल्द ही वे देहली की ओर रवाना हो गए। इसके बाद रानी ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और सर्वोत्तम प्रशासनिक क्षमता दिखाते हुए कानून एवं व्यवस्था लागू की। मेल्सन ने अपनी पुस्तक '1857 का भारतीय विद्रोह' में

लिखा—उसने अपने आपको एक योग्य शासक सिद्ध किया। उसने एक टकसाल खोल दी, अपने मजबूत महलों की किलेबन्दी की। तोपें ढाली और सैनिकों की टुकड़ियाँ खड़ी की। किनकेड ने स्वयं जांचा कि रानी शिक्षित औरत थी और अक्सर स्वयं लिखित आदेश देती थी। एक मर्द की पौशाक पहने हुए वह स्वयं दरबार में अर्जियाँ सुनती थी। वह एक सर्वोत्तम और अनथक घुड़सवार थी और निरंतर सवारी करके पूरे राज्य की सीमा निर्धारित करती थी और सभी तरह के विवादों का वहीं पर निबटारा करती थी। उसने अपने कर का प्रबंधन करना, इकट्ठा करना अतिमितव्ययिता और बुद्धिमत्ता से किया। वह अपनी घुड़सवार टुकड़ियों के लिए घोड़ों का चुनाव स्वयं करती थी। क्योंकि उसे भारत में घोड़ों की जानकारी के सम्बन्ध में सबसे बढ़िया जानकार माना जाता था। मेजर मेलकॉम ने 13 मार्च, 1855 को गवर्नर जनरल को लिखा, 'उसका चरित्र सर्वोत्तम है और उसे झांसी में प्रत्येक व्यक्ति का आदर प्राप्त है।'

इस बहादुर रानी ने झांसी पर दावा करने वाले और अंग्रेजों की सहायता प्राप्त सदाशिव नारायण के हमले का मुंहतोड़ जवाब दिया। इसके तुरंत बाद नाथे खान, जो कि झांसी का एक दूसरा शत्रु था, उसने 20,000 सिपाहियों के साथ झांसी पर हमला किया। रानी इस हमले के लिए तैयार नहीं थी, परन्तु वह डरी नहीं। तोपों को किले पर चढ़ा दिया गया। तोपों और बारूद उत्पादन का एक कारखाना खोल दिया गया। रानी ने ठाकुरों और बुन्देलों को सहायता हेतु आमंत्रित किया। औरतों को भी युद्ध में प्रशिक्षित किया और नाथे खां को एक बौखलाहट भरी इन औरतों की सेना का सामना करना पड़ा, जो बहादुरी से किले की रक्षा कर रही थी। दंतिया के शासक और दूसरे राज्यों के शासकों का सामूहिक हमला हुआ, परन्तु इस बहादुर स्त्री ने उन्हें मार-पीट कर भगा दिया। लगभग 10 माह तक, मार्च 1858 तक इस श्रेष्ठ रानी ने अपने राज्य का प्रशासन सम्हाला अपने गोद लिए पुत्र के प्रतिनिधि के रूप में, जो कि इस सिंहासन का सच्चा उत्तराधिकारी था।

नाथे खां और दूसरे शासकों ने कंपनी को सूचित किया कि रानी विद्रोहियों का साथ दे रही है। कंपनी ने जन. ह्यूरोज को झांसी विजय करने को भेजा। रानी ने अडिग साहस दिखलाते हुए, जो शायद ही किसी आदमी या औरत में पाया गया, उसका सामना किया। रानी ने मजबूती से नेतृत्व करते हुए झांसी की ब्रिटिश सेना की घेराबंदी को चुनौती दी। रात्रि के सिवाय उसकी तोपों ने आग उगलना नहीं रोका। यहाँ तक कि औरतों को देखा गया कि वो गोला-बारूद तोपों तक पहुँचा और बांट रही थी। रानी के आमंत्रण पर तांत्याटोपे अपने 15 हजार सिपाहियों के साथ पहुँच गया किन्तु उसे ह्यूरोज के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा। रानी ने अपने सिपाहियों के हृदय में आत्मविश्वास व साहस भर

दिया। एक स्वयं गवाह रहा अंग्रेज, जो युद्ध में उपस्थित था, ने वर्णन किया, 'ज्योंही हम नगरद्वार तक जाने वाली सड़क पर पीछे हटते त्योंही दुश्मन के बिगुल अवर्णनीय भयावहता लिए बज उठते और भयानक रूप से किले की नीचे की दीवार से तोपें आग उगलने लगती जहाँ से हम लोग रास्ते पर दिखाई पड़ते। एक समय ऐसा दिखाई पड़ा जैसे इस आग उगलते धुएं से एक गोलियों का तूफान फूट पड़ा हो तथा गोले-गोलियाँ और राकेट्स हमारे को मारक रूप से घायल कर रहे थे। ऐसे लगा जैसे प्लूटो और दूसरे भयानक देवता हम पर खुले छोड़ दिये गये थे।'

पूरे 12 दिन और रात इस बहादुर औरत ने बिना किसी बाहरी सहायता के ब्रिटिश गोलों का सामना किया और अपनी तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद दुश्मन को अपने से दूर रखा। परन्तु शहर नहीं बचाया जा सका। इसे लूटा, जलाया और नष्ट कर दिया गया। एक मुस्कराते हुए झांसी शहर को एक धुआं उगलते खण्डहर में बदल दिया गया। जब रानी ने अपने किले से अपने महान् शहर के पुस्तकालय को जलते देखा तो उसकी आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ गई। रानी का झांसी के किले से बचकर निकलने का सजीव वर्णन श्री बाल शास्त्री हरदास ने निम्न प्रकार किया—'जब समय आया तो रानी ने देखा कि झांसी के किले की अब एक मिनट और रक्षा नहीं कर सकती तो उसने अपने शिशु (बच्चे) को अपनी पीठ पर बांधा, अपने घोड़े पर सवार हुई और किले के परकोटे से छलांग लगाई। मध्यरात्रि के अन्धकार में तो इससे ज्यादा रोमांचक थर्रा देने वाली घोड़े पर सवार युद्ध की देवी का वर्णन क्या हो सकता है जिसके पीछे अनुसरण कर रहे थे 400 बहादुर सिपाही जिन्होंने बिजली की तेजी से अंग्रेजी सेना की कतारों और टुकड़ियों को चीरते हुए पार किया।'

एक बार जब वह अपने छोटे बच्चे से प्रेम कर रही थी और उस भूखे-प्यासे शिशु को पानी और भुना चना दे रही थी तभी लेफ्टिनेण्ट बांकर ने घातपूर्वक तलवार से उस पर हमला कर दिया। तुरंत रानी ने उस पर एक भूखी शेरनी की तरह छलांग लगाई और एक ही वार से उसकी दुधारी तलवार ने उस तलवार पकड़ी भुजा को काट फेंका जिसने तलवार की मूंठ गिरते वक्त भी पकड़ रखी थी।

जब झांसी का पतन हुआ तो रानी कालपी में तांत्याटोपे और नाना साहिब के साथ शामिल हो गई। मात्र 250 सैनिकों के साथ उसने बहादुरी से कालपी पर ब्रिटिश हमले का सामना किया, जब तक कि कालपी का पतन न हुआ और उसके सिपाही पीछे न हटे। वह इस विद्रोह की ज्वाला को कालपी से लेकर ग्वालियर पहुँची और उसने ग्वालियर को पुनः हथियाने की एक साहसिक योजना बनाई तथा उसे सफलतापूर्वक पूरा किया। परन्तु ग्वालियर पर कब्जा कर लेने के बाद राव साहिब और उसके दरबारी तुरंत जिस कार्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए, उस पर

ध्यान न देकर आराम और आनंद में व्यस्त हो गए। खुले दरबार में रानी ने उनसे कहा कि वे अपनी आंखें खोलें। जैसा उसका उचित भय था ब्रिटिश टुकड़ियों ने ह्यूरोज के सेनापतित्व में ग्वालियर को घेर लिया। इस बहादुर रानी ने टुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए एक भयानक युद्ध उनसे लड़ा। मर्दाना पौशाक, घोड़े पर सवार तथा बिजली जैसी फुर्ती के साथ वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर सिपाहियों को उत्साहित करती हुई लड़ती रही। विशाल तथा शक्तिशाली ब्रिटिश सेना का सामना करते हुए बुरी तरह से घायल और सोलह घण्टे तक निरन्तर लड़ते हुए रानी घोड़े पर सवार हुई अपने शिशु बच्चे को खून से भरे शरीर पर बांधा और शत्रुओं के घेरे को चीरती हुई बाहर निकल गई। ब्रिटिश टुकड़ियों ने भय से देखा कि किस भयानकता के साथ वह उनके घेरे को तोड़ती हुई बाहर निकल गई और उन्होंने बिग्रेडियर स्मिथ के नेतृत्व में उसका पीछा किया। रानी तलवार से कटने और खून के बहने से पूर्णतया अंधी-सी हो गई थी क्योंकि खून उसकी आंखों के अंदर पहुँच रहा था। दुर्भाग्यपूर्ण हालात से घिरी हुई तथा अंग्रेजों द्वारा पीछा किये जाते हुए उसने एक नाले को पार करना चाहा परन्तु उसके नये घोड़े ने नाले के पार छलांग लगाने से इन्कार कर दिया। पीछे से वह कायर अंग्रेजों द्वारा घेर ली गई। कायर ब्रिगेडियर स्मिथ ने तलवार से वार किया था। रानी का दायां हाथ कट कर गिर गया और उसकी दायीं आंख बाहर निकल आई। अपने शिशु को पकड़े जाने से बचाने के लिए रानी बहादुरी से घायल शेरनी की तरह स्मिथ पर झपटी और अपनी तलवार के एक ही आघात से उसे मार डाला। तब लड़खड़ाते और ठोकरें खाते हुए उसने उस नाले को पार किया और बाबा गंगादास की कुटिया के सामने जाकर वह गिर पड़ी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार रानी की व्यक्तिगत नौकरानी पृथ्वीबाई और कुछ दूसरे इतिहासकारों के अनुसार उसका विश्वसनीय सेवक रामचन्द्र राव देशमुख उसे युद्धक्षेत्र से उठाकर बाबा गंगादास की कुटिया पर ले गए। उसे तुरंत उसकी इच्छा के अनुसार एक घास की ढेरी में जला दिया गया था क्योंकि उसकी अन्तिम इच्छा थी कि उसके शरीर को कोई नालायक दुश्मन छू कर अपवित्र न करे। इस प्रकार एक सर्वश्रेष्ठ, एक सर्वोच्च वीर, एक मानव इतिहास की सर्वोच्च देशभक्त और भारत माँ की दुलारी पुत्री हमेशा के लिए विदा हो गई।

सन् 1857 की क्रांति में रानी का अनोखा कार्य पिता से पुत्र तक, राष्ट्रीयता की जलती हुई मशाल की तरह दोहराया जाना चाहिए। वीर सावरकर के शब्दों में, 'वह तमाम सद्गुणों की एक निचोड़ थी, मुश्किल से 23 साल की औरत, जो गुलाब की तरह सुन्दर थी, व्यवहार में आकर्षक थी, क्रियाकलाप में शुद्ध, जिसमें अपनी प्रजा को संगठित करने की शक्ति थी, उसने वह दर्शा दिया जो बहुत विरले मर्दों में पाया जाता है। देशभक्ति की ज्वाला जिसके हृदय में धधकती थी, जिसे

अपने देश के सम्मान और युद्ध निपुणता पर गर्व था। ऐसा अत्यन्त विरला पाया जाता है कि एक राष्ट्र इतना भाग्यशाली हो जो दावा कर सके एक दैवी विभूति का, एक बेटी और एक रानी के रूप में। ऐसा सम्मान इंग्लैण्ड के भाग्य में कभी नहीं रहा। इटली के विद्रोह में उच्च विचार और शौर्य के बहुत ऊँचे मानदंड पाये जाते हैं, फिर भी इस शानदार युग में इटली किसी भी लक्ष्मीबाई को जन्म नहीं दे सकी। आओ, इस शहीदी शताब्दी के अवसर पर इस श्रेष्ठ और शौर्यशाली स्त्री की चिता को हम याद करें जो बाबा गंगादास की कुटिया के नजदीक धधक रही है और उसे अपनी भावविभोर हृदय की श्रद्धांजलि और सच्ची श्रद्धांजलि रानी लक्ष्मीबाई को प्रदान करें जो कि भारतीय स्वतंत्रता की देवी है।

जो न स्वयं करता है और न कर्तव्यनिष्ठों को करने देता है, न स्वयं जानता है, न जानकार की बात मानता है, वह भोग और मोक्ष का मार्ग अवरुद्ध कर अन्त में पछताता है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

युग-गुरु राजा राममोहनराय

26 सितम्बर 1833 के दिन इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर में भारतमाता के अत्यन्त गौरवशाली पुत्र का स्वर्गवास हो गया। तब से अब तक हमारी धरती अपने जन्मदाता भगवान अंशुमाली के गिर्द 125 चक्कर लगा चुकी है और उसके साथ ही भारत का भाग्य-चक्र भी कई बार ऊपर और नीचे घूम चुका है, किन्तु उस महापुरुष का यश आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है। वे महामानव भारत के आधुनिक युग के निर्माता, युग-गुरु राजा राममोहनराय हैं। ब्रिस्टल नगर की अनन्त शान्ति में उनकी एकान्त समाधि है। वहाँ भारतमाता का लाडला इंग्लैण्ड की गोद में चिरनिद्रा में सोया हुआ है। अपने जीवन द्वारा उसने पूर्व तथा पश्चिम को निकट लाने का प्रयास तो किया ही था, अपनी मृत्यु द्वारा भी उसने प्राच्य एवं पाश्चात्य को सदा के लिये एक पवित्र सम्बन्ध से जोड़ दिया है। राजा राममोहनराय की समाधि पर एक अंग्रेज पहरेदार सदा पहरा देता है। उसके पास एक पुस्तक है जिसका दर्शन करना बड़ा आनन्ददायक है— समाधि पर आने वाले दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के हजारों महापुरुषों द्वारा राजा राममोहनराय को समर्पित की गई श्रद्धाञ्जलियाँ उसमें अंकित हैं। पूरी सवा शताब्दी पश्चात् उस महान् भारतीय की विदेश-स्थित समाधि को अपने मानस पटल पर चित्रित कर आज भारत के कोटि-कोटि नर-नारी उस युगद्रष्टा को अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे हैं।

संस्कृतियों के संगमस्थल पर महापुरुषों का आविर्भाव होता है। प्रभु रामचन्द्र द्वारा निर्मित सागरसेतु की अपेक्षा उन द्वारा आर्य-अनार्य संस्कृतियों के मध्य निर्मित सांस्कृतिक सेतु-बंध अधिक महत्त्व का है। भारत के धर्म का पश्चिम के विज्ञान से सम्बन्ध आने पर, केवल एक धर्मगुरु की नहीं वरन् महागुरु की आवश्यकता थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन के शब्दों में, युग की प्रबलतम मांग के उत्तर में आने वाले राजा राममोहनराय तथागत कहे जा सकते हैं—यथा अपेक्षितः तथा आगतः। उस महान् सांस्कृतिक वीर का जन्म 22 मई 1774 के दिन बंगाल के जिला हुगली के राधानगर गांव में एक उच्च ब्राह्मण परिवार में हुआ।

तत्कालीन भारत की दशा बड़ी दयनीय थी, प्राचीन गौरव नष्ट हो चुका था। शासक भारतीय जनमत पर अपना धर्म लादने के लिये प्रयत्नशील थे। पश्चिम के

बुद्धिवाद ने भी धर्म पर तीक्ष्ण प्रहार शुरू कर दिये थे। धर्म रूढ़ियों के दलदल में फंसा हुआ था। धर्म के नेता केवल अनपढ़ पण्डा लोग थे। समाज में अनेक कुरीतियाँ घुस चुकी थीं। इस सबको बदलकर आलोक का मार्ग दिखाने वाले वीर का नाम ही राममोहनराय है। धर्म, राजनीति, समाजसुधार, शिक्षा, विश्वप्रेम, सभी क्षेत्रों में मार्गदर्शक का कार्य राजा राममोहनराय ने किया। युगद्रष्टा ने भावी भारत का एक भव्य चित्र आंखों के सामने रखकर सम्पूर्ण जीवन उसी चित्र को साकार करने के लिये अर्पित कर दिया। उस महान् द्रष्टा के विचारों के अंकुर आज तक फूट रहे हैं तथा नये-नये फूलों तथा फलों द्वारा नवीन भारत की फुलवारी को सुवासित कर रहे हैं। श्रीयुत एन.सी.ई. जकारिया के शब्दों में, 'हिन्दू नवोदय की धारा के युग में छोटे-बड़े अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं। यह धारा अब भी प्रवाह में है और आज भी ऐसे व्यक्तित्वों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है। किन्तु इन सारे व्यक्तित्वों के आध्यात्मिक पिता राममोहनराय हैं।'

राजा राममोहनराय की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। बड़ी अल्पायु में ही उन्होंने फारसी, अरबी, संस्कृत, अंग्रेजी, लातीनी, हिब्रू तथा ग्रीक भाषाओं में उच्च योग्यता प्राप्त की तथा अन्य धर्मग्रंथों के अतिरिक्त यहूदी और ईसाई बाइबिल का अध्ययन उनकी मूल भाषाओं में किया।

भारत के शिक्षा-शास्त्रियों में राजा राममोहनराय का स्थान इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने ही सबसे पहले वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिये मांग की थी, राजा राममोहनराय बडे दूरदर्शी थे, वे स्पष्ट देख सके थे कि भारत का भविष्य विज्ञान, शिल्प, इतिहास, राजनीति और अन्य पाश्चात्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने में है और यह ज्ञान भारत में अंग्रेजी द्वारा ही फैलाया जा सकता है। भारत को विश्व ज्ञान से भर देने के लिये वे अंग्रेजी को एक अच्छा साधन समझते थे, किन्तु अंग्रेजी के साथ वे अंग्रेजीयत के समर्थक कभी नहीं थे। राममोहनराय इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारत के प्राचीन सत्यों का यूरोप के नवीन सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य बिठाये बिना भारत का कल्याण नहीं है। वेदान्त और वैज्ञानिकता के मणि-कांचन संयोग का संदेश जो बाद में विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ की वाणी से गुंजरित हुआ, सबसे पहले राममोहनराय की ही मेधा का फल था। उन्होंने लार्ड एम्एर्स्ट को पत्र लिखकर भारत के लिये आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा की प्रबल मांग की थी तथा अपने दो मित्रों की सहायता से सन् 1816 में हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जो आगे चलकर प्रेसिडेन्सी कॉलेज के नाम से सुस्थापित हुआ। आधुनिक युग में नारी शिक्षा के लिये सबसे पहले आवाज उठाने वाले राजा राममोहन ही थे। देशवासियों को मोह-निद्रा से जगाते हुए उस क्रान्तदर्शी राजा ने कहा कि भारत की नारियों को वैसी ही विद्या-विदुषी बनना चाहिए जैसी प्राचीन काल में मैत्रेयी, गार्गी, लीलावती और विद्योत्तमा थी।

भारत के कोटि-कोटि जनगण के हृदयों पर राज करने वाले इस सर्वस्वदानी राजा ने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित किया। तब तक स्वामी दयानन्द सरस्वती या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म तक न हुआ था तथा हिन्दी का आधुनिक काल भी प्रारम्भ न हुआ था। राजा राममोहन ने ब्रह्मसूत्रों पर अपना भाष्य बांग्ला में प्रकाशित करने से पहले हिन्दी में प्रकाशित किया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में, राममोहनराय आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक लेखकों में से एक हैं। बांग्ला भाषा में भी ब्रह्म संगीत के आदि रचयिता राजा राममोहनराय ही हैं। उसी रहस्यवादी गीत-शैली का चरमोत्कर्ष कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताञ्जलि में हुआ जिसका विश्वभर में गान हुआ। राजा राममोहन हिन्दू धर्मसुधार के पिता माने जाते हैं। ईसाई धर्म के विषय में जो बात जॉन विकलिफ के लिये कही जाती है, वही हिन्दू धर्म के विषय में राममोहनराय के लिये कही जा सकती है। राय के उदय से पूर्व की स्थिति बड़ी गम्भीर थी। बाहर से आने वालों ने हिन्दू धर्म के जर्जरित वृक्ष को देखा और परामर्श दिया कि इस प्राचीन, सूखे, फलरहित अनावश्यक झाड़-झंखाड़ को रखने से क्या लाभ? श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—'ईसाई पादरी हिन्दुत्व पर निन्दा की वृष्टि कर रहे थे। हिन्दू धर्म पर चारों ओर से आलोचना के बाण बरस रहे थे। किन्तु उनका उत्तर देने वाला कोई नहीं था। हिन्दू धर्म का नेता पंडा और पुरोहित वर्ग था जिसकी सबसे बड़ी पूंजी रूढ़ियाँ और अंधविश्वास था। भला यह वर्ग क्या कहकर निन्दकों को जवाब देता?' पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ हिन्दू धड़ा-धड़ ईसाई बन रहे थे। प्रायः धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य सामाजिक सुविधा होता था। स्वयं माइकल मधुसूदन दत्त जैसे विद्वान ने भी स्वीकार किया है, 'मैंने पेट भरने के लिये ही ईसाई धर्म स्वीकार किया।' राजा राममोहन को तिहरा कार्य करना था। ईसाई आक्रमण से हिन्दू धर्म की रक्षा करना, निरर्थक रूढ़ियों की चट्टानों को तोड़कर हिन्दुत्व को शुद्ध धर्म के आलोक से भरना तथा सभी धर्मों के श्रेष्ठ तत्त्वों के समन्वय से विश्वधर्म का स्वरूप निर्माण करना। इतिहास साक्षी है कि राजा राममोहन इन तीनों कार्यों में यशस्वी हुए। जैसे कृषिकार धान्य बोने से पहले घास-फूस आदि को उखाड़ता है, अध्यात्मिक कृषिकार को रूढ़ियों के झाड़-झंखाड़ को उखाड़ना पड़ता है, राममोहन ने बताया कि मूर्तिपूजा केवल सीमित सामर्थ्य एवं मंद बुद्धिवाले लोगों के लिये मार्ग है जबकि आनन्द प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है—शुद्ध अध्यात्मिक-चिंतन। चाहे वे स्वयं मूर्तिपूजा के समर्थक नहीं थे किन्तु वे किसी का हृदय दुःखाना भी नहीं चाहते थे। ब्रह्म समाज के नियमों में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि 'पूजा में किसी भी ऐसी सजीव या निर्जीव वस्तु की निन्दा नहीं की जायेगी जिसकी थोड़े से लोग भी पूजा या आराधना करते हों। ब्रह्म समाज हिन्दू धर्म की वह पहली अंगड़ाई थी जो विदेशियों के प्रहारों से हिन्दुत्व की नींद टूटने पर सबसे पहले प्रकट

हुई थी। भारतवर्ष यूरोप के साथ जो समन्वय खोज रहा था, उसकी झलक हमें ब्रह्म समाज के रूप में दिखाई दी। राजा राममोहन हिन्दुत्व, इस्लाम तथा ईसाई धर्म, तीनों पर समान अधिकार रखते थे। हिन्दुत्व में उन्होंने वेदान्त का आश्रय लिया। उनकी साधना में गायत्री मंत्र का जाप तथा उपनिषदों का पाठ सम्मिलित था। गम्भीर अध्ययन एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण वे विश्ववादी बन गये थे। दिनकर के शब्दों में, 'भारत का कायाकल्प हुआ, निरर्थक रूढ़ियाँ धूलवत् झड़ गईं, मनुष्य की उदारता में वृद्धि हुई और हिन्दूधर्म इस रूप में खड़ा हुआ जिसे हम विश्व धर्म की भूमिका कह सकते हैं।'

राजा राममोहन धार्मिक सुधारक से भी बढ़कर समाज सुधारक अधिक थे। सती-प्रथा के उन्मूलन का श्रेय उन्हीं को मिलता है। वैसे इस प्रथा को समाप्त करने का एक असफल प्रयास पहले सम्राट् अकबर भी कर चुका था। राजा राममोहन के बड़े भाई का देहांत होने पर उन्होंने अपनी भावज को बहुत समझाया कि वह सती न होवे, परन्तु वह उस समय तो न मानी। बाद में वह चिता पर रखी गई तो उसने चीख-चिल्लाहट शुरू की और उठकर भागने का यत्न किया पर सम्बन्धियों ने बांसों से उठने न दिया और ढोल बजाकर उसके रुदन को भी दबा दिया। राममोहन के कोमल हृदय पर इस करुण दृश्य से बड़ा आघात लगा। उन्होंने मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रों के आधार पर यह प्रमाणित किया कि बलपूर्वक किसी नारी को जला डालना घोर पाप है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप उनके देहान्त से 4 वर्ष पूर्व ही सन् 1829 में लार्ड विलियम बेंरिङ्क ने सती-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। भारत में आज पहली बार बहु विवाह प्रथा अवैध घोषित हुई है, किन्तु राजा राममोहनराय ने डेढ़ शती पूर्व ही इसे हिन्दू धर्मशास्त्रों के विरुद्ध घोषित किया था। स्त्रियों के अधिकारों तथा सम्पत्ति-उत्तराधिकार पर भी उन्होंने ऐसे मत स्थापित किये थे जो आज मान्य हो रहे हैं।

सन् 1857 के महान् भारतीय संग्राम से आधी शती पूर्व ही राजा राममोहन में हमें भारतीय स्वातंत्र्य की एक ज्वलन्त भावना के दर्शन होते हैं। इंग्लैण्ड के सम्राट् को उन्होंने लिखा कि यदि भारत के साथ उदारता का व्यवहार हुआ तो भारत ब्रिटेन का मित्र बन सकता है अन्यथा वह एक पक्के शत्रु के समान स्थायी संकट भी बन सकता है। उनकी आत्मा की सबसे बड़ी आकांक्षा स्वतंत्रता ही थी। भारत की गुलामी की शृंखलाओं को तोड़ने के लिये प्रयत्नशील उस स्वातंत्र्यवीर के विषय में उनके समकालीन एक अंग्रेज लेखक ने लिखा—'वह या तो स्वतंत्र होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं।' उन्होंने भारत में स्वतंत्र प्रेस के लिये प्रयत्न किया तथा प्रेस रेग्यूलेशन ऐक्ट का घोर विरोध किया।

विश्व प्रेम तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में भी राममोहनराय युग के पथ-प्रदर्शक थे। स्पेन में वैधानिक शासन हो जाने का समाचार सुनकर वे प्रफुल्लित हो

गये तथा उन्होंने कलकत्ता के टाउन हॉल में एक महान् भोज दिया। उन्होंने आयरलैंड के साथ उसकी राजनीतिक स्वाधीनता के संघर्ष में भी सहानुभूति प्रकट की। इंग्लैण्ड जाते हुए वे मार्ग में वे-कैप पर रुके तथा चाहे वे तनिक लंगड़ाते हुए ही फ्रांस के स्वाधीनता के झण्डे तक चलकर गये तथा फ्रांस के झण्डे को स्पर्श कर फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की भावना का अभिवादन किया। जब नेपल्स में स्वाधीनता आन्दोलन असफल हो गया तो उन्होंने अपने मित्रों से मिलना बंद कर दिया। लीग ऑफ नेशन के निर्माण से एक शताब्दी पूर्व राजा राममोहनराय के ऐसे उदार अन्तर्राष्ट्रीय विचार थे। राममोहनराय के अपने विचार में, 'सारी मनुष्य-जाति एक परिवार है तथा जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र हैं वे उसी एक परिवार की शाखायें हैं।' आज भारत की वैदेशिक नीति भी इसी भावना से अनुप्राणित है, जिसका मूल्यांकन करते हुए भी दिनकर ने लिखा है—'यूरोप की विश्व मानवता संकीर्ण थी, क्योंकि उसमें पूर्वी जगत् के लिये स्थान नहीं था, दुर्बल जातियों की गणना नहीं थी।.... किन्तु राममोहनराय की विश्व मानवता का वृत्त बहुत अधिक विस्तृत था जिसमें समस्त भू-मण्डल की स्वतंत्र, समृद्ध, पराधीन, दलित और निम्नोन्नत जातियों के लिये एकसमान स्थान था।'

उस युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा राजा राममोहनराय को उनकी 125वीं श्राद्ध तिथि पर कोटि-कोटि श्रद्धाञ्जलियाँ सादर समर्पित हो।

27-9-1958
आकाशवाणी वार्त्ता

प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दु विशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्म स्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता....। धर्म ही हमारे तेज, बल, इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।....यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी दयानंद सरस्वती

'मनुष्य उसे कहना चाहिये जो अत्याचारी से न डरे, धर्मात्मा और निर्बल से डरता रहे। इस कार्य में चाहे उसे बड़ा भारी दुःख मिले या जान भी चली जाए किन्तु वह अपने मानव धर्म से कभी अलग न हो।' स्वामी दयानंद द्वारा दी हुई मनुष्य की यह परिभाषा स्वयं उन पर भी कितनी अच्छी तरह लागू होती है। वे मानवता के मुकुटमणि थे और मानवता के उद्यान के एक सुन्दर खुशबूदार फूल थे जिसकी सुगन्ध युग-युग तक फैली रहेगी।

'मैं लोगों को बंधनों से छुड़ाने के लिये आया हूँ, बांधने के लिए नहीं।' इन शब्दों से दया के सागर ने आज से पूरे 75 साल पूर्व अपने को विष देने वाले रसोइये को कुछ पैसे देकर भगा दिया ताकि पुलिस उसे पकड़ न ले। 30 अक्टूबर 1883 की वह संध्या जब मिट्टी के हजारों दीये दीपावली पर जल उठे, तो वेदज्ञान का जिन्दा दीपक स्वामी दयानंद सदा के लिए बुझ गया। स्वामीजी का महानिर्वाण हो गया। उनका शरीर रूपी दीया चाहे उसी दिन टूट गया पर उनकी आत्मा का प्रकाश अभी भी संसार में जगमगा रहा है।

प्रसिद्ध इतिहासकार एच. जी. वैल्स ने अपने ग्रन्थ 'विश्व का इतिहास' में यह लिखा है कि हजरत ईसा मसीह ने सूली पर चढ़ते समय यह कहा, 'भगवान्, आप मेरा साथ क्यों छोड़ रहे हैं?' यह शब्द कोई अधिक गौरव प्रकट नहीं करते। स्वामी दयानंद का मरते समय के वाक्य, 'प्रभु, आपकी इच्छा पूर्ण हो।' बहुत ऊँचे भाव प्रकट करते हैं।

साधु टी. एल. वासवानीजी ने कहा है, 'मैं कभी आर्य समाज का सदस्य नहीं रहा हूँ।....पर स्वामी दयानंद सदा मेरे लिये अनोखी खिंचावट वाला चुम्बक रहे हैं। मैं उनकी याद में आनन्द की हिलोरें लेता हूँ।'

योगीराज अरविन्द घोष लिखते हैं कि यदि भारत के महापुरुषों को हिमालय की चोटियाँ मान लें तो ऋषि दयानंद एक मजबूत ऊँची चोटी के समान है जो साक्षात् बल की मूर्ति है जिसके सिर पर की हरियाली वातावरण को शुद्धता प्रदान करती है और जिसके वक्ष से फूटकर उठे जल का झरना सारी घाटी को शीतलता और जीवन प्रदान करता है।

भारत में एक नई क्रान्ति के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात के काठियावाड़ के मौरवी राज के टंकारा नामक ग्राम में हुआ था। गिरनार पर्वत की चट्टानों जैसा बल एवं तट से टकराती लहरें और सागर जैसी गहन गम्भीरता—यह सब स्वामीजी के व्यक्तित्व में समा गए। उनका जन्म गुजराती ब्राह्मणों की औदीच्य शाखा के एक सामवेदी कुटुम्ब में हुआ था। शिवरात्रि के उत्सव में उन्हें बोध प्राप्त होने की घटना जगत प्रसिद्ध है। यह एक विचित्र प्रसंग है कि भगवान् कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ। पर उन्होंने अपना साम्राज्य द्वारिका नगरी में बनाया। इसके विपरीत स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात में हुआ। पर वे अपनी शिक्षा प्राप्त करने के लिये मथुरा में आ बसे। पर स्वामीजी के उपदेश का नन्हा पौधा न तो गुजरात में पैदा हुआ और न ही मथुरा में अच्छी तरह फला। यह तो पंजाब की धरती पर खूब फूला फला। पंजाब की धरती जहाँ, सब से प्रथम वेदों का ज्ञान हुआ, वहीं पर स्वामीजी का वेदों का संदेश अपनी जड़ें जमा सका। बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि स्वामी दयानंद ने मथुरा में जिस नेत्रहीन गुरु स्वामी विरजानंद से वेदों की शिक्षा ग्रहण की और जिन्हें गुरु दक्षिणा स्वरूप गुरु के आदेशानुसार देश भर में घूम-घूम कर वेदों का उपदेश किया उन स्वामीजी (विरजानंदजी) का जन्म पंजाब के प्रसिद्ध नगर करतारपुर में हुआ था। इसलिये स्वामी दयानंद में गुजरातियों सी दृढ़ता, मथुरावासियों सी विद्वत्ता एवं पंजाबियों जैसा जोश—यह सबकुछ समा गया था।

श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—जिस प्रकार हमारी राजनीति के क्षेत्र में वीरता का तेज सबसे पहले लोकमान्य तिलक के रूप में प्रकट हुआ उसी प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में भारत का गौरव सबसे पहले स्वामी दयानंद के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना सभाएं जैसी कुछ संस्थाएं समाज सुधार कार्य में लगी थीं किन्तु उनके अन्दर यह दुःख सताता रहता था कि वे विदेशियों की नकल कर रहे हैं। स्वामी दयानंद ने ललकार कर कहा कि हमारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म ही है, अतः इसे अपना कर ही हम विश्व-विजयी हो सकते हैं।

स्वामी दयानंद का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है—वेदों का उद्धार करना। हर देश का एक गौरव होता है, उसे भुलाकर वह जाति मिट जाती है। भारत का यह गौरव रहा है कि जब बाकी सारा संसार गफलत की नींद में सो रहा था, अमरीका का कुछ पता ही नहीं था और यूरोप के लोग मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खाते थे, तब सब से पहले भारत के ऋषियों ने वेदों के ज्ञान की मशाल हाथ में लेकर सारे विश्व को प्रकाश दिया। ऋग्वेद से ज्यादा पुरातन ग्रन्थ विश्व के किसी पुस्तकालय में नहीं है। 19वीं सदी में भारत के गुलाम होने के कारण कुछ पश्चिमी विद्वानों ने वेदों को गडरियों का गीत कह कर पुकारना शुरू किया। इस से भारत के सम्मान को बहुत क्षति पहुँची। इस समय भारत के गौरव की रक्षा हेतु स्वामी

दयानंद सरस्वती आए। उन्होंने सकल भारत में घोषणा की कि वेद ही सभी विद्याओं का मूल है। स्वामीजी प्रसिद्ध जर्मन विद्वान बैचलर एवं फ्रांसीसी विद्वान मोनियर विलियम से मिले और उन्हें वेदों का वास्तविक ज्ञान समझाया। स्वामीजी द्वारा वेदों पर भाष्य देखकर प्रो. मैक्समूलर भी जो एक बार अपने मन में वेदों के प्रति कुछ हीन विचार बना चुका था, दुबारा वेदों का भक्त बन गया। योगीराज अरविंद घोष ने लिखा है कि वेद विद्या के जो द्वार समय के बीत जाने पर बंद हो गए थे, ऋषि दयानंद ने उन्हें खोलने की चाबी ढूंढ़ ली और इस तरह कैद हुए ज्ञान के झरनों के बंधन खोल दिये।

स्वामी दयानंद का जीवन तपस्या की भट्ठी में तप कर पवित्र हो गया था। केवल 21 वर्ष की आयु में वे घर से बाहर निकल आये और लगभग 20 वर्ष तक वे वेद ज्ञान की खोज में जगह-जगह विद्वानों के पास आते-जाते रहे। वे आदित्य ब्रह्मचारी थे, अतः ब्रह्मचर्य में ही उन्होंने संन्यास ले लिया। उन्होंने पथ भ्रष्ट एवं योग भ्रष्ट समाज को समझाया कि ब्रह्मचर्य से ही हमारा राष्ट्र बलवान बन सकता है। एक बार स्वामीजी जालंधर में थे तो एक सेठ, जो अपनी बग्घी में बैठ कर स्वामीजी से मिलने आया था, स्वामीजी से बोला कि आप तो ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा गाते हो पर आपने कोई ब्रह्मचर्य का चमत्कार नहीं दिखाया। स्वामीजी मुस्कराते रहे, वापस जाते समय सेठजी ने घोड़ों को चाबुक मारी तो वे हिल भी नहीं पाए। उन्होंने मुड़कर देखा कि स्वामीजी एक हाथ से बग्घी को पकड़े हुए थे। वह सेठ बहुत लज्जित हो गए और स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े। इसी प्रकार राजस्थान में अपने पर आक्रमण की नीयत वाले राजा की तलवार पकड़ कर दो टुकड़े कर दिए।

संन्यासी के रूप में स्वामीजी का उपदेश सारे विश्व के कल्याण के लिये था। परन्तु वे महान् देशभक्त भी थे। उन्होंने गांधी युग से बहुत पहले ही विदेशी वस्तुओं के विरोध का प्रचार किया था। स्वराज की मांग तो उन्होंने कांग्रेस के जन्म से पहले ही कर दी थी कि अच्छे से अच्छा विदेशीराज भी अपने देश के स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सन् 1857 की आजादी की महान् क्रान्ति में वे गुप्त रूप से क्रान्ति को सफल बनाने में सहायता कर रहे थे।

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी देन महान् है। प्राचीन गुरुकुलों के ढंग पर निःशुल्क उच्च भारतीय शिक्षा के बारे में उन्होंने बहुत अच्छा कार्य किया। शिक्षा का प्रकाश उन्होंने सबके लिये खोल दिया, क्या स्त्री, क्या शूद्र। ज्ञान के अमृत से कोई वंचित नहीं रहना चाहिये। पंजाब में कन्या पाठशाला खोलने के विषय में सबसे पहला प्रयास स्वामीजी ने ही किया।

स्वामीजी महान् समाज सुधारक थे, उन्होंने कुरीतियों, रूढ़ियों और फिजूल रीतियों का विरोध किया। उन्होंने धर्म को बुद्धि का सहारा देकर खड़ा किया।

विधवा पुनर्विवाह का उन्होंने समर्थन किया और बाल विवाह का घोर विरोध किया। जाति प्रथा के विषय में स्वामीजी का कथन है कि जाति जन्म से नहीं मिलती, बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव से मानी जानी चाहिये। यदि ब्राह्मण होकर कोई शर्मा 'बूट फैक्टरी' खोलता है तो उसका कर्म तो शूद्र का ही है। इस प्रकार कोई शूद्र होकर भी विद्वान और धर्मात्मा हो तो वह महर्षि वाल्मीकि जैसा पूज्य है।

भाषा के विषय में स्वामीजी ने सबसे पहले रोशनी दिखाई। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकारा और सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में लिखा। स्वामीजी हिन्दी गद्य लिखने वाले लेखकों में उच्च माने जाते हैं। वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान थे और संस्कृत के प्रचार-प्रसार में बहुत योगदान दिया। इस प्रकार यह मृतप्रायः भाषा फिर जीवित हो उठी। हिन्दी का पढ़ना-लिखना उन्होंने आर्य समाज के नियमों में ही मिला दिया। इस प्रकार हजारों-लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी, पढ़ी। इस प्रकार स्वामी दयानंद भाषा की स्वतन्त्रता, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता, राजनीतिक और विचारधारा की स्वतंत्रता के महान् अग्रदूत थे। भारत के कृतज्ञ नर-नारी उनकी सेवा को सदैव याद रखेंगे।

30-10-1958

आकाशवाणी जालंधर से प्रसारित वार्त्ता

जब मनुष्यों के मन में अपने ही प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी तब समझ लेना चाहिये कि वह विनाश की अन्तिम सीढ़ी पर आ गया है। मेरी ओर देखिये, मैं हिन्दू जाति का एक तुच्छ प्राणी हूँ, फिर भी मुझे अपनी जाति का अभिमान है अपने पूर्वजों पर गर्व है। अपने को हिन्दू कहने में मुझे गर्व का अनुभव होता है। मुझे अभिमान है कि आपके अयोग्य सेवकों में भी एक हूँ। मुझे इस बात पर घमंड है कि मैं आपका देशवासी हूँ जो ज्ञानियों के वंशज है तथा संसार में अद्वितीय महाप्रतापी ऋषियों के वंशज है। अतः अपने में विश्वास रखिये और अपने पूर्वजों पर लज्जित होने के बजाय उन पर अभिमान कीजिये।

—स्वामी विवेकानन्द

परमहंस देव का जीवन-दर्शन

पश्चिम की आवाज राजनीति की आवाज है और भारत की ध्वनि धर्म की ध्वनि है। पश्चिम अधिकारों के लिए क्रान्तियाँ और संग्राम करना जानता है पर भारत धर्म एवं कर्तव्य की रागिनी गाने वाले प्रशान्तात्मा, स्थितप्रज्ञ महात्माओं को उत्पन्न करने में सारे संसार से आगे रहा है। पश्चिम में जहाँ मनुष्य की क्षुधा और वासना को अधिक महत्त्व दिया है, वहाँ भारत ने मानवता के मान तथा चारित्रिक गौरव के स्वामी महापुरुषों को जन्म दिया है, जो मानव हृदय की क्षुद्र वासनाओं तथा कामनाओं से ऊपर उठकर अपनी चेतना को विश्व चेतना से तदाकार कर स्वयं सत्य स्वरूप बनने में समर्थ हो सके हैं। भगवान् रामकृष्ण परमहंस भगवान् बुद्ध के पश्चात् सब से बड़े लोकनायक हुए हैं। जिन का सन्देश सात समुद्र पार के विदेशों में भी पहुँचने में समर्थ हुआ है। केवल इतना ही नहीं, उनके पट्ट शिष्य स्वामी विवेकानंद के द्वारा समस्त संसार में जहाँ भारत एवं भारतीयता का शीश ऊँचा हुआ है, वहाँ आज तक भी उन्हीं परमहंस महात्मा के पवित्र नाम से संसार भर में चलने वाले रामकृष्ण मिशन की असंख्यात शाखाओं द्वारा कोटि-कोटि भारतीय एवं विदेशी आत्माओं की आध्यात्मिक पिपासा को अमर तृप्ति लाभ हो रहा है।

उन परमहंस देव की प्रशस्ति में फ्रांस के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान श्री रोमां रोलां ने कहा है, 'भारत महादेश के कोटि-कोटि नर-नारियों की 2000 वर्ष की कठोर तपश्चर्या के फलस्वरूप भारत को एक ईश्वरीय वरदान मिला भगवान् रामकृष्ण परमहंस। उन पुण्यश्लोक महात्मा के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गाया है—'यह परमहंस देव का जीवन धर्म को व्यवहार में साकार करने के प्रयास की एक अमर गाथा है।' स्वयं भारत-गौरव स्वामी विवेकानंद ने अपने महान् गुरु की यशोगाथा गाते हुए कहा—'धर्म पुस्तकें तो केवल सिद्धान्त मात्र हैं, वे मूर्तिमान सिद्ध थे। उन्होंने केवल 50 वर्ष के अपने लघु जीवनकाल में ही 5000 वर्ष के जीवन की आध्यात्मिक यात्रा तय कर ली थी। इस प्रकार वे आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक दिव्यादर्श बन गये थे।'

सन् 1833 में बंग भूमि के हुगली जिला में कामारपूकर नामक गांव में एक धार्मिक ब्राह्मण खुदीराम चट्टोपाध्याय के गृह में उस महान् ईश्वरीय ज्योति का आविर्भाव हुआ, कालांतर में जिस के नाम स्मरण मात्र से कोटि मानव हृदयों का अज्ञानान्धकार दूर हुआ तथा जिस के आश्रमों की छाया में भौतिकता की मृगतृष्णा से विक्षुब्ध हुई मानवता को शीतल आश्रय प्राप्त होता था।

निरन्तर हृदय गुहा के भीतर के चेतन तत्त्व की खोज में लगे रहने वाले इस तेजस्वी बालक गदाधर ने भौतिकवादी लौकिक शिक्षा के प्रति अरुचि दिखाई। वह ईश्वरीय विभूति का अंश अपने अंशी की खोज में सर्वदा छटपटाता रहता। श्रुतिमधुर वाणी में वह अपने उस विराट् सत्य को पुकारा करता था, उसी प्राणेश्वर के विरह में सुस्वर गायन करता।

देश की पतनोन्मुखी कुरीतियों के कारण 'ब्रह्मवेत्ता' बालक का विवाह मात्र पाँच वर्ष की बालिका पं. रामचन्द्र मुखोपाध्याय की सुपुत्री शारदा देवी से हुआ। लौकिक शिक्षा के लिए परिवार के सदस्यों की ओर से फिर प्रयत्न किया गया। बालक गदाधर को विद्याध्ययन के लिए भाई के साथ कलकत्ता भेजा गया। किन्तु उनका मन न लगा और बालक गदाधर के भीतर के 'हंस' ने अपने परमहंस को पाने के लिए सब बाह्याडम्बर त्याग दिए।

सत्य एक है, उसके साधन अनेक हैं। उसी एक को पाने के लिये सारे ही संभव उपाय उन्होंने किये। वे शक्ति के उपासक बने। उन्होंने ईसाई बन कर ईसा की अर्चना की, बौद्ध बनकर भगवान् बुद्ध का चिन्तन किया, मुसलमान बनकर अल्ला की वन्दना गाई, कुरान की आयतें पढ़ीं, सिक्ख बन कर गुरुग्रन्थ साहब का स्वाध्याय किया। हर सम्भव उपाय किया अपने प्रियतम को पाने का तथा अपने प्रत्यक्ष अनुभव से जाना कि साईं की नगरी की अनन्त डगरियाँ हैं। सभी मत एक विराट् की ही वन्दना गा रहे हैं। वेद की ऋचाओं में वे भी उच्चार उठे, '**एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति**'। इन्हीं विलक्षण साधनाओं ने आत्मसाक्षात्कार के लिये परम व्याकुल तेजस्वी तरुण गदाधर को अपने भीतर के कुरेल करने वाले 'हंस' का साक्षात् करा दिया और वे सकल दृष्टि के अणु-अणु में परिवेष्ठित माता जगदम्बा के दर्शन कर 'रामकृष्ण परमहंस' बन गये।

उनके विवाह को 16 वर्ष बीत चुके थे किन्तु वे अपनी पत्नी से एक बार भी नहीं मिले थे। उनके आध्यात्मिक नशे को पागलपन समझ कर उनके ससुराल वालों ने मन में विवाह संबंध को तोड़ने का निश्चय कर लिया था। अचानक ये पागल सन्त एक दिन ससुराल ही जा पहुँचे। सास-श्वसुर बहुत घबराए किन्तु परमहंस देव अपनी तथाकथित बाल पत्नी के सम्मुख जा बैठे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, फल, फूल से उस की पोडषोपचार पूजा करके उस की वन्दना गाई—

देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।

'हे सकल विश्व की माता, हे जगदम्बे! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। हे सकल दुःखों को हरने वाली माँ! तुम मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि करो।'

इस प्रकार अपनी पत्नी को भी माता मान कर पूजन करने वाले उन परमहंस की दृष्टि में सकल विश्व माता का ही रूप था। एक बार एक सज्जन ने उन्हें अपने घर बुला कर वेश्याओं का नृत्य आरंभ करवा दिया। एक वेश्या उन के पास आ कर कई प्रकार से अश्लील हाव-भाव करने लगी। वे पावन आत्मा रो कर बोले— माँ, माँ, इस रूप में नहीं माँ, यह किस रूप में दर्शन दे रही हो!' फिर अचानक उन्होंने समाधि लगा ली। वे समस्त वेश्यायें उन ऋषिप्रवर के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगीं।

परमहंस कंचन और कामिनी के मोह से पूर्णतया मुक्त हो चुके थे। वे गंगा तट पर बैठ कर एक हाथ में मिट्टी और दूसरे में सोना लेकर, सोने को मिट्टी और मिट्टी को सोना कहते और फिर दोनों को गंगा में फेंक देते थे।

परमहंस देव का युग था महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का युग, बालक रवीन्द्रनाथ ठाकुर का युग, केशवचन्द्र सेन तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का युग। उसी युग में उन्हीं के समकालीन थे महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा प्रतापचन्द मौजूमदार, उस युग के अन्तिम प्रहर को महात्मा गांधी तथा लोकमान्य तिलक, मोतीलाल नेहरू तथा मदनमोहन मालवीयजी ने भी अपनी चढ़ती जवानी में देखा था। बिना किसी भेदभाव के इन सभी नररत्नों ने परमहंस देव के यश में अविनश्वर श्रद्धांजलियाँ गाई हैं। पर इन सबसे बढ़कर जो महापुरुष इनके दिव्य व्यक्तित्व से चमत्कृत हुआ, वह था भारत गौरव स्वामी विवेकानंद। इन ब्रह्मवेत्ता के आशीर्वाद मात्र से बंगाल के उस नास्तिक बाबू नरेन्द्र के ज्ञान कपाट ऐसे खुले कि वह विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद बन कर इतिहास पटल पर अपना अमर वैभव बिखेर गया। ऐसे महान् देवदूत के पुण्यश्लोक गुरु परमहंस देव के पावन जन्म जयन्ती महोत्सव पर हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ उन्हीं परमहंस परमेश्वर के चरणों में समर्पित हैं।

कोटिशः प्रणाम शुद्ध बुद्ध रे,
निजानंद रूप सुप्रबुद्ध हे।
राम, कृष्ण, मनु, बुद्ध, मूर्तिमन्त,
यशोगान निरत कंठ रुद्ध रे।
श्रद्धा के अश्रु सुमन चरणों में देव।
हे रामकृष्ण देव, हे परमहंस देव।।

2 मार्च 1958

दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

जय परमहंस देव

जय राम कृष्ण देव, जय परमहंस देव।
जिस भू पै जन्म लिया राम ने, गीता सुनाई यहां श्याम ने,
प्रकटे वहीं थे आप देवता, 'तत्त्वमसि' मन्त्र लाए सामने,
जन गण का शीश झुका चरणों में देव।। जय राम कृष्ण देव....
कंचन और कामिनी का मोह त्याग, बन गए निर्लिप्त संत वीतराग,
मां, मां पुकारते थे शक्ति को, आत्म में ही पाया ब्रह्मानंद राग,
धन्य जन्म, दिव्य कर्म, परमहंस देव।। जय राम कृष्ण देव....
धन्य दक्षिणेश्वर के सन्त हे, देव तेरी महिमा अनन्त रे,
तेरे भक्ति-अमृत से तृप्त हो, धरती पै छाया बसन्त रे,
ज्ञान, भक्ति, कर्म के हे प्राण एकमेव।। जय राम कृष्ण देव....
फिरकों पै लड़ते इन्सान थे, अविद्या में जलते जवान थे,
फिर से बचाने मनु सन्तति, आप आए सर्वधर्म-प्राण थे,
सारे मतों का लक्ष्य एक ब्रह्म देव।। जय राम कृष्ण देव....
नर में नारायण के द्रष्टा हे, संस्कृति में नव्य प्राण स्रष्टा हे,
जय हो विवेकानंद के गुरो, स्वयं ब्रह्म रूप, ब्रह्म द्रष्टा हे,
सच्ची ब्रह्म पूजा है जन गण की सेव।। जय राम कृष्ण देव....
कोटिशः प्रणाम शुद्ध बुद्ध हे, निजानंद रूप सुप्रबुद्ध हे।
राम, कृष्ण, मनु, बुद्ध, मूर्तिमन्त, यशोगान निरत कंठ रूद्ध रे।
श्रद्धा के अश्रु सुमन, चरणों में देव।। जय रामकृष्ण देव, जय परमहंस देव।।

20 फरवरी 1958
हिन्दी 'मिलाप' में प्रकाशित

विवेकानंद विरुदांजलि

विवेक विभाकरं वन्दे, विवेकानंदं स्वामिनं
विश्व जितं यति पुङ्गवं, धर्म-केतु उत्थापकम्।।1।।
विवेकं च आनंदं च, विवेकानन्दमीश्वरं,
नराणाम् हि नरेन्द्रं च, वन्दे नर नारायणम्।।2।।
विवेकाय आनन्दाय, विवेकानन्दाय स्वामिने,
ब्रह्मविद् ब्रह्मरूपाय, ब्रह्मानन्दाय हि नमः।।3।।
भारत गौरवं वन्दे, विवेकानन्दं यतिवरं,
विश्वमंचे हि हिन्दु धर्मे, विश्वधर्मों योऽघोषयत्।।4।।
कोटिशः वंदितं वन्दे, विश्ववन्द्यं महात्मनम्,
परमहंसस्य पट्ट शिष्यं, विवेकानन्दं ऋषिवरम्।।5।।
भारतात्मा स्वधर्मात्मा, विश्वात्मा विश्वेश्वरः
रामकृष्णात्मजः पूज्यः, स विवेको सदा जयेत्।।6।।
शक्ति वरदान प्राप्तं च, शक्ति रूपं महात्मनम्,
शक्ति-मंत्रं स्वतन्त्रं च, वन्दे विवेकं पूजितम्।।7।।
ब्रह्मतेज धृतं वीरं, गौरवोन्नत मस्तकम्,
धर्मनेतृषु नव-सूर्ये, ज्योतिर्मय वर्णाम्बरम्।
शिकागो धर्म संघे च, विश्व-धर्मोपदेशकम्।
विवेकानन्दमहम् वन्दे, आन्नदामृत विग्रहम्।।8।।
जयतु विवेकानन्द, जयतु जय भारत माता
रामकृष्ण गुरुवर, विवेक स्वामी निर्माता।
धन्य भूमि बंगाल, धन्य सुनगर कोलिकाता
शक्ति-भक्ति अवतार, जयतु श्री काली माता।।9।।

'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

विश्व गुरु स्वामी विवेकानन्द की भारतीय संस्कृति को देन

भारत गौरव स्वामी विवेकानन्द तो भारत के मूर्तिमान गौरवसर्वस्व थे। उन जैसे ही गौरवशाली पुत्रों की माता होने से भारतमाता का मुख उजागर हुआ है। जैसे उन्हीं को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए ही महर्षि वेदव्यास ने लिखा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित् सुख सागरेऽस्मिन, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

सारी वसुन्धरा को ही अपने चरणस्पर्श से पुण्यवती बनाने वाले उस महान् लोकनायक के विषय में प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार रोमां रोलां लिखते हैं—'उनका बचपन और युवावस्था के बीच का काल यूरोप के पुनर्जीवन युग के किसी कलाकार राजपुत्र के जीवन-प्रभात का स्मरण दिलाता है।' वे पुनः लिखते हैं कि 'चाहे मेरे तथा विवेकानन्द के देश में हजारों मील का अन्तर है, चाहे दोनों देशों की संस्कृतियों में आकाश-पाताल का भेद हैं, चाहे मेरे तथा विवेकानन्द के काल में 30 वर्ष की कालावधि का अन्तर है, फिर भी मैं विवेकानन्द की लिखित अथवा उक्त एक भी पंक्ति को अपने रक्त में विद्युत्धारा के प्रवाह का अनुभव किए बिना नहीं पढ़ सकता।'

रामकृष्ण आश्रम बम्बई के स्वामी सम्बुद्धानन्दजी लिखते हैं—'स्वामी विवेकानन्द के विराट व्यक्तित्व में हम भगवान् बुद्ध का अन्तःकरण, शंकराचार्य का मस्तिष्क, श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रेम, गुरुनानक का उत्साह, हजरत ईसा की नम्रता और सेंट पाल की वाग्मिता का एकत्र समावेश पाते हैं।'

तेजस्वी तरुण

विश्व-विभूति स्वामी विवेकानन्द का प्रादुर्भाव 1863 में पौष कृष्णा सप्तमी के दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील श्री विश्वनाथ दत्त के शुभ घर में हुआ। इस तेजस्वी बालक का शैक्षणिक जीवन बड़ा उज्ज्वल रहा। किन्तु पाश्चात्य दर्शन के

गम्भीर अध्ययन से इस तरुण के भीतर कई प्रकार की शंकाएं और नास्तिकता के बीज अंकुरित होने लगे थे। वह प्रखर बुद्धि वाला नवयुवक नरेन्द्रनाथ सत्य की खोज में केशवचन्द्र सेन तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास पहुँचा तथा उनकी भुजा झंझोड़ कर पूछा था—'क्या आपने ईश्वर देखा है?' उनकी ओर से समाधान-कारक उत्तर प्राप्त न होने पर उस बुद्धिवादी युवक की मानसिक कटुता और भी बढ़ गई। श्री दिनकर के शब्दों में, नरेन्द्र बाबू की इस नास्तिकता के भीतर एक जिज्ञासा काम कर रही थी जो पैगम्बरों में उठा करती है, अवतारों और धर्म संस्थाओं में जगा करती है। वस्तुतः नरेन्द्रनाथ जब रामकृष्ण परमहंस की शरण में आए तब नवीन भारत ही प्राचीन की शरण में आया था। भगवान् राम कृष्ण परमहंस धर्म के जीते-जागते स्वरूप थे। रामकृष्ण और नरेन्द्र का मिलन श्रद्धा और बुद्धि का मिलन था, रहस्यवाद और बुद्धिवाद का मिलन था। कदाचित रामकृष्ण और विवेकानन्द के मिलन में पूर्वी और पश्चिमी जगतों का ही मिलन हुआ था।

हृदय परिवर्तन

जिस प्रकार जीवन की एक ही घटना ने रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया, एक जड़-मूर्ख व्यक्ति को महाकवि कालिदास बना दिया, एक कामांध नवयुवक को गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। एक पुच्छ के राजकुमार को बन्दा वैरागी बना दिया। बालक मूलशंकर को स्वामी दयानन्द बना दिया, एक पथभ्रष्ट बनिए के बच्चे को महात्मा गांधी बना दिया उसी प्रकार जीवन की एक ही घटना ने बंगाल के महानास्तिक नरेन्द्र बाबू को स्वामी विवेकानन्द बना दिया। नरेन्द्र ने पूछा—'श्रीमान! क्या आपने ईश्वर को देखा है?' रामकृष्ण देव की समाधानकारक हाँ में नरेन्द्र की सारी नास्तिकता गल कर बह गई तथा वही नास्तिक संसार के कोटि-कोटि जनों को अपने संदेश से आस्तिक बनाने वाला बन गया।

भौतिकता के चक्रव्यूह में घुस कर विजय

उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्दजी ने स्वामी विवेकानन्द के कार्य का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

'ईसा की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में जड़वाद ने फिर सिर उठाया और इस बार उसका आक्रमण ऐसा प्रबल था, अस्त्र ऐसे अमोघ और ऐसे सबल थे कि भारत के अध्यात्म को उसके सामने सिर झुका देना पड़ा। हमारी आंखें इस भौतिक प्रकाश के सामने चौंधिया गईं और हम ने अपने प्राचीन तत्त्व ज्ञान, प्राचीन परम्परा और आदर्शों को त्यागना आरम्भ कर दिया।

ऐसे समय पुनीत भारत भूमि में पुनः एक महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिसके हृदय में अध्यात्म भाव का सागर लहरा रहा था, जिसके विचार ऊँचे तथा दृष्टि

दूरगामिनी थी, जिसका हृदय मानव प्रेम से ओत-प्रोत था, उसकी सचाई भरी ललकार ने क्षण भर में जड़वादी संसार में हलचल मचा दी।

उसने नास्तिकता के गढ़ में घुस कर साबित कर दिया कि तुम जिसे प्रकाश समझ रहे हो, वह वास्तव में अन्धकार है और यह सभ्यता जिस पर तुम्हें इतना गर्व है, सच्ची सभ्यता नहीं है।

उनकी घोषणा के पश्चात् जड़वाद के प्रखर प्रवाह ने अपने सामने ऐसी ऊँची दीवार खड़ी पाई, जिसकी जड़ को हिलाना या जिसके ऊपर से निकल जाना उसके लिए असाध्य कार्य था।

यह उसी पूतात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम आज अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति पूजा भाव रखते हैं और यूरोप के बड़े-बड़े योद्धा और विद्वान हमारे मनीषियों के सामने निरे बच्चे मालूम होते हैं। यह सब उसी ब्रह्मलीन स्व. विवेकानन्द के आध्यात्मिक उपदेशों का चमत्कार है।

धर्मगंगा के भगीरथ

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के कार्य का तुलनात्मक मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि रामकृष्ण और विवेकान्द, ये दोनों एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे और विवेकानन्द उनकी व्याख्या बनकर आए। रामकृष्ण दर्शन थे और विवेकानन्द की व्याख्या ने उनके क्रियापक्ष का व्याख्यान किया। अति अलंकारमयी भाषा में वे पुनः लिखते हैं—'रामकृष्ण हिन्दू धर्म की गंगा थे जो वैयक्तिक समाधि के कमण्डल में बन्द थी। विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देव सरिता को रामकृष्ण के कमण्डल से निकालकर सारे विश्व में फैला दिया।'

जागृति के मन्त्र द्रष्टा

स्वामीजी ने भारत को सम्बोधित करते हुए कहा—'उठो भारत! अपनी आध्यात्मिकता से समस्त जगत पर विजय स्थापना करो। उस से कम और कोई आदर्श तुम्हारे योग्य नहीं। उठो, जागो, आदर्श सिद्धि होने तक अथक चलते रहो।'

विज्ञान तथा चरित्र का समन्वय

स्वामीजी ने पश्चिम के लोगों को चेतावनी दी—

'प्रकांड वैज्ञानिक उन्नति के पश्चात् भी समस्त संसार के सम्मुख समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। उन का हल मनुष्य तभी कर पाएगा जब अपने चारित्रिक स्तर तथा आध्यात्मिक अंश को महत्त्व दे।'

धर्मप्राण भारत

'शताब्दियों से होने वाले आघातों को झेल कर भी हम टिके रहे, इस का एक मात्र कारण यह है कि हम सदैव स्वधर्म के प्रति सजग रहे और उस के लिए निरन्तर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाते रहे। हमारे पूर्वजों ने दृढ़ता से समस्त आपत्तियों को झेला, सहर्ष मृत्यु का भी वरण किया पर स्वधर्म की रक्षा की।'

भारतीय राजनीति का आधार-धर्म

राजनीति सदा संस्कृति की चेरी है। इस विषय पर स्वामीजी का सन्देश मननीय है—

यूरोप में राजनीतिक विचारों से राष्ट्रीय विचारों का गठन होता है। भारतवर्ष में राष्ट्र उन्हीं लोगों का संघ बन सकता है जिनकी हृतंत्री एक ही धर्म के झंकार पर बज उठती है। अतएव भावी भारत की उन्नति के लिये पहली शर्त होने के नाते धार्मिक एकता की नितान्त आवश्यकता है। हम देखते हैं कि भारत में धर्म की इस एकीकरण शक्ति के आगे किस प्रकार जाति-गत, भाषा-गत एवं समाजगत कठिनाइयाँ काफूर हो जाती हैं। हमारे जीवन का मूल स्रोत ही धर्म है। यदि इसका प्रवाह प्रखर, पवित्र और प्रबल बना रहा तो सबकुछ ठीक समझना चाहिए। यदि यह स्रोत निर्मल है तो राजनीतिक-सामाजिक तथा अन्य भौतिक दोष तथा देश की दरिद्रता भी दूर हो जाएगी।

हमारे पराक्रम, हमारी शक्ति, बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवन का आधार भी धर्म ही है। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे शक्तिशाली बनाना चाहिए। शताब्दियों से असंख्य आघातों का सामना करने में आप इसीलिए सफल हुए थे कि आप धर्म नहीं भूले थे। आप इस के लिए सबकुछ बलिदान कर देते थे। वास्तविक राष्ट्रीय बुद्धि यही है। राष्ट्रीय जीवनधारा यही है। इसके सहारे चल कर आप यश और प्रताप को प्राप्त होंगे और इसे त्याग कर मृत्यु को। मरण के अतिरिक्त दूसरा परिणाम हो ही नहीं सकता। इस जीवन स्रोत से अलग होते ही आप अपनी जीवन सत्ता खो बैठेंगे। अतएव भावी भारत के निर्माण में हिन्दू धर्म की एकता ही पहली ईंट होगी। हम सब को यह सीख लेना चाहिए कि हम हिन्दू चाहे जिस नाम से भी पुकारे जाते हों, कुछ समान विचार सूत्रों से बन्धे हैं और अब समय आ गया है जबकि अपने तथा अपनी जाति के कल्याण के लिए अपने आपस के झगड़ों एवं मतभेदों को त्यागकर हम एक हो जायें।

पुनः धर्म की शरण में

मैं भी गम्भीरता से पूछता हूँ कि सहस्रों शताब्दियों की विकसित हुई राष्ट्रीय संस्कृति को छोड़ देना सहज है या कि विदेशों से आई हुई विदेशी सभ्यता को? बात

यह है कि अपने पर्वतीय उद्‌गम से नदी अब हजारों मील तक नीचे चली आई है। अब क्या यह अपने उद्‌गम स्थान को वापस जाती है या ले जायी जा सकती है। यदि कभी पीछे बहने की चेष्टा करेगी तो चारों ओर अपना जल व्यर्थ डाल-डाल कर सूख जायेगी। यदि हजारों वर्षों का हमारा राष्ट्रीय जीवन ठीक नहीं रहा तो अब इसके लिए कोई उपाय नहीं है। और अब हम यदि एक नई संस्कृति में डुबकी लगाना चाहेंगे तो केवल एक ही परिणाम होगा और वह यह कि हम डूब मरेंगे।

बलमुपास्व

स्वामीजी शक्ति मंत्र के दाता थे। वे दुर्बलता को ही पाप मानते थे। वे कहते हैं—'पाप का अप्रतिकार एक बड़ी बात है। यह सचमुच बड़े ऊँचे सिद्धान्त हैं। पर हमारे शास्त्रों की आज्ञा है—तुम गृहस्थ हो, यदि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा जड़ता है और तुम उसको जैसे का तैसा बदला नहीं देते तो तुम पापी हो। महाराज मनु कहते हैं—जब कोई तुम्हें मारने आया हो तो उसको मारने में कोई पाप नहीं चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो। यह बिल्कुल ठीक है और ऐसी बात है जिसे कभी भूलना नहीं चाहिए, वीरभोग्या वसुन्धरा है। अपने वीरत्व को बाहर लाओ। अपने शत्रु को जीतने का प्रत्येक उपाय करो और संसार का भोग करो। तभी तुम धार्मिक हो अन्यथा यदि जिसके मन में आ गया वही तुम्हें लातों से ठोकर मार कर पद दलित कर देगा, तो यहाँ तुम्हारा जीवन नारकीय है ही, वहाँ भी ऐसा ही रहेगा। मेरे प्यारे सहधर्मियो! तुमको यही मेरी सीख है। निस्सन्देह किसी को हानि न पहुँचाओ और किसी पर अत्याचार न करो।'

स्वामीजी की प्रेरणा

स्वामीजी के सन्देशों ने आधुनिक भारत के प्रायः प्रत्येक महापुरुष को महान् प्रेरणा दी है। योगीराज अरविन्द घोष, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, गांधीजी, तिलक, लाला लाजपत राय, स्वामी शिवानन्द, भाई परमानंद, डाक्टर राधाकृष्णन् प्रभृति महापुरुष उसी ज्योति की रश्मियाँ हैं। आज उन विश्ववंद्य लोकनायक की पावन जयन्ती पर हम अपना तन-मन-प्राण ही उन ऋषिवर के चरणों पर चढ़ा कर अपनी मूक श्रद्धा समर्पित करते हैं।

3 फरवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप'

स्वामी विवेकानन्द का पश्चिम पर प्रभाव

अमरीका की एक महान् महिला मिस जोसेफान मेकलोड ने कहा, 'ईश्वर ने अपने दिव्य देवदूत संसार के प्रायः सभी देशों में भेजे थे। किन्तु एक देश जिसमें ईश्वर के किसी देवदूत ने कभी चरण नहीं रखा था, वह अमरीका ही था। यदि अमरीका की धरती पर ईश्वर ने कभी चरण रखा तो वह स्वामी विवेकानन्द के रूप में तथा अमरीका की भावी सन्ततियाँ यह याद करके पुलकित हो जाया करेंगी कि उन ऋषितुल्य लोकनायक की चरण धूलि के स्पर्श से सारा अमरीका महादेश पुण्य-पावन हो उठा।'

'स्वामी विवेकानन्द इन अमरीका—न्यू डिस्कवरीज' की महान् लेखिका मेरी लौज़ बर्क का कथन है—'सचमुच स्वामी विवेकानन्द पूर्ण अर्थ में ईश्वर द्वारा अमरीका में भेजे गये अवतार ही थे।'

स्वामी विवेकानन्द स्वयं कहते—'Buddha had a mission in the East, I have a mission in the West.'

'भगवान् बुद्ध का जीवन कार्य पूर्वी जगत में संस्कृति प्रसार का था, मेरा जीवन कार्य पश्चिम में संस्कृति प्रसार का है।' सन् 1893 में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन के बाद ही वे विश्व विख्यात हुए थे। वे कहते—'भारत का परमेश्वर जो उसके भाग्य का नियन्ता एवं मार्गदर्शक है, उसी ने मुझे सर्वधर्म सम्मेलन में भेजा।' जब विवेकानंद किशोरावस्था में एक कालेज विद्यार्थी के रूप में प्रेजिडेंसी कालेज, कलकत्ता में पढ़ते थे तभी कालेज के जर्मन प्राचार्य प्रिंसिपल हेस्टी ने इस होनहार नवयुवक के विषय में कह दिया था—'मैंने बहुत दूर-दूर के देशों की यात्राएं की हैं किन्तु मैंने नरेन्द्र जैसी संभावनाओं वाला छात्र आज तक नहीं देखा। यह जीवन में अपना नाम अमर करेगा।' इसी प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंसदेव ने भी नरेन्द्र द्वारा विश्व की आध्यात्मिक विजय की भविष्यवाणी की थी।

सिस्टर क्रिस्ताइन नामक अमरीकन महिला ने कहा—'धन्य वह देश है, जहाँ विवेकानंद ने जन्म लिया, धन्य हैं वे लोग जो उसी काल में धरती पर जीते थे तथा त्रिविध धन्य हैं वे लोग जो उनके चरणों में बैठ सके।' आधुनिक अमरीका के

प्रख्यात दार्शनिक, स्टोरी ऑफ फिलासफि एवं स्टोरी ऑव सिविलाइजेशन के विश्वविश्रुत लेखक श्री विलडूरेंट ने अपने ग्रन्थ हमारी प्राच्य परम्परा' के पृष्ठ 618 पर लिखा है—'स्वामी विवेकानंद शिकागो के विश्व मेले में सर्वधर्म सम्मेलन में प्रकट हुए, उन्होंने हिन्दुत्व के प्रतिनिधि के रूप में सभा को संबोधित किया और अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से, अपने सर्वधर्म समभाव के संदेश तथा ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा के रूप में मानव सेवा के सरल नीतिदर्शन से सभी को वशीभूत कर लिया। उनकी वक्तृत्व कला के चमत्कार से (ईसाई पादरियों की दृष्टि में नास्तिक माना जाने वाला) हिन्दू धर्म एक श्रेष्ठ सम्मानित धर्म बन गया तथा पुराणपंथी पादरी एक ऐसे गैर ईसाई का सम्मान करने के लिए विवश हो गये जो घोषणा करता था कि सभी जीवों की आत्मा से अलग कोई अन्य परमात्मा नहीं है।'

इंलैण्ड में जन्मी तथा भारत को अपनी आध्यात्मिक जन्मभूमि स्वीकार कर लेने वाली थियोसोफिकल सोसाइटी की एक महान् निर्माणकर्त्री, डॉ. एनी बीसेन्ट भी शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उपस्थित थी। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की जनमानस पर छाप का चित्र खींचा है—'उनमें जीवनमूल्य तथा शक्ति का गौरव एवं जन्मजात भाव अभी भी प्रकट था, किन्तु वह सब कुछ उनके द्वारा लाए गए आध्यात्मिक सन्देश के उत्कृष्ट सौन्दर्य में लीन हो गया था—प्राच्य के उस अतुलनीय सन्देश की पवित्रता में, जो भारत का हृदय, किंवा भारत का जीवन ही है—आत्मा का विस्मयकारी ज्ञान। आनन्द विमुग्ध होकर वह विराट जनसमूह उनके शब्दों में बंधा हुआ था, एक अक्षर भी खो न जाय, एक स्वर भी छूट न पाये।'

विश्व धर्म सम्मेलन के प्रतिनिधि चयन समिति के सभापति डॉ. बैरौज के शब्दों में, जब स्वामी विवेकानंद ने जनता को 'मेरे प्यारे अमरीकावासी बहिनो और भाइयो' कह कर सम्बोधन किया तो प्रशस्ति की हर्ष ध्वनि उठी जो कई मिनट तक चलती रही। इस तुमुल करतल ध्वनि का कारण यह था कि स्वामीजी ने विदेशी सभाओं की औपचारिकता को तज कर जनता से उनके हृदय की भाषा में बात की थी।

पोएट्री नामक अमरीका की एक साहित्यिक पत्रिका की संपादक मिस मनरो ने अपनी आत्मकथा, 'ए पोएट्स लाइफ' में शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन का संस्मरण लिखते हुए कहा है, 'सब प्रतिनिधियों के अन्त में तेजोमूर्ति स्वामी विवेकानन्द की बारी आई जिन्होंने सारे आयोजन का सर्वोच्च यश लूट लिया तथा सारे नगर को वशीभूत कर लिया। दूसरे विदेशी दल भी अच्छा बोले किन्तु भगवे वेश में उस आकर्षक संन्यासी ने पूर्णतया शुद्ध अंग्रेजी भाषा में अपनी महानतम कृति प्रस्तुत कर दी। उनका प्रभावशाली और चुम्बकीय व्यक्तित्व, मंदिर के कांस्य घंटे के समान गूंजती हुई उनकी वाणी, उनकी भावना का संयमित उत्साह

जीवन में प्रथम बार पश्चिमी जगत को उनके दिये गये संदेश का सौन्दर्य—ये सब मिलकर हमें महानतम आनन्द का दुर्लभ एवं पूर्ण अवसर प्रदान करते थे। यहाँ मानव वक्तृता अपने सर्वोच्च शिखर पर थी।'

विश्व धर्म सम्मेलन के वैज्ञानिक विभाग के सभापति ऑनरेबल श्री मेरविन मेरी ने अभिमत दिया, 'किसी धार्मिक संस्था ने धर्मसंसद, व्यापक रूप से अमरीकी जनता पर ऐसा गंभीर प्रभाव नहीं डाला जैसा हिन्दुत्व ने डाला...तथा सर्व प्रकार से हिन्दुत्व के सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट शैली के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ही थे, जो वास्तव में धर्मसंसद में निस्सन्देह सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे....सर्वाधिक पुराणपंथी ईसाई भी उनके विषय में कहते हैंह्नवे निश्चय ही मानवों में राजा जैसे हैं।

शिकागो में प्रथम बार सर्वधर्म सम्मेलन में विवेकानन्द के पास भारत की सभा-संस्था का कोई प्रमाणपत्र या अधिकारपत्र न रहने के कारण उनको उस संसद में प्रवेश नहीं मिला था। वे अर्थाभाव के कारण शिकागो छोड़कर बोस्टन जैसे एक अपेक्षाकृत सस्ते नगर में चले गये। वहाँ के प्रो. राइट इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए तथा कहा—'स्वामीजी! आप तो ज्ञान के सूर्य हैं, आप से अधिकार पत्र पूछना तो वैसे ही है जैसे सूर्य से उसके चमकने का अधिकारपत्र पूछा जावे।'

बोस्टन विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रो. राइट ने विवेकानन्द को परिचय पत्र देकर पुनः शिकागो भेजा। किन्तु मार्ग में स्वामीजी का वह परिचय पत्र भी खो गया था। अतः शिकागो में उन्हें भूखे पेट भटकना पड़ा, रात्रि की भयंकर शीत में शिकागो रेलवे स्टेशन के बाहर पड़े हुए एक पार्सल के बक्से में एकाध भगवा वस्त्र लपेटे हुए ही बैठ कर, रात बितानी पड़ी। वहाँ की एक सज्जन महिला श्रीमती हेल ने उन्हें सड़क के किनारे बैठे देखा तो उन्हें अपने घर लिवा ले गई तथा फिर शिकागो धर्म सम्मेलन में भी ले गई। वहाँ संयोगवशात बोस्टन के प्रो. राइट भी पहुँचे हुए थे। प्रो. राइट की धर्मपत्नी श्रीमती राइट ने लिखा—'वह (विवेकानंद) वहाँ सर्वाधिक भव्य दृश्य थे। उनके शीश की चेष्टा सुन्दरतम थी। उनकी ग्रीवा की भंगिमा तथा नंगे सिर में भी एक शासक की गरिमा तथा प्रभावोत्पादकता थी जो निकट वाले प्रत्येक व्यक्ति को खड़ा होकर उनकी ओर निहारने को विवश कर देती थी। वे धीरे-धीरे ताल-छंद बद्ध गति से ऐसे चलते थे जैसे, उन्हें कोई जल्दी न हो।'

फ्रांस के नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्य-मनीषी रोमां रोलां ने लिखा, 'स्वामी विवेकानन्द के शब्द एक महान् संगीत है, बीथोवन की शैली के पद्यांश, हेण्डल के समूह गान जैसे आन्दोलित करने वाले लय-गीत। चाहे उनके वचन आज पुस्तकों के पृष्ठों के माध्यम से मुझ से 30 वर्ष पूर्व कहे हुए, 30 वर्ष के अन्तर पर, बिखरे हुए हैं, किन्तु मैं आज तक उनके वचनों को बिना अपने शरीर में

एक विद्युत्धारा का रोमांच अनुभव किए स्पर्श तक नहीं कर सकता हूँ। तब कैसे हृदयान्दोलन, कैसा आनन्द ज्वार पैदा हुआ होगा जब वे ज्वलन्त शब्दों में उस महान् वीर के मुख से निःसृत हुए होंगे।' रोमां रोलां कहता है कि किसी ईश्वरीय प्रेरणा से ही उसने फ्रेंच भाषा में विवेकानन्द एवं श्रीरामकृष्ण की महान् प्रेरणादायी जीवनियाँ लिखी, जिनका यूरोप, एशिया एवं मध्य पूर्व की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद, स्वागत किया गया।

इंग्लैण्ड में स्वामीजी विश्व विख्यात भाषा वैज्ञानिक डॉ. मैक्समूलर से मिले। उसने पहले ही वेदान्त पर पुस्तकें तथा श्री रामकृष्ण परमहंस पर निबन्ध प्रकाशित किए थे। स्वामीजी की प्रेरणा से उसने परमहंस पर पूरा ग्रन्थ भी लिखा।

आयरलैण्ड के प्रसिद्ध पादरी जॉन नोबेल की सुपुत्री मार्ग्रेट एलिजाबेथ नोबेल इंग्लैण्ड में स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी व्याख्यान को सुनकर उनकी धर्मशिष्या, भगिनी निवेदिता बन गई तथा उसने अपना शेष सारा जीवन भारत एवं भारतीय संस्कृति की सेवा में समर्पित कर दिया।

वे कहती हैं—ऐसे चिन्तनशील व्यक्ति का दर्शन मुझे आज तक कभी नहीं हुआ था....कल्पना करो यदि स्वामीजी उन दिनों लंदन में न पधारे होते तो? यह जीवन निरर्थक बन जाता। अनन्तकाल के लिये उसने दुःखद स्वप्न का रूप धारण कर लिया होता।....हममें से अनेकों के लिये स्वामीजी के शब्द-प्यासे मर रहे व्यक्ति के लिये जीवन प्रदाता जल के समान थे....अन्धकार में भटक रहे लोगों ने प्रकाश की रश्मि के दर्शन कर लिये थे।

जर्मनी के विद्वान् प्रो. पाल डूयसन जो पहले से ही भारतीय विद्या के शोधकर्ता थे स्वामी विवेकानन्द से मिलने के पश्चात् वेदान्त एवं विवेकानन्द के भक्त बन गये। वे कहते हैं—'ज्ञात होता है कि आध्यात्मिकता के मूल स्रोत की ओर एक विचारयात्रा प्रारंभ हो रही है, यह विचारप्रवाह भारत को संसार की जातियों का आध्यात्मिक गुरु बना देगा तथा धरती पर महानतम एवं सर्वोच्च आध्यात्मिक प्रभाव स्थापित करेगा।'

जर्मनी के प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार विजेता मनीषी डॉ. अल्बर्ट स्वित्जर ने लिखा है, 'सितम्बर 1893 के विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने एक ओजस्वी व्याख्यान में श्री रामकृष्ण के विचार की व्याख्या की कि सच्ची पावनता सभी धर्मों में निहित है और वही उन सबसे ऊपर भी है। गुरु की भावना के अनुरूप विवेकानन्द ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि धर्म को क्रियात्मक-धर्म होना चाहिए। उन्होंने ऐसे स्वतःसिद्ध वचन कहने का साहस किया कि सर्वोत्तम धर्म, सभी मानवों में, विशेष रूप से निर्धनों में शिव का दर्शन करने में ही है और वही व्यक्ति ईश्वर की पूजा करता है जो सभी जीवों की सहायता एवं सेवा करता हो।

यह उनके लिए सुनिश्चित तथ्य था कि वेद का मौलिक शुद्ध धर्म—प्रेम का धर्म था। उनके द्वारा संस्थापित कार्य रामकृष्ण मिशन अभी तक वर्तमान है और विश्व कल्याण के लिए बड़ा प्रभावकारी है।'

'हम स्वामी विवेकानन्द की स्मृति को अपने हृदयों में संजोये हुए हैं। वे भारत के उन प्रथम दार्शनिकों में से थे जिन्होंने साधारण जन के दुःख-कष्टों की ओर दृष्टिपात किया।' ये विचार लेनिनग्राद की प्रमुख प्राच्य विद्या विदुषी इवालस्तेनिक ने लेनिनग्राद में व्यक्त किये।

स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में आयोजित सभा में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इन दिव्य पुरुष, अपने देश की स्वाधीनता के योद्धा की प्रजातंत्रीय भावनाओं के सम्मान में तथा मित्र भारत की संस्कृति के प्रति आदर भाव दिखाते हुए सोवियत जनता ने 'विवेकानन्द वर्ष' मनाया।

सभा में भाग लेने वालों ने भारत के अध्यापक श्री अरुण हालदार का हार्दिक स्वागत किया। श्री हालदार लेनिनग्राद के विद्यार्थियों को दर्शन और बांग्ला भाषा पढ़ाते हैं।

सभा का आयोजन सोवियत-भारत सांस्कृतिक सम्बन्ध सोसाइटी की स्थानीय शाखा और भारत विद्या संबंधी लेनिनग्राद नगर गोष्ठी ने किया तथा इसमें भारतीय विशेषज्ञ और स्नातकोत्तर छात्र शामिल हुए।

भारतीय निरुक्त विभाग के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने स्वामी विवेकानन्द के सम्मान में संस्कृत में रचना-पाठ किया।

सन् 1967 में वी.बी. बोद्रोव ने रूसी भाषा में समकालीन भारतीय दर्शन पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया, 'इंदियस्काय फिलोसोफिया नोवोगा व्रेमेनी' जिसमें राममोहन राय, श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द, तिलक एवं श्री अरविन्द के दर्शन का भारत के ऐतिहासिक भाग्य निर्माण में योगदान दर्शाया गया। एक अन्य ग्रन्थ में भी स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। प्रो. ए.डी. लिटमेन का मत है, 'भारत की आध्यात्मिक परम्परा एक ऐसी प्रबल शक्तिधारा बन गई है जो देश के जीवन की सभी विधाओं को प्रभावित करती है तथा भारत के पुनरोदय की प्रक्रिया को एक विशेष राष्ट्रीय रंगत प्रदान करती है।'

स्वामी विवेकानन्द की धर्मबहिन : वीर बाला भगिनी निवेदिता

आयरलैण्ड के स्वातंत्र्य प्रेमी परिवार में क्रान्तिकारियों की जन्म भूमि अलस्टर नगर में 28 अक्टूबर 1867 के दिन एक तेजस्वी बालिका का जन्म हुआ। बच्ची के पिता एक गिरजाघर के पादरी थे तथा उस की धर्मात्मा माता ने जन्म से पूर्व ही उसे ईश्वर के निमित्त अर्पण कर दिया था। उस महान् बाला का नाम मारग्रेट नोबल था जो भारत में भगिनी निवेदिता के नाम से पूजित हुई।

शिकागो धर्म सम्मेलन में विश्व विजय करने के पश्चात् जब भारतगौरव स्वामी विवेकानन्द 1895 में लन्दन गए तो वहाँ स्वामीजी के प्रथम भाषण से ही प्रभावित होकर मारग्रेट नोबल भारत दर्शन के लिए लालायित हो उठी। मारग्रेट की यह महान् लालसा 1898 में पूरी हुई जब उसने अपने पृथु नेत्रों से भारत देश के दर्शन किए। स्वामीजी ने उसे दीक्षा देकर उसे निवेदिता नाम दिया। स्वामीजी ने जो उसे आशीर्वाद दिया वह बड़ा हृदयस्पर्शी है—'एक माता का हृदय, एक योद्धा की संकल्प शक्ति, पवन की मिठास तथा अग्नि ज्वाला में अंकित बलिदान भाव सभी कुछ तुझे प्राप्त हों। तुम भारत की पुत्री, सेविका एवं मित्र—सभी कुछ बन जाओ।' स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता को भारतीय धर्म एवं दर्शन की अत्युच्च शिक्षा दी तथा उन्हें कुछ समय के लिये परमहंस देव की पत्नी पूज्य शारदा माता के सहवास में भी रखा।

भारत की सर्वोत्तम सेवा

निवेदिता ने अपने आप को भारत की सेवा के लिए पूर्ण रूप से निवेदित किया हुआ था। उस महान् शिष्या ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द से पूछा, 'मैं भारत की सर्वोत्तम सेवा कैसे कर सकती हूँ?' मेधावी गुरु ने तुरंत उत्तर दिया—'भारत के साथ आत्मसात् होकर।' 1898 में जब कलकत्ता में प्लेग की महामारी फैली तो निवेदिता ने जिस प्रकार से सेवा की उसका वर्णन प्रसिद्ध इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार करते हैं, 'मैला साफ करने के लिए भंगी नहीं मिलते थे उस समय

बाग बाजार की उपेक्षित गली में, जहाँ वे रहती थी; निवेदिता को हाथ में फावड़ा लिए, गन्दगी साफ करते हुए देख असीम श्रद्धा उत्पन्न हो उठी। उसके उदाहरण ने गली के नवयुवकों को लज्जित कर दिया और वे भी कार्य में जुट पड़े।'

भारत का कण-कण पूजनीय

भगिनी निवेदिता कहा करती थी, 'भारत का कण-कण मेरे लिए पूजनीय है। यहाँ की वायु का एक-एक झोंका पवित्र है।' निवेदिता संपूर्ण भारत के तीर्थों के दर्शन के लिए गई तथा गया, सारनाथ, काशी इत्यादि तीर्थों की धूलि को मस्तक पर लगा कर आनन्द विह्वल हो गई।

भारतीय नारी की गरिमा

भगिनी के ओजस्वी शब्द हैं—'लड़कियों को शिक्षा देते समय आज की प्रथम आवश्यकता है कि हमारे सामने एक सुस्पष्ट लक्ष्य हो, जिसकी सिद्धि हमें प्राप्त करनी है। इस दिशा में भारत से अधिक सौभाग्यशाली देश संसार में कोई अन्य न होगा। यह महान् नारियों का देश है।....क्या स्त्री को शक्तिशाली, साधनसम्पन्न, स्वयंस्फूर्त तथा आपत्तिकाल के लिए जागरूक होना चाहिए? क्या हम चित्तौड़ की पद्मिनी, झांसी की लक्ष्मीबाई पर गर्व नहीं कर सकते? क्या स्त्री को सौम्य, भक्त तथा दार्शनिक होना चाहिए? क्या मीरा वह आदर्श प्रस्तुत नहीं करती? यदि नारी की गरिमा उसकी शासन क्षमता में निहित हो तो क्या अहिल्याबाई, रानी भवानी तथा मैमनसिंह जिले की जाह्नवी हमारी प्रेरणास्रोत नहीं बन सकती? क्या नारी की सम्पूर्ण तेजस्विता पत्नीत्व में प्रकट होती है? सती सावित्री एवं भारतीय गगनांचल के उज्ज्वलतम नक्षत्र के रूप में जनकनंदिनी सीता हमारी मूर्तिमत् आदर्श हैं। कौमार्यावस्था में ही जीवन की श्रेष्ठता को इंगित करने वाली उमा हमें दिव्यता की ओर प्रेरित करती हैं और स्त्रीरत्न के रूप में माता गान्धारी के समान महान् स्त्रियाँ हमें संसार के किसी कोने में भी प्राप्त न हो सकेंगी।'

सच्ची शक्ति पूजा

एक बार नागपुर के मारिस कालेज में विजयादशमी के अवसर पर क्रिकेट के खेल के उपरान्त पारितोषिक वितरण के लिए निवेदिता को बुलाया गया। निवेदिता ने ओजस्वी शब्दों में कहा—'आज तो शस्त्रपूजा का दिन है। दुर्गा भवानी की पूजा होती है। माता भवानी, उसकी खड्ग और उसका शक्तिदायी संदेश आप कैसे भूल गए? मैं भोंसलों की राजधानी में आशा करती थी कि बीते समय के पराक्रम का दर्शन करने को मिलेगा परन्तु यहाँ तो बन्दरों का नाच (क्रिकेट का खेल) देखने को मिला जिसमें विदेशी अंग्रेज हमारे तरुणों को नचा रहा है। देश को सबल देशभक्तों की आवश्यकता है।' भगिनी बाबू अरविन्द घोष से बड़ौदा में मिली और कहा, 'आप तो

शक्ति के उपासक हैं। बंगाल को आपकी बहुत आवश्यकता है।' आपका कार्यक्षेत्र वहाँ है। उन्हीं की प्रेरणा से अरविन्द उग्र क्रान्ति के मार्ग पर अग्रसर हुए।

भारत की स्वाधीनता के लिए तड़प

भगिनी ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पर्याप्त भाग लिया। इसलिए वे रामकृष्ण मिशन से भी पृथक् कर दी गईं। पर वे घबराई नहीं। उनका कहना है— 'स्वामी विवेकानन्द हमारे राष्ट्रीय सेनानी थे। उन के हृदय में राष्ट्रीयता का ज्वार था।'

सरकार को भी चुनौती देती हुई वह वीर नारी गर्जना करती, 'मुझे मृत्यु स्वीकार है परन्तु भारत के स्वाधीनता संघर्ष से पृथक्ता स्वीकार नहीं।'

भगिनी निवेदिता ने कुमारी मैकालियाड को एक पत्र में लिखा, 'भारत एक दिन अपने ध्यान में मग्न था। एक दिन लुटेरों के एक गिरोह ने आकर धावा बोल दिया, उसकी भूमि को पदाक्रांत कर डाला। साधना भंग हो गई। क्या डाकू उसे सिखला सकेंगे? नहीं। उनको निकाल कर बाहर खदेड़ना पड़ेगा। जब तक सरकार विदेशी मुझे सरकार एवं ईसाईयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो भारत के लिये भारतीय है वह कितना ही मूर्ख और निरुपयोगी क्यों न हो, मैं उसकी चरण वंदना करने को तैयार हूँ।

भगिनी ने अरविन्द घोष के संग में मिलकर गुप्त क्रान्तिकारी परिषद् बनाई। तिलक के साथ भी वे निकट सम्पर्क में आईं। विपिन चन्द्र पाल को भी उन्होंने बड़ी प्रेरणा दी।

डॉ. जगदीश चन्द्र बोस के घर में तो वे प्रायः आया-जाया करती थी। डॉ. बोस की पत्नी की गोद में ही वे चिर निद्रा में सो गई थीं।

वे भारत की पालित पुत्री, भारत की आत्मा के साथ तदाकार हो चुकी थीं। वे स्वामी विवेकानन्द के पश्चिम के प्रचार कार्य का सर्वोत्तम पुष्प थीं। उस महान् आत्मा को हमारी कोटि-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हैं।

3 नवम्बर 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

पश्चिमी जगत् में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वह इस बात का प्रमाण है कि भारत विश्व विजय करके रहेगा।

—योगी अरविन्द

जड़-चेतन की जीवन्त लीला के द्रष्टा : ऋषिकल्प आचार्य जगदीशचन्द्र बसु

'अन्यान्य मेरे से अधिक योग्य विद्वान् आपको विज्ञान की एक अलौकिक प्रतिभा मानेंगे, किंतु मैं आपका एक दृष्टवान ऋषि के रूप में अभिनन्दन करता हूँ जिस ने अपनी काव्यमयी अन्तर्दृष्टि से प्रकृति के अन्तराल में वल्कल तथा पाषाण के आवरणों के भीतर भी प्रवेश पा लिया है। जहाँ कि प्रकृति के जीवन की धड़कनें गुम्फित पड़ी हैं। जैसे जंगल में अजगरों का विजेता सीजफ्रीड (जर्मनी के महाकाव्य का एक नायक) पक्षियों की भाषा का भेद जान लेता है वैसे ही तुमने पौधों और पाषाणों के महामौन से उनके रहस्य की कुंचिका प्राप्त कर ली है और आपने हमें उन के अनवरत चल रहे आत्म संभाषण को कर्णगोचर करा दिया है, आत्मा के उस अजस्र एवं शाश्वत प्रवाह के दर्शन करा दिये हैं जो सब जीवों के भीतर अबाध गति से बह रहा है। तुच्छतम से लेकर महानतम तक, आपने विश्व जीवन का वह आनन्दप्रद एवं करुण संगीत सुना दिया है जिस की लय हर्ष एवं विषाद की ऊर्मियों में झूल रही है।' इन शब्दों में महापुरुषों के पारखी प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यमनीषी, नोबल पुरस्कार विजेता रोमां रोलां ने पुण्यश्लोक आचार्य जगदीशचन्द्र बसु को आज से लगभग 31 वर्ष पूर्व आचार्य बसु के 70वें जन्मदिवस पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

विश्वगुरु भारत ने इतिहास के उषाकाल में सारे विश्व को जो अनन्त ज्ञान का भण्डार दिया उसमें सभी विज्ञानों एवं कलाओं का अद्भुत समन्वय था। समय के कुचक्र में पड़ कर भारत अपने पूर्व पुरुषों के ज्ञान एवं विज्ञान को भूल बैठा।

आधुनिक काल में जिस विज्ञान का उदय पश्चिम से हुआ वह विज्ञान स्वयं अपने मूल स्रोत ज्ञान के लिए ही अभिशाप सिद्ध हुआ। विज्ञान ने सच्चे अर्थों में मानव के ज्ञानचक्षु खोलने की अपेक्षा मानव को अपने नास्तिकवाद तथा मायावाद की चकाचौंध से अन्धा कर दिया है। इसी कारण विज्ञान मानवता के लिए वरदान बनने के स्थान पर अभिशाप बन गया है। ऐसे समय में भारतमाता की गोदी से ऐसा

पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिसने भारत के ऋषियों के समान ही पुनः विज्ञान को ज्ञान के दिव्य चक्षुओं से देखा। आधुनिक काल भारतमाता के सौभाग्य का पुनरोदय काल कहा जाता है। नवयुग के इस वसन्तागम के साथ ही साहित्य, संस्कृति, धर्म एवं राजनीति की क्यारियों में जहाँ अद्‌भुत प्रसून खिले वहाँ विज्ञान की डाली भी ऐसे सुभग सुमनों से सुशोभित हुई, जिसकी सुरभि से सारा विज्ञान जगत सुवासित हो उठा। भारत के वैज्ञानिकों की दीप्तिमान नक्षत्र मंडली में परम तेजस्वी सूर्य के समान चमकने वाले डॉ. जगदीशचन्द्र बसु हैं।

अद्‌भुत चमत्कार

बसु महोदय ने अपना प्रारम्भिक अनुसंधान कार्य फोटोग्राफी तथा ध्वनि रिकार्ड से प्रारम्भ किया। ध्वनि तरंगों के आविष्कार द्वारा उन्होंने ही सर्वप्रथम संसार को रेडियो की कल्पना प्रदान की थी। मारकोनी ने उनके पश्चात् ही इस विषय में खोजें की थीं। किन्तु क्योंकि बसु पराधीन भारत के नागरिक थे इसीलिए उन्हें रेडियो के आविष्कारक का सम्मान नहीं मिल सका।

जड़ वस्तुओं में चैतन्य तत्त्व

विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने अपने प्रयोगों में देखा कि धातुओं के परमाणुओं पर भी अधिक दबाव पड़ने पर उन में भी 'थकावट' आ जाती है और उन्हें फिर उत्तेजित करने पर वह थकावट दूर हो जाती है। बहुत छानबीन करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी पदार्थों में एक ही जीवन प्रवाहित हो रहा है। उन्होंने प्रत्यक्ष दिखाया कि धातु और जड़ पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं, विष से मुरझाते हैं, मर जाते हैं और नशे में मस्त हो जाते हैं। अन्त में भारतीय ऋषि के सनातन सिद्धान्त को पुनः प्रस्थापित करते हुए उन्होंने घोषित किया कि अचेतन में भी सुप्त जीवन है तथा भौतिक संसार और प्राणी संसार के बीच में खाई नहीं है। वही आत्मा पत्थर में सोई हुई है, पेड़-पौधों में स्वप्न ले रही है, पशुओं में ऊंघ रही है तथा मानव में जागृत हो उठी है।

विदेशों में चमत्कार प्रदर्शन

बसु महोदय 1897 में इंग्लैण्ड बुलाए गए। वहाँ आपने ध्वनि तरंगों तथा वनस्पतियों के जीवन पर भाषण दिए। जब वे पेरिस पहुँचे तो स्वामी विवेकानन्दजी ने लिखा—'यहाँ पेरिस में प्रत्येक देश के महापुरुष एकत्रित हुए हैं, हर व्यक्ति अपने देश के गौरव की घोषणा करने के लिए उत्सुक है। यहाँ विद्वानों की प्रतिष्ठा होगी तथा उस की प्रतिध्वनि से उनके देशों का गौरव बढ़ेगा। विश्व के प्रत्येक कोने से एकत्रित इन अद्वितीय महापुरुषों के बीच में हे मेरी जन्म भूमि! तुम्हारा प्रतिनिधि कहाँ है? इस महान् सभा में से एक नवयुवक तुम्हारे गौरव की रक्षा के लिए खड़ा हुआ। तुम्हारा

एक वीर पुत्र, जिस के शब्दों ने यहाँ की जनता को विद्युत्-स्पर्श के समान तरंगित कर दिया है तथा देशवासियों को भी आह्लादित करेंगे। धन्य हो यह वीर पुत्र तथा धन्य हो उस का वह अद्वितीय साथी जो सदा उस की सहायता कर रहा है।

पेड़-पौधों के हृदय की धड़कन

आचार्य बसु ने अपने यन्त्रों द्वारा पेड़-पौधों की हृदय की धड़कन, उन की बुद्धि का स्वतः लेखन तथा उन की संवेदना आदि प्रत्यक्ष देखना और दुःख एवं कष्ट होने पर उन का रोना भी सुना जा सकना प्रदर्शित किया। इन यन्त्रों द्वारा उन्होंने वनस्पतियों से उनकी मृत्यु वेदना का हाल भी प्राप्त किया। अमरीका में उन्होंने अपने यन्त्र द्वारा दिखाया कि एक फूल को प्यार से बुलाने से वह खिल उठता है तथा क्रोधपूर्वक गाली देने से वह मुरझा जाता है। यह जानकर कि वनस्पतियों की बाढ़ की गति बीरबहूटी की चाल के दो सहस्रवें अंश से भी कम है, बड़े-बड़े वैज्ञानिक अचम्भे में पड़ गए। आचार्य बसु ने सिद्ध किया कि सभी जीवधारियों में चाहे वे अण्डज हों अथवा पिण्डज, स्वेदज या उद्भिज हों, एक ही जीवनशक्ति प्रवाहित हो रही है।

संजीवनी बूटी

श्री बसु ने हिमालय पर्वत की एक बूटी के रस से मृतप्राय पौधों को पुनर्जीवन प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर ली। छोटे-छोटे मेढकों को भी पुनः जीवन प्रदान किया गया। कई मृतप्राय व्यक्तियों को भी दोबारा जीवित करने में उन्हें सफलता मिली थी, पूर्ण मृत व्यक्ति पर ऐसा प्रयोग करने की आशा पूर्ण होने से पूर्व ही उनका अपना जीवन पूर्ण हो गया था।

कवीन्द्र रवीन्द्र की श्रद्धांजलि

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ बसु महोदय को सच्चा कवि समझते थे, जिसने मूक वनस्पति संसार को भी वाणी प्रदान कर दी थी तथा विश्व भर को पेड़-पौधों का जीवन संगीत सुना दिया। महाकवि ने अपने 'खेया' नामक काव्यसंग्रह को विज्ञानाचार्य बसु को समर्पित करते हुए अपने जीवन के बिरवे को भी उन्हीं की भेंट किया था। अपनी एक कविता में वे गा उठे—

विज्ञान लक्ष्मीर प्रिय पश्चिम मन्दिरे
दूर सिन्धु तीरे,
हे बंधु गियेछ तुमि जय माल्यखानि
सेथा होते आनि,
दीना हीना जननीर लज्जानत शिरे
परायेछ धीरे।

अर्थात्, दूर सिंधु के पार वरद विज्ञान लक्ष्मी के प्रिय मंदिर में हे बंधु! तुम गए और लाए यश की जयमाला सुन्दर, और दीन-हीन जननी के लज्जानत शिर में पहनाई।।

पुन—

विदेशेर महोज्ज्वल मण्डित
पंडित सभाय,
बहु साधू वाद ध्वनि नाना—
कंठे रवे सुनेछ गौरवे,
से ध्वनि गम्भीर मंद्रे छाय
चारिधार होय सिंधु पारा।।

अर्थात्, अन्य देशों के महोज्ज्वल महिमा मंडित पंडितगण समूह में तुम ने सुनी नाना कण्ठों से चिर गौरव की साधुवाद ध्वनि जिसकी प्रतिध्वनि गूंज रही है सागर के इस पार चतुर्दिक।

'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'...किसी नवीन सत्य के उद्‌भासित होने से पूर्व उसे व्यंग्य, तर्क एवं विरोध का सामना करना पड़ता है। जब कभी उनका सामना करना पड़े तो समझ लो कि विजय अवश्यंभावी....।'

—स्वामी विवेकानन्द

दीपावली जिनका जन्म, संन्यास एवं पुण्य दिवस है : वेदान्त मूर्ति स्वामी रामतीर्थ

कोटिशः वंदित, ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ परमहंस वर्तमान युग में भारत की प्राचीन गौरव गरिमा के जीवित स्मारक थे। हमारी धरती उन जैसे पावन ऋषियों की चरण धूलि से पवित्र हो जाती है। यह क्रान्तिदर्शी महापुरुष स्वामी रामतीर्थ भगवान् शंकराचार्य की ही भांति आये तो थे केवल 33 वर्ष की अल्पायु लेकर, किन्तु इसी अल्प जीवन में वे हमारे अन्तस्तल पर अपने स्वर्गीय व्यक्तित्व की ऐसी अमिट छाप अंकित कर गए कि आधुनिक भारत की कोई भी कहानी उन ऋषितुल्य लोकनायक की अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

पंचनद प्रदेश की विभाजनपूर्व की राजधानी लाहौर के निकट गुजरांवाला जिला के मुरारीवाला गांव में आज से 152 वर्ष पूर्व दीपावली के कोटि दीपों के प्रकाश में इस कुलदीपक का जन्म जनगणपूजित गोस्वामी तुलसीदासजी के ही पावन गोसाईं कुल में गोस्वामी हीरानन्दजी के पावन गृह में हुआ। बालक का नाम तीर्थराम रखा गया। एक वर्ष की अवस्था में दूध-मुंहे बालक के सिर से वात्सल्यमयी माता की शीतल छाया उठ गई। अपनी वृद्ध बुआ की गोद में यह 'भावी ब्रह्मवेत्ता' मन्दिरों में जाता। अपनी नन्ही-नन्ही आंखों से देवदर्शन करता, अपने कोमल कर्णों से धर्म-कथा सुनता, अपनी तोतली वाणी से ॐ-ॐ गाता तथा शंख की ओंकार सूचक ध्वनि को सुनकर रोमांचित हो जाता।

घोर निर्धनता के चक्रव्यूह में पड़कर भी यह तेजस्वी बालक ज्ञान-साधना के कठिन पथ पर निरन्तर बढ़ता रहा तथा 20 वर्ष की अवस्था में प्रांत में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए एम.ए. (गणित) की परीक्षा पास कर ली। एफ.सी. कालेज लाहौर में प्रोफेसर पद पर कार्य करते हुए इनके मन में कृष्ण भक्ति की उद्दाम तरंग ऐसी उठी कि इन्हें देखकर गौरांग महाप्रभु का स्मरण हो आता था। रावी के तटों पर प्राण प्यारे घनश्याम कृष्ण के विरह में लोट-पोट होना तथा अपने प्रियतम को ऊँचे स्वर में पुकारना उनकी साधना के प्रारम्भिक पड़ाव थे। गर्मी की छुट्टियों में मथुरा-वृन्दावन जाते तथा कृष्णलीला का रसामृत पान करते।

भारत-गौरव स्वामी विवेकानन्द के लाहौर पधारने पर गोसाईं तीर्थरामजी के हृदयतल में छिपा हुआ आध्यात्मिकता का पावन झरना फूट निकला। उनकी वेदान्तरस प्रचार की हृदयस्थ लालसा बलवती हो उठी। वैराग्य भाव के बढ़ने के साथ आप गिरिराज हिमालय की ओर आकृष्ट हुए। प्रतिवर्ष हिमालय की हिमानी चोटियों पर जाते तथा आत्म-चिन्तन करते।

सन् 1901 में जब वैराग्य का स्रोत उनके भीतर न समा सका तो उन्होंने पुण्य सलिला भागीरथी के तट पर गेरुआ वस्त्र धारण कर विधिवत संन्यास ले लिया।

उनके मुख-मण्डल पर एक अपूर्व तेज दृष्टिगोचर होता था, नेत्रों में विशेष शक्ति थी, वाणी में तो जादू ही था।

जिस किसी को मानवता की फुलवारी के इस सुन्दरतम पुष्प को निहारने का अवसर मिलता, वह खड़ा-खड़ा थोड़ी देर उसे निहारता रहता और इस मर्त्यलोक से परे एक दिव्य लोक की कल्पना करने लगता, जिसकी स्वर्गिक आभा उन के सुस्मित बदन पर खेलती रहती थी। उनकी व्याख्यान सभाओं में ऐसा अमृत बरसता था कि उसे प्राप्त करने के लिए साक्षात् देवता भी लालायित रहते होंगे।

सन् 1902 में स्वामीजी जापान गए तथा वहाँ अपनी ओजस्वी वक्तृताओं से वहाँ के विद्वत्-समाज को चकित किया। वहीं पूर्णसिंह जैसे भक्त स्वामीजी के श्रीचरणों की ओर आकृष्ट हुए। वहाँ के संस्कृत के विद्वान् प्रो. तकात्कुसु ने लिखा—'स्वामी राम जैसा महान् व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा। वे स्वयं धर्म हैं स्वयं कवि और सच्चे दार्शनिक हैं।'

जब वे वेदान्त की पावन पताका को फहराने के लिए अमरीका में पहुँचे तो वहाँ के कोटि-कोटि नर-नारियों ने उन्हें 'मूर्तिमान ईसा' कह कर श्रद्धापूर्वक उनकी आरती उतारी। सान फ्रांसिस्को के एक विद्वान् डॉ. हिल्लर ने स्वामी के यश में लिखा है—'स्वामीजी ज्ञान की ज्योति हैं। हिमालय से आए हैं। आग उन्हें जला नहीं सकती। लोहा काट नहीं सकता। आनन्द के आंसू उनकी आंखों से सदा गिरते रहते हैं। उनकी उपस्थिति से सदा नया जीवन मिलता है।'

अमरीका के नास्तिक समाज की अध्यक्षा एक विदुषी महिला स्वामीजी से वाद-विवाद करने के उद्देश्य से आई, स्वामीजी समाधिस्थ थे। स्वामीजी के नेत्र खोलने पर वह आंखों में पश्चात्ताप के आंसू भर कर कहने लगी—स्वामी! मैं नास्तिक नहीं हूँ। आपके दर्शन मात्र से मेरे सारे संदेह दूर हो गये हैं।

अमरीका के मायावादी जीवों को कृष्ण-गोपी लीला का मर्म समझाने हेतु एक दिन स्वामीजी संध्या का प्रवचन करते हुए अचानक जंगल की ओर भाग खड़े हुए। मंत्रमुग्ध जनता अमृतमय वाणी की जादू की डोर से बंधी हुई स्वामीजी के

पीछे-पीछे भागने लगी। स्वामीजी ने अमरीका की महिलाओं को सम्बोधन करते हुए कहा— 'जब आप जैसे अपरिचित विदेशी की वाणी सुनने के लिए पागल हो सकते हैं तो व्रज गोपिकायें भगवान श्रीकृष्ण की वंशी को सुनने के लिये पागल क्यों नहीं हो सकती।' एक अमरीकन महिला श्रीमती बेलगन स्वामीजी की ऐसी अनन्य भक्त बनी कि भारत से स्वामीजी के घर की मिट्टी ले जाकर अमरीका में प्रसाद के रूप में बांटती रही।

सेन्ट लुई नामक नगर में जहाँ स्वामी रामतीर्थ सर्वधर्म सम्मेलन में बोले थे— वहाँ आजकल रामकृष्ण मिशन का एक केन्द्र चल रहा है। अपने अमरीका प्रवास में मैंने अमरीका के अनेक वृद्धों के मुख से स्वामी रामतीर्थ की महिमा सुनी।

एक बार जब स्वामी रामतीर्थ कैलिफोर्निया की शास्ता पर्वतमाल में प्रातः मस्ती से सैर के लिये जा रहे थे तो अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति ने कहा, This man walks as if the whole earth belongs to him. यह मनुष्य ऐसे चलता है मानो सारी धरती इसी की है। इस पर स्वामीजी ने कहा, Why the whole earth the whole universe belongs to me. सारी धरती ही क्यों सारा ब्रह्माण्ड मेरा है।

बादशाह दुनिया के है मोहरे मेरी शतरंज के,
दिल्लगी की चाल है सब शर्त सुलही जंग की।

धन-कुबेरों के देश अमरीका में भारत की विजय वैजयंती फहराने के पश्चात् जब स्वामीजी स्वदेश लौटे तो कोटि-कोटि जनता ने उनका जय-जयकार किया, कोटि-कोटि नेत्र उनका दर्शन कर धन्य हो गए, कोटि-कोटि शीर्षों ने उनकी चरण धूलि को मस्तक पर चढ़ाया, उस ब्रह्मतेज के देदीप्यमान सूर्य के दर्शन से करोड़ों का हृदयान्धकार दूर हुआ। स्वामीजी ने मथुरा में कहा—'भारत की सब सभा समितियाँ राम की हैं, राम उनमें काम करेगा। सब भारतवासी मेरे भाई हैं। जाओ, उन्हें कह दो कि राम तुम्हारा है, राम सब को छाती से लगाता है। मैं सब पर प्रेम की वर्षा करूंगा। संसार को आनन्द की धारा में नहला दूंगा। यदि कोई विरोध प्रकट करेगा तो उसका स्वागत करूंगा, प्रत्येक शक्ति मेरी है, प्रत्येक संस्था मेरी है।'

मुक्त गगन में विहार करने वाले इस परमहंस की वाणी में हमें देश के सर्वांगीण पुनरुत्थान का सशक्त जन सन्देश मिला। देश की आत्मा में अपनी आत्मा को एकीभूत किये हुए वेदान्तदर्शी महात्मा कहा करते—'जब मैं चलता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि सारा भारत भी चल रहा है, जब मैं बोलता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि भारत की ही वाणी गूंज रही है, जब सांस लेता हूँ तो मालूम होता है कि स्वयं भारत ही सांस ले रहा है। मैं ही भारत हूँ, मैं ही शंकर हूँ, मैं ही शिव हूँ।'

स्वामीजी आत्म गौरव के मूर्तिमान अवतार थे। वे कहा करते—'ऐ दुनिया के बादशाहो और सातों आसमानों के तारो! मैं तुम सब पर राज्य करता हूँ। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।'

स्वामीजी पर सदा आनन्द की मस्ती छाई रहती थी। उनकी मस्ती के फव्वारे सारे विश्व को पावन करने वाले थे।

17 अक्टूबर 1906 के दिन दीपमालिका का पावन पर्व था। वे अपने भौतिक जीवन की 33वीं दीपावली मना रहे थे। उस दिन मस्ती का रंग ही कुछ निराला था। ओं, ओं का उच्चारण करते हुए वे भागीरथी में स्नान करने के लिए उतरे और मस्ती से ओं-ओं गाते हुए ही गंगा मैया की गोदी में जल-समाधि ले ली। अपनी महा-समाधि से कुछ क्षण पूर्व ही स्वामीजी ने अपनी पावन लेखनी से जो शब्द लिखे वे उन के शाश्वत जीवन के परिचायक हैं—'ओ मृत्यु! भले ही उड़ा दे इस एक शरीर को, मेरे और शरीर ही मुझे कम नहीं। मैं सूर्य की सुनहली किरणों और चन्द्र के रजत धागों को धारण कर प्रसन्नता से जीवित रहूँगा। मैं पर्वतीय गुफाओं और सोतों में स्वच्छन्द गाता हुआ फिरूंगा। मैं आनन्द के महासागर में लहराता फिरूंगा। मैं समीर की तरह निर्बाध वायु हूँ। यह मेरे शरीर परिवर्तन के घूमने-फिरने वाले रूप हैं। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पौधों को ताजा किया। फूलों को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, द्वारों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी को घूंघट उढ़ाया। इस को छेड़, उस को छेड़, तुझ को छेड़, वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।'

दीपमालिका के पवित्र पर्व पर ही यह पावन ज्योति इस पुण्य भूमि पर अवतरित हुई, फिर पूरे 24 वर्ष पश्चात् दीपमालिका के दीपों के प्रकाश में ही यह ज्योति परमज्योति से मिलने के लिए परम व्याकुल हो उठी और पूरे 33 वर्ष पूर्व इस मर्त्य-लोक में अपना वैभव बिखेर कर दीपमालिका के ही ज्योतिपर्व पर यह अमर ज्योति ब्रह्म ज्योति में विलीन हो गई। उस ज्योतिष्मान देवदूत के पावन चरणों में हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

स्वतंत्रता का मन्त्र

उनकी अमृतवाणी में मानवता के जागरण का ओजस्वी मन्त्र था। 'राम सब से ऊँचे पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर गर्जन के साथ कहता है कि दरिद्रता और दौर्बल्य की शिकायत करने वाले लोगो! सचमुच तुम शक्तिमान प्रभु हो, स्वयं राम हो। अपनी ही कल्पनाओं में स्वयं मत जकड़े जाओ। उठो और जागृत होवो, अपनी निद्रा और संसार रूपी स्थान को झाड़ कर परे फेंक दो। निज स्वरूप को पहचानो। इस सब दुःख-दारिद्र्य का अपने आप लोप हो जायेगा। सारे सुखों की खान और सम्पूर्ण आनन्द की अन्तरात्मा तुम्हीं हो।'

सच्ची स्वतंत्रता के मंत्रद्दष्टा उस अमृत जीवी मुक्ति दूत का मृत्युंजय मंत्र है—'स्वतंत्रता दूसरे को जीतने से नहीं मिलती है, मिलती है अपनी विजय से, अपने मन को जीतने से।'

जन्मदात्री भारतमाता के असीम प्रेम से भर कर वह मातृवत्सल ऋषि प्रेमाश्रु-पुलकित वाणी में गद्यगीत गाने लगते—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने जा रहा है। क्या तू कृपा कर राम का यह सन्देशा उस ज्योतिर्मय को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु-बिन्दु भारत के खेतों में पहुँच कर ओस की बूंदें बन जाएं। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाई ईसा की वैसे ही मैं भारत के दृश्य को हृदय में लाकर उसकी पूजा करता हूँ। भारतमाता के प्रत्येक काल को मैं मूर्तिमान भारत ही समझ कर पूजता हूँ। हे भारतमाता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूँ। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

आधुनिक क्रान्तिकारी सुधारकों के प्रति उन ऋषितुल्य लोकनायक का सन्देश है : 'हे नवयुवक! भावी सुधारक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नए-नए बीज बोते रहने से भारत में एकता लाना कठिन हो जाएगा। भारत की अवनति के कारण यहाँ के धर्म और अध्यात्म नहीं हैं। भारत की विकसित और फूली-फली फुलवारी इसलिए लुटवाई कि उनके पास कांटों की बाड़ नहीं थी। कांटों और झाड़ियों की बाड़ चारों ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने गुलाब के पौधों और फलदार वृक्षों को न काट डालो।'

व्यावहारिक वेदान्त

प्रजातन्त्र की भावना को अपने व्यावहारिक वेदान्त का अंग बताते हुए वह आदेश देते हैं—

'प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिए एकसमान स्वतंत्रता दो। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परन्तु पांव सदा सब के साथ पृथ्वी पर ही जमे रहें। वह कभी किसी अन्य मनुष्य के कन्धे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निर्बल हो अथवा इसके लिए स्वयं राजी ही क्यों न हों।'

आध्यात्मिक साम्यवाद के समर्थक उन वेदान्त केसरी का सिंहनाद आज भी गूंज रहा है—'स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखों को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।'

देश के लकीर के फकीर प्राणियों के प्रति उन क्रांतदर्शी महात्मा का मधुसिक्त व्यंग्य है—यदि आप नई रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हैं, उस नये प्रकाश को जो आपके ही देश की प्राचीन रोशनी है तो आओ, इस धरती को छोड़कर अपने पितरों के साथ जाकर निवास करो। यहाँ क्यों ठहरे हो? प्रणाम!!

विश्व को वेदान्त का पावन मंत्र देते हुए मानवीय गौरव से भर कर वह पुकार उठते—

'हे मनुष्य! तू ईश्वर है, केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे। जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर चेतना, दिव्यदृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है। संसार और उसका अंधकार ही शरीर-चेतना की छाया है। वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा में अपने प्रकाश से स्वयं चमकती रहती है।'

अमरीका में अपना अन्तिम उपदेश देते हुए वे अलौकिक तत्त्वदर्शी बोले—

जिसने अपने मन को जीत लिया है, वह सारे संसार को एक ठोकर से हिला सकता है।'

स्वामी रामतीर्थ के रूप में विश्व-मंच पर भारत का साकार सत्य ही बोलता था। उनकी वाणी में भारतीय संस्कृति की वह अमर अभिव्यक्ति मिली जिसके कारण समूचा विश्व पुनः इस देश को पूज्य भाव से देखने लगा।

स्थिर बिंदु

आर्किमिडीज ने कहा था कि मुझे कोई स्थिर आधार (खड़े होने का स्थल) मिल जाये, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूँ। किन्तु बेचारा ऐसा स्थिर बिन्दु न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है, वह है तुम्हारी आत्मा! उसे पकड़ो, और सारा संसार तुम चलाने लगोगे।

वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाम मात्र अनात्मा हो। तुम ही सुंदर गुलाब हो, और प्रेमी बुलबुल भी तुम ही है। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो। हर एक चीज तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देवदूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। यह है संन्यास, त्याग का मार्ग! अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे! अपना पूर्ण विश्वास अपने में रखो, अपने केन्द्र में बने रहो। फिर तुम्हें कोई भी चीज न हिला सकेगी।

—स्वामी रामतीर्थ

राजा कीर्तिशाह एवं स्वामी रामतीर्थ में ईश्वर-विषयक सम्वाद

राजा कीर्तिशाह : स्वामीजी! क्या आप ईश्वर में विश्वास रखते हैं?

स्वामी रामतीर्थ : नहीं, विश्वास तो उस वस्तु में किया जाता है, जिसे देखा न हो। 'To see God is to be God.' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' ब्रह्म को जानने वाला तो स्वयं ब्रह्म बन जाता है, हम तो नित्य ब्रह्म के साथ ही विहार करते हैं।

कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! क्या आप मेरी ईश्वर से भेंट करवा देने की कृपा करेंगे?

स्वामीजी : क्यों नहीं! अवश्य, आप साक्षात्कार के लिए आवेदन-पत्र बनाइये।

राजा कीर्तिशाह ने आवेदन पत्र में लिखा : 'हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर! सादर निवेदन है कि मुझे आप से साक्षात्कार की अनुमति प्रदान की जाय।'

आपका विश्वासी, कीर्तिशाह।

स्वामीजी : राजा! आप अपने पत्र में पक्का नाम, पता लिख दो।

कीर्तिशाह : स्वामीजी! मैंने अपना नाम कीर्तिशाह लिख दिया है और अपना पक्का पता महाराजा, टिहरी गढ़वाल राज्य भी लिख दिया है।

स्वामीजी : राजा! क्या तुम्हारा कीर्तिशाह वास्तविक नाम है?

राजा : हाँ! स्वामीजी।

स्वामीजी : जब आप माता के गर्भ से प्रकट हुए तो क्या यह नाम आपके माथे पर लिखा था?

राजा : नहीं, स्वामीजी! यह नाम तो कुछ वर्षों बाद घरवालों ने ज्योतिषी के परामर्श से रख दिया।

स्वामीजी : नाम तो कल्पित होते हैं। केवल लोक-व्यवहार के लिए कल्पना से रख लिये जाते हैं, और आवश्यकतानुसार बदले भी जा सकते हैं। इसलिये आप के नाम नहीं है। नाम आपके शरीर पर अस्थायी रूप से चिपकाया हुआ लेबल मात्र है जो संसार ने दिया और संसार ही छीन लेगा। आपका व्यक्तित्व नाम से पृथक्, नाम के बंधन से मुक्त 'अनामी' है।

राजा : हाँ, स्वामीजी! नाम तो कल्पित संकेत-मात्र है। आवेदन में मैं नाम छोड़कर अपना शेष परिचय लिख देता हूँ।

साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती, ऐसा रंग-रूप आदि।

स्वामीजी : राजा! यह तो शरीर का वर्तमान परिचय है, आपका परिचय नहीं। शरीर भी परिवर्तनशील और विकारी है। इस शरीर की कहानी माँ के गर्भ में एक शुक्र के कीड़े से प्रारम्भ हुई, जिसे खुली आंख से देखा भी नहीं जा सकता। क्या उस वीर्य के कीटाणु का साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती और दो मन भार माना जा सकता है? गर्भ के अन्दर शुक्र कीट अनेक रूप बदलता है। शरीर के जन्म के समय वह बहुत छोटा एवं कोमल होता है। भ्रूण से शिशु, बाल, किशोर, तरुण, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, रोगी, मृतक इन सब रूपों में निरन्तर परिवर्तित होता हुआ यह शरीर श्मशान की धूलि के कण में समाप्त हो जाता है। शुक्र के कीड़े से लेकर श्मशान की राख के कण तक निरन्तर परिवर्तित होने वाले रूपों में आप अपना व्यक्तित्व कहाँ खोजोगे? राजा! तुम रूपों को धारण करने वाले, फिर भी रूपों से पृथक्, विकारी रूपों के बीच में अविकारी—रूपों की लीला के बीच अरूपी हो। न नाम तुम्हारा सही परिचय है और न रूप। आवेदन-पत्र पर पक्का नाम-पता लिखो तो परमेश्वर से तुरंत भेंट करवा दूँ।

राजा कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! केवल इतना ही लिख देता हूँ—राजा, टिहरी, गढ़वाल राज।

स्वामीजी : राजा! क्या यह आपका पक्का पता है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी! हम सदा से इस राज्य के शासक हैं।

स्वामी राम : एक समय था तुम्हारा यह शरीर ही नहीं था, एक समय है, यह शरीर है, एक समय पुनः होगा जब यह शरीर नहीं रहेगा। 30 वर्ष पूर्व तुम इस राज्य के राजा नहीं थे, 60 वर्ष पश्चात् तुम राज्य के राजा नहीं रहोगे। अतः यह पक्का पता कैसे हुआ?

राजा कीर्तिशाह : महाराज! राजा तो बदलता है, किन्तु राज्य तो स्थायी है। अतः केवल राज का नाम ही पक्का पता है।

स्वामीजी : राजा! तुम अपनी टिहरी गढ़वाल रियासत को रो रहे हो, एक समय था जब यह धरती ही नहीं थी, एक समय है जब यह धरती है, एक समय पुनः होगा जब यह धरती नहीं रहेगी। तब तुम्हारा पक्का पता कहाँ रहा?

राजा : तब स्वामीजी! इस प्रकार से तो जगत् में कुछ भी पक्का नहीं है।

मैं देख्यो निरधार, यह जग कांचो कांच सो—बिहारी

स्वामीजी : राजा! अगर तू अपना पक्का पता जान ले तो मैं एक क्षण में तुम्हारी परमेश्वर से भेंट करवा देता हूँ।

राजा कीर्तिशाह : मुझे कुछ समझ में नहीं आता, क्या कहूँ?

स्वामीजी : अच्छा राजा! क्या यह ताज तुम्हारा है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी!

स्वामीजी : राजा! क्या तुम ताज हो?

राजा कीर्तिशाह : नहीं स्वामीजी!

स्वामीजी : क्या यह सिर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम सिर हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह मुख तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम मुख हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह भुजाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम भुजाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह छाती तुम्हारी है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम छाती हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह पेट तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पेट हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये जंघाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जंघाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये पांव तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पांव हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह जूते तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जूते हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : राजा! क्या यह शरीर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम शरीर हो?

राजा : (सोचकर) नहीं स्वामीजी! शरीर के प्रत्येक अंग को छूकर मैंने निश्चय कर लिया है कि शरीर मेरा तो है, पर मैं स्वयं शरीर नहीं हूँ।

स्वामीजी : राजा! फिर तुम क्या हो?

राजा : स्वामीजी! संभवतः मैं मन हूँ। क्योंकि मन द्वारा ही मुझे भान होता है कि मैं शरीर का स्वामी हूँ।

स्वामी : राजा! तुम्हारा मन क्या कभी गलती करता है, कभी भूल करता है? तब मन की भूल या चंचलता ज्ञात होने पर क्या तुम मन की ताड़ना करते हो?

राजा : हाँ, स्वामीजी! मैं मन को, भूल अपराध करने पर बहुत फटकारता हूँ।

स्वामी : तब राजा! मन तुम्हारा नौकर जैसा है, जिसकी भूलों के लिए तुम उसे डांट-फटकार एवं दण्ड देते हो, तो तुम मन कैसे हो? तुम तो मन रूपी नौकर पर शासन करने वाले हो। बताओ, तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! शायद में बुद्धि हूँ, क्योंकि बुद्धि के द्वारा ही मन की भूलों का ज्ञान होता है।

स्वामी : राजा! तुम कभी कहते हो, कि 'यह कठिन विषय मेरी बुद्धि से परे है।' कभी कहते हो, 'अरे! उस समय मेरी अकल ही मारी गई थी।' इसका अर्थ है कि बुद्धि की असमर्थता एवं बुद्धि की भूल को भी आप जानते हैं।

राजा : हाँ, स्वामीजी! बुद्धि की अयोग्यता, बुद्धि की सीमा, बुद्धि की असमर्थता तथा बुद्धि के भ्रम को बाद में मैं ही जान लेता हूँ।

स्वामीजी : राजा! तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! मैं शरीर से परे, इन्द्रियों से परे, मन से परे, बुद्धि के परे कुछ हूँ, किन्तु कह नहीं सकता, मैं कौन हूँ।'

स्वामीजी : राजा! यह जो तुम कहते हो कि 'मैं' कुछ हूँ, इस 'मैं' का ही संस्कृत में नाम है 'आत्मा'।

यही तुम्हारा पक्का ठिकाना है। जो इस पक्के परिचय को जान लेता है, उसकी तुरंत परमात्मा से भेंट हो जाती है।

राजा : स्वामीजी! अब मेरी आंखें खुल गईं। सच्चा आत्मज्ञान ही परमात्म ज्ञान है।

स्वामी रामतीर्थ और भारत एक है

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—मैं हँसता हूँ तो भारत हँसता है, मैं रोता हूँ तो शताब्दियों का दुःख, पीड़ा, अपमान घनीभूत होकर मेरे द्वारा अभिव्यक्त होता है। स्वामी रामतीर्थ भारत के साथ एकात्म थे।

× × ×

यदि इस पृथ्वी तल पर ऐसा कोई देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा देश, जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिये आना ही है—ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये पहुँचना अनिवार्य है, ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शांति का चरम स्पर्श किया हो—तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो—तो वह देश भारत ही है।

—स्वामी विवेकानन्द

Wanted

Reformers
Not of others
But of themselves
Who have won
Not University Distinctions,
But victory over the local self,
Age : The youth of divine joy,
Salary : Godhead,
Apply sharp
With no begging solicitations
But commanding decision
To the director of the universe
You own self.

OM ! OM ! OM !

–Swami Rama

आवश्यकता है

सुधारकों की,
दूसरों को नहीं
स्वयं अपने आपको सुधारने वालों की,
जिन्होंने जीता है
विश्वविद्यालयों की उपाधियों को नहीं,
वरन् अपने आपको,
आयु : दिव्य आनन्द का यौवन,
वेतन : ईश्वरत्व
तुरंत आवेदन दीजिए
कृपा की भिक्षा याचना के साथ नहीं
वरन् स्वामित्वपूर्ण संकल्प के साथ
आवेदन करने का पता : सृष्टि का निर्देशक,
आपका अपना आत्मा।

ॐ, ॐ, ॐ

–स्वामी रामतीर्थ

'वन्दे मातरम्' के अमरगायक : ऋषि बंकिमचंद्र

'अनेक लोग, भारत के गत वैभव का स्मरण कर शोक से कहते हैं कि प्राचीनकाल के ऋषि हमारे अतीत के ही चमत्कार थे, जो इस युग के पतित मानवों द्वारा पुनः प्रदर्शित नहीं किए जा सकते। यह एक भूल है, महान् भूल है, अक्षम्य भूल है। हमारा देश शाश्वत है, राष्ट्र शाश्वत है तथा धर्म शाश्वत है, जिसकी शक्ति, महत्ता और पवित्रता कुछ समय के लिए मेघाच्छादित भले ही हो जाए किन्तु पूर्णतया नष्ट कभी नहीं हो सकती। वीर, ऋषि और संत भारत की धरती के स्वाभाविक वरदान हैं और कोई भी ऐसा युग नहीं आया जब वे पैदा न हुए हों। हमने अन्त में ऐसा समझ लिया है कि उत्तरकाल के ऋषियों में हमें उस महामानव का नाम अवश्य परिगणित करना चाहिए, जिसने हमारे राष्ट्र को पुनर्जीवित करने वाला ऐसा मन्त्र दिया, जो अभिनव भारत का निर्माण कर रहा है—वह संजीवन मन्त्र है—'वन्दे मातरम्'। वेदवाणी वंदित योगीराज अरविन्द घोष की यह हृदयहारी भावांजलि जिस महान् विभूति के चरणों पर चढ़ाई गई है, वे बांग्ला साहित्य के सूर्य तथा 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सचमुच भारत के पुण्यश्लोक ऋषियों की परम्पराओं में आने वाले एक महान् ऋषि ही थे, जिनका कार्य लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता के भटके हुए कदमों को पुनः अभ्युदय एवं निःश्रेयस के आलोक पथ पर लाना है।

आज से पूरे एक सौ इक्कीस वर्ष पूर्व 29 जून 1838 के दिन बंग-साहित्य के मणिमुकुट बंकिम बाबू का जन्म उस बंगदेश में हुआ जिसने पिछली एक शताब्दी में अनेकानेक महापुरुषों को जन्म देकर समूचे देश के सांस्कृतिक व राजनीतिक नेतृत्व का गौरव प्राप्त कर लिया था। जागृति के अग्रदूत बंगाल की प्रशस्ति में महाराष्ट्र भूषण श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इतना तक कह दिया, 'जिस बात पर बंगाल आज विचार करता है वह शेष भारत के मस्तिष्क में कल आती है।'

देशभक्ति : बंकिम बाबू जो जीवन के पूर्वकाल में एकमात्र कवि, साहित्यिक और शैलीस्रष्टा थे, जीवन के उत्तर काल में वे एक ऋषि और राष्ट्र निर्माता थे। बंकिम बाबू ने युग की मांग को समझ लिया और अपनी विलक्षण दृष्टि से उस अलौकिक द्रष्टा ने राष्ट्र के भविष्य के दर्शन कर लिए थे। बंकिम ने अपनी प्रज्ञा के

ज्वलन्त स्पर्श से ही देश के दुःख, दैन्य, दास्य को समूल भस्म करने का ध्रुव संकल्प किया। अपने जगत् प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' के कथानक के ताने-बाने द्वारा इस महान् ऋषि ने भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के सम्मुख मुक्ति का आलोक-पथ प्रशस्त किया। गुलामी के घोर अत्याचार का मुकाबला दुर्धर्ष नैतिक बल द्वारा ही किया जा सकता है। उसके लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता है। प्रथम तत्त्व है—त्याग, यज्ञ और बलिदान। बंकिम बाबू ने हमें दृष्टि दी कि मातृभूमि की रक्षा के लिए, सर्वस्व समर्पण के लिए सिद्ध रहना चाहिए। भवानन्द के चरित्र में उन्होंने हमें एक राजनैतिक वैरागी की बड़ी भावप्रेरक दृष्टि दी। नैतिक शक्ति के लिए दूसरा तत्त्व है—आत्मानुशासन तथा संगठन। अपने उपन्यास 'देवी चौधरानी' में उन्होंने हमारे सम्मुख बंगाल की एक ऐसी महान् वीरांगना का रोमांचकारी चरित्र दिया है जिसने पहले अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज के काल में बंगाल को मुक्त करने के लिए कुछ डाकुओं के दल को संगठित कर के अंग्रेजों को धूल चटा दी। आनन्दमठ में भी संयम एवं संगठन पर बल दिया गया है। शक्ति का तीसरा तत्त्व है देशभक्ति के कार्य में धर्म भावना का समावेश। बंकिम बाबू ने हमें राष्ट्र सेवा के धर्म की कल्पना दी तथा श्री अरविंद ने हमें स्वातंत्र्य के अवतार की सुन्दर दृष्टि प्रदान की।

वन्दे मातरम्—बंगाल शक्ति का पुजारी है। ऋषि बंकिम ने मातृ पूजा की इसी स्वभाव सुलभ भावना का परिष्कार एवं राष्ट्रीय संस्कार करके भारत के कोटि-कोटि नर-नारी को वह दृष्टि प्रदान की, जिसके द्वारा वे अपनी सच्ची माँ (भारतमाता) को पहचान सकें। आनन्द-मठ में आनन्द-मग्न संन्यासी भवानन्द के मधुर-कण्ठ से जो स्वर लहरी 'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां' भारतमाता का अभिनन्दन करती हुई निःसृत हो उठी, उस ने पिछली एक शती में इस पुण्य-भूमि भारत के धरती और आकाश को गुंजारित किया है। बंकिम बाबू की हृदय-वीणा में झंकृत यह मातृ-स्तवन भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के हृदयों को तरंगित करता हुआ हमारा मुक्तिमन्त्र, हमारा जयगान तथा हमारा ओजस्वी राष्ट्रगीत बन गया है—

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।।
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित-द्रुमदल शोभनीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्।।
।। वन्दे मातरम्।।

ऋषि बंकिम ने माँ को अपना सर्वस्व मान कर भाव-विह्वल हृदय से माँ को पुकार कर कहा—

तुमी विद्या, तुमी धर्म
तुमी हरि तुमी मर्म,
त्वं ही प्राणाः शरीरे।
बाहु ते तुमी मां शक्ति,
हृदये तुमी मां भक्ति
तोमारई प्रतिमा गढ़ि मंदिरे-मंदिरे

जिस माँ की पावन प्रतिमा कोटि-कोटि पुत्रों के हृदय-मन्दिर में मढ़ी हुई है, वहीं माँ तो सच्ची दुर्गामाता है।

उसी माँ के स्तवन में बंकिम का हृदय गीत के माध्यम से नृत्य कर उठा—

त्वं हि दुर्गा दशप्रहर धारिणीम्,
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्या दायिनीं नमामि त्वां,
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम्। वन्दे मातरम्।।

अपने एक लेख 'मेरा दुर्गोत्सव' में क्रान्तदर्शी कवि बंकिम लिखते हैं—मैंने फिर मग्न होकर उस काल के स्रोत में दशभुजा, अनेक शस्त्र धारिणी, शत्रु मर्दिनी, वीरेन्द्र पृष्ठ विहारिणी, भगवती भारतमाता की सुवर्णमयीं मूर्ति देखी। उस विश्व मोहिनी मूर्ति को देखकर माँ का दुलारा बंकिम पुकार उठा-आओ मैया, नवीन रंग से रंगी हुई, नवीन बल धारण किए हुए नवीन दर्प से भरी हुई नवीन स्वप्न देखती मैया। आओ, घर में आओ, हम तुम्हारी 32 करोड़ सन्तान एक स्थान में एक साथ 64 करोड़ हाथ जोड़कर तुम्हारे श्रीचरणों की आराधना करेंगे। 32 करोड़ कंठ से आकाश मंडल को कम्पाते हुए कहेंगे-मैया जननी अम्बिके। धात्रि धारित्रि धनधान्य धारिणी नगाङ्क शोभिनी! नगेन्द्र बालिके! शरत्सुन्दरि चारुपूर्ण चन्द्रभालिके।' हम इन 32 करोड़ सिरों को इन चरणों के ऊपर गिरावेंगे, सब मिलकर 32 करोड़ कंठों से तुम्हारा नाम लेकर हुँकार करेंगे, 32 करोड़ शरीर तुमको अर्पण कर देंगे। न हो सकेगा तो 64 करोड़ आंखों से तुम्हारे लिए रोएंगे। आओ मैया घर में आओ जिस के 32 करोड़ बच्चे हैं उसे चिंता काहे की?

समाज दर्शन—बंकिम बाबू की रत्न-प्रसू लेखनी में समाज के संस्कार हैं। नारी-धर्म पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही है। हाय! कौन पापिष्ट नराधम इस परम

रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं, हे आकाश! उनके सिर पर गिराने के लिए क्या तुम्हारे पास वज्र नहीं है?'

हास्य-व्यंग्य—महामनीषी बंकिम के लेख विद्वत्ता के अतिरिक्त हास्य और व्यंग्य का मधुतिक्त दंश भी लिए हुए हैं। एक भंवरा भारतवासी को व्यंग्य से कहता है—मैं एक साधारण कीड़ा हूँ। मैं भी केवल भनभन नहीं करता। हम लोग मधु संग्रह करते हैं, और जत्था बांधते हैं। तुम लोग न मधु संग्रह करना जानते हो और न जत्था बांधना जानते हो, जानते हो केवल भनभन करना। तुमको कोई काम करने का सलीका नहीं। मधु संग्रह करना सीखो, मधुकर की तरह एका करके जत्था जोड़ना सीखो, तुम्हारी जीभ और कलम से तो हमारा डंक ही अच्छा है। तुम्हारे वाक्यों से या कलम से कोई नहीं डरता, परन्तु देखो, हमारे डंक से सब लोग घबराते हैं!

धर्म रक्षा—बंकिम बाबू अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'राजसिंह' के उपसंहार में लिखते हैं—अन्यान्य गुणों के साथ जिसमें धर्म है—वही श्रेष्ठ है। अन्यान्य गुणों के होते हुए भी जिसमें धर्म नहीं, हिन्दू हो चाहे मुसलमान—वही निकृष्ट है। औरंगजेब धर्मशून्य था, इसलिए उसके समय में मुगल साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। राजसिंह धार्मिक थे, इसीलिए ये छोटे राज्य के स्वामी होकर भी मुगल बादशाह को अपमानित तथा परास्त कर सके।

बंग साहित्य-सम्राट, राष्ट्रोद्धारक, धर्मरक्षक, समाज संस्कारक, देशभक्त, साहित्यसेवी, वन्दे मातरम् जैसे शाश्वत राष्ट्रगीत के शाश्वत गायक, ऋषि बंकिम चन्द्र के चरणों में उनके जन्म जयन्ती पर्व पर हमारी कोटि-कोटि श्रद्धा प्रसूनांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

7 जून 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

वंदेमातरम गीत में हम भगवद्गीता के कर्मयोग का मधुर संगीतमय चित्रण पाते हैं। इस गान से हमें एक सुन्दर संकल्पना एवं संदेश मिलता है कि भारत माता का भाल कभी विदेशी क्रूर शक्ति के सम्मुख नहीं झुकेगा और भारत एक समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा।

—प्रो. ओबराय

लोकमान्य की लोकप्रतिष्ठा का आलोकस्तम्भ

जब तक भारतीय चरित्र में स्वातंत्र्य प्रेम तथा राष्ट्रीय कृतज्ञता का भाव किंचित्मात्र भी शेष है तब तक स्वतंत्र भारत में श्वास लेने वाले कोटि-कोटि भारतीयों का प्रत्येक श्वास स्वतंत्रता के देवदूत, लोकमान्य बाल गंगाधर का ऋणी रहेगा, जो राष्ट्रीय स्वराज्य के मन्त्र को हमारे जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में घोषित करने वाले प्रथम वीर सेनानी थे। गिरिराज हिमालय की विशालता तथा अनन्त समुद्र की अगाधता, एक ऋषि का ज्ञान तथा एक वीर का साहस लिए हुए वे मेधावियों के मणिमुकुट, देशभक्तों के राजकुमार तथा क्रान्तिकारियों के सरताज थे, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के घोर अत्याचारों को एक चट्टान की दृढ़ता तथा एक देशभक्त के सहज आनन्द से सह लिया। लोकमान्य का समूचा जीवन श्रीमद्‌भगवद् गीता के निष्काम कर्मयोग पर एक जीता-जागता भाष्य था, जिस का लिखित भाव भी भारतीय वाङ्‌मय का एक अमूल्य रत्न है।

भारत ने लोकनायक तो अनेक पैदा किए किंतु लोकमान्य एक ही हुए। जहाँ लोकमान्य लोक द्वारा वंदित हुए वहाँ बड़े-बड़े लोकनायकों द्वारा भी पूजित हुए।

महामनीषी डा. राधाकृष्णन् लिखते हैं, 'इस शताब्दी के प्रारम्भ में जब मैं विद्यार्थी था तब देश के नवयुवकों के लिए तिलक का नाम एक ज्वलन्त देशभक्ति, विलक्षण साहस, दुर्दमनीय संकल्प शक्ति तथा भारत की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व समर्पण करने की भावना का द्योतक था।' अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हुए वे पुनः कहते हैं—'इतिहास साक्षी रहेगा कि तिलक के रूप में हमारे पास एक ऐसा महान् भारतीय था जिसे भारत के अतीत का गर्व था तथा भारत के भविष्य की उज्ज्वल आशा थी। वह ऐसा देशसेवी था जो निर्भीक तथा स्पष्टवादी था, जिसने भारतीय राष्ट्रवाद तथा स्वतन्त्र शांति के महान् कार्य का शिलान्यास किया। योगीराज अरविन्द घोष जैसे ऋषि भी लोकमान्य की प्रशस्ति में यशोगान किए बिना न रह सके—'उनका स्थान वहाँ है जहाँ भारतीय जनगण के केवल दो-तीन महापुरुषों को स्थान मिल सकता है जो जनगण की दृष्टि में उनकी राष्ट्रीय चेतना के अवतार तथा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के ईश्वर प्रदत्त नेता हैं।....जहाँ जाति

के संकल्प ने एक बार पुकार कर कहा—इस व्यक्ति और उसके जीवन का अर्थ है जो कुछ भी मेरे हृदय तथा मेरे उद्देश्य में निहित है।'

पं. माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में तिलकजी के निधन पर भारतमाता कहती है—

अकुलाते-अकुलाते मैंने,
एक लाल उपजाया था,
था पंचानन 'बाल' खलोंका,
एक काल उपजाया था।
जिसने टूटे हुए देश के,
विमल प्रेम बन्धन जोड़े,
कसे हुए मेरे अंगों के,
कुटिल काल-बन्धन तोड़े।
खड़ा हुआ निशंक शिवाजी पर,
बलि होना सिखलाया,
जहां सताया गया, वहां वह,
शीश उठा आगे आया!
बागी दागी कहलाने पर,
जरा न मन में मुरझाया,
अगणित कंसों ने सम्मुख,
सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया!

तिलकजी की आकांक्षा पर श्री चतुर्वेदीजी लिखते हैं—

तू सहसा निर्भय गरज उठा,
काला पानी सह जाऊं मैं,
मेरे कष्टों से भारत मां,
के बन्धन टूटे पाऊं मैं?
बलि होने की परवाह नहीं,
मैं हूं, कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूं,
माता के हाथ स्वराज्य रहे!
दहला दूं सात समुद्रों को,
कहला लूं हां, बल जान लिया,

लो अपना अपना राज्य करो,
अधिकार तुम्हारा मान लिया।

जगति को तिलकजी का सन्देश है—

माता के प्राण पुकार रहे,
संगठन करो, बस बढ़े चलो।
वह धन लाओ, जीवन लाओ,
आओ लाओ दृढ़, डोर लगे,
प्यारा स्वराज्य कुछ दूर नहीं,
बस तीस कोटि का जोर लगे!

तिलक वियोग में कवि कहता है—

क्यों आर्य-देश के तिलक चले,
क्यों कमजोरों के जोर चले,
तुम तो सहसा उस ओर चले।
यह भारत मां किस ओर चले।
तेरी हुंकारों का फल था,
अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय-शक्ति ने तुझसे ही,
अमृतसर में था प्राण लिया।

पं. नाथूराम शंकर के सुपुत्र श्री हरिशंकर शर्मा की श्रद्धांजलि भी बड़ी हृदयहारी है—

धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।
भारत के सौभाग्य-सूर्य हे,
गुण-गण-गौरव ग्राम
गीता गायक, राष्ट्र विधायक,
जन-नायक निष्काम।
राजनीति-रमणी, नय-नागर,
'राम' कहें या श्याम
धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।
निर्भयता की मन्जु मूर्ति प्रभु,
अटल, अचल, अविराम।

शुचि 'स्वराज्य' के सूत्रधार को,
बारम्बार प्रणाम !
धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।

महात्मा गांधी, जो तिलकजी के पश्चात् भारतीय राजनैतिक मंच के सर्वेसर्वा बन गए तिलकजी के प्रति आभार प्रकट करते हुए लिखते हैं—'हमारे युग के किसी अन्य व्यक्ति का जनता के हृदयों पर वैसा शासन नहीं था जितना कि तिलकजी का था। वह राष्ट्र के देवता थे। उनका शब्द सहस्रों के लिए राजाज्ञा के तुल्य था। भारत की भावी सन्तानें उनको एक ऐसे महापुरुष के रूप में याद करेंगी जो उन्हीं के लिए जिया और उन्हीं के लिए मर गया।'

काका साहेब कालेलकर उन्हें 'राष्ट्रीयता की भव्य विभूति' मानते हैं तो राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद का कथन है कि लोकमान्य के जीवन से सीखने योग्य पाठ है—

स्वतन्त्र चिन्तन तथा साहसपूर्ण कर्म करने की कला। पं. पन्त का कथन है—'लोकमान्य तिलक का भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय स्थान है। उनके तुल्य महापुरुष पिछले हजारों वर्षों में भी हमारे देश में बहुत कम हुए हैं।' पण्डित नेहरू का कथन है, 'हम विराट विभूतियों को अपने सामान्य मापदण्डों से नहीं माप सकते। मुझे स्मरण है कि मेरे बालपने में तथा यौवन में, जब तक मैं प्रत्यक्ष उनके दर्शन नहीं कर चुका था, तब भी उनसे मैं कितना अधिक प्रभावित था।'

भारतीय स्वातंत्र्य की ज्योति को जीवित रखने वाले तेजस्वी तिलक के विषय में पूज्यवर साधु स्थाणुदेव लीलाराम वासवानीजी का कथन है—'लोकमान्य तिलक के जीवन से प्रायः यूनानी कथाओं के नायक वीर 'प्रोमिथियस' की याद आ जाती है। वह स्वर्ग से अग्नि चुरा कर मानवों के सुख के लिए धरती पर लाता है। देवता उससे रुष्ट हो जाते हैं। वे उसे चट्टानों से बांध देते हैं। वह यह सबकुछ इस विचार से सह लेता है कि उसने मानव की सेवा की है। इसी तरह भारत के साम्राज्यवादी देवों ने लोकमान्य को बार-बार बांधा, बन्दी बनाया। उस ने यह सबकुछ इस समाधान एवं खुशी के साथ सह लिया कि वह जनगण का सेवक है। अतः तिलक वर्तमान भारत के लिये ज्योतिर्धर बन कर आया था।'

एक अन्य कवि की श्रद्धांजलि कितनी भाव भरी है—

ओ, स्वराज्य के सिद्ध,
प्रजा सत्ता के भर्ता,
कौशल कोविद राज
दिव्य ग्रन्थों के कर्ता !

दे-भक्ति के गीत,
नीतिमत्ता के माली!
सद्गुण शील प्रभात स्वत्व
के मरीच-माली।
हे, बुद्धि तेज के विटपवर,
धृति कृति के अद्‌भुत बली!
नत मस्तक स्मृति की गुरो,
ग्रहण करो श्रद्धांजलि।।

श्री रघुवीर शरण मित्र की भावांजलि तिलकजी की गरिमा का उचित कीर्ति-स्तम्भ है—

अन्धकार में दीप जला कर,
तुम गीता का सार दे गये।
जो न मृत्यु से कभी मरेंगे,
तुम वे दिव्य विचार दे गये।।
अमर तुम्हारी क्रांति ज्योति है,
पारतंत्र्य के लिए काल तुम।
तिलक सृष्टि के माथे पर तुम,
स्वतंत्रता के भव्य भाल तुम।।
तुमने जग में शंख बजा कर,
सोई मानव-जाति जगा दी।
जिसमें स्वर्ण दमक कर निकला,
तुमने ऐसी आग लगा दी,
डूब रही थी नाव हमारी,
नाविक! तुम उस पार ले गए।
अन्धकार में दीप जला कर,
तुम गीता का सार दे गए।।

23 जुलाई 1960
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

लोकमान्य तिलक को प्रज्ञा का अमोघ वरदान

भारत की राष्ट्रीय जागृति के जनक, आधुनिक महाराष्ट्र के पंच प्राण, राष्ट्रीय यज्ञ के अध्वर्यु, स्वराज्य मन्त्र के मन्त्रद्रष्टा ऋषि, दैन्य-दास्य एवं अन्याय के मूल में प्रहार करने वाले पुणे के परशुराम, महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक सात्त्विक ऋषि, ओजस्वी वक्ता, दुर्धर्ष वीर एवं आदर्श कर्मयोगी होने के साथ-साथ एक ऐसी तत्त्व विवेचिनी सूक्ष्म बुद्धि के स्वामी थे जो विश्व के अन्तराल में छिपे हुए सत्य का उद्घाटन करने में समर्थ होती है।

लोकमान्य तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856 को (आज से 125 वर्ष पूर्व एवं 1857 के स्वातंत्र्य समर के एक वर्ष पूर्व) तथा निर्वाण 31 जुलाई 1920 को (आज से 61 वर्ष पूर्व एवं प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के 9 वर्ष पश्चात्) हुआ था। एक भारतीय युद्ध एवं एक विश्वयुद्ध के बीच विश्व रंगमच पर उभरने वाला यह अलौकिक योद्धा विश्व के साम्राज्यवादी देशों को भारत की ओर से मुंह तोड़ उत्तर देने वाला इतिहासपुरुष सिद्ध हुआ।

भारत का मनोबल तोड़ कर इसे हताश-निराश करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन एवं उसके संकेत पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ विषैले असत्य इतिहास के नाम पर बच्चों को जन्मघूंटी के समान पिलाना प्रारंभ किया।

1. भारत सदा से पराधीन रहा है अतः इसे स्वतंत्रता का कोई अधिकार नहीं। यह गोरी जातियों का दायित्व है कि अश्वेत जातियों को सभ्यता सिखावें।

2. आर्य लोग मध्य एशिया के मैदानों से भटकते हुए भारत में आ गये थे। इसका परिणाम बड़ा गम्भीर होता है। यदि भारतीय अंग्रेजों को कहते कि 'भारत छोड़ो' तो अंग्रेज कहते, 'तुम प्रथम आक्रमणकारी बन कर आये, बाद में यूनानी, फिर हूण, शक, फिर मुसलमान और अन्त में हम ब्रिटिश लोग आये। प्रथम आक्रान्ता को पहले निकलना चाहिये, अन्तिम को अन्त में।

3. वेद गड़रियों के गीत हैं। आर्य ऋषि गड़रिये थे जो अपनी भेड़ों के अजागण को चराते हुए नई हरी घास की खोज में भारत में आ पहुँचे। भेड़ों को पुकारने में जो वे अनर्गल उच्चारण करते थे वे ही वेदमन्त्र बन गये।

4. वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ नहीं है। यह ओल्ड टेस्टामेन्ट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद में लिखे गये हैं।

5. भगवद्गीता मूलतः महाभारत का अंश न होकर न्यू टेस्टामेन्ट (ईसाइयों की बाइबिल) के सर्मन ऑन दी माउन्ट (ईसा का पर्वतीय उपदेश) से उधार ली गई है।

लोकमान्य तिलक ही भारतमाता के ऐसे महान् सपूत थे जिन्होंने इन पांचों आक्रमणों का अकेले ही बड़ा प्रबल प्रतिकार कर भारत एवं भारतीयता की लाज बचाई।

स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार

एक महान् केशरी के समान गर्जना करते हुए लोकमान्य तिलक ने विश्वभर के कान खोलते हुए घोषणा की—'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे', यह शब्द केवल शब्द मात्र ही नहीं हैं। यह स्वतंत्रता का एक महान् ओजस्वी मन्त्र है जो अपने भीतर एक महान् दर्शन को गुम्फित किये हुए है। इस स्वातंत्र्य दर्शन के द्रष्टा, लोकमान्य सचमुच एक सच्चे ऋषि थे। हमने स्वतन्त्र ही जन्म प्राप्त किया है तथा स्वतन्त्र ही मरेंगे। ईश्वर और प्रकृति ने हमें स्वतन्त्र पैदा किया है। इसका अर्थ है कि प्रकृति का विधान हमें स्वतन्त्र ही देखना चाहता है। इसलिए हमारा स्वतन्त्र रहने का अधिकार हमारे जन्म से ही स्वतःसिद्ध है, इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की अब आवश्यकता नहीं। इस स्वराज्य मन्त्र को पाकर भारतीय जनगण स्वातंत्र्य के दृढ़ संकल्प के साथ ऐसी वीर गर्जना करते हुए खड़ा हो गया जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का दिल दहल गया।

आर्यों का आदिदेश

विदेशियों ने भारत में आकर यह प्रचार प्रारम्भ किया कि आर्य लोग भी भारत में बाहर से आये हैं। संभवतः ये मध्य एशिया से ही खानाबदोश कबीलों की तरह अपनी भेड़-बकरियों को चराते हुए भारत की ओर आ गये। पश्चिम के कई सत्यहंता इतिहासकारों ने वेदों को 'गड़रियों का गीत' बतलाया। इस कुप्रचार के पीछे षड्यन्त्र यह था कि आर्यों को अपनी मातृभूमि से प्रेम न रहे तथा वे यह समझने लगें कि वे भी वैसे ही डाकू बन कर आये थे जैसे बाद में मुसलमान और अंग्रेज आये। लोकमान्य तिलक ने इस कुप्रचार को अपनी प्रज्ञा के लिए चुनौती समझा तथा निष्पक्ष भाव से वे इस तथ्य की खोज में लग गये। इस विषय में उनकी खोज दो स्तरों में प्रकट हुई।

पहली खोज के आधार पर उन्होंने यह स्थापित किया कि आर्य लोग सम्भवतः उत्तरी ध्रुव के निवासी थे। इस मत को उन्होंने 100 पृष्ठों की महान् The Arctic home in the Vedas में प्रकट किया जिसे उन्होंने तीन मास से भी

कम समय में अपने हाथों से लिख डाला था। उन्होंने ज्योतिष के आधार पर इस मत की स्थापना की। वेद में वर्णित देवताओं के छः मास के दिन तथा छः मास की रात्रि का स्पष्ट अर्थ उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर होने वाले छः मास के दिन एवं छः मास की रात्रि में लगाया। इसी अर्थ में उत्तरायण देवताओं का दिन है तथा दक्षिणायन रात्रि। वहाँ सदा बर्फ जमी रहने के कारण ही सम्भवतः आर्य लोग अग्नि को देवता मानकर उसमें हवि डालते तथा यज्ञ करते थे। उष्णता देने वाले सूर्य को भी इसीलिए भगवान् कहा गया। उसी सविता देव की प्रशस्ति में गायत्री का गायन हुआ। भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी पर ऋतुओं का तारतम्य बदलता रहता है सम्भवतः ध्रुव प्रदेश में भी कभी एक प्रकार का चिर वसंत था। तिलक का मत है कि बहुत पहले उत्तरी ध्रुव बर्फ से ढका था, बीच में वहाँ से बर्फ हट गई और नीचे के प्रदेश की ओर बढ़ गई। तब वहाँ मधुर ऋतु हो गई। पुनः लगभग 20,000 वर्ष हुए उत्तरी ध्रुव पुनः हिमाच्छन्न हो गया। तब आर्यों को वहाँ से अपना घर छोड़कर सप्तसिन्धव की ओर आना पड़ा।

लोकमान्य तिलक ने अपनी बाद की खोजों द्वारा अपने उपरोक्त मत का स्वयं ही परिष्कार कर लिया था। वे स्वयं भी स्वीकार करने लगे कि आर्य लोग सप्तसिन्धव के मूल निवासी थे। ऐसा उनके कुछ लेखों तथा डायरी में लिखे कुछ संकेतों से भी प्रमाणित होता है जो यथोचित प्रकाश में नहीं आ सके। बाबू सम्पूर्णानन्द ने अपनी महान् रचना 'आर्यों के आदिदेश' में यही मत स्थापित किया है कि आर्य लोग मूलतः सप्तसिंधु (उत्तर भारत) के ही निवासी थे। डा. अमरनाथ झा ने प्रमाणित किया है कि उत्तरी ध्रुव भी धीरे-धीरे बदलता रहता है और आज से 20,000 वर्ष पूर्व यह सम्भवतः भारत में ही था। पर दोनों विद्वानों ने अपनी खोजों के लिए लोकमान्य के अन्वेषण का आभार स्वीकार किया है। डा. सम्पूर्णानन्दजी ने यह माना है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य द्वारा आर्यों के आदिदेश की खोज करने की दिशा में सबसे पहले मार्गदर्शक लोकमान्य ही थे। उन्हीं की दर्शायी हुई खोज की दिशा में आगे चलने से हमें अपने राष्ट्र की जन्मभूमि के दर्शन प्राप्त हुए हैं। अतः इस दिशा में किये गए सभी अन्वेषणों का मूल श्रेय तेजस्वी तिलक की तेजस्वी बुद्धि को है। अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करके हमारा राष्ट्र महाकवि प्रसाद की वाणी में गाने लगा—

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही।
हमारी जन्मभूमि थी यहाँ, कहीं से हम थे आये नहीं।।
जिएं तो सदा इसी के लिए, यही अभियान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें यह सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।।

वेदों की प्राचीनता की खोज

भारत का सदा से गौरव रहा है कि संसार जब अंधकार के गर्त में खोया हुआ था, जब अमरीका का दुनिया के मानचित्र पर पता ही नहीं था, जब यूरोप के कच्चा मांस खाने वाले अर्द्ध-बर्बर लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना ही नहीं सीखा था तब भारत के ऋषि हाथ में वेदज्ञान की मशाल लेकर दुनिया को आलोक का पथ दिखा रहे थे। भारत को पूर्णतया दास बनाने के लिए अंग्रेजों ने यह कुप्रचार करना आरंभ किया कि वह (वेद) विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय नहीं है। उन्होंने यह कहना शुरू किया कि वेद अधिक से अधिक ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये होंगे। इस कथन के पीछे यह एक भयंकर षड्यंत्र था कि भारतीयों के मन में यह बिठा दिया जाय कि वेद ओल्ड टेस्टामेंट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद लिखे गये हैं। गीता न्यू टेस्टामेंट (ईसाइयों की धर्मपुस्तक) के बाद लिखी गई है। यह भारतीयों के स्वाभिमान को खुली चुनौती थी। लोकमान्य ने इस चुनौती का एक प्रबल उत्तर अपने लोक विश्रुत ग्रन्थ 'औरायण' (Orion) में दिया। औरायण यूनानी भाषा में एक नक्षत्र का नाम है जिसे वैदिक वाङ्मय में अग्रायण और मृगशिरस कहा जाता है। तेजस्वी तिलक ने अपनी सूक्ष्म तत्त्व विवेचिनी मेधा द्वारा इस महान् तथ्य का उद्घाटन किया है कि आर्यों की तीन मुख्य शाखायें जो ईरान, यूनान और भारत में फैली हुई हैं, प्रारम्भ में एक ही परिवार के रूप में रहती थीं।

उस काल की कुछ ऋचाएं ऋग्वेद में हैं। जो जैसी की तैसी ही ईरानी और यूनानी परंपराओं में भी सुरक्षित है। ऋग्वेद की कुछ ऋचाएं अन्तर्साक्ष्य के रूप में यह गवाही देती हैं कि जिस समय वेदों की ऋचाएं लिखी गई उस समय बसंत ऋतु से वर्ष प्रारम्भ होता था और वर्ष का प्रथम दिवस ओरायन में पड़ता था।

लोकमान्य ने वैदिक वाङ्मय के काल को कई भागों में विभक्त किया है—

1. अदितिकाल या पूर्व ओरायन काल (लगभग 6000 ई. पूर्व से 4000 ई. पूर्व)—इस काल में आधे गद्य और आधे पद्य के मन्त्र पढ़े जाते हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने उस काल की परम्परा को भुला दिया है क्योंकि उन्होंने उसी संवत्सर को याद रखा जो भारत में उस समय प्रचलित था जब वे भारत छोड़ कर गये। भारतीयों ने उक्त परम्परा को वेदों में जीवित रखा।

2. ओरायन काल (लगभग 4000 ई. पूर्व से 2530 ई. पूर्व तक)—जब वसन्तारम्भ आर्द्रा नक्षत्र में होता था तब से लेकर उस काल तक जब वह कृतिका में होने लगा। ऋग्वेद में उस काल के बहुत से सूक्त हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने इसी काल के प्रायः अन्त में ही भारत छोड़ा था तथा उक्त परम्परा को याद रखा।

3. कृतिका काल (लगभग 2500 ई. पूर्व से 1900 ई. पूर्व तक)—यह तैत्तिरीय संहिता और कई ब्राह्मण ग्रन्थों का काल है। इस काल में ही संहिताओं का संग्रह हुआ। इसी काल में चीनियों ने भारत से हिन्दू नक्षत्र पद्धति सीखी।

4. कल्पसूत्रों का काल (2400 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व (बुद्ध काल) तक)—इससे स्पष्ट है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि वैदिक संवत्सर परिगणना का काल 6000 ई. पूर्व के लगभग है, वैदिक पंचाग (कैलण्डर) निर्माण से पूर्व भी आर्य सभ्यता अवश्य रही होगी। अतः वेदकाल अतिप्राचीन तथा कम से कम 7-8 हजार वर्ष प्राचीन अवश्य है।

लोकमान्य की इस अद्‌भुत खोज के सम्मुख मैक्समूलर सहित बड़े-बड़े पश्चिमी विद्वान झुक गये तथा भारतवासियों को अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त हो गया।

भारत तथा चैल्डिया (प्राचीन बैबिलोनिया)—लोकमान्य अपनी नानाविध खोजों में भारत तथा चैल्डिया के प्राचीन वाङ्मय में अद्‌भुत समानता को प्रकाश में लाये। वैदिक संस्कृत का 'अप' शब्द जिसका अर्थ जल है, चैल्डिया में अपसु हो गया और अरबी में आब हो गया। अप्सु वृत्रासुर का भी नाम है। वृत्र पर विजय के कारण इन्द्र को ऋग्वेद में अप्सुजित कहा है। वैदिक 'ऋतु' ही चैल्डिन भाषा का 'इतु' हो गया है। जिसका अर्थ मौसम या मास है। भारत के समान चैल्डिया के प्राचीन धर्म में सात आकाशों तथा पातालों का वर्णन है। चैल्डिन वेद भी भारतीय वेदों के प्रकारान्तर हैं।

गीता का सन्देश—माण्डले जेल में कोयले से जेल की दीवार पर लोकमान्य ने जो एक महान् ग्रन्थ लिखना शुरू किया वह उनकी प्रतिभा एवं विद्वत्ता का मेरुदण्ड बन गया।

योग को भोग में निहित रखो। सच्चा योग भोग के भीतर भी अक्षुण्ण रहता है। वह गीता का जीवन दर्शन है।

इस दिशा में सबसे बड़ा काम तिलक का जिनका गीता विषयक ग्रन्थ कर्मयोग शास्त्र अभिनव हिंदुत्व का सर्वश्रेष्ठ आचार ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में राममोहन से लेकर विवेकानंद तक भारतीय दर्शन में जो विपुल मंथन हुआ था, कर्मयोग शास्त्र में हम उसका तर्कसम्मत दार्शनिक रूप देखते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दुत्व की उस अवस्था का परिचायक है जबकि यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उत्पन्न कम्पन समाप्त हो जाता है एवं हिन्दुत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नई परिस्थितियों से लोहा लेने का उपदेश देता है। तिलकजी प्रधानतया समाज एवं राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिन्दुओं की पतनशीलता से दुःखी थे। वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। वे हिन्दू जाति की निवृत्ति

भावना से आकुल और उसकी कर्तव्यविमुखता से अधीर थे। अतएव गीता की व्याख्या के बहाने उन्होंने समस्त हिन्दू दर्शन को मथ कर उसे नवीन कर दिया तथा हिंदू जाति में वह प्रेरणा भर दी जिससे मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाता है, जिससे कर्तव्य-अकर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएं उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर पाती तथा जिससे वह परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक-ठाक समाधान कर पाता है।

लोकमान्य का अपना जीवन ही गीता के कर्मयोग पर एक जीवित-जागृत भाष्य था।

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। ...9/27

गीता के इस महावाक्य के अनुसार ही लोकमान्य ने जो कुछ खाया-पीया, जो कुछ हवन किया, जो कुछ दिया और जो कुछ तप किया—सभी कुछ भगवान् को समर्पित कर दिया। शैशव की तोतली वाणी से उन्होंने गीता गाना प्रारम्भ किया जब एक-एक श्लोक याद करने पर उन्हें उनके दादा एक पाई इनाम में देते थे। जीवन की अंतिम घड़ी में भी वे भगवद्गीता का गायन कर रहे थे—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।। ...4/7

उन कर्मवीर कुल-भालकुंकुम लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की अनन्त अलौकिक प्रज्ञा को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम।

30 जुलाई 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

मेरे जीवन का कोई भी दिन ऐसा नहीं गया है, जिस दिन मैंने गीता के श्लोकों पर मनन न किया हो।

—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

गीतांजलि के अमरगायक कवीन्द्र रवीन्द्र

जब तक संसार में कला तथा साहित्य का किंचित् मात्र भी सम्मान है, प्राच्य के विश्वकवि तथा गीतांजलि के अमर गायक, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गणना, विश्व के महानतम कवियों की श्रेणी में सदा होती रहेगी। उनका ब्रह्मा-नन्दोन्मुखी काव्योन्माद, उनके आत्मा के संगीत से गूंजते हुए ललित गीत, उनका मानव प्रेम से स्पन्दित दिव्य व्यक्तित्व तथा उन की अन्तर्राष्ट्रीय सार्वभौमिकता से समन्वित ज्वलन्त राष्ट्रीय भावना, सब मिलकर उन्हें मानवता की एक ऐसी अमूल्य विभूति बनाते हैं जिसने इतिहास के यशोमन्दिर में शाश्वत गौरव तथा अमर वैभव का स्थान प्राप्त किया तथा अपनी अलौकिक प्रतिभा के पराग से निखिल मानवता की फुलवारी को सुवासित कर दिया है।

प्रसिद्ध तत्त्वद्रष्टा हरमेन केसलिंग कवि-गुरु ठाकुर को युग का परम सनातन व्यक्ति मानते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र के चरणों में अपनी स्नेहांजलि चढ़ाते हुए वे कहते हैं—'मेरी ही नहीं, मेरे अनेक मित्रों की भी यह धारणा है कि वास्तव में इस पृथ्वी पर कहीं भी उनकी कोटि का व्यक्ति कई शताब्दियों में नहीं हुआ। ....आधुनिक भारतवासी को मानव की सर्वोच्च महत्ता में प्रतिष्ठित करने का सूत्रधार कार्य रवीन्द्रनाथ ने ही किया है। अपने मित्र रवीन्द्रनाथ की जितनी कद्र मेरे हृदय में है, उतनी किसी भी व्यक्ति की नहीं है, क्योंकि वे सर्वाधिक सार्वभौम हैं। उसका कार्य क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक है और जितने लोगों को मैं जानता हूँ, उनमें वे ही एकमात्र पूर्ण पुरुष मुझे लगे।'

किसी व्यक्ति की हस्तलिपि देख कर उसकी प्रतिभा एवं महत्ता को आंकने की कला का पश्चिम में नया-नया विकास हुआ है। हरमेन केसलिंग के पास रविबाबू की एक हस्तलिपि को देख कर महापुरुषों की हस्तलिपियों के पारखी, हस्ताक्षर विज्ञान के आविष्कर्ता वयोवृद्ध फ्रांसीसी विद्वान् क्रीपो-जार्मी की आंखों से अश्रुधारा छलक पड़ी—'ओह, सुन्दर! श्रेष्ठ!! यूरोपीय पुनरोदय-काल के बाद से मैंने इतनी उच्च कोटि की हस्तलिपि कभी देखी ही नहीं।'

1857 के भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की प्रतिक्रिया में जब ब्रिटिश शासन ने अपने पांवों तले भारतीयों को रौंदना प्रारंभ किया तो भारतीय जनमानस कांप उठा।

रक्त से लथपथ हुई भारतीय जनता जब घोर निराशा के बादलों में व्याकुलता से कराह रही थी तब 1861 में भारतीय क्षितिज पर 3 महापुरुषों का उदय हुआ। एक थे पण्डित मोतीलाल नेहरू जिनके पुत्र पं. जवाहरलाल नेहरू भारत के लिए वरदान बनकर आए।

दूसरे थे महामना पं. मदन मोहन मालवीय जिनकी महान् देन काशी विश्वविद्यालय के रूप में युग-युग तक भारतीय प्रज्ञा को प्रकाशित करती रहेगी। तीसरे थे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिन्होंने 'जन गण मन अधिनायक जय हे' का सुस्वर गायन कर पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्रविड़, उत्कल बंग देश को पुनः जगा दिया तथा भारत जननी के भवितव्य की भव्य कल्पना भारतीय मानस को प्रदान की।

गीतांजलि के अमरगायक रवीन्द्र बाबू उस शब्दब्रह्म के अनन्य उपासक थे जिसका स्तवन वैदिक ऋषियों के मुख से वाग्धारा सरस्वती बन कर निःसृत हुआ था। देहाध्यास से ऊपर उठे हुए उस ऋषितुल्य महापुरुष को एक बार शांति निकेतन में कार्य करते हुए बिच्छू डस गया। सब को रोते-चिल्लाते देखकर गुरुदेव ने कहा—अरे! तुम सब चिल्लाते क्यों हो? बिच्छू ने मुझे कहाँ डसा है, उसने तो मेरे शरीर को डसा है। मुझे डसने का साहस ही उसमें कहाँ है?'

बाबू रवींद्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ भी महर्षि थे। उनके दादा श्री द्वारिका दास तो विदेशी सभ्यता के रंग में रंगे थे। अचानक एक दिन ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र एक फटे हुए कागज पर छपा हुआ उनकी दृष्टि में पड़ गया—

ईशावास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा-मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

अर्थात्, जगत् में जो कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है, उसी के दिए हुए दान के रूप में ही संसार की वस्तुओं का भोग करना चाहिए। किसी अन्य के धन की ओर गृध-दृष्टि नहीं रखनी चाहिये।

बस इसी एक मन्त्र ने राजा द्वारिका दास के जीवन की दिशा को बदल दिया। इस उपनिषदों के तत्त्वज्ञान को पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाने वाले रवीन्द्र बाबू विश्व में भारतीय तत्त्वज्ञान के सूर्य बनकर चमके। उन के भीतर का कवि उनके दार्शनिक व्यक्तित्व से भी ऊँचा उठ गया था। इसलिए कविगुरु के गीतों में हम भारत की शाश्वत वाणी का दर्शन पाते हैं जो पुरातनतम होते हुए भी नवीनतम है।

प्रारम्भ में एक भक्त की नाई वे पाते हैं—

अपनी चरण-धूलि के तल में, मेरे मस्तक को नत कर दो।
सारा अहंकार है मेरा, अश्रुधार में मज्जित कर दो।।

पश्चात् उनके भीतर का रहस्यवादी सन्त जाग उठता है और गाता है—

हे दूर से भी दूर, हे निकटतम।
जहां तू है निकट वहां तुझे
मानूंगा अपना।
जहां तू है सुदूर, वहां मानूंगा
अपने को तेरा।।

आलोक के उस अमर झरने को सम्बोधित करके गायत्री मन्त्र के गायक ऋषि विश्वामित्र की नाईं वे भी पुकार उठते हैं—

आलोकेर एइ झरना धाराए, धुइए दाओ।
आमार प्राणेर मलिनता, धुइए दाओ।।

हे आलोक के झरने, सविता देव! हमारे प्राणों की मलिनता को धो डालो।

अपने ससीम देह मन्दिर में ही उस असीम अनन्त प्रियतम की झांकी पाकर कवि श्रुतिमधुर वाणी में गाता है—

सीमार माझे असीम तुमी, बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश, ताड़येत मधूर।

'हे मेरे असीम प्रियतम! आप मेरे शरीर की सीमा के भीतर से ही अपनी मधुर वंशी की तान बजाओ। मेरे भीतर से तेरा प्रकाश जगमग प्रकाशित होवे।'

यदि साधक प्रियतम से मिलने को व्याकुल है तो प्रियतम भी उस से मिलने को परम व्याकुल है—

मुझ से मिलने के लिए न जाने किस
अनादिकाल से तू चला हुआ है।
तेरे सूर्य-चन्द्र तुझे मेरी आंखों की
ओट नहीं कर सके।
अगणित प्रभात और संध्या की वेला
मैंने तेरे पैरों की आहट सुनी है।

अपने गीतों के पंखों से प्रभु के चरणों का स्पर्श करने वाले इस रहस्यदर्शी कवि का अपने बारे में कथन है—

चलिबो चलिबो जाइबो चले, पथेर प्रदीप जालिए।

मैं जा रहा हूँ, चलता ही चला जाऊंगा। संसार के मार्ग में ज्ञान का अमर दीपक जलाऊंगा।

अखिल विश्व में सत्य ज्ञान का दीपक जलाने वाले इस महामानव ने भारतीय संस्कृति के इस मन्त्र को साकार रूप दिया—'**यत्र विश्वं भवत्येक नीड़म्।**'
अर्थात्, जहाँ सारा विश्व एक ही नीड़ बन जाय और विश्व संस्कृति का वह अमर नीड़ है-शान्ति निकेतन।

निखिल मानवता को अपनी मंजु कला से जगाने वाले उन विश्व के अमर कलावन्त के यश में हम वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द की निम्न श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं—

'जिनके अन्तर्यामी की रसवन्ती किरणों ने अपने स्नेह स्पर्श से जन-जन के शतदल की पंखुड़ियाँ खोल आनन्द और रस का दाक्षिण्य मूर्त किया, जिनकी अनुराग-धारा ने सीमा के वज्र कपाट तोड़ कर मनुष्य को अपने ही गवाक्ष से मनुष्यता के दर्शन कराए, उन कवि-मनीषियों को मेरी अजर अमर चेतना सनातन काल तक श्रद्धांजलि चढ़ाकर भी तृप्त न होवे, यही मेरी कामना है।'

8 मई 1958
'वीर अर्जुन' में प्रकाशित

जीविका है, जीवन के लिये और जीवन है, जीवन धन जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

भारत-भाग्य विधाता कविगुरु रवीन्द्रनाथ

संसार ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जगती के महानतम कवियों तथा साहित्यिक विभूतियों में से एक माना है। वे हमारे मार्गदर्शक, तत्त्वद्रष्टा और गुरु थे। प्लेटो तथा सुकरात का प्राचीन पाश्चात्य जगत् के लिए जितना महत्त्व था, वर्तमान भारत के लिए रवीन्द्रनाथ का वही महत्त्व है। वे सभी दिशाओं में हमारे राष्ट्र के आचार्य अथवा महापुरोहित हैं, क्या हमारे राष्ट्रीय साहित्य तथा कला में, क्या सामाजिक तथा राजनैतिक दर्शन में अथवा जनगण के कल्याण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए विधायक अर्थ नीति के प्रणयन में। वे सचमुच सच्चे अर्थों में राष्ट्र के गुरुदेव हैं।

टैगोर वे कवि तथा गायक थे जिन्होंने जाति को जगाने के लिए भावात्मक प्रेरणा प्रदान की।' इन शब्दों में स्वर्गीय डा. सत्यपाल (भूतपूर्व अध्यक्ष पंजाब विधानसभा) ने कविगुरु को श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

पाश्चात्य तत्त्वद्रष्टा हरमेन केसलिंग का कथन है, 'रवीन्द्रनाथ एक राष्ट्र के जन्मदाता ही नहीं उसके निर्माता भी हैं।'

भारत की मुक्ति मानव की मुक्ति

कविगुरु प्रायः कहा करते थे—'भारत मुक्ति निखिल मानवता की मुक्ति का द्वार है। अतः वे राष्ट्रवाद के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रवाद के प्रचारक थे। अपनी मातृभूमि की उपेक्षा कर उन्होंने विश्वमानवता का राग नहीं गाया।

जन गण मन अधिनायक जय हे

रवीन्द्र भारत के ओजस्वी राष्ट्रगीत के अमर गायक हैं। वे विद्यावादी कवि निखिल विश्व के जन गण के मनों के अधिनायक (परमेश्वर) की जय गाते हैं जो भारत के भाग्य का विधाता है। यहीं कवि का उदार राष्ट्रवाद प्रकट होता है।

स्वातन्त्र्य मंत्रद्रष्टा

राष्ट्रीय स्वातंत्रता की प्रशस्ति में कवि गाते हैं—

जहां मन है निर्भय, शीर्ष गौरव से उन्नत
जहां ज्ञान है मुक्त विश्व है नहीं विभाजित

छोटी तंग घरेलू स्वार्थी दीवारों से
जहां वाणी उठती है सत्य के अन्तस्तल से
जहां भुजाएं श्रम की पूर्णोन्मुख सदैव हैं
जहां बुद्धि की शुभ्रधार है नहीं खो गई
जड़ स्वभाव की सूखी मरुतल में।
जहां मनुज मन स्वयं तुम्हीं से प्रेरित होता
नित्य विकासोन्मुखी ज्ञान में तथा कर्म में
उसी मुक्ति के महास्वर्ग में हे जगदीश्वर!
जागे मेरा देश मुक्ति-महिमा से मंडित।।

अपना इतिहास अपनी संस्कृति

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की स्पष्ट चेतावनी है—'हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि हम किसी दूसरे देश का इतिहास उधार लेकर गौरव से एक राष्ट्र के रूप में नहीं जी सकते! उधार ली हुई वस्तुएं हमारी शोभा नहीं बढ़ाती बल्कि वे हमारे जीवन का ह्रास ही करती हैं।'

भारत तीर्थ

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में भारत एक पुण्य तीर्थ है। वे अपने एक प्रेरणाप्रद गीत में गाते हैं—

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।।

अर्थात्—

हे मेरे मन! इस पुण्य तीर्थ में
धीरे-धीरे जाग!
इस भारत के महा-मानव-
सागर के तट पर तू जाग!
यहां खड़ा हो दोनों हाथ जोड़,
मैं मानव-देवता को नमस्कार करता हूं।
अपने गीतों से अत्यन्त हर्षपूर्वक
राष्ट्र देवता का अभिनन्दन करता हूं।

इसमें एकता की अग्नि के यज्ञ में अनेकता की आहुति देकर भेद-भाव त्याग, एक विराट हृदय को जागृत किया है, आज उसी की साधना एवं आराधना के यज्ञ-

भवन का द्वार खुला है। यहाँ भारत के महा-मानव-सागर तट पर एक भाव से सब का मस्तक नत हो गया है।

अपमान भार को हलका कर ले।
माता का अभिषेक करने शीघ्र आ, आ,
सबके स्पर्श से पवित्र हुए तीर्थ से आज
भारत के महा-मानव-सागर-तीर का
मंगल घट भर गया है।
उस से माता का अभिषेक करने शीघ्र आ।।

हिन्दू-नवोत्थान के अमर कवि

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने संस्कृति के चौथे अध्याय में लिखा हैं—'रवीन्द्र और इकबाल, दोनों भारतीय नवोत्थान के कवि हैं, एक हिन्दू नवोत्थान के और दूसरे मुस्लिम नवोत्थान के। शुद्ध भारतीय नवोत्थान जैसा कोई आन्दोलन भारत में नहीं उठा। जिस से अनुमान होता है कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिल कर कभी बिल्कुल एक नहीं हुईं। राजनीति के मुख से झूठ बोला जा सकता है, तर्क और दर्शन भी सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध कर सकते हैं। यहाँ तक कि इतिहास की मिथ्या व्याख्याओं से भी असत्य की पुष्टि की जा सकती है!' यह बात तो सच है कि रवि बाबू की मूल प्रेरणा हिन्दू धर्म से ही थी किन्तु हिन्दुत्व निष्ठा के कारण उन की रचनाओं को भारतीय संस्कृति का व्याख्यान न मानना उनके साथ तथा स्वयं महान् हिन्दू संस्कृति के साथ भी अन्याय करना है!' आगे चल कर श्री दिनकर जो लिखते हैं वह अनायास ही रवीन्द्र एवं हिन्दुत्व, दोनों के प्रति श्रद्धांजलि बन जाती है। वे लिखते हैं—'हिन्दुत्व का कवि होने के कारण रवीन्द्रनाथ कोमल, अहिंसक, तथा परलोक के प्रेमी हैं और इस्लाम का कवि होने के कारण इकबाल दर्पशाली तथा आवेशयुक्त हैं एवं वे इहलौकिकता को बढ़ावा देते हैं।'

भारत प्रेम का मर्म

कविगुरु लिखते हैं—'मैं भारत से प्रेम इसलिए नहीं करता कि मैं किसी भौगोलिक भूखण्ड की अन्ध भक्ति को मानने वाला हूँ, न ही केवल इसलिए कि मुझे भारत में जन्म पाने का अवसर मिल गया, अपितु इसलिए कि पिछले अनेक उथल-पुथल वाले युगों में से होते हुए भी भारत ने उस जीवन्त वाणी को सुरक्षित रखा है जो उसके महान् पुत्रों के मुख से निःसृत हुई' : 'सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं ब्रह्म।'

मृत्युंजयी संस्कृति

ऋषि प्रज्ञा के स्वामी रवीन्द्रनाथ भारत की मृत्युंजयी संस्कृति को अपनी तपःपूत लेखनी का अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखते हैं, मैं विश्वास करता हूँ कि हमारे लिए

यह गौरव का विषय है कि बहुत बड़ी क्रांतियों एवं संकटों से पूर्ण शताब्दियों के एक लम्बे क्रम में से गुजर कर भी....भारत विरोधों की तूफानी क्रोधाग्नि एवं मिट्टी की सब को धूल में मिलाने वाली प्रकृति के बावजूद भी अभी तक जीवित है।

बंग भंग पर कवि का सिंहनाद

1905 में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का निश्चय किया तो कविगुरु की क्रांति वाणी सुनाई दी—

कवि तबे उठे एशो जदि थाके प्राण,
तबे ताइ लहो साथे, ताई करो आजि दान।
बड़ो दुःख बड़ी व्यथा-सम्मुखे ते कष्टेर संसार,
बड़ोई दरिद्र बड़ो क्षुद्र बध्द अंधकार।।

अर्थात्—हे कवि! यदि तुम में जीवन है, प्राण-शक्ति है तो उठो, मेरे पास आओ और मुझे अपने प्राण दान कर दो। देश में बड़ा दुःख है, व्यथा-कष्टों से भरा संसार है, बड़ा दारिद्र्य है, बड़ा क्षुद्र बद्ध अंधकार है।

रक्षाबन्धन पर ऐक्य का संदेश सुनाते हुए राष्ट्रकवि रवीन्द्र गाते फिरते—

बंगलार माटी बंगलार जल
पुन्न होक, पुन्न होक हे भगवान।

जलियांवाला बाग हत्याकांड पर कवि की हुँकार

13 अप्रैल 1919 के दिन पंजाब के फौजी शासन के रौरव अत्याचारों से कविगुरु की शांत आत्मा भी तड़प उठी तथा वाइसराय को उन्होंने पत्र में लिखा— 'पंजाब में कुछ स्थानीय हलचल को शांत करने के लिए सरकार द्वारा जितना भयंकर पग उठाया गया है उस ने एक भयंकर धक्के के साथ हम पर प्रकट कर दिया है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की पूजा के रूप में हम कितने अधिक लाचार हैं।' उन्होंने लिखा कि ऐसे अवसर पर हमारे लिए सब प्रकार की उपाधियाँ हमारी लज्जा को और भी लज्जाजनक बना देती हैं तथा उन्होंने अपनी सर की उपाधि को उतार कर वापस फेंका।

भारत छोड़ो का उद्घोष

अपने स्वर्गवास से कुछ समय पहले उन महान् लोकनायक ने ब्रिटिश सरकार को साहस के साथ ललकारा—'अपनी कीमत ले लो, यहाँ से बाहर हो जाओ और हमें अकेला छोड़ दो।'

भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा—कविगुरु के मार्मिक उद्गार हैं, 'मैं भारत में

ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूँ।'

भारत की ज्योति मेरे नेत्र पुटों को चूम ले

मातृभूमि की अर्चना में अपना हृदय तक चढ़ाते हुए कविगुरु लिखते हैं—'मेरे हृदय की सुगंधि का श्रेष्ठतम उपहार भारतमाता के अपने फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसार भर में कहाँ अन्यत्र चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौंदर्य से आप्लावित कर सके....मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अंतरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यह आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिरनिद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।'

राष्ट्र के नायकों को यह समझना चाहिये कि कर्तव्य का निर्णय एकाङ्गी नहीं होता। विपक्ष की गतिविधियों को देखते हुए राष्ट्र रक्षा का उपाय ढूढ़ना और उसे क्रियान्वित करना चाहिये।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

मृत्युंजय कवि के मृत्यु-गीत

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी अविनश्वर प्रतिभा के पराग से विश्व भुवन में जो सुवास विकीर्ण कर गए हैं, वह काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द, दोनों क्षेत्रों में उन्हें एक मृत्युंजय कवि का गौरव प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जीवन तथा मृत्यु सदा-सर्वदा से मानव प्रज्ञा के लिए एक निगूढ़ प्रहेलिका बने रहे हैं। इस प्रहेलिका को सुलझाते-सुलझाते अनन्त कोटि मानव स्वयं मृत्यु के मुख में जा कर पहेली बन गए किन्तु यह पहेली भूतकाल को खा-खाकर भी अभी तक इतनी क्षुधातुर है कि वर्तमान को भीषण चुनौती देती हुई भविष्य को भी निगल जाने को मुंह बाए खड़ी है। स्वयं मृत्यु का ग्रास बन जाने वाला कभी भी मृत्यु के पार नहीं देख सकता स्वयं भीषण सिंह की द्रंष्ट्राओं में अटका हुआ जीवन कभी भी शेर के दांत नहीं गिन सकता। काल के तीक्ष्ण दांतों के बीच में सांस लेता हुआ जीव कभी काल के स्वरूप को पहचान नहीं सकता। किन्तु जो कालचक्र की परिधि पर चक्कर न खाते हुए उसके मूल (केन्द्र) पर खड़े काल की समग्र लीला के द्रष्टा बन गए हैं, जो अपनी महान् आत्मा द्वारा महाकाल (महेश्वर) से संयुक्त होकर कालातीत बन गए हैं, वे अपने मृत्युंजय पद से जीवन एवं मृत्यु पर दृष्टिपात करते हुए जो कुछ साक्षी देते हैं वह अमर्त्य की मर्त्य के बारे में साक्षी है, वही जीवन-मृत्यु प्रहेलिका को सुलझाने के लिए चिर तत्पर मानवीय प्रज्ञा का सुफल है। कविगुरु रवीन्द्र के जीवन-मृत्यु गीत मृत्युंजय पद से गाये हुए मृत्यु के तराने हैं। अतः उनमें मानवात्मा का सहज सुलभ मृत्यु भय नहीं वरन् एक विजयी आत्मा का मृत्यु विजय का गौरव गीत है।

जीवन एवं मृत्यु के आर-पार देख सकने वाली उनकी दिव्य दृष्टि ने जीवन को एक लीला के रूप में पहचाना था। वे स्वयं अपने को लीलामय ब्रह्म का साझीदार कह कर पुकारते थे। आज 7 अगस्त को उनकी पुण्यतिथि (निर्वाण दिवस) पर उनकी विमल वाणी के भाव मुकुल जो उन्होंने समय-समय पर मृत्यु देवता के चरणों पर चढ़ाए थे, हम पाठकों के ज्ञानवर्धन के हेतु उनके समक्ष रखते हैं—

मृत्यु के रहस्य की जिज्ञासा

कवीन्द्र मृत्यु का रहस्य जानने के लिए जिज्ञासु हो कह उठते हैं—

आज शायद, मृत्यु तट के पार जाते समय, उसी के अर्थ की ही खोज में जगत् से मुंह मोड़ कर मैं जा रहा हूँ।

वे अपने एक अन्य अनूठे पद में कहते हैं—

अरे वारिधि तेरी लहरों की क्या भाषा ?
मेरी भाषा एक चिरन्तन प्रश्न रूप है
अरे गगन तेरा क्या उत्तर है बदले में ?
मेरा उत्तर महामौन की ही भाषा है ?

सचमुच इस चिरन्तन प्रश्न के उत्तर में चिरन्तन मौन के सिवा मानव के पास और कुछ है भी नहीं।

हार-जीत का खेल

वे 1941 के अपने एक अन्य गीत में गाते हैं।

यह हार-जीत का खेल, जीवन की झूठी माया यह शिशु काल से विज़ड़ित है पद-पद में विभीषिका, दुःखमय परिहास पूर्ण।

भय का विचित्र है चलच्चित्र—

मृत्यु का निपुण शिल्प है विकीर्ण अंधकार में।

मृत्यु की गोदी में क्रीड़ा

मृत्यु नामक एक छोटे गीत में कवि ने एक रंगीन कल्पना की है कि मृत्यु ही सत्ता है तथा जग के बालक कभी उसकी गोदी में खेलते-खेलते सो जाते हैं, पुनः जागकर खेलने लग जाते हैं—

हे मृत्यु! आज मन में यह प्रश्न जागा।
'होती कहीं अगर जो तुम शून्य माया
होता न क्या निखिल का क्षण में विलोप ?
सत्ता तुम्हीं जगत् की परिपूर्ण-रूपा
बच्चे समान हम क्या जाग के खिलाड़ी,
गोदी महान, उसमें, बस, खेलते हैं ?'

मृत्यु के तीक्ष्ण दंश से गीत प्रवाह

कविगुरु के भरपूर यौवन में उनकी सहधर्मिणी के अकस्मात् देहावसान पर उनके युवक मन से उनकी अन्तर्वेदना सौ-सौ गीतों में प्रस्फुटित हो उठी—

मेरे या जीवन में तुमने
मिश्रित कर दई मृत्यु-माधुरी

वे पुनः गाते हैं—

तुमने मेरी जीवौ-मरिवौ
जुगल बाहु में बांधि लियो।

अर्थात्, हे प्रिये! तुमने मेरे जीने और मरने को अपनी युगल बाहुओं में बांध लिया है।

उनकी एक अन्य अनूठी उद्‌भावना है—

मृत्यु मझि आपे कों,
तुमने आप हरयौ है
मेरे या जीवन में अपनौ,
जीवन आनि धरयौ है।

हे प्रिये! क्या आज तुमने अपने आप को मृत्यु में हर लिया है या अपने जीवन को मेरे जीवन के बीच में आकर प्रतिष्ठित कर दिया है?'

आत्म के अमर गान

कविगुरु स्वयं लिखते हैं कि 'जगत् ने मेरी आत्मा को दुःख का मृत्युस्पर्शी चुम्बन दिया तथा बदले में मुझ से मधुर गीत मांगे।' यदि अविनश्वर कलावन्त जग को अमर गीतों का अनन्त दान दे सका तो उसका कारण यह था कि वह अमर आत्मा में श्वास लेने वाला कवि था जिसने शरीरों की नश्वर लीला से परे आत्मा की अमर ज्योति का साक्षात्कार किया था। गीता एवं उपनिषदों की मर्म वाणी में ही कविगुरु गाते हैं—

हे प्रभु मुझे अनन्त बनाकर,
तूने सुन्दर लीला खेली
नाशवान देहपात्र रिक्तकर,
पुनः पुनः नव जीवन भरते।
छोटी सी इस मम वंशी को,
लिए तुम्हीं फिरते नदी, पर्वत
उसमें अपना प्रेम फूँक
भरते रहते नूतन निशिदिन

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का वचन है—

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। ... 2/22

रवीन्द्रनाथ के अनुसार भी आत्मा नाशवान देह को रिक्त कर के नव देह में प्रवेश पाती है।

मरण का त्योहार

इन रहस्यदर्शी महापुरुष के लिये मृत्यु कोई भय की वस्तु नहीं है। वे इसे आत्मा-परमात्मा के मिलन का पुण्य त्योहार मानते हैं। वे चिरकाल से पलकें बिछाए अपने प्रीतम की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वे आएं और कब प्रिय प्रीतम का अमर मिलन हो।

मृत्यु रूपी वधू को बुलाते हुए वे गाते हैं—

ऐ मेरे मरण,
तू कब वर की वेश भूषा पहन कर
शान्त मुस्कान के साथ आयेगा।
उस दिन के बाद नव वधू बन कर मैं अपना
निवास छोड़ दूंगा
और रात्रि के एकान्त में पति-पत्नी की भेंट होगी।
तब मैं तू का भेद नहीं रहेगा।
ऐ मेरे मरण आ और मुझ से बात कर।

एक अन्य गीत में वे विदाई के समय प्रसन्न चित्त से बड़े मनोहारी शब्दों में कहते हैं—

नहीं शोक करना मेरे हित
संग मेरा कर्म है और संग है यह विश्वास
खाली नहीं कभी हो चुका है पात्र मेरा
मैं शून्य को भी पूर्ण कर दूं
अचल व्रत धारण किया है।

जन्म एवं मरण का ऐक्य

रवीन्द्र की दृष्टि में जन्म एवं मृत्यु भिन्न न थे। वे तो जन्म एवं मृत्यु को उस लीलामय ब्रह्म की लीला मानते थे। इस गीत में वे जीवन एवं मृत्यु के एक साथ दर्शन करते हैं।

आज जन्म और मृत्यु दिवस हैं, निकट आ गए।
दोनों पास-पास बैठे हैं एक सिंहासन पर

दोनों का आलोक परस्पर सम्मुख, आकर।
गले मिल रहा मेरे जीवन की, सीमा पर।
रात्रि के चन्दा, प्रभात के शुक्र, तारे सम
एक मन्त्र मैं करता हूं दोनों, आवाहन।

अपने जन्म दिवस पर उन्हें मरण की स्मृति भी सुखकर लगती है। वे भाव विभोर हो कर निर्भय स्वर में गाते हैं—

सुन रहा हूं
तुम्हारी देहली पर घंटा बज रहा।
यह अन्तिम प्रहर का घंटा है।
उसी के साथ अपने क्लान्त हृदय के भीतर।
विदाई का द्वार खुलने की आवाज, सुन रहा है।
जो पास ही, सूर्यास्त के रंग से रंजित
पूरबी राग के सुर में बज रही है।
जीवन के स्मृति दीप में
जो आज भी ज्योति दे रही है
उन कई व्यक्तियों को लेकर
सप्तर्षि की दृष्टि के सामने
मैं तुम्हारी सांध्य आरती रचाऊंगा
दिनान्त के अन्तिम क्षण में मेरी मूक वीणा
तुम्हारे चरणों पर मूर्च्छित हो जाएगी और
मेरे पीछे रहेगा नागकेशर का, नया पौधा।
जिस में कभी फूल नहीं लगे हैं।
और पार जाने वाली नौका को न पा सकने वाला।
इस पार का प्रेम।
विरह स्मृति की मनोवेदना से, क्लांत होकर,
रात्रि के अन्त में,
वह प्रेम पीछे की ओर फिरकर, देखेगा।

प्रारम्भ में जीव सुख चाहता है, दुःख से दूर भागता है। बाद में दुःखों का भी उज्ज्वल पक्ष उसके सामने आता है तथा वह दुःख-सुख को समान समझने लगता

है। किन्तु बोध प्राप्ति के पश्चात् वह दुःख-सुख की धूप-छांह से उपराम हो जाता है, तभी वह आनन्द प्राप्त करता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में जीवन मीठा लगता है, मृत्यु कड़वी। बाद में मृत्यु में भी कल्याण निहित दिखाई देता है तथा जीवन-मृत्यु दोनों समान दीखते हैं। जो जीवन-मृत्यु की सीमाओं से मुक्त हो गया हो वही वेद की वाणी में गाता है—

'यस्य छायामृतं यस्य मृत्यु।'

अर्थात्, जिस ईश्वर की छांह ही जीवन है तथा छाया ही मृत्यु है।' भगवान् ने गीता में भी कहा है—

अमृतं चैव मृत्युश्चसदसच्चाहंमर्जुन।

मृत्युंजय कवि

वे स्पष्ट देख रहे हैं कि मृत्यु उस अजर अमर अविनाशी तत्त्व का नाश नहीं कर सकती जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है, मृत्यु तो केवल इस नाशवान शरीर का ही अन्त करती है।

राहु सी मृत्यु,
डालती छाया केवल,
कर नहीं सकती ग्रास जीवन के स्वर्गीय अमृत के
जड़ के कवल में—
निश्चित जानता हूं मन में इस बात को।।

कवीन्द्र रवीन्द्र मृत्युंजय कवि थे। स्थान-स्थान पर वे मृत्यु का आवाहन कर उसे चुनौती देते हैं। अपने आप को वे अमर अविनाशी लीलामय का साझीदार समझते हैं। इस गीत में वे मृत्यु की तुच्छता को स्पष्ट कर देते हैं। वे काल को सम्बोधित करके चुनौती देते हैं।

क्या तुम इतने ही बड़े हो,
मृत्यु से तो बड़े नहीं हो।
मैं मृत्यु से भी बड़ा हूं
यही शेष कथन करके,
लो मैं जा रहा हूं।।

मृत्यु मोक्षद्वार

मानव का अन्तिम ध्येय मोक्षप्राप्ति ही है। इसी लक्ष्यपूर्ति के लिए चौरासी लाख योनियों में भटकता है पर ज्ञानचक्षुओं पर माया का आवरण होने के कारण

उसे औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान नहीं होता। सभी ब्रह्मदर्शी महापुरुषों ने मृत्यु का मोक्षद्वार के रूप में स्वागत किया है। कबीर के शब्दों में यह भाव इस प्रकार प्रकट हुए हैं।

जा मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
बिन मरने कस पाइये, पूरणपरमानन्द।।

और रवीन्द्र मृत्यु का दर्शन कर प्रफुल्ल बदन से उनका आवाहन कर पुकार उठते हैं—

सामने है शांति पारावार
बहा दो तरणी हे, कर्णधार।
होगे तुम्ही मेरे चिर स्वामी
लो उठ मुझे अपनी गोद में ले लो,
असीम के पथ में जलने दो
ज्योति ध्रुव तारा की।

यह गीत कविगुरु की इच्छानुसार उनके समाधि दिवस (7 अगस्त 1941) को शांति निकेतन में केवल प्रथम बार ही गाया गया था।

कविगुरु ने व्रज भाषा से प्रभावित हो अपने एक व्रज भाषा मिश्रित बांग्ला-गीत में मृत्यु की आरती इस प्रकार उतारी है—

मरण रे तुंहुं मम श्याम समान
मुक्ति दाता तुम्हारी क्षमा तुम्हारी दया
होगी चिर यात्रा में पाथेय मेरा।
हो जाय मर्त्य का बन्धन क्षय
विशाल विश्व ले ले मुझे गोद
में हाथ पसार कर।
मिल जाए निर्भय परिचय
महा अपरिचित का अन्तरात्मा में

वे स्वयं मृत्यु का आवाहन करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! तुम शीघ्र ही मृत्युदूत भेजो ताकि मेरी सांसारिक वासनाओं की शृंखलाएं कुछ खुल सकें—

मृत्यु के दूत को कब भेजोगे नाथ!
उन के आने पर मेरे सब द्वन्द्व मिट जाएंगे

मृत्यु के दूतों के आने पर सब अवरोध दूर हो जाएंगे।
सब शृंखलाएं स्वयं शिथिल हो जाएंगी
उनके आने के बाद कौन मुझे घर की दीवार में बन्द कर सकेगा ?

विश्व के उन अनूठे कलावन्त, मृत्यु के मर्म को जाननेवाले मृत्युंजय कवि की पुण्य पावन निर्वाण तिथि पर हम उन्हीं के मृत्यु गीतों से ही उनके चरणों में अपनी तुच्छ पूजा समर्पित करते हैं।

सच्चा जीवन क्या है? जिसकी मृत्यु न हो। और सच्ची मृत्यु वह है जिसका पुनर्जन्म न हो।

—आद्य शंकराचार्य

रवीन्द्र साहित्य में पंचनद प्रदेश का जयगान

असीम को ससीम कर देना उतना ही अवांछनीय है जितना अनन्त ब्रह्म का सान्त जीव बन जाना, किन्तु ससीम के भीतर असीम को देख लेना उतना ही आनन्ददायक है जितना सान्त जीव में अनन्त ब्रह्म के दर्शन कर लेना। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ससीम में असीम के द्रष्टा थे, सान्त में अनन्त के दर्शन करके वे स्वयं अनादि-अनन्त बन गए थे। श्रुति भगवती कहती है, '**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**'—ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही बन जाता है।

उन क्रान्तदर्शी कवि के शब्दों में—

सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश,
ताइ एतो मधूर।।

—मुझ ससीम के भीतर बैठे
तुम असीम हो वंशी बजाते,
मेरे भीतर तव प्रकाश है,
तब ही इतना मीठा है।

जिस रवीन्द्रनाथ के अन्तर का नारायण जाग उठा था, जिसके चलने-फिरने, उठने-बैठने में एक ईश्वरीय तेज था, जिसके हृदय का भगवान् ही स्वयं बोलने लगा था, जो विश्वकवि के परमोच्च सिंहासन पर आसीन हुआ, जिसकी प्रतिभा के पराग से निखिल विश्व की वाटिका सुवासित हो उठी—उस कवि सम्राट के साहित्य में केवल पंजाब प्रदेश का वर्णन ढूंढ़ना सूर्य के तापमान को तुच्छ डाक्टरों के ताप- मापक यन्त्र से मापने के बराबर है।

कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बंगाल अथवा भारत के ही कवि नहीं विश्वभर के महानतम कवि हैं। सरोजिनी नायडू ने हंगरी की राजधानी बूडापेस्ट में एक

अस्पताल में देखा कि बहुत से ऑपरेशन किए हुए मरीज अपने बिस्तरों पर लेटे हुए अपने तकिए के नीचे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक पुस्तक रखे हुए हैं जिसका हंगरी भाषा में नया-नया अनुवाद हुआ था। श्रीमती नायडू को देखने पर वे सब पुस्तक निकाल कर 'टैगोर-टैगोर' चिल्लाने लगे। सरोजिनी ने नार्वे के किसानों के पास भी टैगोर की रचनाएं देखी तथा पूर्वी अफ्रीका के जंगली लोगों से भी सुना कि धरती पर मनुष्य के रूप में एक भगवान् रहता है जिस का नाम 'टैगोर' है। जब 1914 का महायुद्ध घोषित हुआ तो फ्रांस के प्रधानमंत्री ने अपने हृदय के संक्षोभ को शान्त करने के लिए गीतांजलि को सीने से लगा लिया तथा वहाँ की एक प्रसिद्ध कवयित्री से गीतांजलि के गीतों का पाठ सुनकर उन्हें शांतिलाभ हुआ। इस प्रकार विश्व मानवता के हृदय पर जिनकी दिव्य प्रतिभा का एकछत्र साम्राज्य है, उनके साहित्य भण्डार में पंचनद प्रदेश की प्रशस्ति को प्रकाश में लाना कुछ संकुचित भाव है।

पंजाब विश्वकवि को भूल न जाए

प्रस्तुत लेख लिखने के लिये मैं इस कारण प्रेरित हुआ हूँ कि जिस रवीन्द्रनाथ की सारा विश्व आरतियाँ उतारता है और जिस रवीन्द्रनाथ ने स्वयं पंजाब की पुण्यभूमि का जयगान गाया है उसी रवीन्द्रनाथ के विषय में आज पंजाब के पढ़े-लिखे लोगों को भी बहुत कम ज्ञान है। पंजाब को कृतघ्नता के पाप से बचाने के लिए ही यह लेख है।

वेदमन्त्रों से गूंजता हुआ पंचनद प्रदेश

मनु स्मृति के अनुसार आर्यावर्त्त की सीमा उत्तर में हिमवान तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक थी। इसके पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर समुद्र था। आर्य लोग इसी भूमि के निवासी थे। इसे ही सप्तसिंधु प्रदेश कहा गया। इसकी महिमा में सारा वैदिक वाङ्मय गूंज रहा है। इसके पूर्व तथा पश्चिम में समुद्र होने का अर्थ है कि पूर्व में प्रयाग से परे का उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम में राजस्थान उस समय जलमग्न थे। विन्ध्याचल से नीचे भी समुद्र था तथा दक्षिणी भारत का पठार आर्यावर्त से बिल्कुल पृथक् था। कई विद्वानों का मत है कि दक्षिणावर्त तो उस समय अफ्रीकी भूखण्ड के साथ जुड़ा हुआ था। बाद में कई भौगोलिक उथल-पुथलों में दक्षिणी पठार अफ्रीका से पृथक् होकर आर्यावर्त्त से जुड़ गया। इसी कारण दक्षिण में आर्य संस्कृति बाद में पहुँची तथा सारा देश भारतवर्ष बन गया। मनु काल के आर्यावर्त्त में सरस्वती और दृशद्वती के बीच का प्रदेश (आजकल का पंजाब प्रदेश) ब्रह्मावर्त कहलाता था। यही वेदों की भूमि है। सप्तसिंधु प्रदेश में भी आज के पंजाब की पांच प्रसिद्ध नदियाँ, पश्चिमोत्तर में सिन्धु नदी तथा दक्षिण में

सरस्वती नदी मानी जाती है। इस प्रकार सप्तसिन्धु प्रदेश ब्रह्मावर्त से कुछ बड़ा है। पंजाब को तथा उसी के कारण सारे भारत को यह गौरव प्राप्त है कि जब अधिकांश संसार अन्धकार के गर्त में निमग्न था, अमरीका का पता नहीं था तथा यूरोप के मनुष्य पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना नहीं सीखा, तब पंजाब में आर्य ऋषि हाथों में वेदज्ञान की मशाल लेकर सारे विश्व को प्रकाश दे रहे थे।

रवीन्द्रनाथ की पंजाब को श्रद्धांजलि

वेदमन्त्राभिगुंजरित पंजाब की धरती के प्रति अपनी श्रद्धा चढ़ाते हुए वे ऋषि-तुल्य लोकनायक रवीन्द्रनाथ गा उठे—'पंजाब भारत का वह प्रदेश, जिसके आकाश में प्रथम प्रभात का उदय हुआ, जिसके तपोवनों में सामवेद का संगीत पहले-पहल गुंजारित हुआ, जिसके वनों एवं उपवनों में मानव के प्रथम पदचाप सुने गए।'

पंजाब तथा बंगाल

पंजाब ने विश्व को ज्ञान का प्रथम आलोक वेद के रूप में दिया। सारे ऋषि आर्यावर्त्त में हुए। किन्तु जब आर्यावर्त्त पर संकट आया तो पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिए दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किए—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिए।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, युक्तप्रांत इत्यादि के क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा इत्यादि। आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिए आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेश वास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किए। धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्वविजेता विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द पैदा किए, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, राजा राममोहनराय तथा अलौकिक तत्त्वद्रष्टाविश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किए। प्रायः यही माना जाता था कि ऋषि केवल पंजाब ने ही पैदा किए हैं! किन्तु बंगाल ने भी ऋषि पैदा कर दिखाए। आचार्य क्षितिमोहन सेन का

कथन है कि चाहे कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने वेदों का कोई गम्भीर अध्ययन नहीं किया था फिर भी उनके अनेक गीत वेद की ऋचाओं के समान पवित्र एवं हृदयस्पर्शी हैं। गायत्री मन्त्र के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र के समान एक बार कविगुरु भी उदय होते हुए सूर्य को देख कर गीत के माध्यम से नाच उठे—

आलोकेर एइ झरना धाराए, धुइए दाओ
आमार प्रानेर मलिनता, धुइए दाओ।।

हे आलोक के झरने सूर्य! अपनी प्रकाश की धाराओं से सारे विश्व को नहला दो। हे सूर्य! हमारे हृदय की सारी मलिनता को अपनी पावन आलोकधारा से धो डालो।

इन पंक्तियों का प्रभाव गायत्री मन्त्र से कम नहीं है।

पंजाब वीर प्रदेश माना जाता है किन्तु बंगाल ने भी आधुनिक काल में रासबिहारी, खुदीराम, सुभाषचन्द्र जैसे महान् वीरों एवं क्रांतिकारियों को पैदा करके न केवल पंजाब के समकक्ष स्थान बना लिया है बल्कि सांस्कृतिक जागरण में बंगाल पंजाब से भी बाजी मार कर ले गया है।

गीता-गान का देश पंजाब

वेदों के पश्चात् उपनिषद् तथा उपनिषदों के दुग्धामृत गीता का स्थान है, यह भी पंजाब की सारे विश्व को देन है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने स्वयं लिखा है कि उपनिषद् उन के लिए प्रेरणा के महान् स्रोत रहे हैं। सारी गीतांजलि के गीत उपनिषदों के तत्त्व दर्शन से गूंज रहे हैं।

गीता सन्देश के विषय में कविगुरु लिखते हैं—'गीता में हमें निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया गया है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखता है वह शेष सभी को अपने से तुच्छ मान लेता है। अतः अन्य सभी लोगों की सत्ता एवं अधिकारों का विचार रखते हुए मनुष्य को अपने आप के व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त करना होगा। व्यापक जीवन प्राप्त करने के प्रत्येक प्रयत्न की यह मांग है कि मनुष्य दान को ही लाभ माने तथा स्वार्थी न रहे।'

गुरु गोविन्दसिंह तथ बन्दा वैरागी को पुष्पांजलि

कवि-सम्राट ने पंजाब की वीरता में अनेक प्रशस्तियाँ गाई हैं। 'कथा ओ कहानी' में गुरु गोविन्द पर उन की कविता अपनी ही प्रकार की अनूठी कलाकृति है। बन्दा वैरागी का बलिदान तो अत्यन्त रोमांचकारी है—

पंचनदीर तीरे,
वेणी पाकाइया शीर

देखिते देखिते गुरुर मन्त्रे
जागिया उठेछे सिख
निर्मम निर्भीक
हजार कंठे गुरुजीर जय
ध्वनिय तुले छे दिक्

पंचनद के तीर पर
वेणी बांदे सिर पर
देखते ही देखते गुरुमंत्र से
जाग उठे हैं सिख
निर्मम निर्भीक
सहस्रों कंठों से 'गुरुजी की जय'
ध्वनि से गूंज उठी हैं दिशाएं।

वे पुनः लिखते हैं—

पंजाब आजि गरजि उठिल 'अलख निरंजन'
अर्थात् **पंजाब आज गरज उठा है**
'अलख निरंजन'।

बलिदानी वीरों का दृश्य कितना मार्मिक है—

पंचनद के तीर पर
भक्तों के देह की रक्त लहरी
मुक्त हुई क्या, रे ?
लाखों वक्ष चीर
झांकता प्राण, पक्षी समान
छूटा जैसे नीड़।
ललाट पर रक्ततिलक लगाया
मां के वीर पुत्रों ने
पंचनद के तीर पर।

बन्दा बैरागी के बन्दी होने का दृश्य कितना रक्त-खौलाने वाला है—

सिंह समान जकड़े बन्धन में
बन्दा हुआ समर में बन्दी

गढ़ गुरदासपुर में
वीर सिखों के कटे मुण्ड
लटकाए भालों की नोकों पर
सम्मुख चलती मुगल सेना
उड़ाती धूलि पथ पर।
सात सौ सिख चलते पीछे
बजती लौह श्रृंखलाएं।

बन्दा के बलिदान की घड़ी रक्तस्नात है—

बन्दा की देह लगे नोचने घातक
कर संडासियां दग्ध
स्थिरता से वीर मेरा,
बिना किए एक भी कातर शब्द।
दर्शक गण ने मून्दे नयन,
सभा हुई निस्तब्ध।।

वेणी के बदले शीश कटाया

एक सिख वीर तरुसिंह के बलिदान का वर्णन कविगुरु के शब्दों में देखिए— नवाब ने बन्दी सिख तरुसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा—'मैं तुझ को क्षमा करना चाहता हूँ। तुम महान् वीर हो अतः यदि तुम अपनी वेणी काटकर मुझे दे दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।' तरुसिंह ने उत्तर दिया—तुम जो चाहते हो मैं तो उससे भी अधिक देने को प्रस्तुत हूँ।' तुम तो केवल वेणी चाहते हो, मैं अपना सिर भी दे रहा हूँ।'

महापुरुषों का मान

कवीन्द्र रवीन्द्र लाल-बाल-पाल की त्रिपुटी में से विपिनचन्द्र पाल के निकट संपर्क में आए थे। इसी कारण पंजाब केसरी लाला लाजपत के प्रति भी उनका सहज प्रेम का भाव था। स्वामी विवेकानन्द के तो वे प्रशंसक थे ही। विवेकानन्द से स्फूर्ति प्राप्त करने वाले (पंजाब के विवेकानन्द) स्वामी रामतीर्थ से भी कविगुरु का मिलन हुआ था। भगतसिंह बलिदान पर भी गुरुदेव को भारी ठेस लगी।

जलियांवाला बाग कांड पर कविगुरु का आक्रोश

सन् 1919 में वैशाखी के पर्व पर जब अमृतसर नगर में जलियांवाला बाग कांड हुआ तब पंजाब के रक्तपात से कवीन्द्र रवीन्द्र उद्विग्न हो उठे और उन्होंने

वायसराय को पत्र लिखकर अपनी सर की उपाधि को वापस फेंक दिया। इससे कविगुरु का पंजाब के प्रति सहज प्रेम प्रकट होता है।

जन-गण-मन-अधिनायक, जय हे !

अपने राष्ट्र गीत में कविगुरु ने देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की नामावली गिनाते हुए 'पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल बंग', गाया है। इसमें भी उन्होंने देश की परिक्रमा करते हुए सबसे प्रथम माला के सुमेरु के स्थान पर पंजाब का नाम ही लिया तथा अतिशय विनय से अन्त में बंग देश का नाम लिया।

क्या विश्वकवि के पावन जन्मोत्सव पर हम पंजाब निवासी कविगुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करेंगे ?

10 मई 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

शेक्सपियर या तुलसी...???

भारत के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने एक बार कहा था कि 'यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए और दूसरे में शेक्सपियर के साहित्य को रखा जाए और मुझसे पूछा जाए कि मैं किसे अधिक मूल्यवान समझता हूँ तो मैं भारत—जैसे विशाल देश में ब्रिटिश साम्राज्य को ठुकरा दूंगा, किंतु मैं अपने महाकवि शेक्सपियर को कभी नहीं त्यागूंगा।'

आज भारत जैसे स्वतंत्र राष्ट्र के कोटि-कोटि जनगण को इंग्लैण्ड ही नहीं, वरन् सारे विश्व को बता देना चाहिए कि यदि इंग्लैण्ड का ही नहीं, वरन् सारे संसार का साम्राज्य भी किसी तुला पर अवस्थित कर तौल दे, तो भी हम अपने राष्ट्रकवि सन्त तुलसीदास की तुलना में विश्व साम्राज्य को ठुकरा देंगे, किंतु अपने तुलसी को नहीं त्यागेंगे।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

रवीन्द्र साहित्य मन्दिर में नटराज शंकर

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर सत्यं शिवं सुन्दरम् के अमर द्रष्टा थे। वे स्वयं भी अपने आप को लीलामय परब्रह्म का साझीदार मानते थे। वेदों में जिसे शांतं, शिवं अद्वैतम् कहकर वन्दनायें गाई गई हैं, पुराणकारों ने जिसे चन्द्र मौलेश्वर, त्रिशूल-पाणि, नीलकण्ठ भगवान् कह कर स्तवन किए हैं, कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने भी उनकी महिमा से अपनी काव्य-कीर्ति को महिमामण्डित किया है। अपनी एक अनूठी कविता में वे गा उठते हैं—

शोनो रे कविवर काछे—
रामीरे जांर अतल शान्ति,
तांहार खेला अधीर नाचे।
सृजने जांर असीम वित्त,
प्रलये तांर विलास नृत्य,
त्यागे तांर पूर्ण विकास,
अन्तर जांर पूर्ण आछे।
देशे काले मुक्त जिनि
जटाय तांरि घुर्णी जड़ाय,
देश कालेरि मंदाकिनि।
बांधन निये करेन लीला,
कखनों आंट कखन ढीला,
ग्रंथि बेंधे ग्रंथि खोलेन,
से रग तांर लओ रे चिनि।

उस विश्वकवि की शिवस्तुति का जो कुछ भावानुवाद प्रस्तुत लेखक से बन पड़ा है वह निम्नलिखित है—

सुन लो कवि के मधुर कंठ से,
शिव की महिमा अगम अपार।।

अन्तम में जिनके अगाध हैं,
शांति और लीला में नृत्य,
सृष्टि में ऐश्वर्य महा है,
और विलास प्रलय में नित्य।
पूर्ण विकास त्याग में जिनका,
जिनका अन्तर सदा प्रपूर्ण।।
सुनलो कवि के मधुर कंठ से...

देश काल से जो अतीत हैं,
उनकी जटा जूट में बंदी,
परिक्रमा करती और बहती
देश काल की मन्दाकिनी है।
बन्धन कभी तो ढीला करके,
कभी कड़ा कर, लीला करते,
वही बांधते नर ग्रन्थि में,
ग्रन्थि खोल मुक्त भी करते।
ऐसा उनका रंग जान लो,
सब रंगों से स्वयं मुक्त जो।
सुनलो कवि के मधुर कण्ठ से
शिव की महिमा अगम अपार।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के 'तपती' नामक नाटक का प्रथम दृश्य ही जालन्धर के राजा विक्रम के राज्य के एक शिव मन्दिर में निम्नलिखित शिवस्तुति से खुलता है—

सकल सरवता भस्म करो,
प्रभु क्रोध-दाह से अपने,
हे भैरव, दो शक्ति भक्त को,
सफल करो सब सपने।
दूर करो महारुद्र,
जो कुछ है मुग्ध, शुद्ध,
दूर करो भय तुच्छ मरण का,
प्राणों को दो तपने,
सफल करो सब सपने।

दुःख का मन्थन करके
पावें अमृत हम जीवन का।
आशंका कर दूर मृत्यु की
पावें तेज तपन का।
दीप्त प्रचण्ड तेज तेरा
जो झरा करे निर्झर-सा,
प्रस्तर-शृंखला तोड़,
त्याग का बहे प्रवाह प्रखर-सा।
मृत्यु-भीति को दूर करो,
प्रभु, पापों को दो खपने,
हे भैरव, दो शक्ति भक्त को,
सफल करो सब सपने।।
करुणा वरुणालय भोलेशंकर।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बावरो रावरो नाह भवानी' गाकर भवानीपति शंकर के बावलेपन तथा भोलेपन की व्याम स्तुति की। कविगुरु रवीन्द्र भी भोले बाबा के यश में कहते हैं—

भोलानाथ, जो शास्त्रों में आनंदमय कहे जाते हैं, वे सभी देवताओं में वैसे ही पृथक् हैं। उसी पागल दिगंबर को मैं आज के इस धुले हुए नीले आकाश की फैली हुई धूप में देख रहा हूँ। इस निबिट मध्याह्न के हृत-पिंड में उनका डिम्-डिम् डमरु बज रहा है। आज मृत्यु की उल्लंग शुभ्रमूर्ति इस कर्म निरत संसार के मध्यभाग में कैसे निस्तब्ध भाव से खड़ी है। सुंदर शान्तिछवि है भोलानाथ! मैं जानता हूँ तुम अद्‌भुत हो। जीवन के क्षण-क्षण में अद्‌भुत रूप से ही तुम अपनी भीख की झोंल लेकर खड़े हो। तुमने एकदम हिसाब-किताब को नष्ट निश्चित कर दिया है। तुम्हारे नन्दी भृंगी के साथ मेरा परिचय है। आज उन लोगों ने तुम्हारा भोग का प्रसाद मुझे एक बूंद भी नहीं दिया है, यह मैं नहीं कह सकता—इससे मुझे एक नशा हो गया है। सब अस्त-व्यस्त हो गया है। आज मेरा कुछ भी व्यवस्थित नहीं है।

भस्मांग राग का लोकोत्तर आनन्द

सुख एवं आनन्द का अन्तर खोलते हुए रवीन्द्रनाथ शिव के धूलि मर्दन एवं भस्मी रमाने में एक अलौकिक रहस्य खोजते हैं—

'मैं जानता हूँ, सुख प्रतिदिन की सामग्री है, आनन्द प्रतिदिन के अतीत हैं। सुख शरीर में कहीं धूल लग जाने की आशंका से संकुचित रहता है। आनन्द धूल में लोट-पोट हो कर निखिल विश्व के साथ अपना व्यवधान तोड़-फोड़ कर चूर-मार

कर देता है—इसी कारण सुख के लिए धूल हेय है, आनन्द के लिए धूल भूषण है। सुख कुछ खो जाने की आशंका से डरा हुआ रहता है। आनन्द यथासर्वस्व वितरण कर के परितृप्त रहता है। इस कारण सुख के लिए रिक्तता, दारिद्र्य है। आनन्द के लिए दरिद्रता ही ऐश्वर्य है। सुख व्यवस्था के बन्धनों में अपनी श्री मात्र की सतर्कता के साथ रहा करता है। इसलिए आनन्द संहार की मूर्ति में अपने सौन्दर्य को उदार भाव से व्यक्त करता है। सुख बाहर के नियमों से बद्ध है। आनन्द उस बन्धन को छिन्न-भिन्न करके अपने नियमों को आप ही बना लेता है। सुख सुधा मात्र के लिए ताकता हुआ बैठा रहता है। आनन्द दुःख के विष को अनायास ही हजम कर जाता है। इसलिए केवल अच्छाई की ही तरफ सुख का पक्षपात रहता है। और आनन्द के लिए भला-बुरा दोनों ही समान है।

प्रतिभा एवं पागलपन दोनों के प्रेरक : श्मशान विहारी शिव

कवीन्द्र रवीन्द्र के मत में विचित्र वेशधारी, श्मशान विहारी शिव के पागलपन में ही सभी रूढ़ियों को नष्ट करने वाली नवीनता, मौलिकता एवं प्रतिभा की मूल प्रेरणा है। अपनी कलारुचिर शैली में वे कहते हैं—

'इस सृष्टि में एक पागल मौजूद है जो कल हमारी कल्पना के बहिर्भूत है उन्हें वे ही आप ही आप पहुँचा देते हैं। वे हैं केन्द्रातिम, 'सेन्ट्रिफ्यूगल'। वे केवल नियमों को बाहर की तरफ खींच रहे हैं। नियमों के देवता संसार के सभी मार्गों को परिपूर्ण चक्र-मार्ग बना देने की चेष्टा कर रहे हैं और यह पागल उन्हें बटोर कर कुण्डली के आकार में परिणत कर रहे हैं। यह पागल अपनी मौज से सर्पों के वंश में पक्षी, और बन्दरों के वंश में मनुष्य उद्भावित करा रहे हैं। जो हो चुका है जो मौजूद है, उसको ही चिर-स्थायी रूप से बचा रखने के लिए संसार की एक विषम चेष्टा चल रही है ये उस को छार-खार करके, जो नहीं है उसके ही लिए मार्ग साफ कर रहे हैं। इनके हाथ में बांसुरी नहीं है, सामंजस्य का सुर इनका नहीं है, पिनाक झंकृत हो जाता है, विधिविहित यज्ञ नष्ट हो जाता है और कहाँ से एक अपूर्वता आकार छेंक बैठती है। पागलपन भी इनकी ही कीर्ति है और प्रतिभा भी इनकी ही कीर्ति है। इनके खींचने से जिसका तार टूट जाता है वह हो जाता है उन्माद और जिसका तार अश्रुतपूर्व सुर से बज उठता है वह हो जाता है प्रतिभावान।'

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्यु

शंकर एवं प्रलयंकर की एकता का दिग्दर्शन कराते हुए कविगुरु साक्षात् ऋषिवाणी में कह उठते हैं—

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मैदेवाय हविषा विधेम

'अमृत जिसकी छाया है, मृत्यु भी उसी की छाया है, उसके सिवा और किस देवता की पूजा करें।'

वे अन्यत्र लिखते हैं—'हे पिता, तुम ही दुःख हो, तुम ही विपद् हो, हे माता, तुम ही मृत्यु हो, तुम ही भय हो। तुम ही 'भयानां भयं भीषणं भीषणानां' हो।...असत्य जो अपने को दग्ध करके तब कहीं सत्य में उज्ज्वल हो उठता है, अन्धकार जो अपने को विसर्जित करके तब कहीं ज्योति में परिपूर्ण हो उठता है, और मृत्यु जो अपने को विदीर्ण करके तब कहीं अमृत में प्रस्फुटित हो उठती है।...इसीलिए ऋषियों ने तुम्हें करुणामय करके व्यर्थ सम्बोधित नहीं किया। इसी लिए ऋषियों ने तुम्हें कहा है—'हे रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्नमुख है उसके द्वारा तुम हमारी रक्षा करो।'

प्रलयंकर का आशीर्वाद

कविगुरु के प्रार्थना प्रवण प्राण पुकार उठते हैं—'हे भयंकर, हे प्रलयंकर, हे शंकर, हे मयस्कर, हे पिता, हे बन्धु, तुम हमें आशीर्वाद दो कि हममें उत्तरोत्तर ऐसी शक्ति विकसित होती रहे जिससे कि हम अपने अन्तःकरण की सम्पूर्ण जाग्रत शक्ति से, उद्यत चेष्टा से, अपरानित चित्त से, भय, दुःख और मृत्यु से तुम्हें सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकें, किसी भी अवस्था में कुण्ठित और अभिभूत न हों।'

रुद्र देवता का प्रसन्नमुख

अपने 'प्रार्थना' नामक आत्म रसाप्लावित प्रबन्ध में कविगुरु ने ऋषि अन्तरात्मा की प्रार्थना का सन्धान पा लिया है। वे कहते हैं कि हमारी एकमात्र प्रार्थना है, और वह है—

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।
आविराधर्स रुधि। रुद्र यस्ते दक्षिणं मुखं, तेन मा पाहि नित्यम्।

'असत्य से मुझे सत्य में ले जाओ, अन्धकार से मुझे ज्योति में ले जाओ, मृत्यु से मुझे अमृत में ले जाओ। हे स्वप्रकाश, मेरे निकट प्रकाशित होओ। रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्नमुख है उसके द्वारा तुम सदा सर्वदा रक्षा करो।'

भेद में अभेद—मंगलप्रद शिवतत्त्व

जहाँ कविगुरु शिव को सभी प्रकार की रूढ़ियों को भंग करने वाले, मर्यादा-मर्दन महेश्वर मानते हैं वहाँ वे उन्हें सब प्रकार के भेदों में अभेदतत्त्व के रूप में सब को संयम नियम में रखने वाले सबके नियामक भी मानते हैं—

'भेद के द्वारा बहु का जन्म होता है किन्तु मेल के द्वारा बहु की रक्षा होती है। जहाँ एक को अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना है, वहाँ प्रत्येक को अपने परिमाण

को ठीक रखकर अपने वजन को बचाकर चलना पड़ता है। जगत् में जो चीजें हैं उनको हम उनके रूपों में पाते हैं, उनका जो परिणाम है उसी में संयम की रक्षा की गई है, संयम मंगलप्रद है, यही संयम सुन्दर है। शिव तो यही हैं—संयमी हैं।'

वे अन्यत्र शान्तं शिवं अद्वैतम् की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

'शिवम्' केवल अपने आप में ही स्थिर रहें तो उन्हें शिव ही नहीं कहा जा सकता। संसार में चेष्टा और दुःख की कोई सीमा नहीं। इस कर्म-क्लेश में ही अमोघ मंगल के द्वारा वे अपना शिव स्वरूप प्रकाशित कर रहे हैं। मंगल संसार के समस्त दुःख ताप को अतिक्रम किए हुए है, और इसलिए वे धर्म हैं। नहीं तो उनका प्रकाश कहाँ है?'

करालं महाकाल कालं कृपालम्

भगवान रुद्र का भयंकर विकराल स्वरूप भी, जो सांसारिकों के सुखसपनों पर उल्कापात के सदृश है, कविगुरु के लिए वरेण्य हो उठा है। कविप्रवर की रहस्यदृष्टि ने शिव के भीम भयंकर रूप में भी नवनवोन्मेषिनी लीला का कौतुक देखा है।

'केवल पागल ही नहीं, केवल प्रतिभावान ही नहीं, हमारी प्रतिदिन की एकरंगी तुच्छता में, अकस्मात् 'भयंकर' अपना जलता हुआ जय पुंज लिए हुए प्रकट हो जाता है। वह भयंकर प्रकृति में अप्रत्याशित उत्थान, और मनुष्यों में एक असाधारण पाप के आकार में जाग उठता है। तब कितने ही सुखमिलन का जाल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, कितने ही हृदयों का संबंध छार-खार हो जाता है। हे रुद्र! तुम्हारे ललाट से धधकती हुई अग्निशिखा के स्फुलिंग मात्र से अन्धेरे में गृह का जो प्रदीप जल उठता है, उसी शिखा से लोकालयों में, सहस्रों की हाहाध्वशीथ से निर्णय रात्रि में गृहदाह उपस्थित हो जाता है। हाय शम्भु! तुम्हारे नृत्य में तुम्हारे दायें और बायें पैरों के उठने-गिरने से संसार में महापुरुष और महापाप उत्क्षिप्त हो उठते हैं। संसार के ऊपर प्रतिदिन के जड़ हस्तक्षेप से जो एक सामान्यता का आवरण गिर पड़ता है; भले-बुरे दोनों के ही प्रबल आघात से तुम उसको छिन्न-विच्छिन्न करते रहते हो और प्राणों के प्रवाह को अप्रत्याशित उत्तेजना से क्रमागत तरंगित करके शक्ति की नव-नव लीलाओं और सृष्टि की नव-नव मूर्तियों को प्रकट कर देते हो।

मृत्युदेवता का रहस्यरूप

भगवान् शंकर मृत्यु के देवता, संहार के स्वामी माने जाते हैं। कविगुरु रवीन्द्र नाथ का मत है कि शंकर के इस प्रलयंकर रूप को पहचानने में ही मुक्ति का रहस्य है। कवीन्द्र के शब्दों में—'हमारे इस पागल देवता का आविर्भाव रह-रह कर होता है ऐसी बात नहीं है। सृष्टि में उसका पागलपन हरदम लगा ही हुआ है। हमें रह-रह कर केवल उसका परिचय ही प्राप्त होता है। प्रतिक्षण ही जीवन को मृत्यु नवीन

बना रही है भले को बुरे की तुलना द्वारा उज्ज्वल बना रही है, तुच्छ को आकल्पनिक मूल्यवान बना रही है। जब हम उसका परिचय प्राप्त कर लेते हैं तभी रूप में अपरूप, बंधन में मुक्ति का प्रकाश हमारे सामने जाग उठता है।'

मृत्युंजय महादेव की जय

वेद के महामृत्युंजय मन्त्र, त्र्यम्बकं यजामहे...में जिस त्र्यम्बक रुद्र का स्तवन किया गया है उसी रुद्र को सम्बोधन कर कविगुरु प्रार्थना की विनीत वाणी में पुकार उठते हैं—तुम्हारे इस रुद्र आनन्द में योग देने में मेरा भयभीत हृदय पराङ्मुख न होने पावे। संसार के रक्ताकाश के बीच तुम्हारा सूर्यकिरणों से चमकता हुआ तीसरा नेत्र ध्रुवज्योति से मेरे अन्तर के अन्तर को उद्‌भासित कर दे। नृत्य करो हे उन्माद नृत्य करो! उस नृत्य के चक्कर के वेग से आकाश की एक लाख करोड़ योजनव्यापी चमकती हुई नीहारिका जब चक्कर लगाती रहेगी तब मेरे वक्ष में कहीं भय का आक्षेप इस रुद्र संगीत का ताल काट कर न चला जाय। हे मृत्युंजय! हमारे समस्त भलों और समस्त बुरों के बीच तुम्हारी ही जय हो।

शिव के चरणों में भारत का नमन

'प्राचीन भारत' नामक एक तत्त्वगुम्फित निबन्ध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ गद्यगीत में गा उठते हैं—'हे विधाता! तुम अपने उस अनन्धकार लोक के प्रति दीन भारत का नतमस्तक उठा दो।

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न
सन्त चासञ्छिव एव केवलः।

'जब तुम्हारा वह तमस से नितान्त मुक्त आलोक आविर्भूत होता है तब कहाँ तो दिन, कहाँ रात, कहाँ सत्, कहाँ असत्, तब 'शिव एव केवलः' केवल शिव, केवल मंगल है।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च,
नमः शंकराय च मयस्कराय च,
नमः शिवाय च शिवतराय च।

'हे शंकर, हे मयोभव, तुम्हें नमस्कार है। हे शंकर, हे मयस्कर, तुम्हें नमस्कार है, हे शिव, हे शिवतर, तुम्हें नमस्कार है।'

वासन्ती गीतों के अमरगायकह्नविश्वकवि रवीन्द्रनाथ

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं ही साहित्य की वासन्ती सुषमा के एक अमर वरदान थे। वे साहित्य के उपवन में मधु मधुरिमा का सौंदर्य एवं संगीत लेकर आने वाले स्वयं ऋतुराज वसन्त थे। भारतीय साहित्य के इस महान् सरोवर में अपनी अपूर्व छवि से खिलने वाले ऐसे अनूठे शत-कमल थे जिसके पावन पराग से केवल भारत ही नहीं वरन् विश्व भर का दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

माधुर्य का मृत्युंजय कवि रवीन्द्र वसन्त ऋतु के अभिनन्दन में गा उठता है—

एशो आमार वसन्त-
आजी दखिन द्वार खोला
दिव हृदय-दोलाय दोला,
एशो वन मल्लिका कुंजे,
ऐशो हे, ऐशो हे, ऐशो हे।
मृदु मधुर मदिर ऐशो,
पागल हाओयार देशे,
तोमार उतला उत्तरीय तुमि-
आकाशे उड़ाये दियो,
एशो हे, एशो हे, एशो हे,
आयार वसन्त एशो हे!

ऐसा है हमारा प्यारा वसन्त
आज दक्षिण पवन के लिये द्वार खुला
दिव हृदय आनन्द में झूला
मल्लिका कुंज में माधुर्य छा गया
ऐसा है हमारा प्यारा वसन्त

यह मृदु, मधुर मदिर वसन्त,
सबको पागल बनाता है।
हे वसन्त तुम्हारा उत्तरीय
उड़ रहा गगन में मधुर मुक्त,
आओ हे प्यारे वसन्त आओ।।

माधवी वसन्त के आगमन को धरती का चिरभिलषित सौभाग्य मान कर कवि अपनी वाणी की वंशी में तान भरता है—

कत लक्ष वरषेर तपस्यार फले, धरणीर तले,
फुटियाछे आजि ए माधवी, ए आनन्द छवि,
युगे युगे ढाका छिल अलक्ष्येर, वृक्षेर आंचले।।

न जाने कितने लक्ष वर्ष के तप से,
पृथ्वी पर माधव ऋतु यहह्लआज खिली है,
युग युग से जो आनन्द छविह्लछिपी पड़ी थी।
वृक्षों के नीचे, आज पुनः प्रकटी है।।

सुगन्धि एवं सुवास की इस मधुऋतु के स्वागत में कवि स्वागत गीत गुनगुनाता है—

आओ आओ वसन्त धरा तले
आओ अविरल, अविकल तान,
आओ नव प्राण, नव गान,
आओ सुरभित अलस समीरण
आओ विश्व के अन्तर,
अन्तर - निभृत चेतन।
आओ नव उल्लास हिलोल,
आओ आनन्द छन्द हिन्दोल।

कवि का यह अमर अभिनन्दन गीत अनेक स्वरों में ध्वनित होता है—

हे वसन्त, हे प्रथम फाल्गुन!
अयुत वत्सर पूर्ण एक दिन
नन्दन वन का खुला था दक्षिणद्वार
और अचानक मत्त वेग से आकर
ठहर गये तुम मानव की कुटिया में।

तरुण धरा की प्रथम माधवी पर जो
डूब गये थे पुष्प तप्त किरणों की
स्वर्णिम मदिरा में, उन्हीं फूलों को
पुष्प वर्ष प्रतिवर्ष नई भूषा के,
आंचल में श्रृंगार किये लाते हो।
जग के बीते युग की विस्मृत गाथा
अंकित है उन फूलों की कलियों पर,
उनकी मीठी गन्ध में मिश्रित है सच,
माधुर्य लोक लोकान्तर के उपवन का।

रहस्यदर्शी कवि वसन्त के आगमन में अपने प्रियतम के आगमन का सन्देश पाता है—

आज वसन्त द्वार पर आया।
अवगुंठित कुंठित जीवन में-
जाय न वह ठुकराया।
आज खोल दो हृदय पद्म दल,
भूलो निज-पर-भाव अंच चल।
गीत मुखर इस गगन प्रांत में,
उठें गन्ध की लहरें विह्वल।
दिशाहीन त्रिभुवन में कर दो-
मधुर माधुरी छाया।।

रवीन्द्र का समूचा जीवन एक अनवरत वसन्त दर्शन है, एक मधुर फूलों की सैर है—कवि गाता है—

फूल चुनने के लिए संगृहीत करने
के लिए मत ठहर जाओ, चलो आगे
सारी यात्रा भर तुम्हें हंसते हुए
खिलते हुए,
मधु गन्ध बिखराते हुए पंकज मिलेंगे।

वे प्रियतम को पुकारते हैं कि आज की वसन्त निशा में मेरी तुम्हें मिलने की तृषा तीव्रतम हो उठी है। अपने सुधा भरे गीत को गाते हुए आओ।

चित पिपासित रे, गीत सुधातरे
आजिवसन्त निशा, आजि अनन्त, तृषा,

आजि जागृत प्रान
तृषित चकोर समान,
गीत सुधार तरे।।

कवि के जीवन की बगिया में वसन्त के पदार्पण से तो सारा संसार आनन्द यज्ञ बन जाता है। उस रहस्यदर्शी गायक की स्वर लहरी गूंज उठती है—

जगते आनन्द यज्ञे आमार निमन्त्रण
धन्यहल धन्यहल मानव जीवन।
—जगती के आनन्द यज्ञ में
अपना आज निमन्त्रण पाकर
धन्य धन्य हो उठा है मेरा
मानव का यह सुन्दर जीवन।

तोमार यज्ञे दिएछ भार,
बाजाइ आमि बांशि।
गाने गाने गेंथे बेडाई,
प्राणेर कान्ना हासि।।

—इस आनन्द यज्ञ में मुझ को
काम मिला वंशी वादन का,
गीत गीत में गूंथ दिया है,
स्वर प्राणों के हास रुदन का।

भगवान् कृष्ण ने 'ऋतूनां कुसुमाकरः' कहकर वसन्त को स्वयं ईश्वर का ही रूप कहा। कविगुरु उस अनन्त को पाकर गीत के माध्यम से नृत्य करने लगते हैं—

इस ज्योति समुद्र में,
जो शतदल कमल है
उसका मकरन्द मैंने पिया,
मैं धन्य हो गया!
अब मैं जान गया,
किसके लिए थे ये आंसू
यह जागरण धन्य है
यह क्रन्दन धन्य है
और, धन्य है यह वेदन।

वसन्त की लौकिक सुषमा में भी कवि ने रहस्य दर्शन किया है। एक नववधू को वसन्त की मंजरी समझ कवि ने सारी प्रकृति को अर्घ्य बनाकर उसे चढ़ा दिया है—

अहो वधु सुन्दरी, तुम मधु मंजरी, पुलकित चम्पा गहो अभिनन्दन।
पल्लव पात्रे फागुन रात्रे मुकुलित मल्लिका मालय निबन्धन, गहो अभिनन्दन।

वसन्त ऋतु के चतुर्दिक सौंदर्य का पान कर कवि की हृदयवीणा ध्वनित हो उठती है—

आज हृदय पुलकित,
अन्तर तर विलसित,
आज स्वयं उच्छवसित लय तार स्वर
अहम् अमृत निर्झर।

वसन्त की वासन्ती सुषमा में मातृभूमि के अनन्त प्यार का सन्देश पाकर कविगुरु की आकांक्षा मुखर हो उठती है—

'मेरे हृदय को सुगन्धि का श्रेष्ठतम उपहार भारत माता के अपने ही फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि दुनिया भर में कहाँ अन्यत्र चन्द्रमा इतने माधुर्य से चमकता है जो मेरे संपूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौंदर्य से आप्लावित कर सके।...मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अन्तरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा यही आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिरनिद्रा में सो जाने से पूर्व भी इसी धरती का प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।'

मर्यादा की सीमा में निभना और निभाना तप है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

रवीन्द्र के काव्य मंदिर में श्रावण पूर्णिमा का रजत प्रकाश

रक्षाबंधन का कच्चा सूत का धागा भारत की चिरन्तन आत्मा का सजीव प्रतीक है। यह शक्ति को शील का कवच पहनाने वाला दिव्य रक्षा-सूत्र है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारतीय संस्कृति के महानतम व्याख्याताओं में से एक थे। भारतीय जनजीवन का कदाचित ही कोई अंग हो जिसका यत्किंचित् आख्यान कविगुरु ने अपनी कलारुचिर प्रतिभा के रंगीन प्रकाश में न किया हो।

प्रकृति का रसवर्षण पर्व

रक्षाबंधन का पर्व श्रावण पूर्णिमा के दिन आता है। अतः श्रावणी नाम से प्रख्यात है। श्रावण पावस ऋतु का प्यारा मास है। भारतीय जनजीवन सावन के मधुर गीतों तथा हृदयहारी झूलों से रंगीन हो उठा है। श्रवण नक्षत्र, पितृभक्त बालक श्रवण तथा वेदों के श्रवण (सुनने) से संबद्ध श्रावण मास गगनमण्डल से सहस्र धाराओं में होने वाले रसवर्षण के लिए भी सुप्रसिद्ध है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपनी रसवन्ती कला का अर्घ्य श्रावण पूर्णिमा के महापर्व को चढ़ाया है—

आज श्रावणेर पूर्णिमाते की एनेछिस बल्।
हासिर कानाय कानाय भरा नयनेर जल।।
बादल-हाओयार दीर्घश्वासे यूथीवनेर वेदन आसे-
फुल-फोटानोर खेलाय केन फुल-झरानोर छल।
ओ तुई की एनेछिस बल।।

ओगो की आवेश हेरि चांदेर चोखे,
फेरे से कोन स्वप्न-लोके।
मन बसे रय पथेर धारे-जाने ना से पाले कारे-

आसा-याओयार आभास वातासे चंचोल।
ओ तुई की एनेछिस बल्।।

अर्थात्ह्न

आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन
बोल तू मेरे मीत तू लाया है क्या?
क्या हंसी के पात्र में छलछल भरा
लोचनों का अश्रुजल लाया है तू?
मेघ मन्थर पवन के निश्वास में
तू जीवन की वेदना का राग है।
पुष्प-प्रफुल्ल खेल में फिर आज क्यों
हो रहा है छल सुमन झटकाने का?
आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन
भेंट मेरे मीत तू लाया है क्या?

चाँद की आंखों में देखो क्या मधुर
देखता हूं मैं नशीली चाँदनी।
जाने क्या किन स्वप्नलोकों में शशि
आज खोया-खोया-सा है घूमता।
मेरा मन पथ के किनारे बैठ कर
जाने क्या किस मीत को कब पाएगा?
किन्तु चंचल पवन में है तैरता,
मीत-गमनागमन का संकेत है।
आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन,
भेंट मेरे मीत तू लाया है क्या?

उक्त कविता में कवि ने प्रकृति की पावस लीला के रंगीन पर्दे के पीछे छिपे लीलामय पुरुष को श्रावण पूर्णिमा की चन्द्र धवल चंद्रिका में पुकारा है तथा उसके संग रहस्यमय प्रेम लीला का नृत्यगान किया है।

हृदयों को बांधने वाली राखी की तारें

बीसवीं शती के प्रथम चरण में ही बंगदेश क्रांति का अग्रदूत बन कर देश के समक्ष खड़ा हुआ। बंकिमचन्द्र के वन्देमातरम्, योगीराज अरविंद के स्फुलिंगवर्षी-लेखों, सुरेन्द्र बेनर्जी एवं विपिनचन्द्रपाल के अग्निमुखी भाषणों से ब्रिटिश

नौकरशाही का कलेजा कांप उठा। उस समय कविगुरु अपने कवि के गगनचुम्बी भुवनों को त्यागकर धरती पर उतर आए और उन्होंने अपनी मातृभूमि के प्रेम से आप्लावित होकर देशभक्ति के अनेक गीत रचे।

1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल के क्रांतिवाद का गला घोंटने के लिए बंगाल के विभाजन का निश्चय किया। कविगुरु ने इसे अपने स्वाभिमान के लिए चुनौती समझा तथा वे शान्त प्रकृति एकान्तप्रिय कवि अब जनगण के हृदय में प्राणचैतन्य फूंकते हुए गाने लगे—

आमार सोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालो बासि।
चिर दिन तोमार आकाश, तोमार वातास, आमार प्राणे बाजाय बांसि
तोमार एइ से वाघरे शिशु काल काटित रे,
तोमारि धुला माटि अङ्गे मसित धन्य जीवन मानि।
तुई दिन फुराले सन्ध्याकाले की दीप ज्वालिस घरे,
भरि हाय, हाय रे...
तरवन खेलाधुला सकल फेले तोमार कोले छुटे आसि।।
ओ मा तोर चरणेते दिलेम एइ माथा पेते—
दे गो तोर पायेर धुला से ये आमार माथार मानिक हबे
ओ मा, गरिबेर धन जा आछे ताइ-दिब चरण तले,
भरि हाय, हाय रे—
आमि परेर घरे किनब न आर भूषण ब'ते गलार फांसि।।
आमार सोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालो बासि।।

अर्थात्ह

हे स्वर्ण भूमि बंगाल देश मैं तुझ पर जाऊं बलिहारी।
चिरदिन से पवन गगन तेरे प्राणों में वंशी बजा रहे।
तेरे क्रीडागृह में बचपन और शैशव के मृदु क्षण बीते,
तेरी धूलि से अंग पोत मैं धन्य मानता जीवन को।
संध्या वेला में गृह देहली पर कैसा दीप जलाती तू!!
बलि बलि जाऊं मैं खेल-त्याग तव गोदी में दौड़ा आता।
हे स्वर्ण भूमि बंगाल देश...
हे माता तेरे चरणों में मैंने निज माथा झुका दिया,
निज चरणों की धूलि दे दो तह माणिक हो मेरे शिर का,
हे माता, मुझ निर्धन का जो कुछ धन सब तव चरणों पर है,

बलि जाऊं, पर परवशता की फांसी को भूषण न मानूं।।
हे स्वर्णभूमि बंगाल देश मैं तुझ पर जाऊं बलिहारी।

कवीन्द्र रवीन्द्र का यह गीत कोटि-कोटि देशवासियों की हृदयवीणा से प्रतिध्वनि हो गया तथा बंगवासियों के लिए तो जीवन मंत्र बन गया।

कविगुरु कोलकाता महानगरी में एक दिन जुलूस के मुखिया बने। मस्ती से गाते जाते—

बांग्लार माटी, बांग्लार जल,
पुन्न होक पुन्न होक, ए भगवान।

—हे भगवान्! हमारे लिए बंगाल की मिट्टी और बंगाल का जल पुण्य-पावन हो।

देश की धूलि का तिलक करते हुए कवि गाते हैं:

ओ आमार देशेर माटी, तोमार परे ठेकाइ माथा।
तोमाते विश्व मयीर, तोमाते विश्व मायेर आंचल पाता।।
तुमि मिशेछ मोर देहेर सने,
तुमि मिलेछ मोर प्राण मने,
तोमार ओइ श्यामल बरन कोमल मूर्ति गर्मे गाँथा।।

ओ मेरे देश की धूल मैं तुझ पर सादर माथा टिकाता हूँ।
हे विश्वमयी, तुझ में फैला है विश्व माया का शुचि अंचल।
तुम घुली मिली मेरे तन में और समा गई तन प्राणों में
वह श्यामवर्ण कोमल स्वरूप अन्तरतम में है गुंथा हुआ।
ओ मेरे देश की धूल मैं तुझ पर सादर माथा टिकाता हूँ।।

विधि के अटूट बन्धन

रक्षाबन्धन का पर्व प्रेम के दिव्य बंधन का परिचायक है। इस पुण्य व्रत में विधाता का शिव संकल्प भी निहित है। कविगुरु ने बंगभंग के पापपूर्ण कुचक्र को ध्वस्त करने के लिए सन् 1905 के रक्षाबन्धन पर्व पर समूचे बंगदेश का आह्वान किया तथा उन्हें आदेश दिया कि वे कोट्यावधि संख्या में परस्पर गले मिलकर राखियाँ बांधें तथा राजशक्ति को राखी की प्रेमशक्ति से परास्त कर दें। कवि ने अत्याचारी शासन को ललकारते हुए गाया—

विधिर बाँधन काटबे तुमि एमन शक्तिमान-
तुमि कि एमन शक्तिमान।

आमादेर भाङागड़ा तोमार हाते एमन अभिमान—ह्न
तोमादेर एमनि अभिमान।।
चिरदिन टानबे पिछे, राखबे नीचे-
एत बल नाई रे तोमार, सबे ना सेई टान।।
शासने यतइ घेर' आछे बल दुर्बलेर ओ,
हओ-ना यतइ बड़ो आछेन भगवान।
आमादेर शक्ति गेहे तोराओ बांचबि ने रे,
बोझा तोर भारी हलेई डुबबे तरीरवान।।

अर्थात्ह्न

तुम विधि के बंधन काट सको, क्या तुम ऐसे हो शक्तिमान ?
क्या तुम इतने हो शक्तिमान ?
निर्माण-नाश तवहाथों में क्या तुम को यह मिथ्याभिमान ?
ऐसा घमण्ड, ऐसा है मान ?
तुम हमें सदा पीछे खींचो, और दबा सको पग के नीचे ?
रे तुम में नहीं इतना है बल !
इतना खिंचाव है असहनीय।।
शासन बल से चाहे जितना, घेरो दुर्बल में भी बल है।
चाहे कितने भी बड़े बनो, भगवान सदा है विद्यमान।
हम लोगों की शक्ति को मार कर स्वयं बचोगे नहीं तुम्हीं।
यह पाप की नैया डूब जायगी, बोझ के भारी होते ही।

रवीन्द्र की घोषणा के अनुकूल ब्रिटिश शासन की पाप नैया सचमुच डूब गई तथा भारत स्वतंत्र हुआ। उस समय भी रक्षाबंधन की पवित्र धर्मशक्ति ने पापी राजशक्ति पर विजय पाई थी तथा भारत एवं भारतीय संस्कृति के पुनीत पर्व रक्षाबंधन के गौरव की रक्षा हुई।

आज पुनः रवीन्द्रनाथ का प्राणप्यारा देश खण्डित है। न केवल बंगाल ही खण्डशः विभाजित है वरन् रवीन्द्रनाथ के असंख्य गीतों की आराध्या 'भुवनमन-मोहिनी भारत माता' भी पजांब सीमान्त, बलोचिस्तान, बंगाल प्रभृति अंगों के काटे जाने से लहूलुहान पड़ी है। चीनी दरिन्दों ने इसी शस्य श्यामला भारत धरणी के 14 हजार वर्गमील क्षेत्र को अपने अत्याचारी पांवों के नीचे दबा रखा है, जिसके एक-एक धूलि कण को रवीन्द्रनाथ अपने विश्ववंदित मस्तक का 'माथार मानिक' अर्थात् मुकुटमणि मानते थे। जब आज के कटे-फटे पंजाब में पुनः कुछ तत्त्व विभाजन एवं

खण्डन के राग आलाप रहे हैं क्या हम रक्षाबंधन का पुनीत प्रेम संदेश सुनेंगे? क्या जिन्हें विधाता ने एक बनाया है उन्हें कोई मानव तोड़ सकेगा? क्या हम पुनः देश के क्षतविक्षत चित्र को बदल कर इस देववंदित भूमि को पुनः अखण्ड एवं अविनश्वर गौरव की स्वामिनी बनाने का शिव-संकल्प राखी के पुनीत पर्व पर करेंगे???

राष्ट्र की सुरक्षा केवल तितिक्षु बन कर सम्भव नहीं। तितिक्षा किसी व्यक्ति विशेष का धर्म हो सकती है, राष्ट्र धर्म नहीं।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

सर मुहम्मद इकबाल एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर

सर मुहम्मद इकबाल स्यालकोट (पंजाब) के रहने वाले हिन्दू ब्राह्मण परिवार के व्यक्ति थे। अपने अध्ययनकाल में प्रथम में स्वामी रामतीर्थ, गुरु नानकदेव व वेदांत से प्रभावित हुए फिर नीत्शे से। नीत्शे पर जर्मनी से पीएच.डी. की।

मुहम्मद इक्बाल बड़ा महाकवि था। इस्लाम का विश्वकवि कहा गया। उसने एक ओर तो वन्देमातरम् का विरोध किया। दूसरी ओर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गीतांजलि पर नोबल प्राइज दिये जाने का विचार किया जा रहा था उसका विरोध किया। इकबाल ने कहा—ये कौन है? कलकत्ता के लोग भी तो उसको कवि नहीं मानते। बंग के साहित्य में उसको स्थान ही नहीं है। उसको कोई कवि गिनता ही नहीं है। वह तो गद्य की तरह लिखता है। उसमें लय नहीं, तुक-वुक नहीं, कुछ नहीं। इसको बंगाली भी कवि नहीं मानते और आप इसको दुनिया का Poet (लोरियेट) मान रहे हैं। यह कैसे हो सकता है? और आठवीं कक्षा में पढ़ाई छोड़कर बैठ गया था। रवीन्द्र के दादा बड़े फैशनेबुल थे। उनको लगता था भारत गया-बीता देश हो गया है। इसमें कुछ बचा-बचाया नहीं। भारत का उद्धार हो सकता है तो पश्चिम की कार्बन कापी बनने से ही हो सकता है। इसलिये पश्चिम की सभ्यता की खूब नकल की जाय और पश्चिम की सभ्यता की खूब दासता की जाय। यह उनका विचार था। और लोग तो अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में, कान्वेन्ट में पढ़ाते हैं। पर, उन्होंने कहा—हम तो अंग्रेजी की जो माँ है लैटिन स्कूल में बच्चे को पढ़ायेंगे। 'रवि ठाकुर' को उन्होंने लैटिन स्कूल में भरती करा दिया। लैटिन स्कूल में भरती कराया तो छोटा-सा अबोध बच्चा और लातीनी भाषा उस पर लादी जा रही है। स्वयं रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—मेरी जो लैटिन की कापी है प्रारम्भ से अन्त तक सारे वर्ष भर में इतनी कोरी और सफेद रही जितना हिन्दू विधवा का दुपट्टा। स्याही छुआ ही नहीं। तो एक Teacher ने हैडमास्टर से कहा—इस बच्चे को देखो, बिल्कुल बेकार है। प्रारम्भ से अन्त तक कुछ नहीं लिखा। हैडमास्टर ने कहा—ये बच्चे शिक्षा के लिये थोड़े ही पैदा हुए हैं, पढ़ने के लिये रवीन्द्रनाथ पैदा ही नहीं हुआ। जब तक मोटी फीस देते रहते हैं तब तक पैसे लेते जाओ। हमें क्या? पढ़ने के लिये पैदा ही नहीं हुआ।

जो व्यक्ति विश्व भारती शांति निकेतन जैसे विश्वविद्यालय का संस्थापक बनने के लिये और विश्वकवि बनने के लिये पैदा हुआ था उसको विदेशी माध्यम की स्कूल

ने सोचा कि वह शिक्षा के लिये पैदा ही नहीं हुआ। उसके दादा ने सोचा काम नहीं बना भाई। तब उसको उठाकर एक अंग्रेजी स्कूल में भरती किया। अंग्रेजी स्कूल में भरती किया जो बच्चों को गीत सिखाते हैं। गीत में बच्चे हाथ-पैर नचाते हुए खूब गाते हैं। हम गाते थे, सुर में सुर मिलाते थे, हाथ से हाथ मिलाते थे, पैर से पैर मिलाते थे, Education के बड़े-बड़े अधिकारी आते थे। कभी Superintendent तो कभी Governor आते थे, टॉफियाँ इनाम में मिलती थी। बच्चे बहुत खुश होते थे। पर रवीन्द्र को यह अच्छा नहीं लगता था। वहाँ थियोरिया रटाई जाती। रवीन्द्र को यह सब बिल्कुल न भाता वे लिखते हैं—सब बेवकूफ थे। पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले। अतः वे स्कूल जाते समय किसी उपवन में बैठ, समय बिता घर लौट आते।

काम कुछ बना नहीं। तब छुड़ा दिया उस स्कूल को भी। तब बांग्ला स्कूल में भरती कराया। तो एक पंडितजी थे। मोटी चोटी और हाथ में छड़ी रखते थे। छोटी-छोटी भूल पर हाथ निकालो और छड़ी लगाते थे, खड़ा करते थे। बात-बात पर मुर्गा बनाते थे। बात-बात पर दण्ड देने से सब उनसे डरते थे। वह बड़ा कोमल स्वभाव का बच्चा था। और स्कूल क्या था? जेलखाना! जैसे जेलखाने का दरवाजा बंद हो जाता है वैसे स्कूल का द्वार बंद हो जाता है।

द्वार पर मोटी मूंछवाला जेलर है, वार्डेन जो है जेल के कैदियों पर अनुशासन रखता है, हाजरियाँ होती थीं। वैसे ही जेल में कैदी नं.—एक-दो-तीन हाजिरयाँ होती हैं। तो स्कूल भी पूरा जेलखाना था। छोटी-छोटी गलतियों पर मार। तो वह कोमल स्वभाव का बच्चा था। उसने सोचा, यह भी मेरे लिये अनुकूल नहीं है।

बेचारे ने माँ से सुन रखा था। माँ तो स्वर्गवासी हो गई थीं। पर माँ से सुन रखा था कि यदि कपड़े के जूते, केनवस के जूते पहनकर तालाब में डुबो दे और गीले जूते पहनकर सो जाय तो उसको बुखार आ जाता है। तो स्कूल में जाते रास्ते में किसी तालाब में जूते गीले करके किसी पार्क में जाकर सो जाता था कि बुखार आ जाए। ज्वर को बुलाता रहता पर ज्वर नहीं आता। बेचारा, बड़ा दुःखी होता। फिर मजबूरी से स्कूल जाना पड़े। स्कूल से इतना भय लगे। फिर उसने सुना था कि रात में यदि छत पर सो जाय और ऊपर से ओस पड़े तो उससे बुखार आ जाता है। छत पर जाकर सो जाता था। तो वह ज्वर को भी विद्यालय से अधिक प्रेम से बुलाता था क्योंकि विद्यालय अधिक भयावह था। विद्यालय में अत्याचार होता था। कोमल मन के बच्चे के साथ यह व्यवहार ठीक नहीं था।

उनके भवन में नीचे से ऊपर जाने के लिये जंगला था और जंगले में लकड़ी के डंडे लगे हुए थे और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर कमरे में बैठे हुए काम कर रहे थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर रवीन्द्र के पिता हैं। रवीन्द्र ऊपर से नीचे उतर रहा था। उसके हाथ में छोटी-सी छड़ी थी और छड़ी लेकर एक-एक डंडे को मारता था—ऐ

बदमाश! खड़े हो जाओ। ऐ बदमाश, हाथ निकालो, मुर्गा बनो। डंडे से मारता हुआ नीचे उतर रहा था। उन्होंने सोचा, यह क्या बोल रहा है? वे चुपचाप खड़े हैं, देख रहे हैं, वह क्या कर रहा है। 30-32 छड़ें थीं जंगले में। वह सबको मार-मार कर उतर रहा है। उसको देखकर महर्षि देवेन्द्रनाथ को लगा—ओह! इसके साथ स्कूल में जो सारा व्यवहार होता है, उसी ड्रामे को दोहरा रहा है। यह शरारत शिक्षकों की है—छड़ी मारना, खड़ा करना, मुर्गा बनाना। उन्होंने स्कूल में पता लगाया। हां भई, इसका स्कूल में मन नहीं लगता। अतः स्कूल से छुड़ा दिया। आठवीं कक्षा में स्कूल छोड़कर घर बैठ गया।

यदि उसको घर का अच्छा वातावरण नहीं मिलता, अच्छा अध्यापक-ट्यूटर उसको घर पर नहीं मिलता तो शायद सारा संसार एक विश्वकवि से वंचित हो जाता। इसलिये पढ़े जरूर आठवीं कक्षा तक।

तो यह कहे डा. इकबाल, यह कौन है? आठवीं कक्षा पास नहीं है यह लड़का। रवीन्द्रनाथ ने आठवीं कक्षा पास नहीं किया। हमने जर्मनी में जाकर Ph.D. की है, Doctorate की है जर्मनी जाकर, नीत्शे पर मैंने डॉक्टरेट किया है। इसलिये यह जो Nobel Prize है इसको न मिलकर मुझे मिलना चाहिये।

उसने कहा—मैं उर्दू का कवि हूँ, फारसी का कवि हूँ, अरबी का कवि हूँ। मैं अंग्रेजी में लिखता हूँ जर्मन में लिखता है, उर्दू-फारसी में लिखता हूँ।

इस्लाम के देशों में उसकी ख्याति थी। तो 30-32 इस्लामी देशों ने भी जोर लगाया कि Nobel Prize टैगोर को न मिलकर इकबाल को मिले। पर नोबेल प्राइज की कमेटी ने कहा, इकबाल की कविता में अहंकार की बू आती है। और टैगोर के काव्य में ईश्वर समर्पण की महान् अमृतमय गरिमा है। मानव को उठाने में जो टैगोर का कार्य है वह महान् है। इसलिये उन्होंने नोबेल प्राइज टैगोर को दिया।

जब टैगोर को Nobel पुरस्कार दिया तो इन लोगों ने वंदे मातरम् का ही विरोध करना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, हम वंदे मातरम् नहीं गायेंगे। गांधीजी ने समझौता-वादी नीति से कहा, अच्छा भाई! तुम अपना गीत बना लो। उन्होंने बनाया—

सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलिस्तान हमारा।

ये बुलबुले हैं हम उसकी गुलिस्तान हैं। बुलबुल क्या करती है? बुलबुल जहाँ गुलाब होता है वहाँ पहुँच जाती है और जब गुलाब सूख जाते हैं तब उड़कर चली जाती है। फूल और बुलबुल में झगड़ा हो रहा है कि गुलिस्तान किसका है? फिजा आकर बतायेगी कि गुलिस्तां किसका है। पतझड़ को आने दो, फूल झर जायेंगे तब पता लगेगा कि गुलिस्तां किसका है? इसलिये भोग के लिये टिके हुए लोग।

इकबाल ने कहा, जिस देश में मयस्सर न हो इंसान को रोटी, उस देश के हर गोसय के गुनगुन जला दो। जिस देश के इंसान को रोटी नहीं मिले उस देश के हर खेत और खलियान को, हर गेहूँ को, अन्न के हर अंकुर को जला दो। रोटी नहीं मिले तो जो रोटी है उसे भी जला दो। कहा कि अंकुर को भी जला दो। जिससे भविष्य में किसी पीढ़ी को कभी अन्न मिल ही न सके। यह कौन भक्ति है? यह भक्ति नहीं भुक्ति है, देशभक्ति नहीं। देशभुक्ति है देश को भोगने की चाल।

देश को भोगो। तो भोगने वाला जो है अपने आपको धोखे से भारतीय कहता रहता है। भारतीयता का शत्रु बना रहता है क्योंकि उसे तो भोगने से मतलब है और जो भक्त है वह कहता है—

फल खाये पेड़ के, गन्दे किन्हे पात,
धर्म हमारा यही है जलेंगे इसके साथ।

वीर सावरकरजी ने भी लिखा है, जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी लिखा है कि वृक्ष को आग लग गई—

आग लगी है वृक्ष में जलने लागे पात
क्यों न उड़ो पक्षी पंख तुम्हारे साथ

तुम्हारे पास पंख है, वृक्ष को आग लग गई है, उड़ते क्यों नहीं हो?

पक्षी कहते हैं—

फल खाये वृक्ष के, गन्दे किन्हे पात।
धर्म हमारा यही है जलेंगे इसके साथ।

जिस देश का अन्न-जल खाया है, जिस देश में महान् पूर्वजों की परम्परा चली है, जो देश हमारी संस्कार भूमि है, जिस देश की मिट्टी तन को लगी है, जिस देश के कण-कण में हमारा इतिहास रचा हुआ है। उसके साथ ही जीयेंगे, उसके साथ ही मरेंगे। इसलिये भारत-भारतीयता की समग्र पूजा शिव-पार्वती की समग्र पूजा है। यह सच्ची देशभक्ति है।

जो अपने को भारतीय कहे और भारतीयता को अस्वीकारे, वह कैसा भारतीय है? वह तो भारतीय होने का ढोंग कर रहा है, भारतीय होने का केवल लाभ लेना चाहता है पर उसके प्रति कर्तव्य से कतराता है। इकबाल हिन्दुओं से कटकर पाक-इस्लामी राष्ट्रीयता का जनक बना—

मुस्लिम हैं हम वतन, सारा जहां हमारा है।

पाकिस्तान की मूल कल्पना इकबाल ने दी और जिन्ना ने उसको साकार किया।

—भाषण से उद्धृत

महाकवि प्रसाद तथा कवीन्द्र रवीन्द्र

काव्य वैभव के स्रष्टा महाकवि जयशंकर प्रसाद तथा अलौकिक तत्त्वद्रष्टा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर माँ भारती के दो ऐसे वरद पुत्र हुए हैं जिन्होंने एक ही समय में अपनी अलौकिक रचनाओं द्वारा न केवल भारतमाता का मुख उजागर किया वरन् विश्व साहित्य को भी अपनी शाश्वत कला के वरदान से समृद्ध बना दिया। इन दोनों कवि-मनीषियों की जीवनधारा एवं भाव धारा में एक अद्भुत साम्य है जो ब्रह्मानन्द के समान ही काव्यानन्द की मूलभूत एकता का परिचायक है।

यशस्वी वंशलता के फूल

दोनों महाकवियों का जन्म अत्यन्त समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवारों में हुआ था। कविगुरु रवीन्द्रनाथ का जन्म महानगरी कलकत्ता में सन् 1861 में हुआ तथा महाकवि प्रसाद का जन्म ठाकुर से 28 वर्ष पश्चात् सन् 1889 में माघ शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान् शंकर की प्यारी पुरी काशी-अघनाशी में हुआ। जहाँ काशी शिव की पुरी है तो कलकत्ता काली माता के नाम पर बसा होने के कारण शक्ति का नगर है। एक अन्य विचित्र संयोग यह है कि सन् 1861 में, जहाँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म हुआ वहाँ पण्डित मोतीलाल नेहरू का जन्म भी हुआ। इसके 28 वर्ष बाद 1886 में जिस वर्ष जयशंकर प्रसादजी का जन्म हुआ उसी वर्ष पण्डित मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ। अतः अवस्था की दृष्टि से प्रसादजी रवीन्द्रनाथ के सम्मुख उनकी सन्ततितुल्य ही ठहरते हैं। किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दी के रवीन्द्रनाथ जयशंकर प्रसाद, बांग्ला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर से 28 वर्ष छोटे होते हुए भी उनसे 4 वर्ष पूर्व ही सन् 1936 में ही अपना नश्वर शरीर त्याग गए। इस प्रकार प्रसाद और ठाकुर, दोनों 47 वर्ष के लिए समकालीन रहे और प्रसादजी को रवीन्द्रनाथ की अपेक्षा साहित्य सर्जना के लिए 32 वर्ष कम प्राप्त हुए। फिर भी प्रसादजी और कविगुरु ठाकुर का साम्य नितान्त स्तुत्य है।

प्रसादजी के घराने के बारे में प्रसिद्ध था—'सोने की कटोरी में दूध-भात खाते हैं।' कलकत्ता के ठाकुर परिवार की प्रतिष्ठा इतनी थी कि रवीन्द्रनाथ के दादा 'राजा' द्वारिकादास कहलाते थे।

दोनों वंशों में ऐश्वर्य-साधनों के होते हुए भी त्याग एवं निर्लिप्तता का भाव पर्याप्त मात्रा में था। रवीन्द्रनाथ के पिता अपने सरल जीवन एवं उच्च विचार के कारण 'महर्षि' कहलाते थे तथा प्रसादजी के पितामह बाबू शिवरत्न को दानशीलता के कारण उनका साक्षात् होने पर लोग 'महादेव' शब्द उच्चारण करके उनका स्वागत करते थे। इन महान् 'देवों' और 'ऋषियों' की ही पावन वंशलता में प्रसाद और रवीन्द्र जैसे फूल लगे जिन की सुवास से सारा दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

विश्व के महानतम लोक-शिक्षकों की निजी शिक्षा

प्रसाद और रवीन्द्रनाथ दोनों को विद्यालय में सातवीं-आठवीं कक्षा से अधिक शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था! रवि बाबू तो पाठशाला में अपने अध्यापक के लम्बे डण्डे तथा क्रूर स्वभाव से इतने भयभीत हुए थे कि स्कूल जाते तब अपने भीगे हुए केनवस (कपड़े) के जूतों को पहने कई-कई घण्टे बगीचे में ही किसी वृक्ष की छाया के नीचे पड़े रहते। इस प्रकार वे स्वेच्छा से ज्वर को बुलाते ताकि पाठशाला में जाकर उस निर्दयी अध्यापक का मुख न देखना पड़े। बाबू जयशंकर को 12 वर्ष की अवस्था में पिता के आकस्मिक निधन के कारण सातवीं कक्षा में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

अपने कर्तृत्व से ज्ञानार्जन

दोनों महाकवियों ने स्कूली शिक्षा से निराश होकर अपने ही परिश्रम से महान् ज्ञान का अर्जन किया। जयशंकर प्रसाद के बड़े भाई ने घर पर ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। संस्कृत की विशेष रुचि के कारण उन्होंने वेद-पुराण, उपनिषद्, स्मृति, दर्शनशास्त्र का गम्भीर अध्ययन कर लिया। रवीन्द्र बाबू के घर में जो साहित्य एवं कला की महान् परम्परा निर्माण हो चुकी थी, उसी के कारण वे भी ऊँचे से ऊँचा ज्ञान प्राप्त कर सकने में समर्थ हुए। जहाँ घर में प्रत्येक व्यक्ति कलाकार हो वहाँ कोई कला के पारस-स्पर्श से कैसे अछूता रह सकता है। स्कूल से भागे हुए भयभीत बालक रवीन्द्र को घर के साहित्यिक वातावरण ने बचा लिया अन्यथा विश्व एक अनूठे कलाकार तथा शिक्षाशास्त्री के अमोघ वरदान से वंचित रह जाता।

दुःखों के शूलों पर मुस्कराते हुए फूल

दोनों महान् काव्य स्रष्टाओं के जीवन में दुःख का वरदान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुआ था। राजा द्वारिकादास की उदारता एवं मुक्तहस्तता के कारण जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी फर्म 30 लाख रुपये के घाटे में थी। उनके सुपुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी गृह-सम्पत्ति भी बाजी पर लगाकर सारा ऋण पाई-पाई तक चुका दिया। बालक रवीन्द्रनाथ केवल 12 वर्ष के ही थे जब उनकी माता

शारदा देवी का देहान्त हो गया। बालक जयशंकर की भी दुःखभरी गाथा प्रायः ऐसी ही है। 12 वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु से उनके जीवन पर वज्रपात हुआ। 17 वर्ष की अवस्था में बड़े भाई की मृत्यु से दूसरा भयंकर वज्रपात हुआ। बड़े भाई की अपूर्व दानशीलता एवं शाही खर्च के कारण पारिवारिक कर्ज तथा नाबालिगपन का लाभ उठाने वाले स्वार्थी सम्बन्धियों द्वारा जायदाद हड़पने के नीच प्रयास—सबका साहसपूर्ण सामना करते हुए जयशंकर प्रसाद ने 1929 तक समस्त ऋण चुका दिया।

दोनों के जीवन की कलिका दुःख की ज्वाला में पड़े रहने के उपरान्त भी कुम्हलाई नहीं। दोनों ही इस दुःख सागर से परे किसी अनन्त सुख की खोज में लगे हुए पथिक थे।

प्रसादजी आत्मकथा में लिखते हैं—

मिला कहाँ वह सुख जिसका,
मैं स्वप्न देख कर जाग गया।
आलिंगन में आते-आते,
मुस्करा कर जो भाग गया।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है,
थके पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे,
क्यों मेरी कन्था की?

प्रसादजी के समान रवीन्द्र के भीतर का भी थका पथिक पुकार उठता है— 'जिस प्रकार मंजिल पर पहुँचने से पूर्व ही किसी पथिक का पाथेय समाप्त हो जाय, अथवा धूल के कारण जिसकी वेशभूषा मलिन हो जाय और हृदय में पीड़ा होने लगे, उसी प्रकार मेरी भी शक्ति नष्ट हो जाना चाहती है'। वे पुनः कह उठते हैं—

किन्तु न भूलूं कभी कि,
तुम आ सके न अभी हमारे घर,
यह अपार वेदना जागते-सोते,
मन में रहे अमर।

प्रकृति के स्पन्दन में कविता की लोल लहर

रवीन्द्र तथा प्रसाद दोनों महाकवियों ने प्रकृति की मधुर लीला में ही उस आनन्द का पान किया जो उन के हृदय से काव्यानन्द बन कर फूट निकला। रवीन्द्र बचपन में ही फूलों तथा लताओं से बातें करते रहते। प्रकृति में वह अपनी

सच्ची माता का वात्सल्य पाते थे। गंगा की लोल लहरियों में तिरने वाले जयशंकर प्रसाद के रसिक मानस में भी प्रकृति का असीम प्यार समाया हुआ था। दोनों महाकवि प्रकृति की लीला में उस विराट पुरुष के दर्शन करते थे जिस की सत्ता से ही सारा ब्रह्माण्ड सत्ता को प्राप्त होता है। सन् 1912 में जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार मिला तभी प्रसादजी साहित्य मन्दिर में अपनी सर्वप्रथम कवितांजलि 'कानन कुसुम' लेकर आए। दोनों ने गीतिकाव्यों की सुमनांजलि से ही सरस्वती के कला मन्दिर पर अपनी अर्चना चढ़ाई।

विराट के लिए जिज्ञासा

उस विराट की सत्ता के प्रति जागी हुई जिज्ञासा वाले प्रसाद की आत्मा पुकार उठी—

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम,
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो, क्या हो, इसका तो,
भार विचार न सह सकता।
हे विराट हे विश्व देव,
तुम कुछ हो ऐसा होता भान।

यही प्रखर जिज्ञासा रवीन्द्रनाथ की वाणी में प्रकट हुई—

खेल धान के खेत बीच,
छाया-प्रकाश से आंख मिचौनी,
नीले नभ में कौन बहाता,
धवल मेघ की नाव सलोनी।

विश्व कवि की वीणा

दोनों महाकवि प्रकृति के माध्यम से उस विश्वात्मा की वाणी सुनते हैं—

प्रसादजी के शब्दों में—

छायानट छवि परदे में,
सम्मोहन वेणु बजाता।
सन्ध्या-कुहुकनि अंचल में,
कौतुक अपना भर जाता।

रवीन्द्रनाथ अपनी हृदय वीणा में उसी असीम की वंशी सुनते हैं—

सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाओ आपन सूर।

आमार मध्ये तोमार प्रकाश,
ताइ एतो मधूर।।

अर्थात्, हे असीम! तुम मेरी इस शरीर रूपी सीमित वीणा में अपना असीम निजी स्वर भर देते हो। तभी तो मेरे भीतर जो तेरा ही प्रकाश है, वह इतना मधुर लगता है।

भारत भाग्य विधाता

दोनों महाकवियों ने भारतमाता के यश में अलौकिक गीतावलियाँ गाईं। रवीन्द्रनाथ ने 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' गा कर भारतमाता के चरणों में एक शाश्वत श्रद्धांजलि चढ़ाई।

महाकवि प्रसाद ने गाया—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच कर नहीं क्षितिज को
मिलता कहीं किनारा।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ पुनः लिखते हैं—

'मेरे हृदय को प्राप्त होने वाला श्रेष्ठतम सौरभ भारतमाता के फूलों से ही प्राप्त हुआ है और मुझे ज्ञात नहीं कि भूमण्डल के किस अन्य देश में ऐसा चांद चमकता है जो अपने रजत प्रकाश में मेरे व्यक्तित्व को ऐसे माधुर्य से आप्लावित कर सकता। मेरे नेत्रों को स्पर्श करने वाला प्रथम प्रकाश इसी के क्षितिज से प्राप्त हुआ तथा मेरी मनोकामना है कि मेरे नेत्रों के चिर निद्रा में सो जाने से पूर्व इसी धरती का प्रकाश उन्हें चूम ले।'

राष्ट्र-कवि प्रसाद की मनोकामना उनके कण्ठ से गूंज उठी—

जियें तो सदा इसी के लिए,
यही अभिमान रहे यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

22 फरवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

अमृत कवि की अमर वन्दना

जिन के अन्तर्यामी की रसवंती किरणों ने अपने स्नेह-स्पर्श से जन-जन के शतदल की पंखुड़ियाँ खोल, आनंद और रस का दाक्षिण्य मूर्त किया, जिन की अनुराग-धारा ने सीमा के वज्र-कपाट तोड़, मनुष्य को अपने ही गवाक्ष से मनुष्यता के दर्शन कराये, उन कविर्मनीषियों को मेरी अजर-अमर चेतना सनातन काल तक श्रद्धांजलि चढ़ा कर भी तृप्त न हो, यही मेरी कामना है।' वेदवाणी—वन्दित योगीराज अरविन्द की यह हृदयहारी पुष्पांजलि यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य के किसी महानतम कलाकार की वन्दना में चढ़ाई जा सकती है, तो वे हैं आधुनिक हिन्दी काव्य में एक स्वर्णयुग के प्रणेता तथा शाश्वत महाकाव्य 'कामायनी' के अमर गायक—स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद।

सम्वत् 1946 (सन् 1889 ई.) में भारत में दो महान् विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ। दोनों ही युग नायक और युग पुरुष कहलाए। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में मुक्तिदूत बन कर आए, दोनों का राष्ट्रीय गौरव अद्वितीय था। किन्तु एक ने राजनैतिक क्षेत्र में सर्वोच्च प्रतिष्ठा पाई तथा दूसरे ने साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में अमर यशलाभ किया। एक है भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे हैं माँ भारती के वरद पुत्र स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद। माघ शुक्ला द्वादशी का दिन उन की जन्म जयन्ती का दिवस होने के कारण उन की पावन प्रेरणादायिनी स्मृति के लिए अत्यन्त पवित्र है। प्रायः हम राजनैतिक नेताओं की तुलना में साहित्य स्रष्टाओं का महत्त्व बहुत कम आंकते हैं। किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मातृभाषा का स्थान मातृभूमि से किसी प्रकार कम नहीं, वरन् अधिक ही है। व्यास तथा वाल्मीकि का मूल्य कोटि-कोटि देशभक्तों तथा राजनैतिक नेताओं से भी गुरुतर है। इंग्लैंड के एक सुलझे हुए राजनीतिज्ञ का कथन है—'यदि शेक्सपियर अथवा समूचे ब्रिटिश साम्राज्य में से मुझे एक को चुनना हो तो मैं सारे साम्राज्य को ठोकर मार कर भी शेक्सपियर को अवश्य रखना चाहूँगा।' साहित्य संस्कृति का स्रोत तथा समाज का प्राण है। यदि संस्कृति जीवित रहेगी तो जाति भी जीवित रहेगी और महान् सांस्कृतिक मूल्यों से मानवता भी चिरन्तन-जीवी बनेगी। अतः

एक सच्चे कलावन्त की युग-युग कामिनी प्रेरणा सदा-सर्वदा के लिए समूची मानवता की हृदय क्यारियों को हरा-भरा बनाती रहती है।

हिंदी साहित्य प्रांगण में नई चेतना, नया आलोक तथा नई अभिव्यंजना लेकर अवतीर्ण होने वाले महाकवि प्रसाद प्रेम में ही जीते थे तथा काव्य में श्वास लेते थे—

प्रथम यौवन मदिरा से मत्त,
प्रेम करने की थी परवाह।
और किसको देना है हृदय,
चीन्हने की थी तनिक न चाह।

प्रसादजी प्रेम के सभी अंगों-प्रत्यंगों का हृदयहारी चित्रण करते हैं। उनके मत में सच्चा प्रेम जीवन का सार है, हृदय की सूनी कुटिया की दीपशिखा है—

बुझ न जाय यह सांझ किरण सी
दीपशिखा इस कुटिया की
शलभ समीप नहीं तो अच्छा
सुखी अकेले जले यहां।।

प्रेमी के संयोग से जो कुतूहलकारी आह्लाद होता है और वियोग से जो असह्य दुःख होता है उसका मार्मिक चित्रण इस महाकवि की अमर लेखनी से चित्रित हुआ है।

प्रसादजी के 'आंसू' की तुलना का वियोग-शृंगारात्मक काव्य संभवतः समूचे हिंदी साहित्य में मिलना कठिन है। आंसू के लघु कणों का पात क्या हुआ मानो पृथ्वी-आकाश लुट गए हों—

बुलबुले सिंधु के फूटे,
नक्षत्र मालिका टूटी।
नभ-मुक्त-कुन्तला धरणी,
दिखलाई देती लूटी।।

पर कवि की हृदय वीणा का सब से मुखर स्वर समरसता का है। वही कवि का मानवता को सन्देश है—

मानव जीवन वेदी पर,
परिणय है विरह मिलन का।
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे,
है खेल आंख का, मन का।।

प्रसादजी की कामायनी में सुख और दुःख के कगारों के बीच में बहने वाली आनन्द मन्दाकिनी का प्रसाद मिलता है—

जीवन धारा सुन्दर प्रवाह
सत सतत प्रकाश सुखद अथाह
सुख-दुःख की मधुमय धूप-छांह
तूने छोड़ी यह सरल राह।।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया के समन्वय से ही आनन्द का आस्वादन होता है। जीवन में सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के समन्वय का स्वर उस अमर महाकवि के अमर महाकाव्य में गूंज रहा है। इसी उच्च गवाक्ष से उस अनश्वर कलावंत ने मानव को मानवता के दर्शन कराए। यहीं उस कविर्मनीषी ने जन-जन के हृदय कमल की पंखुड़ियाँ खोल उस के भीतर के आनन्द की रसवंती स्रोतस्विनी को प्रवाहित किया है।

उस रसावतार, आनंदवर्षी, अमर कलाकार श्री जयशंकर प्रसाद के चरणों में हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ एवं असंख्य कोटि नीराजनाएँ सादर समर्पित हैं।

1 फरवरी 1958
'मिलाप' में प्रकाशित

काव्य वैभव के स्रष्टा_प्रसाद

माघ शुक्ला द्वादशी का पावन दिवस आधुनिक काल के महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म-जयन्ती दिन है।

भारतीय संस्कृति के अमर गीतिकार स्वर्गीय प्रसादजी, माता सरस्वती की, भारत को एक अपूर्व देन थे। प्रसादजी तो साक्षात् पारस ही थे। माँ भारती के इस वरद पुत्र ने साहित्य के जिस भी खण्ड को छुआ, वही स्वर्ण कांति के समान देदीप्यमान हो उठा।

सन् 1946 (सम्वत् 1889) के भाग्यशाली वर्ष ने भारत को दो महान् विभूतियों का दान दिया। माघ शुक्ला 12 के दिन तो प्रसादजी का प्रादुर्भाव हुआ तथा इसी वर्ष के नवम्बर मास में पण्डित जवाहर लाल नेहरू का जन्म हुआ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रसादजी का आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान है जो स्थान युग की राजनीति में पण्डित नेहरू को प्राप्त है।

यह खेद का विषय है कि हमने साहित्यकारों को राष्ट्र निर्माताओं की कोटि में गिनना ही भुला दिया है। एक महान् साहित्य स्रष्टा केवल एक युग का प्रेरक ही नहीं वरन् युग-युग का प्रेरक बन जाता है। हमें लार्ड मैकाले के शब्द नहीं भूलने चाहिए, 'यदि मुझे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य अथवा शेक्सपियर में से एक को चुनने के लिए कहा जाय तो मैं निश्चय ही भारत में बरतानवी राज्य को ठोकर मारकर शेक्सपियर को रखना चाहूँगा। सच्चे साहित्यकार ही राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं। उन्हें भुलाकर तो हम कंगाल हो जाते हैं। इसी कारण जिन देशवासियों ने प्रसाद की कामायनी के काव्यानन्द का मधु मधुर आस्वाद नहीं लिया वे ही भारत में अंग्रेजी को राज्य भाषा के रूप में लादे रखने का प्रलाप करते रहते हैं।

प्रेम में श्वास लेने वाले तथा गीतों में बोलने वाले इस महाकवि की हृत्तंत्री का मुखरतम स्वर प्रेम जो मांसलता से आकर अतीन्द्रियता की ओर उड़ान भरता है, जो और ऊँचे उड़ कर विश्व के निगूढ़ रहस्यों को अपने आलिंगन में भर लेने को आकुल हो उठता है—

छायानट छवि परदे में,
सम्मोहन वेणु बजाता
सन्ध्या-कुहुकिन-अंचल में,
कौतुक अपना भर जाता।

उस प्रेम में प्रसादजी ने सकल मानवता को बांध लिया है। उनके प्रेम से राष्ट्रीयता का क्षेत्र कैसे अछूता रह सकता था।

अपने प्यारे स्वदेश की महिमा में वे गाते हैं—

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम
किरणों का दे उपहार।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार।।
जगे हम लगे जगाने,
विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योमतमपुंज हुआ तब नाश,
सकल संसृति हो उठी अशोक।

× × ×

वही है रक्त वही है देश,
वही साहस है वैसा ज्ञान।
वही है शांति वही है शक्ति,
वही हम दिव्य आर्य सन्तान।
जिएं तो सदा इसी के लिए,
यही अभियान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

प्रसादजी के एक इसी गीत की प्रेरणा बंकिमचन्द के 'वन्दे मातरम्', कविगुरु ठाकुर के 'जन गण मन अधिनायक जय हे' अथवा पण्डित नेहरू के अच्छे से अच्छे राष्ट्रोद्बोधक भाषण से किसी प्रकार भी कम नहीं है।

अपने हृदय में स्वदेश भक्ति की चिनगारी तथा आंखों में भारतमाता के उज्ज्वल भवितव्य का चित्र लेकर इस अमर चितेरे ने अपनी तूलिका को अपने हृदय में डुबो कर ऐसे चित्र आंके हैं जिनके दर्शन मात्र से रोम-रोम पुलकित हो जाता है।

आज जब देश को जागरण के मन्त्र की आवश्यकता है, देश के कोटि-कोटि हृदयों में मातृभूमि के प्रेम का ज्वार उभारने वाले इस गीत में हम प्रसादजी के हृदय

की मूर्त आकांक्षा का दर्शन करें—

हिमाद्रि तुगं शृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला,
स्वतन्त्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है,
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

सुखमय जीवन के लिये नीति के साथ प्रीति का और स्वार्थ के साथ परमार्थ का सामंजस्य साधना आवश्यक है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

साहित्य के अमर शहीद_मुंशी प्रेमचन्द

'आत्मोन्नति के लिए कठिनाइयों से बढ़कर कोई विद्यालय नहीं, कठिनाइयों में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं और हम उच्चतम शक्तियाँ पाते हैं। जिसने कठिनाइयों का अनुभव नहीं किया, उसका चरित्र बालू की भीत है जो वर्षा के पहले ही झोंके में गिर पड़ती है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। महान् आत्माएँ कठिनाइयों का स्वागत करती हैं, उनसे घबराती नहीं क्योंकि यहाँ आत्मोत्कर्ष के जितने मौके मिलते हैं, उतने और किसी दिशा में भी नहीं मिल सकते।' उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजी के प्रसिद्ध उपन्यास कायाकल्प में एक पात्र के मुख से कहे गए उक्त शब्दों में प्रेमचन्दजी का समूचा जीवन दर्शन गुम्फित है। प्रेमचन्दजी दारिद्र्य की दुःखभरी पगडन्डियों के अमर बटोही थे। प्रेमचन्दजी की स्वीकारोक्ति है, अंधेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक पहना है। जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आना से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आना गज से ज्यादा का कपड़ा नहीं खरीदा। वे पुनः लिखते हैं, 'पांवों में लोहे की नहीं, अष्टधातु की बेड़ियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर। बचपन में ही आठ वर्ष के नन्हे धनपतराय के सिर से माता की शीतल छाया उठ गई। इस तरह यह अभागा बालक जीवन भर के लिए वात्सल्य के अमृत घूंट से वंचित ही रह गया। इस अनाथ बच्चे के पांवों में न जूते होते न देह पर साबुत कपड़े। अपने गांव लमही से पांच मील दूर काशी में प्रतिदिन पढ़ने आता, दिनभर पढ़ने के बाद ट्यूशन पढ़ाने के लिए जाता और रात्रि के ९ बजे थका-मांदा वापस लौट कर तेल की कुप्पी के सामने टाट पर बैठकर अपनी पढ़ाई करने लगता। उनके पिता ने उनका नाम चाहे धनपतराय रखा था और वे कुछ देर नवाबराय के नाम से भी प्रसिद्ध हुए पर वास्तव में न वे धनपतराय थे न नवाबराय। वे तो गरीबराय और मजदूरराय ही थे। धनपतराय के स्थान पर वे निर्धनपत-रंक थे। माता के ममत्व की एक बूंद जो अमृत के समुद्र से भी अधिक मीठी होती है, प्रेमचन्द के भाग्य में न थी। इसलिए प्रेमचन्द के सारे साहित्य में वात्सल्य की अतृप्त लालसा पुकार-पुकार कर अपनी करुण गाथा गाती है। पिता के पुनर्विवाह से दुःख का दंश और भी भीषणतर हो गया। सौतेली माँ की आंख के लिए बेचारे धनपतराय मानो

चक्षुशूल से थे। पिता अपने छोटे बच्चे के लिए कुछ खरीद कर लाते तो सौतेली माँ कभी भी वह वस्तु बच्चे तक न पहुँचने देती। पिता अपनी असमर्थता पर एक ओर अश्रु बहाते रहते और बालक अपने अभाव पर दूसरी तरफ। प्रेमचन्दजी ने एक कथा में विमाता के दुर्व्यवहार का चित्र खींचा है जिसमें स्वयं उनके अपने जीवन के अनुभवों की प्रतिछाया है। विमाता पुत्र को पीटती है, बालक चिल्लाता है, तुरंत पिता घर में आ जाते हैं। वे बड़े आवेश से पूछते हैं कि 'मेरे बच्चे को किसने पीटा है।' माता के चुप रहने पर वे बालक से पूछते हैं 'कि क्या माता उसे पीटती रहती हैं।' किन्तु माता द्वारा भोजन से वंचित तथा अकारण ताड़ित होकर भी बालक कहता है—'नहीं-नहीं, माँ तो बहुत अच्छी है। वह मुझे बहुत प्यार करती है, मिठाई देती है।' बालक यह इसलिए कहता है कि यदि वह माता की शिकायत करेगा तो दिन भर पिता की अनुपस्थिति में उसे उसी विमाता की निर्दय दया पर जीना पड़ेगा और बदले में वह जो कुछ करेगी वह नरक से भी अधिक भयंकर होगा। निर्धनता ने जीवनभर प्रेमचन्दजी का साथ न छोड़ा। पन्द्रह वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया। वे लिखते हैं, 'उस समय मैं नवें दर्जे में पढ़ता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थी; उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं थी। घर में जो कुछ पूंजी थी वह पिताजी के 6 महीने की बीमारी और क्रियाकर्म में खर्च हो चुकी थी।' एक बार तो उन्हें तंग आकर अपनी चक्रवृद्धि गणित की कुंजी एक रुपये में बेचनी पड़ी क्योंकि घर में (खाने को) कानी कौड़ी न बची थी। जब प्रेमचन्द का नाम हिन्दी जगत् में गौरव की वस्तु बन गया तब भी दारिद्र्य रूपी जीवन संगी ने उनका साथ नहीं छोड़ा। दिल्ली के एक साहित्य सम्मेलन में जब वे पधारे तो मोटी खद्दर का मैला कुर्ता तथा धोती पहने हुए, गले के बटन खुले, मुंह पर अस्त-व्यस्त फैली हुई मूंछों तथा सिर के रूखे बालों के साथ वे एक पूर्ण देहाती दिखते थे। एक बार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने उनके पांव में एक ऐसा जूता देखा जिस के फटे हुए छेद में से उनकी अंगुली निकल आती थी। संवेदना से अभिभूत होकर श्री प्रभाकर ने कहा—'इस देश के बेकार आदमियों की शानदार अटैचियों के लिए तो काफी चमड़ा है, पर आपके जूते के लिए नहीं।' उन्होंने हँस कर बात को टाल दिया। इस तरह जीवनभर दारिद्र्य एवं दुःख का विष पी कर भी प्रेमचन्दजी ने समाज को साहित्य की सुधा का पान कराया। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मत में दारिद्र्य के विद्यालय में जिसका शिक्षण नहीं हुआ वह अत्यन्त अभागा है। प्रेमचन्दजी का साहित्य उनकी वेदना का वरदान है।

आत्मेव आत्मना तुष्ट

प्रेमचन्दजी के भीतर एक शानदार दुनिया बसी हुई थी। इसलिये वे किसी भी बात के लिए दुनिया के द्वार पर भिखारी न थे। सांसारिक वस्तुओं के अभाव उनको विचलित न कर सकते थे। संभवतः इसी कारण जीवन भर दुःख-दारिद्र्य

की भट्ठी में तप कर भी उन्होंने जीवन के पुष्प को सांसारिक ताप से झुलसने नहीं दिया। वे अपने में रमे रहते थे और इस काम के लिए उन्हें किसी उपकरण या वातावरण की आवश्यकता न थी। वे अन्य साहित्यकारों की तरह 'मूड' के गुलाम न थे। वे जब चाहते अच्छे से अच्छा साहित्य रच सकते थे। उनमें दम्भ या यश की लिप्सा भी न थी। वे अपने में रमण करने वाले गीता के स्थितप्रज्ञ पुरुष थे। अपने मकान की सील भरी ड्योढ़ी में जहाँ मच्छर-मकड़ी का नित्य नृत्य चलता रहता था, वे पेट के बल औंधे लेट कर अमर साहित्य की रचना करते थे।

दुःखों के शूलों पर मुस्कराता हुआ फूल

प्रेमचन्दजी दुःख के शूलों पर पल कर भी निरन्तर मुस्कराने वाले फूल के तुल्य थे। एक गुलाब के फूल के चारों ओर तेज शूल तने रहते हैं—एक शूल इतना तेज कि तनिक हवा के झोंके से कोमल गुलाब के कलेजे को चीर डाले। पर सब ओर से कांटों से घिर कर भी फूल जीवन की अन्तिम घड़ी तक मुस्कराता रहता है। फूल को सुमन कहते हैं। सुमन का अर्थ है अच्छे मन वाला। जिसके मन में मैल नहीं, किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष नहीं उसे भय, चिन्ता या दुःख का कोई कारण नहीं। प्रेमचन्दजी मन के इतने साफ थे कि भयंकर दुःखों के उपरान्त भी उनके सरल ग्रामीण मुखमण्डल पर मुस्कान की विमल रेखाएं प्रायः खेलती रहतीं। उनकी बातचीत में हास्य का सुन्दर पुट रहता तथा सांसारिक साधनों के अभाव के उपरान्त भी वे हृदय के बड़े धनी थे। जब कभी वे बातचीत का प्रसंग बदलना चाहते तो अपने और उस बात के बीच में हंसी की एक दीवार खड़ी कर देते। एक बार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने उनके छपे हुए एक अंग्रेजी पत्र को देखकर उनसे पूछा, 'अपने मित्रों को आप अंग्रेजी में पत्र क्यों लिखते हैं?' प्रेमचन्दजी ने तुरंत उत्तर दिया, 'क्योंकि अब मैं बी. ए. पास हो गया हूँ।' और इतने जोर से हँसे कि श्री मिश्र की 'बेअदबी और बहस, दोनों दब गईं।' श्री मिश्र ने एक बार पूछा, 'प्रेमचंदजी! आपने लिखना कैसे प्रारम्भ किया?' वे तुरंत बोले—'जी! दवात-कलम और कागज लेकर।' और फिर जोर से हँस पड़े। एक अन्य अवसर पर श्री मिश्र ने पुनः पूछा—आप कैसे कागज पर कैसे पेन से लिखते हैं 'वे बहुत जोर से हंसे और तब बोले'—'ऐसे कागज पर जनाब! जिस पर पहले कुछ न लिखा हो और ऐसे पेन से जिसका निब टूटा न हो।' प्रेमचन्दजी के ओंठ सदा हँस पड़ने को बेचैन से रहते थे। उनके हास्य के पुटों के साथ अट्टहास के सम्पुट भी अत्यन्त मधुर होते थे। एक बार श्री जैनेन्द्रजी उन से मिलने गए तो वे बातों-बातों में दवा लाना भी भूल गए। जब भीतर से दवा लाने की याद दिलाई गई तो वे बोले—'जरा दवा ले आऊं जैनेन्द्र! देखो, बातों में कुछ खयाल ही नहीं रहा।' और इतनी जोर से कहकहा लगाकर हँसे कि छत के कोनों में लगे मकड़ी के जाले हिल उठे।

कंगाल का महादान

प्रेमचन्दजी का साहित्य एक कंगाल का महादान है। उस अनन्तदानी महापुरुष ने भगवान् शंकर के समान जीवन का विष पी-पी कर समाज को अमृत का दान दिया। जिस समाज की रूढ़ियों एवं कुरीतियों का दंश सहा, उसी समाज के कल्याण के लिए जीवन भर साधना की तथा उस साधना का सुफल अविनश्वर साहित्य के रूप में प्रदान किया। दुःखों की भट्ठी में तपकर वे कुन्दन बन गए थे। जिस समाज ने उन्हें न धनपतराय रहने दिया न नवाबराय, उसी समाज के ऊपर वे प्रेम की चन्द्रिका का वर्षण करते हुए प्रेमचन्द बन कर चमके। जिस प्रकार से जल ताप द्वारा वाष्प बनकर उड़ जाता है किंतु ताप देने वाली जगती को ही शीतलता देने के लिये मेघ बनकर बरसता है, उसी प्रकार प्रेमचन्दजी भी भारतीय समाज के ताप-तप्त धरातल के लिए कल्याण-घन प्रमाणित हुए।

जीवन का खेल

प्रेमचन्दजी जीवन को एक खेल के तुल्य मानते थे। अतः एक खिलाड़ी के से साहस एवं धैर्य के साथ वे जीवन के सुख-दुःख का स्वागत करते थे। श्री दयानारायण निगम के पुत्र की मृत्यु पर उन्होंने लिखा—'खेल में शरीक हो कर हम खुद हार-जीत को बुलाते हैं।....जो खेल में शरीक होगा वह बखूबी जानता है कि हार और जीत दोनों ही सामने आएंगे। इसलिए उसे हार से मायूसी नहीं होती, जीत में फूला नहीं समाता। हमारा काम तो सिर्फ खेलना है, खूब दिल लगा कर खेलना, खूब जी-तोड़ कर खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना गोया हम संसार की दौलत खो बैठेंगे। लेकिन हारने के बाद, पटखनी खाने के बाद गर्द झाड़ कर खड़े हो जाना चाहिए और फिर खम ठोंक कर हरीफ (प्रतिद्वन्द्वी) से कहना चाहिए कि एक बार और।....आप जैसे खिलाड़ी के लिये शिकवाए तकदीर की जरूरत नहीं।'

जीवन का बीजगणित

प्रेमचन्दजी गणित के विषय में प्रायः शिकायत करते रहे। यह उनके लिए सचमुच एक टेढ़ी खीर बन गया था। वे स्वयं लिखते हैं—'गणित मेरे लिये गौरीशंकर की चोटी था। कभी उस पर न चढ़ सका। इंटरमीडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ, और निराश होकर इम्तिहान देना छोड़ दिया। दस-बारह साल बाद जब गणित की परीक्षा ऐच्छिक हो गई तब मैंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिए।' किन्तु प्रेमचन्दजी चाहे गणित के विषय में कितने ही अयोग्य रहे हों पर वे जीवन का बीजगणित भली-भांति जानते थे। उन जैसा जीवन का कुशल पारखी विश्व साहित्य में भी सम्भवतः विरला ही मिलेगा।

सरल जीवन, उच्च विचार

भगवान् वेदव्यास ने कहा है—**'सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्राह्मणः पदं।'** अर्थात् सब कुटिलता ही मृत्यु पद है तथा आर्जव (ऋजुता, सरलता) ही ब्रह्मपद है। प्रेमचन्दजी बस इस सरलता के मूर्तिमान अवतार थे। तन-मन और आत्मा, सभी में सरलता का दिव्य गुण था। वेशभूषा तो उनकी किसान जैसी थी, चेहरा भी उनका रोबीला न था। उस पर दूर तक देखती नशीली आंखें थी, हँस पड़ने को बेचैन से होंठ थे, चौड़ी पेशानी थी। खिला हुआ रंग था पर इतनी साधुता-सरलता थी कि वह उनकी महानता का प्रतिबिम्ब न हो पाती थी। बम्बई महानगरी से प्रेमचन्दजी ने अपनी पत्नी शिवरानी देवी को लिखा—'मेरा मनोरंजन तो सब से अधिक घर के बच्चों से हो सकता है। मेरे लिए दूसरा कोई मनोरंजन ही नहीं है। खाना भी खाने बैठता हूँ तब भी अच्छा नहीं मालूम होता क्योंकि यहाँ साहबी ठाठ हैं और साहब बनने से मेरी तबीयत घबराती है।' प्रेमचन्दजी जब अपने गांव में रहते तो झाड़ू अपने दरवाजे पर स्वयं लगाते। छोटे बच्चों को दरवाजे पर बिठाकर मिट्टी और पत्तियाँ इकट्ठी कर देते और खेलने के ढंग सिखाते। उस के बाद जब गांव के काश्तकार इकट्ठे होते तो उनसे बातें करते, झगड़ा निबटाते, बच्चों से खेलते भी जाते।

गृहस्थी जीव

प्रेमचन्दजी एक सात्त्विक सन्तुष्ट गृहस्थी जीव थे। बम्बई से पत्नी को पत्र में लिखा....'और मुझे तो तुम लोगों के बिना इतनी बड़ी मुम्बई होते हुए भी सूनी ही मालूम होती है। बार-बार इच्छा होती है कि छोड़-छाड़ कर भाग खड़ा होऊं।' एक अन्य पत्र में लिखा—'अब मैं इस बात को भली-भांति समझने लगा हूँ कि सन्तुष्ट गृहस्थी एक बड़ी भारी नियामत है।' वास्तव में वे बाह्याडंबर से कोसों दूर रहने वाले, अपनी गृहस्थी में ही मग्न, सच्ची लगन वाले साहित्य-सेवी थे।

सब से बड़ी आकांक्षा

अपने 3 जून 1930 के पत्र में उन्होंने लिखा—'मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय तो सब से बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं है। हां, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वे ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी, धनी, खुशामदी सन्तान से मुझे घृणा है। मैं शांति से बैठना भी नहीं चाहता, साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हां, रोटी, दाल और तोला भर घी और कपड़े मयस्सर होते रहें।'

प्रेमचन्दजी का समस्त जीवन यज्ञमय था। उनका आदर्श एक दीपक था जो तेल की अन्तिम बूंद के बचने तक भी निरन्तर अपने आलोक का दान करता रहता है। उन्होंने भी जीवन के अन्तिम क्षण तक अपना समस्त जीवनरस साहित्य एवं स्वदेश की सेवा के लिए समर्पित करते हुए सेवा की। मृत्यु के द्वार में प्रवेश करने के क्षण तक उनकी अजस्र लेखनी समाज रूपी देवता को अपना अर्घ्य चढ़ाती रही। उनकी मृत्यु, मोर्चे पर दम तोड़ने वाले सैनिक की मृत्यु है। वे सच्चे अर्थों में साहित्य के अमर शहीद हैं जिनका नाम युग-युग तक यश के अमर तरानों में सदा गूंजता रहेगा।

आप सत्यवादिता के नाम पर उच्छृङ्खल मत बनिये। नम्रता के नाम पर दब्बू मत बनिये।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

लाला लाजपत राय का जीवनदर्शन

भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता के मन्त्र को इतिहास पटल पर अपने लाल रक्त से अंकित करने वाले बलिदानी वीरों में पंचनद-पंचानन, पुण्यश्लोक लाला लाजपत रायजी का पवित्र नाम सदा अमर रहेगा। जो आत्म शक्ति किसी भी आसुरी शक्ति के सम्मुख झुकती नहीं, वरन् अपने प्रचण्ड बल का प्रभाव आने वाले अनेकों युगों पर छोड़ जाती है, उसी अमर आत्मतेज के अवतार थे पुरुष-सिंह लाला लाजपत राय। 28 जनवरी सन् 1865 ई. में जगराओं नामक छोटे से गांव में लाला राधाकृष्ण के गृह में इस कुलदीपक का जन्म हुआ। कौन जानता था यही भाग्यवान बालक उस साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए पैदा हुआ था जिस पर कभी सूर्य अस्त नहीं होता। यही तेजस्वी प्राणी अपनी ऊँची शिक्षा तथा परिपक्व अनुभव सम्पादन कर लोक सेवा तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के पावन प्रांगण में नर केसरी के समान कृत-संकल्प हो कर खड़ा हो गया। कई आंधियाँ आयीं और कई बवण्डर उठे, संकट की काली घटायें घिर आईं और कष्टों के काले पहाड़ भी टूटे। पर, हिमालय के समान अचल-अविचल एवं सागर के समान गहन, गम्भीर रहने वाले इस महापुरुष की दृढ़ता एवं अगाधता के सम्मुख सब विपत्तियाँ स्वयं विपन्न हो रोदन करने लगीं एवं सभी भय स्वयं भयभीत हो कर भाग चले।

प्रत्येक महान् जीवन कुछ महान् शाश्वत सिद्धांतों पर आधारित होता है। यदि उन सिद्धान्तों में कोई बुद्धिसंगत क्रम हो तो उसे हम उस महापुरुष का जीवन दर्शन (Philosophy of Life) या जिन्दगी का फलसफा कहते हैं। उस महापुरुष के चारित्रिक गौरव एवं वैभव की कुंजी उस के जीवन दर्शन में ही मिलती है। वह महापुरुष मनुष्य किसे समझता है, जीवन की परिभाषा क्या करता है और उस का ध्येय क्या समझता है? ध्येय-प्राप्ति के लिए किन साधनों को महत्त्व देता है, उस का धर्म क्या सिखाता है, उस के लिए देश का क्या स्थान है, स्वाधीनता का मूल्य क्या है, सामाजिक कल्याण तथा नैतिक आदर्श क्या हैं? इत्यादि प्रश्न जीवन दर्शन के भिन्न-भिन्न अध्याय हैं।

आदर्श मानव

प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार एवं महापुरुषों के पारखी श्री रोमां रोलां ने

लिखा है—'मैं समझता हूँ यदि स्वामी दयानन्द आज हमारे बीच में जीवित होते तो वह लाला लाजपत राय के रूप में आर्य समाज के जीवित-जागृत चित्र को देख कर पुलकित हो उठते। लाला लाजपत राय वीर थे। उन्होंने सत्य एवं न्याय की रक्षा में अपना जीवन अर्पण किया हुआ था।'

स्वयं स्वामी दयानन्द के निम्नलिखित वाक्य उन पर पूर्णतया चरितार्थ होते थे—'मनुष्य उसी को कहना जो अत्याचारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।....इस काम में चाहे उस को दारुण दुःख प्राप्त हो अथवा प्राण भी चले जायें परन्तु वह इस मनुष्य रूपी धर्म से पृथक् कभी न होवे।'

मनुष्य की इस परिभाषा को लालाजी ने न केवल अपने जीवन-दर्शन में मान्यता दी वरन् इसे स्वयं अपने जीवन पर चरितार्थ कर दिखाया।

वे अपनी आस्था प्रकट करती हुई वाणी में कहते हैं—'स्वामी दयानंद मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है।'

17 नवम्बर, 1928 को उनका ब्रिटिश साम्राज्य के निर्मम लाठी-प्रहार से होने वाला बलिदान मनुष्यता की इसी परिभाषा की सत्यता सिद्ध करने के लिए एक अपूर्व शहादत थी।

स्वाधीनता के देवदूत

स्वाधीनता का भाव उनकी नस-नस में भरा था। उनकी घोषणा है, 'हम केवल एक ही धर्म को जानते हैं—मातृभूमि का प्यार। हम उसकी सेवा का एक ही मार्ग जानते हैं—उसके स्वातंत्र्य के लिए संगठित एवं अनवरत परिश्रम। वह ही हमारी अर्चना की पात्र है। उसी जन्मभूमि की पूजा के द्वारा ही हम ईश्वर-प्राप्ति कर लेंगे।'

पराधीनता की लानत

लालाजी की स्पष्टोक्ति थी, 'तुम धीरे-धीरे गुलाम बनाए जा सकते हो पर धीरे-धीरे स्वाधीन नहीं किए जा सकते।'

वे अपनी महान् रचना 'अनहैप्पी इण्डिया' की प्रारंभिक पंक्तियों में ही कहते हैं, 'किसी अन्य देश की राजनैतिक गुलामी से बढ़कर बड़ी लानत संसार में दूसरी नहीं है। किसी आततायी, आक्रमणकारी राजा की प्रजा को कुचल कर चलने वाली सेनाओं द्वारा किया हुआ विध्वंस इतना अनर्थकारी नहीं जितना कि देश के पूर्णतया गुलाम बन जाने से प्रजा का धीरे-धीरे समूची आजादी को खो देना और उन पर संगीनों के भय से शासन चलते रहना।'

स्वतंत्रता का मूल्य

पंजाब केशरी की ललकार है, 'एक शहीद का खून ही वह खुराक है जिस पर स्वतंत्रता का कोमल बिरवा फलता-फूलता है।'

आत्मा की हत्या कोई नहीं कर सकता

हुतात्माओं एवं बलिदानी वीरों को मानो फूल चढ़ाते हुए लालाजी कहते हैं— 'जल्लाद की फांसी का रस्सा, हत्यारे का कुठार या तोपची का तोप का गोला केवल एक व्यक्ति के व्यक्तिगत प्राण को हरता है, किन्तु उसके परिणामस्वरूप सामूहिक जीवन की भावना और तीव्र हो उठती है। देश-निकाले, काले पानी, काल कोठरी, दारुण दुःख, संपत्तिहरण इत्यादि सामान्य उपाय हैं जो एक आततायी स्वाधीनता का गला घोंटने और स्वातंत्र्य प्रेमियों का समूल नाश करने के लिए प्रयोग करता है, परन्तु अभी तक ये सभी उपाय न स्वतंत्रता को और न उनकी इच्छुक आत्माओं का हनन कर सके हैं।'

सम्मानपूर्ण जीवन

लालाजी गौरव से जीना जानते थे। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है—

'बहुत लोग यह समझते हैं कि स्वाधीनता का जीवन केवल सांस लेना मात्र है, किन्तु बिना सम्मान के जीवन उस से भी पतित है, वह एक घोर कलंक है।'

सरलता एवं सच्चरित्रता

लालाजी सरल जीवन एवं उच्च विचार के पक्षपाती थे। उनका कथन है—

'भारत का एक साधारण मजदूर इंग्लैंड के बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ से अधिक ईमानदार है। वह न किसी को लूटता है, न धोखा देता है न किसी पर दबाव डालता है। वह परिश्रम करता है और सचाई का जीवन बिताता है।'

श्रम का गौरव

पंचनद-पंचानन कर्म को ही धर्म मानते थे। श्रम के गौरव पर उन का मत है—

'किसी भी प्रकार का श्रम जिस से समाज की भलाई होती है और जिस की समाज को आवश्यकता है, कभी भी निन्द्य नहीं है।'

आत्मा की वाणी

लालाजी सब से बढ़ कर अपनी ही अन्तरात्मा पर विश्वास करते थे। उनके निम्न विचार स्वर्ण-अक्षरों में लिखने योग्य हैं—

'मेरा मज़हब हक परस्ती है, मेरी मिल्लित कौम परस्ती है, मेरी इबादत खलक-परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मन्दिर मेरा दिल है और उमंगें सदा जवान हैं।'

श्रद्धांजलि

श्री ई. डब्ल्यू. बिल्काक्स ने पंजाब केसरी की महिमा में लिखा—

'यौवन ने उसे बहादुर, समय ने राजनीतिज्ञ, प्रेम ने मानव घोषित किया। मृत्यु ने उसे शहादत का ताज पहनाया—इस प्रकार मंजिल तय करता गया और मानव जीवन में सम्भव सब प्रकार की विभूति एवं यश को उस ने पा लिया।'

लाला लाजपत राय पंजाब की लाज, पत और राय, तीनों ही थे। उनके पश्चात् यह पंचनद प्रदेश जैसे अनाथ सा ही हो गया है। आज उन की पावन जन्म-जयन्ती के उपलक्ष में हम अपने सरस हृदय की कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ उन्हीं महान् आत्मा के चरणों में समर्पित करते हैं—

ऐ शहीदे कौमो मिल्लत,
तेरे जजबों के निसार।
तेरी कुर्बानी के चर्चे,
गैर की महफिल में हैं।

29 जनवरी 1958
दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

अपने अस्तित्व और आदर्श से च्युत करने वाली उदारता, उदारता नहीं; अपितु हृदय की तुच्छ दुर्बलता है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

पंचनद-पंचानन का राजनैतिक दर्शन

स्वतन्त्र भारत में श्वास लेने वाले हम भारतीयों का प्रत्येक श्वास उन महान् बलिदानी वीरों का कृतज्ञ है जिन्होंने अपने जीवन-रुधिर से स्वतंत्रता के कोमल बिरवे को सींचा। आज से 30 वर्ष पूर्व 17 नवम्बर 1928 के दिन ब्रिटिश साम्राज्य के कुत्तों ने भारत के एक ऐसे महान् शेर को मार डाला जो 63 वर्ष तक ब्रिटिश साम्राज्य के इस्पाती पिंजरे में रहता हुआ भी अपनी दहाड़ों से पिंजरे की जड़ें हिलाता रहा। उसकी जो गर्जना इंग्लिस्तान के फिरंगियों के भी कलेजे कंपा देती थी आज भी सुप्त भारतीयों के हृदय की दुर्बलता को झाड़ कर उन्हें नवप्राण से भरकर खड़ा कर सकती है।

लाला लाजपतराय का राजनैतिक दर्शन हमें आज के राजनैतिक भ्रष्टाचार के युग में सही मार्गदर्शन देने वाला दर्शन है।

स्वदेश तथा स्वधर्म

लालाजी स्वदेश तथा स्वधर्म को एक ही तत्त्व के दो रूप मानते थे। उन्होंने देश-पूजा तथा देव-पूजा को एक साथ निभाया। उनके अपने शब्द हैं—'हम केवल एक ही धर्म को जानते हैं—मातृभूमि का प्यार। हम उसकी सेवा का एक ही मार्ग जानते हैं—उसके स्वातंत्र्य के लिए संगठित एवं अनवरत परिश्रम। वह ही हमारी अर्चना की पात्र है। उसी जन्मभूमि की पूजा द्वारा ही हम ईश्वर-प्राप्ति कर लेंगे।'

स्वतंत्रता की तड़प

लालाजी स्वाधीनता के जीवित-जागृत अवतार थे। पराधीनता के विचार से ही उन जैसे स्वातन्त्र्य प्रेमियों का दम घुटने लगता था। उनकी स्वाधीनता की तड़प इन शब्दों में प्रकट हुई—'तुम धीरे-धीरे गुलाम बनाए जा सकते हो पर धीरे-धीरे स्वाधीन नहीं किए जा सकते।' स्पष्ट ही लालाजी गांधीजी के धीमे-धीमे चलने वाले लंबी अवधि के कार्यक्रम से सहमत नहीं थे। वे तो एक ही हल्ले में देश को स्वाधीन देखना चाहते थे। इस कार्य में वे विलम्ब को घोर पाप समझते थे।

वीर भोग्या वसुन्धरा

लालाजी समुच शेर थे। उन जैसे वीर पुरुष ही वसुन्धरा को भोग सकते हैं। वे मूर्तिमान वीर थे। जगराओं के वैश्य कुल में सच्चे क्षत्रियत्व के अवतार बन कर वे प्रकट हुए। राष्ट्रीय क्षेत्र में लालाजी कायरता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं—'छोटी अवस्था में गुलिस्तां के जिस शेर ने मेरी स्मरण शक्ति को पकड़ा और मेरी कल्पना पर अधिकार जमाया, वह था—

आं न मन बाशम्
कि रोज़े जंग बीनी पुश्तमन्।
ईमनम् कां दरमियाने
खाके खूं बीनी सरे।।

अर्थात्, 'मैं वह नहीं हूँ कि लड़ाई के दिन तू मेरी पीठ देखे। मैं वह हूँ कि मिट्टी और खून के बीच मेरा सिर देखे।' सचमुच उस वीर ने अपने बचपन में गाए हुए शेर को अपने जीवन पर चरितार्थ कर दिखाया।

गरम दल—नरम दल

कांग्रेस के दो दलों—नरम दल और गरम दल में से लाला लाजपत राय गरम दल के अग्रणी थे। उन्हें नरम दल की ढुल-मुल नीति कभी पसन्द नहीं थी। उनका मत था कि आजादी भीख मांगने से नहीं मिल सकती, वह वीर पुरुषों को अपने बाहुबल से विजय करनी पड़ती है। इस विषय में वे गांधीजी के अहिंसा मार्ग को केवल कापुरुषता का नैतिक ढोंग मानते थे। लाल-बाल-पाल की जो त्रिपुटी गरम दल की सर्वेसर्वा थी उसमें लालाजी का नाम सबसे प्रथम आता है।

शांति मार्ग-क्रांति मार्ग

पंजाब केसरी एक महान् क्रांतिकारी नेता थे। गांधीजी के शांति के मार्ग में वे विश्वास खो चुके थे। उनकी हुँकार है, 'आखिरकार क्रांति कोई बहुत भयानक वस्तु नहीं है। यह एक प्रकृति का प्यारा विधान है जिसके बिना न प्राकृतिक और न मानवीय कार्यह्वव्यवहार में प्रगति सम्भव है। क्रान्ति सत्ताधारियों के लिए सदा एक भय रही है फिर भी यह उनकी सारी दमन योजनाओं का तिरस्कार कर समय-समय प्रकट होती रही है।

स्वाधीनता का मूल्य—खून

पंजाब केशरी की महान् ललकार है-'एक शहीद का खून ही वह खुराक है जिस पर स्वतंत्रता का कोमल बिरवा फलता-फूलता है।' जहाँ भगतसिंह जैसे बलिदानी वीरों के कार्यों को गांधीजी हिंसा-हिंसा' कहकर कोसते रहते थे वहीं लालाजी की त्याग, यज्ञ और बलिदान की भावना कितनी स्तुत्य है!

मानो भगतसिंह तथा सुभाष बाबू की महान् क्रान्तियों के विषय में भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने कहा था—'यदि सरकार इसी प्रकार व्यवहार करती रही तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि जवान हमारे हाथों से निकल जाएं और देश की आजादी के लिए जो चाहें, करें। मैं नहीं जानता कि मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूँगा या नहीं। लेकिन यदि वह क्रान्ति का दिन आ गया तो मेरी आत्मा उस संघर्ष में पीछे से तुम्हें आशीर्वाद देगी।

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि लाला लाजपत राय कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति के कारण उसमें श्रद्धा खो बैठे थे तथा पंडित मदनमोहन मालवीय के संग मिलकर उन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद का नाद बजाया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-'हिन्दी-उर्दू के झगड़े ने मुझे हिन्दू राष्ट्रीयता का पहला पाठ पढ़ाया और मेरी तबीयत ने उस समय जो पलटा खाया उसमें फिर कमी नहीं हुई। प्रारंभिक संस्कार और पिता की शिक्षा से तो मेरी सहानुभूति उर्दू के साथ होनी चाहिए थी, निजी लाभ भी मेरा इसी में था क्योंकि मैं हिन्दी अक्षर तक न जानता था। फारसी के पढ़ने में मैंने कई साल लगाए थे और उर्दू साहित्य की मुझे अच्छी जानकारी थी। हिन्दी की विजय में स्पष्ट ही मेरी निजी हानि थी। किन्तु ज्योंही मुझे निश्चय हो गया कि राष्ट्रीय मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है मैंने अपने लाभ और हानि के विचारों को एक ओर रख दिया और हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।'

सच्चा हिन्दू

लालाजी की आत्मकथा स्वयं एक अन्य कहानी सुनाती है—'मैं इन दिनों कालेज में भी फारसी और अरबी पढ़ा करता था। मौलवी मुहम्मद हमारे उस्ताद थे। एक दिन दर्जे में वे हिन्दी के पक्षपातियों की खिल्ली उड़ाने लगे और बंगालियों की हंसी करने लगे।....वे सदा ईरान की प्रशंसा किया करते थे कि मेरा वतन तो ईरान है, मेरा जी चाहता है कि वहाँ जा रहूँ। जब उन्होंने बंगालियों पर हमला किया तब तुरंत मेरे मुंह से निकला—मौलवी साहब! बंगाली यद्यपि पंजाब के रहनेवाले नहीं, फिर भी हिन्दू तो हैं। किन्तु आप तो मुसलमान हैं और ईरानी होने का दावा करते हैं। यदि बंगाली सज्जनों को पंजाब के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं तो बतलाइए आपको यह अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ....मैंने फारसी और अरबी पढ़ना बन्द कर दिया।....पण्डित गुरुदत्त मुझे

संस्कृत के पंडित के पास ले गए और बोले, पण्डितजी! यह लो, नया शिष्य लाया हूँ। अब तक मुसलमान था अब हिन्दू हुआ है।' पण्डित जी हंस पड़े। मेरे जीवन की यह पहली घटना थी जिसने मुझे पक्का हिन्दू बनाया और मुझे अन्त तक इस घटना की ओर खेद से दृष्टि डालने का कोई अवसर नहीं हुआ।'

संस्कृति रक्षण

लालाजी भारतीय संस्कृति के महान् रक्षक थे। गो-माता की रक्षा तथा गोवध बन्द कराने के लिए उन्होंने जीवन भर परिश्रम किया। उन्होंने शिवाजी तथा प्रताप की जीवनियाँ लिख कर देश के नौजवानों को सांस्कृतिक महापुरुषों का परिचय कराया। ये स्वयं स्वामी दयानन्द को अपना गुरु मानते थे और विश्व में आर्य संस्कृति के प्रसार के लिए कृत-संकल्प थे।

संस्कृति निर्माता

लालाजी भारत के भाग्यनिर्माता थे। वे कहते—'हमने अपना आज कुर्बान कर दिया है ताकि आपका आने वाला कल अधिक उज्ज्वल हो सके। तथा आगे आने वाली अनन्त पीढ़ियाँ सुखपूर्वक सम्मान का जीवन व्यतीत कर सके।

आज का पंजाब

आज पंजाब केसरी का प्यारा पंजाब क्षत-विक्षत पड़ा है, लालाजी की सिंह-गर्जना थी—

मगर यह बात कहने में
न चूके हैं न चूकेंगे,
लहू देंगे मगर इस देश की
मिट्टी नहीं देंगे।।

आज पंजाब तो बंट गया है किन्तु पंजाबियों के हृदय भी बंटे हुए हैं। लाला लाजपत राय के पश्चात् पंजाब की लाज लुट गई है या नष्ट हो गई है और बात में कोई बल नहीं रहा। क्या पंचनद-पंचानन की ठण्डी चिता से आज 30 वर्ष पश्चात् भी कोई ज्योति ज्वाला उठकर देश का मार्गदर्शन करेगी।

17 नवम्बर 1958

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

शहीद के खून की पुकार

पंजाब प्राण प्यारे!
भारत नयन सितारे!
वर वीर-केष-वारे!
नेता बड़े करारे—
हा! आज दिव सिधारे—
वे 'लालपत' हमारे—
जो लाज, पत हमारी
रखने यहां खड़े थे।।

श्री प्रताप नारायण कविरत्न ने पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के ऐतिहासिक बलिदान दिवस पर (17 नवम्बर 1928 के दिन) जो गीत गुनगुनाया वह आज भी कितना प्रेरणादायक है। कवि प्रवर आगे कहते हैं—

क्या 'लाजपत' यहां है—
या 'लाजपत' वहां है।
हा! लाज, पत तहां है,
बस 'लाजपत' जहां है।

जहाँ लाला लाजपत राय हैं वहीं पंजाब की लाज, पत और राय है। कवि रोकर अश्रु विगलित वाणी में गाता है—

हे देश के दुलारे!
तुम तो भला सिधारे—
हम दीन मौन धारे
किस के रहें सहारे?
है दुःख आज मारे,
हम दैव के हैं मारे—

हे 'लाजपत' हमारे—
आजा हृदय हृदय में।।

पंचनद पंचानन लाला लाजपत राय के निधन पर योगीराज अरविंद घोष ने कहा थाह्व'ऐ पंजाबियो! शेरों की सन्तान! जागो और उन्हें बता दो जो तुम्हें मिट्टी में मिला देना चाहते हैं कि एक लाजपत को छीनने के बदले तुम सौ लाजपत पैदा कर सकते हो। सौ गुना और बल के साथ सिंह गर्जना करो—जय हिन्दुस्तान।'

शहीद के लाल रक्त को सम्बोधन कर भगवान् दीन जैसे सन्त कवि भी बोल उठे—

चढ़ रहा है हर जुबां पर
अब जुनूने लाजपत।
क्या कोई तूफान लाएगा
वह खूने लाजपत।
जान क्या शय है
भला हुब्बे वतन के सामने।
यह नसीहत दे रहा है
हमको खूने लाजपत।।

एक अज्ञात नामा कवि ने चीत्कार वाणी में गाया।

वह पंजाब केसरी है ?
जो रहा निरन्तर जाग्रत;
उन्निन्द्र कूटस्थित अर्ध शताब्दि समाप्त करी।
भूतल पर जिसके चरण चिह्न धंस गए।
अमर से हुए।
पंजाब केसरी वही।
यहां सोता है शिशु-सा।
सुखद नींद में,
अरी उठा दे वसुन्धरे!
यह बाघ हमारा रक्षक है।

लालाजी के बलिदान पर श्रीमती एनी बीसेन्ट ने लिखा कि यदि इंग्लैण्ड के किसी नेता मि. बाल्डविन या मि.मेकडानल्ड की इस तरह हत्या की जाती तो आज अंग्रेज जनता क्या करती? क्या उनके क्रोध से धरती-आसमान न कांप उठते? फिर करोड़ों मनुष्यों के प्यार और आदर के पात्र लालाजी को क्या देश यों ही भूल जाएगा?

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा, 'उनकी आकस्मिक मौत से राष्ट्र पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है; और इससे प्रत्येक देशभक्त की वैयक्तिक हानि हुई है।' नेता जी सुभाष ने कहा—'वे अपनी सभी सम्पत्ति और प्राण तक भी देश पर न्योछावर कर गए। महान् पुरुष इसी प्रकार जीते और मरते हैं। भाई परमानन्दजी ने कहा—मैंने लालाजी के चरणों में देश भक्ति का पाठ पढ़ा है। लालाजी के स्वर्गवास से मेरा संरक्षक जाता रहा।

प्रसिद्ध देशभक्त, देशबंधु चितरंजनदास की पत्नी श्रीमती वासन्ती देवी ने उत्तेजना से कांपते हुए होंठों के साथ कहा—'मैं जब यह सोचती हूँ कि कमीने और हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को जो इतना वृद्ध इतना आदरस्पद और भारत भूमि के 30 करोड़ नर-नारियों का इतना प्यारा था, जब मैं सोचती हूँ तब लज्जा और आत्मसम्मान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लग जाती हूँ। क्या देश का यौवन और देश का मनुष्यत्व आज भी जीवित है? क्या वह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सित कांड की धधकती हुई लज्जा और ग्लानि अनुभव करता है? मैं भारत भूमि की एक स्त्री इसका उत्तर चाहती हूँ।'

(अपूर्ण)

उदारता क्या है? कर्तव्य से विमुख करने वाला मनोभाव उदारता कहने योग्य नहीं है। उदारता के नाम पर पशुता और कायरता न पनपे। जो पशुता और कायरता को जन्म दे वह उदारता नहीं है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

पुण्यश्लोक मनीषी डा. भगवानदास

भारत धर्म और दर्शन की जन्मभूमि है। इस धरती की सहज उपज है दार्शनिक और तत्त्वद्रष्टा, वे अलौकिक आत्मदर्शी एवं रहस्यदर्शी लोकनायक जो मानव जीवन के मौलिक तत्त्वों तथा सकल सृष्टि की गहनतम गहराइयों को खोजकर आलोक में लाते हैं। ऐसे ही महामानव जीवन को जीने योग्य तथा सभ्यता को सुमधुर बनाते हैं। भारतरत्न महामनीषी डा. भगवानदास जिनका 12 सितम्बर 1958 को 90 वर्ष की पूर्णायु में देहावसान हो गया, वे मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर और अंगिरा की दिव्य ऋषि-परम्परा के एक सुन्दर पुष्प थे। आधुनिक काल में वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द के उपरांत भारतीय चिन्तन की दीपशिखा को निरन्तर जाज्वल्यमान रखने का श्रेय इन्हीं महान् तत्त्ववेत्ता को है। उनके दर्शन भी ऋषि दर्शन के तुल्य पुण्यकारी थे। खुले हुए लम्बे चमकीले उन्मुक्त केश, लहराती हुई नाभि को स्पर्श करने को आकुल लम्बी शुभ्र श्वेत दाढ़ी, सन्तों जैसा ढीला, खुला और जानुस्पर्शी चोगा, उन्नत विशाल, ओजस्वी चन्दन चर्चित ललाट, अन्तस्तल की गहराइयों को स्पर्श करने वाले तेजस्वी नेत्र, मनमोहक सात्त्विक मुस्कान, मुखमण्डल की अलौकिक शान्ति, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वदर्शिनी मेधा तथा वाणी का संगीत सुलभ माधुर्य-यह उनका पावन दर्शन था। अपने संग सत्ययुग की सन्ध्या वेला का प्रकाश लिये वे चलते-फिरते ज्योतिस्तम्भ थे।

अपने जन्म के विषय में वे स्वयं लिखते हैं—'धर्म दृष्टि से परम पवित्र, परन्तु चर्म दृष्टि से नितान्त मलिन, दुर्गन्धपूर्ण काशीनगरी में 12 जनवरी, 1869 को प्रातःकाल 6 बजकर 5 मिनट पर किसी सूक्ष्म लोक-परलोक से मैं इस स्थूल लोक—भूलोक में आया और नई आंखों से नई दुनिया को देखने लगा।' कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. परीक्षा पास करके वे 9 वर्षों तक संयुक्त प्रान्त के भिन्न-भिन्न जिलों में मजिस्ट्रेट के पद पर कार्य करते रहे। भारत में डा. एनी बीसेंट जैसी सर्वशुक्ला सरस्वती का पदार्पण भी एक ऐतिहासिक घटना थी। स्वयं अभारतीय होते हुए भी वे भारत भक्त बनी तथा उन्होंने अपने जीवन का बहुमूल्य भाग भारत के स्वातंत्र्य कार्य के लिये दान दिया। उन्हीं की प्रेरणा से डा. भगवानदासजी ने

सरकारी नौकरी को त्याग सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। फिर आप डा. बीसेंट के सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में अध्यापन का कार्य करते रहे। तदुपरांत काशी विद्यापीठ के अवैतनिक उपकुलपति रहे। सन् 1912 में आप डा. बीसेंट की थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान मंत्री भी रहे। देश के स्वातंत्र्य के लिए ब्रिटिश सरकार के कारागार में भी जाने का अवसर आपको प्राप्त हुआ। केन्द्रीय विधानसभा में भी आप निर्वाचित हो कर आए, तथा उस माध्यम से भी आपने देश की महान् सेवा की। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय दोनों ने आपकी महान् प्रतिभा का सम्मान करते हुए आपको 'डाक्टर आफ फिलासफि' की उपाधि से विभूषित किया।

डा. एनी बीसेंट ने डा. भगवानदास को सार्वजनिक जीवन की ओर आकर्षित किया। प्रतिदान में डा. भगवानदास ने डा. बीसेंट को भारतीय संस्कृति के अनंत ज्ञान-भण्डार की ओर खींचा। डा. बीसेंट की भारत भक्ति का मुख्य श्रेय डाक्टर भगवानदास को ही है। डा. बीसेंट के स्वर्गवास पर लोगों ने प्रथम बार इस महा मनीषी सन्त के नेत्रों को भी सजल देखा। काशी विश्वविद्यालय में महामना मालवीयजी के संग उन्होंने महान् कार्य किया। आज तक उस विश्वविद्यालय के वातावरण में भगवानदासजी का यश गूँजता है। एक महान् छात्रावास डा. साहब के नाम पर है तथा उन के नाम पर अनेकानेक छात्रवृत्तियाँ लेकर निर्धन विद्यार्थी भी विद्या के धन को प्राप्त कर रहे हैं। अपने कैलासवास से केवल कुछ दिन पहले ही उन्होंने अपना सारा निजी पुस्तकालय काशी विश्वविद्यालय को दान कर दिया था। आपने अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् पिछले बीसियों वर्षों से वे काशी-अघनाशी में पुण्य सलिला भागीरथी की धारा के मध्य में एक छोटे से स्थल पर कुटिया बना कर रहते थे। इस भौतिक युग में, सर्व सम्पदा प्राप्त होने पर भी उनकी सादगी और सात्त्विकता दर्शक के हृदय पर अपनी छाप अंकित किए बिना नहीं रहती थी।

अपने एक रेडियो संभाषण में वे पुराने और नए युग की तुलना करते हुए कहते हैं—

'83-84 वर्ष पहले, जब मैंने और छोटे-बड़े भाइयों ने अक्षरारम्भ किया था, तब रात में पीतल की दीवट पर, सरसों के तेल से भरी पीतल की कटोरी में, रुई की तीन-चार बत्तियाँ जलाकर, उसके प्रकाश में पढ़ते-लिखते थे, नरकट व किल्क की लेखनी से नागरी लिखना सीखा, फिर जब अंग्रेजी को आरम्भ किया तो बतख़ के परों से। फिर लोहे, ताम्बे, पीतल के निबों की बारी आई। अब फाउण्टेन पेन और टाइपराइटर काम में आते हैं। पहले देसी कागज मोटा, चिकना, बहियों के काम में आता था। अब महाजनी कोठियों में भी साधारण कार्यों के लिए ब्रिटेन का कागज काम में आने लगा है। पहले संस्कृत पुस्तकें तालपत्र पर

अथवा उसी जैसे पुष्ट कागज पर लिखी जाती थीं। क्रमशः छापेखाने चले, पहले लीथो, फिर टाइप!

श्री लल्लन प्रसाद व्यास ने अपने एक लेख में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है। उनके अनुसार थियोसोफिकल सोसाइटी की भारत में ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार के लिए एक योजना थी। वे भारत के देवी-देवताओं के नाम पर झूठ-मूठ कुछ सन्देश बनाकर भारतीयों को ईसाई धर्म की ओर खींचने का प्रयत्न करते रहते थे। वे कहते—लाई मैत्रेय हजारों वर्षों से जीवित हैं तथा तिब्बत में हैं। ईसाईयों ने डा. भगवानदासजी को भी प्रलोभन देकर अपने हित में देवी-देवताओं के नाम पर संस्कृत भाषा में संदेश लिखवाने चाहे। डा. भगवानदास जैसे पवित्रात्मा वाले महापुरुष यह कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होंने इस षड्यन्त्र का प्रबल विरोध किया तथा देश को एक महान् संकट से बचा लिया।

महामनीषी डा. भगवानदास एक स्वतंत्र प्रतिभा वाले मौलिक विचारक थे। अपने समन्वय नामक ग्रन्थ में उन्होंने सभी धर्मों के विश्वव्यापी सिद्धान्तों की भौतिक एकता का बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया है। गणपति पूजा पर उनके विचार सचमुच मौलिकता से भी अधिक मौलिक हैं। 'पुरुषार्थ' नामक पुस्तक में मानव को पुरुषार्थ का महान् सन्देश है। 'दर्शन का प्रयोजन' में वे मानव के लिए दर्शन की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं। 'मिस्टिक एक्सपीरियन्सेज', 'दी साइंस आफ पीस', 'साइंस ऑफ इनोशेन्ज' इत्यादि ग्रन्थ भी युगान्तरकारी हैं। डा. भगवानदास ९० वर्ष तक अपना ज्ञानालोक बिखेर कर अनन्त में समा गए हैं। किन्तु उन के शरीर के चले जाने के उपरान्त भी उनकी ज्ञान ज्योति सदा के लिए पथभ्रष्ट मानवता का मार्गदर्शन करती रहेगी। आज उन महानुभाव के जन्म दिवस पर उनके चरणों में हमारे टूटे-फूटे शब्दों की मूक-मुखर मुकुलांजलि सादर समर्पित हो।

13 जनवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

अरविन्द विचारदर्शन

'भारत उस सत्य का रक्षक है जो विश्व का रक्षक है।' इन शब्दों में वेदवाणी वन्दित, शताब्दी-शतशः पूजित योगीराज अरविन्द ने भारत की महत्ता का आख्यान किया है। वास्तव में भारत के उस दिव्य सत्य के अद्वितीय द्रष्टा महर्षि अरविन्द ही थे। इसीलिए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें अपनी नमनांजलि समर्पित करते हुए कहा था—

अरविन्द रवीन्द्रेर लहो नमस्कार
हे बंधु, हे देश बंधु,
स्वदेश आत्मार वाणि-मूर्ति तुमि।

अर्थात्.. **हे अरविन्द ! रवीन्द्रनाथ का नमन समर्पित**
हे बंधु, स्वदेश के बंधु
निज स्वदेश भारत की पावन
आत्मा की वाणी-मूर्ति तुम।

भारत—भगवान् का अपना विशिष्ट देश

भारत की महिमा में योगीराज अरविन्द कहते हैं—'ईश्वर अपने लिए एक विशेष देश चुन लेता है, जिसमें महान् ज्ञान, सब प्रकार की परिस्थितियों तथा संकटों के भीतर से कुछ लोगों द्वारा अथवा बहुत लोगों द्वारा, निरन्तर सुरक्षित रहता है। वर्तमान काल में तथा कम से कम इस शताब्दी में, वह देश भारत है।'

भारतमाताह्नभगवती दुर्गा

योगीराज अरविन्द के लिए भारतमाता साक्षात् भगवती दुर्गा का जीवित-जागृत दिव्य देव विग्रह थी। इसीलिए भारत भक्ति के दिव्य गीत वन्दे मातरम् को श्री अरविन्द ने भारत भक्ति एवं भगवद् भक्ति का महानतम मंत्र माना तथा वन्दे मातरम् के अमर गायक श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय को राष्ट्र भक्ति का मंत्रद्रष्टा ऋषि कहकर सम्बोधित किया।

बंकिम-तिलक-दयानन्द

योगीराज ने देशभक्ति के मंत्रद्रष्टा श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, स्वराज्य मंत्र के द्रष्टा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा वैदिक ज्योति के वीर सेनानी स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपनी अलौकिक श्रद्धांजलियाँ समर्पित की हैं।

स्वाधीनता महायज्ञ

'राष्ट्रीय मुक्ति एक महान् पवित्र यज्ञ है, बायकाट, स्वदेशी आन्दोलन, राष्ट्रीय शिक्षा तथा हर छोटी-बड़ी गतिविधि उस यज्ञ का ही अंग हैं।' इन शब्दों में श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को एक महायज्ञ घोषित किया। वे अपने अग्नि-पूर्ण शब्दों में कहते हैं—'स्वाधीनता वह सुफल है जो यज्ञ से प्राप्त होता है तथा मातृभूमि वह देवी है जिसके चरणों में वह फल समर्पित करना है। यज्ञकुण्ड की अग्निशिखा की सात लपलपाती जिह्वाओं में हमें अपना व्यक्तित्व एवं सम्पदा सभी कुछ समर्पित करना है। अग्नि को अपना रक्तदान तथा अपने स्वजनों के जीवन एवं अपने सुख की भी आहुति चढ़ानी है, क्योंकि मातृभूमि एक ऐसी देवी है जो लूला-लंगड़ा तथा अधूरा बलिदान स्वीकार नहीं करती तथा देवों ने स्वाधीनता किसी भी कृपण होता को कभी नहीं प्रदान की।'

स्वदेश तथा स्वधर्म

अरविन्दजी के विचार में स्वदेश तथा स्वधर्म में कोई अन्तर नहीं। उनके लिए वन्दे मातरम् जीवन का महामंत्र था। उनके विचार में राजनीति धर्म का अंग है, परन्तु उसका आचरण आर्यभाव के साथ आर्य धर्मानुमोदित उपाय से करना चाहिए। 'हम भावी आशा स्वरूप युवक दल से कहते हैं कि यदि तुम्हारे प्राणों में विद्वेष हो तो उसे शीघ्र ही जड़ से निकाल फेंको। विद्वेष की तीव्र उत्तेजना से क्षणिक रजःपूर्ण बल आसानी से जागृत होता है और शीघ्र ही क्षीण होकर दुर्बलता में परिणत हो जाता है।'

श्री अरविन्द के विचार में स्वदेश माता भगवती, दैवी शक्ति के अनन्त रूपों में से एक विशिष्ट रूप है। इसी सत्यानुभूति के कारण ही 'वन्दे मातरम्' उनके जीवन का महामंत्र था।

श्री अरविन्द ने राजनीति एवं स्वातंत्र्य संग्राम को आध्यात्मिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया। भारत का स्वातंत्र्य विश्व की महामुक्ति का मार्ग उन्मुक्त करेगा। श्री अरविन्द का कथन है, 'भारत उस सत्य की रक्षा करता है जिससे मानवता की रक्षा होती है।'

अखण्ड भारत के मंत्रद्रष्टा

15 अगस्त 1947 को देश के स्वाधीनता पर्व पर देश के विभाजन का अपराध होते देखकर योगीराज की आत्मा पुकार उठी—

'चाहे किसी भी उपाय से हो, चाहे किसी भी प्रकार से हो, विभाजन अवश्य टलना चाहिए। एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिए और होगी, क्योंकि भारत के भविष्य की महत्ता के लिए यह अनिवार्य है।'

आज बांग्लादेश का स्वातंत्र्य संग्राम तथा मुक्ति संकल्प क्या योगीराज की भविष्यवाणी की परिपूर्ति की ओर इतिहास की रोमांचकारी गति नहीं है।

उज्ज्वल भावी भारत के दिव्य द्रष्टा

भावी भारत का स्वर्णिम दृश्य प्रस्तुत करते हुए महायोगी की वाणी मुखर हो उठी, 'भारत के भाग्य का सूर्य उदय होगा तथा सारे भारत को ज्योति से आपूरित करेगा तथा उसकी ज्योति का प्रसार भारत की सीमाओं को पार करेगा, एशिया की सीमाओं को भी पार करेगा तथा सारे विश्व को भी अपनी ज्योति से आप्लावित कर देगा।'

। न त्वेवार्यस्य दासभावः ।

आर्य कभी दास-गुलाम नहीं हो सकता।

—चाणक्य

× × ×

अध्यात्मिक-दृष्टि से भारत जगत् में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना। यह बात इतनी स्पष्ट है कि यहाँ का एक भोला-भाला और अनपढ़ किसान भी अपने हृदय में यूरोप के बुद्धिजीवियों की अपेक्षा भगवान् के अधिक निकट है। मेरा एक मित्र भारत की सैर करके लौटा। किसी ने उससे अपनी यात्रा की घटनाएँ सुनाने के लिए कहा। एक वयस्क, भोली महिला वहाँ मौजूद थी। उन्होंने उससे पूछा...क्या भारत में आत्माएँ गिनी जाती हैं? उसने उत्तर दिया, हाँ। 'कितनी आत्माएं हैं? महिला से पूछा गया। उसने उत्तर दिया— 'बस एक'।

—श्री माँ

योगीराज अरविन्द का दर्शन

धरती के चिरकाल प्रतीक्षित अतिथि अनश्वर,
गहन दुखों की तामस छाया के हे तमचुर,
अपने प्रबल घोष सन्देशों में देते हो
शाश्वत जीवी मुक्ति धाम की उज्ज्वल आशा।

स्वनाम धन्य नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के गौरवशाली पुत्र श्रीयुत दिलीपकुमार राय की यह हृदयहारी श्रद्धांजलि जिन तपोपूत ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के चरणों पर चढ़ाई गई है वे वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द घोष आधुनिक काल में भारत के स्वर्णिम अतीत के मूर्तिमान गौरव थे तथा भावी मानवता की उज्ज्वलतम आशा।

प्रख्यात फ्रेंच साहित्यकार रोम्यां रोलां उन पाण्डिचेरि के परमहंस श्री अरविन्द को अपनी भावांजलि चढ़ाते हुए लिखते हैं—'श्री अरविन्द, एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का ऐसा पूर्णतम समन्वय है जो विश्व के इतिहास में अभी तक उपलब्ध किया जा सका है।'

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब पाण्डिचेरि में योगीराज के दर्शन करने गए तो महायोगी को देखते ही नृत्य करते हुए गाने लगे—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा, आर्य धामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महांत, आदित्य वर्णे तमसः पुरस्तात्।।

हे विश्व के अमृत पुत्रो, सुनो! आर्य दिव्य धामों के निवासी देवताओं सुनो, मैं उस महानतम महापुरुष को जानता हूँ जो आदित्यवर्ण का है और अन्धकार से नितांत परे है।

वेद की वाणी में ही बोलते ऋषि रवीन्द्रनाथ ने ब्रह्मर्षि अरविन्द में साक्षात् ब्रह्म के ही दर्शन प्राप्त किए।

जीवन दर्शन

योगीराज अरविन्द का जीवन बिल्कुल एक कमल (अरविन्द) के समान ही

प्रफुल्ल तथा निर्लिप्त था—

अरविन्द पत्र इव निर्लिप्तम्
अरविन्द योगेश्वरम्।
ब्रह्म, ब्रह्मविद् वन्दे,
दिव्य ज्योतीरीश्वरम् कविम्।
पांडि आश्रम परमहंस,
आत्म संगीत गायकम्।
दिव्य जीवनेश्वरं वन्दे,
अरविन्दं जग वन्दितम्।

अरविन्द भारत एवं विश्व के लिए एक ईश्वरीय देन ही थे। अन्यथा बड़ा विस्मय होता है कि जो बालक भारत के समुद्री तटों से तनिक दूर जहाज में पैदा हुआ 5 वर्ष की छोटी अवस्था में जो दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया गया, तत्पश्चात् जो इंग्लैण्ड में पूर्णतया विदेशी शिक्षा पाता रहा, वहीं लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच इत्यादि विदेशी भाषाओं में जिसने पूर्णतम प्रवीणता प्राप्त की, पूर्ण यौवन तक जिसे एक भी स्वदेशी भाषा नहीं आती थी, जो स्वयं अपनी मातृभाषा बांग्ला तक भी बोल नहीं सकता था, जिस ने विदेशी नौकरशाही का अफसर बनने के हेतु बड़े सम्मान के साथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त किया। वह एकाएक आई.सी.एस. को ठोकर मार कर भारत का महान् ऋषि और विश्व का महानतम दिव्य देवदूत बन जाएगा, यह कौन जानता था? जब अरविन्द पुनः मातृभूमि की ओर लौट रहे थे तब अरविन्द के पिता को किसी ने गलत सूचना दे दी कि मार्ग के तूफान के कारण जहाज डूब गया तथा उनका तेजस्वी पुत्र काल-कवलित हो गया है। इस सूचना से ही पिता का प्राणान्त हो गया। इस भयंकर परिस्थिति के उपरान्त भी अरविन्द ने भारत पहुँच कर अपने आपको स्वदेश कार्य के लिए समर्पित कर दिया।

वे हमारे क्रांतिकारी अध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्राण प्रेरक एवं दिव्य देवदूत बन गये। वे कहा करते थे—देशभक्ति एक अवतार है जिसका कोई हनन नहीं कर सकता। देशभक्ति को उन्होंने अध्यात्मिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया तथा देशसेवा के महान् कार्य में विश्वाधार ईश्वर की ही महान् प्रेरणा का साक्षात्कार किया। वन्देमातरम्, कर्मयोगिन तथा धर्म नाम के पत्र प्रारम्भ करके उन्होंने देश में देशभक्ति की ज्वाला को सुलगा दिया था। ऋषि अरविन्द ने भारत माता का साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के रूप में साक्षात्कार किया था।

महानता की झलक

जब अरविन्द को दूसरी बार गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में बन्दी बनाया

गया तो उनके मुकदमे में बोलते हुए श्री चितरंजनदास ने कहा, 'न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी समझा जायेगा....उसके शब्द न केवल भारत में बल्कि दूरवर्ती समुद्रों और देशों के पार ध्वनित और प्रतिध्वनित होंगे....यह व्यक्ति इस न्यायालय के सामने ही नहीं खड़ा है, बल्कि इतिहास के न्यायालय के सामने खड़ा है।' उसी अलीपुर जेल में श्री अरविन्द को सब कहीं श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।

ऋषि अरविन्द कहते हैं 'तब भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरे हाथों में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता रख दी, उनकी शक्ति मुझमें प्रविष्ट हो गई और मैं गीता के आधार पर जीवन साधना करने योग्य बन गया।'

मैंने अपने को मनुष्यों से अलग करने वाले उस जेल (अलीपुर जेल) की ओर दृष्टि डाली और देखा कि अब मैं उसकी ऊँची दीवारों के अन्दर बन्द नहीं हूँ, मुझे तो अब चारों ओर से घेरे हुए थे भगवान् वासुदेव। मैं टहलते हुए अपनी काल कोठरी के सामने वाले पेड़ की शाखाओं तले गया, किन्तु अब वहाँ पेड़ नहीं था, मुझे प्रतीत हुआ कि वे साक्षात् वासुदेव ही हैं, मैंने देखा वहाँ स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण खड़े हैं और मुझ पर अपनी छाया किये हुए हैं। मैंने अपनी काल कोठरी के सीखचों की ओर देखा, उस झरोखे की ओर देखा जो द्वार के लिये प्रयोग होता था, और फिर वहाँ भी मैंने भगवान् वासुदेव को देखा। स्वयं नारायण ही संतरी बनकर खड़े मेरे ऊपर पहरा दे रहे थे। अब मैं उन मोटे कम्बलों पर लेट गया जो मुझे पलंग की जगह मिले थे और मैंने अनुभव किया कि मेरे सखा और प्रेमी श्रीकृष्ण ही मुझे अपनी बाहुओं में लिये हुए हैं।....मैंने दृष्टि डाली तो मैंने मजिस्ट्रेट को नहीं देखा....मैंने अभियोग पक्ष के वकील को नहीं देखा, वहाँ तो भगवान् श्रीकृष्ण ही विराजमान थे और मुस्कराते हुए बोले, 'अब क्या तुम भय मानते हो?' उन्होंने कहा, मैं यहाँ मनुष्य मात्र में हूँ और मैं उनके कर्मों और उनके वचनों पर शासन करता हूँ....मैं मार्गदर्शन कर रहा हूँ, इसलिये डरो मत। अपने उस कार्य की ओर लग जाओ जिसके लिये मैं तुम्हें जेल में लाया हूँ और जब तुम जेल से निकलो, याद रखो, कभी मत डरो, कभी संकोच मत करो। याद रखो कि यह मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ, न तुम, न अन्य कोई....मैं ही राष्ट्र हूँ, मैं ही राष्ट्रोत्थान और मैं वासुदेव हूँ, मैं नारायण हूँ और जो कुछ मैं चाहूँगा वही होगा न कि जो कुछ अन्य व्यक्ति चाहेंगे। जो कुछ मैं करना चाहता हूँ, कोई मानवी शक्ति उसे रोक नहीं सकती।'

अतिमानस दर्शन

श्री अरविन्द ने अपने योगबल द्वारा इस महान् उपलब्धि को प्राप्त किया जिसके द्वारा वे मानवता को स्वर्ग का भूमीकरण करने की उज्ज्वल आशा प्रदान

करने में समर्थ हुए, 'मनुष्य विकासशील प्राणी है। मनुष्य के भीतर और उस के परे प्रकाश की सीढ़ियाँ हैं, जो दिव्य अतिमानवता के शिखर को जाती हैं। वही हमारा चरम लक्ष्य है और हमारी आकांक्षाकुल किन्तु अशान्त और मर्यादित भौतिक सत्ता को मुक्ति दिलाने वाली कुंजी है। उन महायोगी के चरणों में हम श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनूठी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं—

हे अरविन्द रवीन्द्र का
नमस्कार ग्रहण करो
हे अरविन्द, रवीन्द्र नाथ,
तुम्हारे आगे नतमस्तक है

हे मित्र! हे मम् बांधव, तुम भारत की आत्मा की दिव्य स्वतंत्र वाचा हो।

सारे संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बात के लिये सचेत है कि सृष्टि में भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश भूल चुके हैं। फिर वे चाहे यूरोपीय, सं. राज्य अमेरिका या दूसरा कोई भी देश क्यों न हो...। इसी कारण भारत के पास अभी तक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे जगत् को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्था में छितरा हुआ छटपटा रहा है। विश्व की भलाई के लिए भारत की रक्षा करनी होगी, क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्व को शान्ति और नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

—श्री माँ

श्री अरविन्द आश्रम की प्राण संचालिका पूज्य श्री माताजी

योगीराज अरविन्द को 5 मई, 1908 के दिन अलीपुर जेल में जो सर्व कृष्णमयं जगत् की अनुभूति हुई, उसमें उन्हें जेल की काल कोठरी में, दीवारों में, पेड़ों में, झरोखों में, सन्तरी में, मजिस्ट्रेट में, सर्वत्र भगवान् कृष्ण वासुदेव के दर्शन हुए। भगवान् ने उनके हाथ में भगवद्गीता देते हुए कहा, 'मैं ही राष्ट्र हूँ, मैं ही राष्ट्रोत्थान हूँ और मैं ही वासुदेव हूँ।' भगवान् ने श्री अरविन्द को अपनी बाहुओं में लिए हुए मुस्कराते हुए कहा, 'अपने उस कार्य की ओर लग जावो जिसके लिये मैं तुम्हें जेल में लाया हूँ। मैं जो कुछ चाहूँगा वही होगा।' भगवान् के इस आदेश को मानकर श्री अरविन्द पाण्डिचेरी में अध्यात्म साधना के लिये चले गये।

फ्रांस में एक महान् देवी श्रीमती मीरा रिचर्ड पूर्व जन्म की संस्कार परम्परा से प्रेरित हो योग साधना की ओर लगी हुई थी। वे सन् 1914 में भारत की ओर आकृष्ट हुईं। इससे पूर्व वे अफ्रीका में अपनी साधना कर चुकी थी। 1914 के यूरोपीय युद्ध के समय उन्होंने भारत का प्रथम दर्शन किया। वे तभी से भारत को जगद्गुरु के रूप में देखती चली आ रही थी। 29 मार्च 1914 को आपने जब पाण्डिचेरी में योगीराज अरविन्द के दर्शन किये तो उन्हें लगा कि उनके जीवन का पथ प्रदर्शक मिल गया है। तब से वे अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी से परिचित एवं सम्बद्ध हो गई। इसी प्रकार अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन अपनी पुत्री के साथ योगीराज अरविन्द के दर्शन करने आये, तब अमरीका के राष्ट्रपति की पुत्री ने भी अपना शेष सारा जीवन अरविन्द आश्रम में समर्पित करने का व्रत लिया, जिसे उन्होंने अपने जीवन पर्यन्त निभाया। श्री माताजी की आध्यात्मिक डायरी से उनके बचपन की दिव्य अनुभूति का भी आभास मिलता है, 'जब मैं तेरह वर्ष की बच्ची थी तब एक वर्ष तक रोज रात को बिस्तर पर लेटने पर मुझे प्रतीत होता कि मैं अपने शरीर से बाहर निकल गयी हूँ तथा अपने घर से, शहर से, संसार से, बहुत ऊँचे उठ गई हूँ।' ये अनुभूति सिद्ध करती है कि वे जन्मजात योग साधिका थी। श्री माँ का

जीवन प्रारम्भ से ही कितना अध्यात्म पूरित था यह इस बात से प्रमाणित होता है कि उन्होंने भारत आने से पूर्व तीन पुस्तकें लिखी थी—

1. Prayers & Meditation

2. Paroles – D – Outrefdis (पुराने प्रसंग)

3. Belles Histories (सुन्दर कहानियाँ)

उन्होंने सन् 1893 से 1912 के बीच पेरिस में आध्यात्मिक विषयों पर अनेक प्रवचन किये थे।

वे सदा अपनी आध्यात्मिक दैनिकी साथ रखती थी। उन्होंने 24 मार्च 1914 को डायरी में (श्री अरविन्द दर्शन से पांच दिन पूर्व) लिखा, 'प्रार्थनाओं की चरितार्थता ही जीवन का विकास है। यह उनमें से एक वस्तु है जिसकी मैं अपनी भारत यात्रा से आशा करती हूँ।

1914 में माताजी (श्रीमती मीरा रिचर्ड) तथा उनके पतिदेव पाल रिचर्ड दोनों पाण्डिचेरी पधारे थे। श्री रिचर्ड ने अपनी पुस्तक Dawn over Asia में लिखा कि श्री अरविन्द एशिया के भावी पथ प्रदर्शक हैं। 29 मार्च, 1914 को जो उन्हें दर्शन अनुभूति प्राप्त हुई उस विषय में 30 मार्च की डायरी में श्रीमती मीरा रिचर्ड (श्री माताजी) ने अंकित किया, वह (श्री अरविन्द) जिसे हमने कल देखा वह धरती पर है, उसकी उपस्थिति यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है, कि एक दिन आयेगा जब तमस् ज्योति में परिवर्तित हो जायेगा। तब हे प्रभु! तुम्हारा राज्य सचमुच धरती पर स्थापित हो जायेगा।'

श्री माताजी की, श्री अरविन्द से इस प्रथम भेंट में ही पाल रिचर्ड के सुझाव पर 'आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उसका व्ययभार कुछ वर्षों तक रिचर्ड दम्पती ही वहन करते रहे।

1915 में पाल रिचर्ड को अपने स्वदेश (फ्रांस) से बुलावा आया तथा रिचर्ड दम्पती को वापस फ्रांस आना पड़ा। वहाँ भी श्री माताजी, श्री अरविन्द के मार्गदर्शन के अनुसार अध्यात्म साधना में लगी रहीं।

1916 में श्री माताजी जापान गई। जहाँ उन्होंने योग एवं अध्यात्म का वह संदेश दिया, जो उन्होंने श्री अरविन्द से प्राप्त किया था।

24 अप्रैल 1920 को वे पुनः पाण्डिचेरी पहुँची। जनवरी 1922 से उन्होंने श्री अरविन्द के आवास एवं आश्रम की देख-भाल प्रारम्भ की।

24 नवम्बर 1926 को श्री अरविन्द ने परम सिद्धि का परम प्रकाश पाया। उस दिन के पश्चात् श्री अरविन्द जीवनव्यापी मौन में लीन रहे। शरीर से धरती पर जीवित रहते हुए निरन्तर ब्रह्मानन्द की ज्योति से ज्योतित सन् 1926 से 1950

तक का उनका 24 वर्ष का जीवन एक ब्रह्मनिष्ठ आप्तकाम योगी का जीवन था। श्री अरविन्द की सिद्धि के दिन (24 नवम्बर 1926) से ही श्री माताजी आश्रम की संचालक प्राणशक्ति बनी हुई थी। श्री अरविन्द स्वयं श्री माताजी को ईश्वर प्रेरित आश्रम माता के रूप में मानते थे।

सन् 1950 में योगीराज अरविन्द की महासमाधि के पश्चात् तो अनेकानेक साधकों को श्री अरविन्द की महाविभूति के दर्शन श्री माताजी के रूप में होते रहे हैं। श्री अरविन्द की ज्योति एवं शक्ति जैसे श्री माताजी के रूप में मूर्तिमती हो उठी थी।

श्री माताजी श्री अरविन्द के समान पूर्णयोग अथवा समन्वय योग की प्रस्तोता थीं। वे अरविन्द आश्रम में अन्तेवासियों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास को ही अपना सर्वोच्च उत्तरदायित्व मानती थीं। वे इस वृद्धावस्था तक भी स्वयं दैनिक योग, व्यायाम, योगाभ्यास एवं सरल क्रीड़ा कार्यक्रमों में स्वयं भाग लेती रही थीं।

श्री माँ, श्री अरविन्द दर्शन का क्रियात्मक स्वरूप रही हैं। यदि श्री अरविन्द सिद्धान्त थे तो श्री माताजी उस सिद्धान्त का जीवन में क्रियात्मक प्रतिफलन थी। श्री अरविन्द ने सन् 1926 में ही अपनी परम सिद्धि के दिन घोषणा की थी, 'आज से माताजी साधक-साधिकाओं की अधिष्ठात्री होंगी।' अनेक प्रसंगों पर श्री अरविन्द उन्हें जग-जननी महाशक्ति का ही स्वरूप मानते थे। श्री अरविन्द के शब्दों में, 'असत्यान्धकार-शोक-सन्ताप-मृत्यु-संकुले च अस्मिन संसारे सैव समर्था— समवतारयितुं सत्यम् ज्योतिः, दिव्य जीवनम् अमृतस्य च आनन्दम्।' अर्थात् 'इस असत्य, अन्धकार, शोक, संताप, मृत्यु, संकुल संसार से तारने में वही समर्थ है, वही सत्य ज्योति दिव्य जीवन, अमृत एवं आनन्द की दात्री है।'

शिक्षा पद्धति के विषय में श्री माताजी की उद्बोधक वाणी थी, 'बालक को शिक्षा देने योग्य बनने के लिए प्रथम आवश्यकता है अपने आपको शिक्षित करने की ताकि मनुष्य बालक के सम्मुख एक घटिया आदर्श न प्रस्तुत करे।' वे पुनः कहती हैं, 'एक बालक को देने योग्य कोई सुन्दरतम् उपहार यही हो सकता है कि हम उसे आत्मज्ञान एवं आत्म नियंत्रण सिखा सकें।'

भारत के जगद्गुरु स्वरूप की वन्दना करते हुए वे कहती हैं, 'भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगत् का गुरु है। विश्व की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवन्त आत्मा है। भारत विश्व में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत की महत्ता को पहचान कर उसके अनुसार अपनी राष्ट्रीय योजनाएँ नियोजित करनी चाहिए।' विश्ववंद्य भारतमाता की अध्यात्मज्योति विश्व मानवता को बांटने वाली उन विश्वविश्रुत, योगसिद्धा, दिव्याश्री माताजी को हमारी शत कोटि श्रद्धांजलियाँ समर्पित हों।

मरण का त्योहार जीवन की जवानी

'जल्लाद की फांसी का रस्सा, हत्यारे का कुठार, तोपची का तोप का गोला अथवा अत्याचारी की खूनी संगीनें—सब मिलकर भी एक बलिदानी-वीर की, मातृभूमि के अनन्त प्रेम से आप्लावित, अजर-अमर अविनाशी आत्मा का दमन करने में समर्थ नहीं हो सकती। विकराल काल की दारुण दाढ़ों में पड़ा हुआ भी वह हँसकर निगोड़ी मौत का उपहास करता है। मृत्यु की काली छाया में भी वह पूर्ण विकसित शतदल के समान मुस्कराता रहता है। उसको डराने के वृथा प्रयत्न करके अन्त में थक कर मृत्यु ही म्लानमुख होकर चली जाती है। मौत और बलिदानी-वीर में दो-दो हाथ हो जाने पर मौत ही मर जाती है तथा बलिदानी-वीर शाश्वत काल तक अपनी स्मृति मात्र से ही युग-युग तक समस्त जाति को अनुप्राणित करता रहता है। और जिसके नाम-स्मरण मात्र से ही मुर्दा दिलों में भी जोश का एक समुद्र ठाठें मारने लगता है क्या वे स्वयं मुर्दा हैं? केवल प्राणवान ही प्राणियों को अनुप्राणित कर सकता है। केवल जागृत ही सुप्तों में जागृति फूंक सकता है। केवल जिन्दा ही मुर्दों में जान फूंक सकता है। इसलिए एक बलिदानी-वीर सांसों का वृथा भार ढोने वाले हम सब नाम मात्र के जीवित लोगों से बहुत अधिक जीवित तथा जागृत होता है। इससे बढ़कर भी वह युग-युग तक कोटि-कोटि मानवों को अमर प्रेरणा प्रदान करने का सामर्थ्य रखने के कारण केवल जीवित ही नहीं, शाश्वत जीवन वाला चिरन्तन-जीवी महामानव बन कर, इतिहास के यशोमन्दिर में अमर वैभव तथा अमिट गौरव का पूज्य पूजा-स्थान लाभ कर लेता है।

'जिसने निर्भयतापूर्वक अपने प्राणों का दान कर दिया, उसका क्षय नहीं हो सकता।' कवीन्द्र रवीन्द्र की यह हृदयस्पर्शी श्रद्धांजलि जिस महान् विभूति के चरणों पर चढ़ी, उसी शहीदेआजम सरदार भगतसिंह का ऐतिहासिक बलिदान दिवस 23 मार्च 1931 है। हे मेरे देशबन्धु! क्या तेरे शुष्क नेत्रों में एक भी गीला आंसू भारतमाता के उस लाल के चरणों पर चढ़ाने के लिए शेष बचा है?

भारत की राजधानी दिल्ली में सन् 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम की शताब्दी मनाने के लिए 12 मई को रामलीला मैदान में एक विशाल सभा हुई। बलिदानी-वीरों के मणिमुकुट स्वातंत्र्य वीर श्री सावरकर ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए

बलिदानी-वीरों के चरणों में अपना भावनाशोक हृदय ही चढ़ा दिया। उसी मंच से शहीद शिरोमणि सरदार भगतसिंह को देशभक्ति के भाव पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे। उस के खून में ही क्रान्ति के महान् बीज थे जो उसके पिता किशनसिंह की देशभक्ति तथा दोनों चाचा, अजीतसिंह तथा स्वर्णसिंह की कुर्बानियों के रूप में अपना रंग दिखा चुके थे। सरदार भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह ने सन् 1857 के महान् स्वातंत्र्य समर में गौरवपूर्ण भाग लिया था। केवल देशभक्ति के कारण ही जब पिता किशनसिंह जेल में थे, चाचा अजीतसिंह लाला लाजपतराय के साथ माण्डले जेल में बन्दी थे, दूसरे चाचा स्वर्णसिंह नेपाल में थे, तब सन् 1907 में (13 आश्विन, 1964 के दिन) आजादी के इस अमर परवाने भगतसिंह का जन्म जालंधर के खटकरा ग्राम में हुआ। इस तेजस्वी बालक के जन्म के तुरंत पश्चात् ही चाचा स्वर्णसिंह घर पहुँच गए तथा पिता और चाचा अजीतसिंह की जेल से मुक्ति का समाचार पहुँचा। वास्तव में यह मुक्तिदूत तो भारत भर की मुक्ति के लिए ही आया था।

दादी इस नन्हे भाग्यवान बच्चे को प्यार-दुलार में 'भागों वाला' कहा करती, उसी तेजस्वी वीर को संसार ने भगतसिंह के नाम से पहचाना। पूज्य माता तथा दादी की धार्मिक आस्था ने उस भगत को भक्ति की ऐसी अद्‌भुत रंगत दी जिसकी दृढ़ता ने उसे हंसते-हंसते सूली पर चढ़ जाने का सामर्थ्य प्रदान किया। केवल 3 वर्ष का यह अनोखा भगत जब अपनी तुतली वाणी से गायत्री मंत्र का उच्चारण करता तो लोगों के विस्मय का ठिकाना न रहता। जिसने देव और देश को एक ही मान लिया हो उसकी देव-भक्ति देशभक्ति के माध्यम से प्रस्फुटित होती है। देश तथा धर्म के लिए असीम प्रेम लेकर आने वाला यह बालक ईश्वर से यही प्रार्थना करता—

मेरा रंग दे वसन्ती चोला,
मेरा रंग दे वसन्ती चोला।
इसी रंग में वीर शिवा ने
मां का बन्धन खोला।। मेरा....।

इस प्रकार जिसने अपने तन, मन, प्राण को बलिदान के वसन्ती रंग में रंगने की ही एकमात्र कामना की थी वही बलिदानी-वीरों का चूड़ामणि बनकर संसार में पूजित हुआ। शिवाजी के समान दल बनाकर यह बालक युद्ध-क्रीड़ा करता। ढाल-तलवार लेकर वीरों के खेल खेलता। छोटी आयु में ही उसने बन्दूक चलाना सीख लिया तथा विदेशियों के पुतले बनाकर खेल-खेल में उनके कलेजे से गोली पार कर देता। एक खेत में किसान को बीज बोते देखकर इस सरल किन्तु, ध्येयनिष्ठ बालक ने अपने पिता से पूछा, 'ये किसान तलवार, बन्दूक की खेती क्यों नहीं करते, जिससे बहुत सी तलवारें-बन्दूकें पैदा हों?'

डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में शिक्षा पाने के पश्चात् भगतसिंह डी.ए.वी. कालेज में प्रविष्ट हुए। असहयोग आन्दोलन में भगतसिंह ने वह विद्यालय छोड़ कर भाई परमानन्दजी द्वारा संचालित भारतीय विद्यालय में प्रवेश पाया।

जो स्वतंत्रता की नई-नवेली दुलहिन का वरण करने को पैदा हुआ था वह किसी अन्य युवती से विवाह कैसे कर सकता था! पिता ने विवाह की चर्चा चलाई और भगतसिंह घर से भाग कर दिल्ली पहुँच गया। वहाँ उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा संस्थापित 'वीर-अर्जुन' पत्र में काम करना प्रारम्भ किया। आज जिस 'वीर-अर्जुन' पत्र के स्तम्भों द्वारा हम उस आजादी के देवता के चरणों पर श्रद्धांजलि चढ़ा रहे हैं, उसी 'वीर-अर्जुन' पत्र के उस समय के दिल्ली से प्रकाशित अंक को उस अप्रतिम वीर भगतसिंह की महान् लेखनी का विद्युत्वाही स्पर्श प्राप्त हुआ होगा। इसके पश्चात् वे कानपुर में स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थीजी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'प्रताप' में बलवन्तसिंह नाम से ओजस्वी लेख लिखते रहे। उन्हीं दिनों उनका कानपुर के श्री बटुकेश्वर दत्त से परिचय हुआ। उसी वर्ष गंगा-जमुना की बाढ़ से पीड़ित नर-नारियों की सहायता के लिए भी दत्त और भगतसिंह ने महान् कार्य किया।

अपनी वात्सल्यमयी माता की बीमारी का समाचार पाकर भगतसिंह तुरंत घर पहुँचे। पंजाब में अकालियों का 'गुरु का बाग' आन्दोलन जोरों पर था। उन्हीं दिनों लाहौर के एक बमकाण्ड में भगतसिंह को निरपराध ही पकड़ लिया गया। पिता के बहुत प्रयत्न करने पर निरपराध भगतसिंह 60 हजार रु. की जमानत पर छूटे। पिता के बहुत अनुरोध करने पर एक बार भगतसिंह ने लाहौर में एक डेयरी फार्म भी शुरू किया किन्तु भगतसिंह के जीवन का उद्देश्य कोई दूध बेचना तो नहीं था। कुछ दिनों में डेयरी फार्म बन्द हो गया।

दिल्ली के कोटला फिरोजशाह में कुछ क्रान्तिकारी नवयुवकों की गुप्त बैठक हुई। उन्होंने सोचा, 'हमारी नसों में जवानी का गर्म खून रहते यदि हमारी माता, भारतमाता पराधीन बनी रहे तो हमारी भरी जवानी पर सौ बार लानत है।' एक अन्य बैठक दिल्ली के 5000 वर्ष पुराने पाण्डवों के किले के खण्डहरों में हुई जहाँ एक बार कुरुक्षेत्र के युद्ध का बीजारोपण हुआ था। वहीं भारत में विदेशी शासन के विरुद्ध खुला संघर्ष प्रारम्भ करने का संकल्प हुआ। अज्ञातवासी वनवासी पाण्डवों के समान ही वे नवयुवक एक टूटे हुए मटके के पेंदे में बिना हलदी के दाल पकाते, रोटी के स्थान पर मोटे-मोटे टिक्कड़ खाकर पानी पी लेते। बिस्तर के स्थान पर धरती माता की खुली छाती थी जिस पर कभी-कभी अखबार बिछा लेते।

वह युग क्रान्तिकारियों का युग था। उत्तरप्रदेश के पुरुषसिंह चन्द्रशेखर आजाद, पंजाब के वीर सपूत सुखदेव, महाराष्ट्र के ब्राह्मण कुलभूषण श्री राजगुरु, बंगाल के वीरलाल श्री जितेन्द्रनाथ दास इत्यादि तो वीर भगतसिंह के साथी ही

थे। इसके सिवा वह युग खुदीराम बोस, बटुकेश्वर दत्त, रामप्रसाद बिस्मिल इत्यादि क्रान्तिकारियों का युग भी था।

सब से बढ़कर वह युग था 'लाल-बाल-पाल' की अमर त्रिपुटी का। पंजाब केशरी लाला लाजपतराय, महाराष्ट्र केशरी बाल गंगाधर तिलक तथा बंगाल केशरी विपिनचन्द्र पाल का गरमदल देश की धमनियों के उष्ण रक्त को स्वातंत्र्य के लिए तड़पा रहा था। फिर बंगभूमि के एक अन्य शहीद शिरोमणि पूज्य नेताजी सुभाष के अग्निवर्षी भाषणों से विदेशियों के हृदय जलने लगे थे। सरदार भगतसिंह ने अपने 'नौजवान भारत संघ' के सदस्यों को रामप्रसाद बिस्मिल की पावन स्मृति का 'काकोरी दिवस' मनाने का आदेश दिया। पीछे इस निराले वीर ने हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी का निर्माण किया तथा कई स्थानों पर गुप्त रूप से बम इत्यादि बनाने के कारखाने बनाए। वहाँ अपने मस्त नौजवान साथियों के संग वह लासानी वीर गाता फिरता—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजूए-कातिल में है।।

दुःखी व्यक्ति के दुःख में उसका अपमान भी किया जाये तो वह असह्य हो उठता है। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति से भारतीयों का हृदय पहले ही दुःखी हुआ था। तिस पर उनकी समस्या सुलझाने के लिए पूर्ण रूप से ब्रिटिश अफसरों का एक आयोग साइमन कमीशन के नाम से भारत भेजा गया, वह जख्मों पर नमक छिड़कने के समान था। उसका बहिष्कार करने को पंचनद-पंचानन लाला लाजपतराय आगे बढ़े। उनके शरीर पर ब्रिटिश शासन के निर्मम लाठीप्रहार को देखकर वीर भगतसिंह का स्वाभिमान जाग उठा। उसका वीर हृदय रोष से हुंकार करने लगा। 17 नवम्बर 1928 के दिन लालाजी के बलिदान के पूरे एक मास पश्चात् 17 दिसम्बर को भगतसिंह ने अपने वीर दोस्तों (राजगुरु, सुखदेव, आजाद) के साथ लालाजी के हत्यारे कैप्टन साण्डर्स को गोली से उड़ा दिया, अगले दिन लाहौर में पोस्टर लगे थे, 'लालाजी की हत्या का बदला ले लिया गया।' ब्रिटिश सरकार की मिलिटरी और खुफिया पुलिस जब इन वीरों का पता लगाने में असमर्थ होकर थक गई तो अचानक एक दिन असेम्बली भवन में बम फटा, फिर गैलरी से पोस्टर फेंके गये। भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त ने नारा लगाया, 'इंकलाब जिन्दाबाद।' दोनों ने बहरी सरकार के कानों में अपनी आवाज पहुँचाने के लिये बम फेंका था। दोनों ने गिरफ्तारी के लिए अपने आप को पेश किया। इस भेड़िया सरकार से न्याय की क्या आशा थी! 23 मार्च 1931 को रात्रि के अन्धेरे में सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी दे दी गई और उनके शवों को सतलुज की प्रखर धारा में बहा दिया गया!!!

अपने छोटे भाई वीर कुलतारसिंह को अपना अन्तिम पत्र लिखते हुए उस वीर शिरोमणि भगतसिंह ने लिखा था—

उन्हें यह फिक्र है हरदम,
नया तर्जे ज़फा क्या है,
हमें यह शौक है देखें,
सितम की इन्तहा क्या है ?
मेरी हवा में रहेगी,
ख्याल की बिजली
यह मुश्ते खाक है फानी
रहे या न रहे।।

उस महान् बलिदानी वीर की जेल की कोटड़ी की दीवार पर उसकी ज्वलंत देशभक्ति के परिचायक यही शब्द लिखे हुए मिले—'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।' आज उस अजर-अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के बलिदान पर्व पर उसके चरणों में हमारी शाश्वत श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

'तुम्हें स्मरण रखना चाहिये कि तुम भगवान् के हाथ में यन्त्र हो....राष्ट्रवाद कभी नहीं मरेगा। यह ईश्वरीय शक्ति से ही जीवित रहता है तथा किसी भी भीषण शस्त्र प्रहार से कुचला नहीं जा सकता। इस जाति को उठाने का कार्य भगवान् का अपना कार्य (मिशन) है...जो कुछ हम कर रहे हैं उसका उद्देश्य राजनीति नहीं है, बल्कि भगवान् का एक कार्य करना है जिसके लिये हमारा आह्वान हुआ है।

—ऋषि अरविन्द

21 वर्ष पश्चात् राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला चुकाने वाले वीरव्रतीशहीद ऊधमसिंह सुनामी

13 अप्रैल, 1919 का वैशाखी पर्व भारत के स्वाधीनता इतिहास का एक दारुण, दर्द भरा, रक्त-रंजित पृष्ठ बन चुका है। ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधि पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर माईकेल ओ डायर ने जिस निर्ममता से, बिना पूर्व सूचना दिए, जलियाँवाला बाग अमृतसर की सार्वजनिक सभा में 1600 गोलियाँ चलवा कर, हजारों भारतीय पुरुषों, बच्चों-स्त्रियों को कुछ क्षणों में ही मौत के घाट उतरवा दिया तथा परिणामस्वरूप लाशों से कुआं भर गया, उस हृदय विदारक दृश्य के साक्षी सरदार ऊधमसिंह सुनामी ने अपने मन में उस नराधम, भीषण, नर-हत्यारे डायर को गोलियों से ही मौत के घाट उतारने का प्रण कर लिया तथा उस वीरव्रती ने 21 वर्ष तक इसी धुन में देश-विदेश भटककर अन्त में 24 मार्च 1940 को लंदन की एक विराट सभा में दनदनाती हुई गोलियों से उसका कलेजा चीर डाला। इस प्रकार भारत के एक रक्त-रंजित पृष्ठ का उत्तर इंग्लैण्ड के रक्त-रंजित प्रतिशोध पर्व से पूर्ण हुआ।

ऊधमसिंह एवं भगतसिंह—दो बलिदानी-वीरों की तुलना

सरदार ऊधमसिंह सुनामी का जन्म 13 पौष सम्वत् 1957 (सन् 1900 ई.) को पटियाला राज्य के सुनाम ग्राम में हुआ। एक दूसरे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह जिनके क्रान्तिकारी कार्यों में सरदार ऊधमसिंह ने बाद में सहयोग भी दिया, वे 1907 में जन्म धारण करने के कारण सरदार ऊधमसिंह से 7 वर्ष छोटे थे। किन्तु जहाँ सरदार भगतसिंह को सन् 1931 में ही भारत में ही फांसी द्वारा बलिदान का गौरव मिला, वहाँ सरदार ऊधमसिंह को 1940 में लंदन में फांसी द्वारा बलिदान का यशलाभ हुआ। यह दोनों वीर राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला चुकाने हेतु ब्रिटिश हत्यारे अफसरों का वध करने के कारण फांसी की डोरी को चूमकर शहीद हुए। भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के हत्यारे सांडर्स को गोली का निशाना बनाया तथा सरदार ऊधमसिंह ने जलियांवाला बाग के हत्यारे को उसके देश में जाकर लंदन की महती सभा में गोलियों से छलनी कर कुत्ते की मौत मारा।

लाला लाजपत राय का ज्वलंत आह्वान

जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड के समय लाला लाजपतराय विदेश में थे। वे अमृतसर के हृदय विदारक संहार काण्ड को सुनकर तुरंत भारत लौटना चाहते थे। किन्तु विदेशी सरकार ने उन्हें अनुमति नहीं दी। उन्होंने वहीं से एक ज्वालापूरित वक्तव्य दिया, 'वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैण्ड की नाक बचाई थी, अपने ही घर के द्वार पर, वैशाखी के दिन कुत्ते की तरह मौत के घाट उतारे गये।' लालाजी के इन शब्दों ने सरदार ऊधमसिंह को इस राष्ट्रीय अपमान का बदला चुकाने के लिए बेचैन कर दिया था।

बचपन में माता-पिता का देहान्त

वीर ऊधमसिंह के पिता सरदार टहलसिंह लुधियाना-धुरी-जाखल लाइन पर, रेलवे फाटक पर चौकीदार का काम करते थे। ऊधमसिंह का जन्म नाम शेरसिंह था और उसके भाई का नाम साधुसिंह था। शैशव में ही उनकी माता का स्वर्गवास हो जाने पर सरदार टहलसिंह दोनों बच्चों को लेकर अमृतसर चले गये किन्तु कुछ समय बाद पिता भी स्वर्गवासी हो गये।

पूर्ण अनाथ बालक

माता-पिता दोनों के आश्रय से वंचित होकर ऊधमसिंह तथा भाई साधुसिंह दोनों को अमृतसर के पुतलीघर क्षेत्र के केन्द्रीय अनाथालय में भरती होना पड़ा किन्तु वहाँ ऊधमसिंह के बड़े भाई साधुसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। इस तरह ऊधमसिंह बचपन में ही माता-पिता-बन्धु विहीन-पूर्ण अनाथ बन गया। किन्तु इस अनाथ बालक ने अपनी तपस्या एवं कर्मठता द्वारा इतिहास के यशोमन्दिर में अपने लिए एक अमर स्थान प्राप्त कर लिया।

कला साधना

ऊधमसिंह ने अनाथालय में पलकर मैट्रिक की परीक्षा पास की तथा धीरे-धीरे कला का अभ्यास करते-करते वह एक पेंटर बन गया। अमृतसर के जलियांवाला बाग के पास ही उसने अपनी दूकान खोली जिसका नाम भारत आर्ट स्टूडियो रखा। कौन जानता था कि भारत आर्ट स्टूडियो का कलाकार किसी दिन तूलिका द्वारा चित्र बनाने के स्थान पर आग्नेय अस्त्र द्वारा रक्त के रंग से भारत के स्वाधीनता संग्राम का एक अनोखा क्रान्तिकारी चित्र भी बना देगा।

राजनीति में रस

ऊधमसिंह अमृतसर के अनेक राजनीतिक दिग्गजों के साथ-साथ डाक्टर किचलू के प्रभाव में भी आया। इस प्रकार उस युवा कलाकार को देश की राजनीति में भी रस आने लगा।

हृदय विदारक सर्वसंहार को देखकर पापी डायर को दण्ड देने का व्रत

13 अप्रैल 1919 को वैशाखी पर्व के दिन अमृतसर में लाखों लोग एकत्रित थे। सरकार ने पंजाब में मार्शल लॉ घोषित कर दिया था। जलियांवाला बाग के भीतर एक विराट जनसभा का आयोजन किया गया था। पंजाब का गवर्नर जनरल डायर 11 अप्रैल से ही अमृतसर पहुँचकर सेना का संचालन कर रहा था। सभा प्रारम्भ होते ही जनरल डायर ने बिना पूर्व सूचना के गोली चलाने का आदेश दे दिया। जनरल डायर ने स्वयं स्वीकार किया, '1600 गोली चलाई गई क्योंकि मेरे पास कारतूस खत्म हो गये थे। यदि और कारतूस होते तो मैंने और भी गोली चलाई होती।' 2000 निहत्थे भारतीय मौत के घाट उतार दिये गये। हजारों घायलों को रात्रि भर बिना पानी और डाक्टरी सहायता के तड़पते हुए छोड़ दिया गया। ऊधमसिंह ने अपनी आंखों से वह दारुण दृश्य देखा। मानव की लाशों से कुआं भर गया था। कौअे, चील, गिद्ध खून से लथपथ घायलों तथा मृतक लाशों को नोच-नोचकर खा रहे थे। इस भयंकर हत्याकाण्ड के विरोध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'सर' की उपाधि त्याग दी। महामना मालवीय तथा मोतीलाल नेहरू ने इस हृदय-विदारक हत्याकाण्ड की भरपूर निन्दा की। युवा ऊधमसिंह ने 19 वर्ष की अवस्था में यह भयंकर सर्वसंहार स्वयं देखा तथा मन में इस संहार के लिए अपराधी जनरल डायर को उचित दण्ड देने का प्रण किया।

अमरीका में लाला हरदयाल एवं गदर पार्टी से संपर्क

सन् 1925 में सरदार ऊधमसिंह अमरीका गये। वहाँ एक औद्योगिक संस्थान में काम करते हुए वे लाला हरदयाल एवं गदर पार्टी के अन्य सदस्यों के प्रभाव में आये।

कारावास एवं सम्पत्ति जब्ती

सन् 1929 में जब वे भारत वापस आये तो उनके क्रान्तिकारी कार्यों के कारण उन्हें 4 वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। किन्तु वे कष्ट उठाकर भी अपने व्रत को न भूले। उनकी सारी सम्पत्ति एवं मकान आदि सरकार ने जब्त कर लिए।

राम मोहम्मद सिंह आजाद

सन् 1933 में वे (सरदार ऊधमसिंह) अपना वास्तविक नाम छिपाकर राम मोहम्मद सिंह आजाद के छद्म नाम पर पारपत्र बनवाकर इंग्लैण्ड चले गये। उनको अपने वास्तविक नाम पर पारपत्र मिल ही नहीं सकता था।

बर्लिन में

वे बर्लिन में महाविप्लवी रास बिहारी बोस से भी मिले और देश की स्वाधीनता के लिए क्रान्तिकारी मार्गों पर परामर्श करते रहे।

लन्दन में इंजीनियर

लन्दन में श्री ऊधमसिंह एक अभियांत्रिक संस्थान में कार्य करते रहे तथा अपना व्रत पूरा करने के लिए उचित अवसर की ताक में रहे। वहाँ वे इंजीनियर के रूप में प्रसिद्ध हो गये और उनकी अन्तिम गिरफ्तारी के समय भी उन्हें 'इंजीनियर' वर्णन किया गया।

14 मार्च 1940 राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला

21 वर्ष तक श्री ऊधमसिंह ने अपने व्रत की पूर्ति के लिए कठिन साधना की। 14 मार्च 1940 को लंदन में एक सभा में सर परसी साइक का अफगानिस्तान के इतिहास पर भाषण था। उस सभा में जनरल डायर भी उपस्थित था। श्री ऊधमसिंह चुपके से पत्रकारों की मेज की ओर बढ़ गये और उन्होंने 4 अग्निवर्षी गोलियाँ दाग दीं। गोलियों ने सर माइकेल डायर का भारतीयों के प्रति घृणा से भरा हुआ हृदय चीर डाला और वह तत्काल हृदय के रक्तस्राव से मृत होकर गिर पड़ा। लार्ड जेटलैण्ड (सेक्रेटरी आफ स्टेट) भी आहत हुआ। सर लुई डेन (पंजाब के भूतपूर्व उपराज्यपाल) और मुम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लेमिंगटन दोनों की भुजा टूटी और वे घायल हुए। वीर ऊधमसिंह अपने व्रत की पूर्ति के समाधान से वहीं शान्त खड़ा रहा और उसने भागने की कोई चेष्टा नहीं की।

व्रत पूर्ति का समाधान

जब वीर ऊधमसिंह को न्यायालय में मजिस्ट्रेट ने पूछा कि क्या उन्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है तब वीर ऊधमसिंह ने गौरव से कहा, 'मैंने राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला लिया है। मैंने भारतमाता के एक पुत्र के नाते माँ के प्रति अपना एक छोटा-सा कर्तव्य पूरा किया है। मुझे अपनी सफाई में कुछ नहीं कहना है। वन्दे मातरम्।'

13 जून 1940 को शहीद

13 जून, 1940 को भारतमाता का यह वीर सपूत, जिसने, 21 वर्ष बाद भी राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध लेने का व्रत पूरा किया, मात्र 40 वर्ष की अवस्था में ही हंसते-हंसते लंदन में ही फांसी के तख्ते पर शहीद हो गया।

उत्पीड़न की चीत्कार गोलियों की भाषा में

वीर ऊधमसिंह के इस उग्र साहसी कृत्य पर एक जर्मन समाचारपत्र ने लिखा, 'The cry of tormented people spoke with shots'

अर्थात्, भारत के सताए हुए लोगों का चीत्कार बन्दूक की गोलियों की भाषा में बोल उठा।

उस कर्मठ, साहसी, दृढ़व्रती वीर शहीद को उसके बलिदान दिवस पर कोटि-कोटि भारतीयों के श्रद्धा प्रसून समर्पित हों। हम राष्ट्र के वैभव के लिए जिएं और राष्ट्र के गौरव की रक्षा हेतु बलिदान हों।

हमारा उद्देश्य, हमारा दावा यह है कि हम एक राष्ट्र के रूप में विनष्ट नहीं होंगे, बल्कि जीवित रहेंगे और इसके लिये लोगों को हर प्रकार के कष्ट सहने के लिये तैयार रहना चाहिये। कारण, कष्ट सहन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।

—ऋषि अरविन्द

नेताजी सुभाष बोस के अमर प्रेरक स्वामी विवेकानन्द

'शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु है। शक्ति वरदान है, शाश्वत जीवन है, अमर जीवन है। दुर्बलता निरन्तर भार है, क्लेश है, दुर्बलता तो साक्षात् मृत्यु है।.... मेरे बच्चो! मुझे चाहिए लोहे के पुट्ठों तथा इस्पात की धमनियों वाले नौजवान, जिनके भीतर का मन भी उसी तत्त्व का बना हुआ हो कि जिससे कड़कड़ाती बिजली बनी होती है।'' इन ओजस्वी शब्दों में देश के तरुणों में संजीवनी फूंकने वाले शक्ति के दिव्य देवदूत, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द की वाणी को सार्थक करते हुए वीरप्रसू बंगभूमि ने 23 जनवरी 1897 को सुभाषचन्द्र बोस के रूप में एक ऐसा नरकेसरी पैदा किया जिसकी हुँकार मात्र से समूचे ब्रिटिश साम्राज्य का कलेजा कांप उठता था। सन् 1902 में जब स्वामी विवेकानन्द ने महासमाधि ले ली तब नन्हे सुभाष केवल 5 वर्ष के बालक थे। उन्होंने अपने नन्हे नेत्रों से उस महान् लोकनायक के दर्शन किए थे जिसके शब्द उनके जीवन का प्रेरणा मन्त्र बन गए थे। इस कथन में भी अत्युक्ति न होगी कि नेताजी सुभाष का समूचा जीवन स्वामी विवेकानन्द के शक्ति मंत्र पर एक जीता-जागता भाष्य था।

दोनों के जीवन में साम्य

स्वामी विवेकानन्द के जन्म से 34 वर्ष पश्चात् सुभाष बाबू का जन्म हुआ। दोनों बंगभूमि के वीर पुत्र थे। विवेकानन्द के पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट में एटार्नी एट-लॉ थे तथा सुभाष बाबू के पिता श्री जानकीनाथ बोस कटक में वकील थे। दोनों का बचपन बड़ा होनहार था। स्वामी विवेकानन्द के विषय में प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार श्री रोमां रोलां लिखते हैं—उनके बचपन और युवावस्था के बीच का काल यूरोप के पुनरुज्जीवन काल के किसी कलाकार राजपुत्र के जीवन-प्रभात का स्मरण दिलाता है। सुभाष बाबू का तेजस्वी बाल व्यक्तित्व भी राजकुमारों के सौन्दर्य को मात करता था। दोनों विभूतियों की मातायें अतीव धर्मपरायण एवं प्रखर बुद्धि की स्वामिनी थीं। दोनों महापुरुष शिक्षाकाल में बड़े तेजस्वी प्रमाणित

हुए। दोनों के हृदय को रामायण-महाभारत की गाथाओं से पोषण मिला था। दोनों का व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर-सुडौल तथा हृदय को खींचने वाला था। दोनों के नेत्रों में प्रचण्ड अग्नि ज्वाला थी तथा वाणी में देश की प्रसुप्त आत्मा को जगाने की शक्ति थी। ब्रह्मतेज तथा क्षात्रतेज दोनों ही मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिए विदेशों में गए। एक पूर्व में गए तथा दूसरे पश्चिम में। एक सांस्कृतिक मंच के महानतम लोकनायक बने, दूसरे राजनैतिक रंगमंच के अभूतपूर्व जननायक। एक ब्रह्मतेज के मूर्तिमान अवतार थे दूसरे क्षात्रतेज के। विस्मय की बात है कि नरेन्द्र बाबू (विवेकानन्द) क्षत्रिय (कायस्थ) होते हुए ब्रह्मतेज के देदीप्यमान दिवाकर बने तथा सुभाष बाबू भी वसु (कायस्थ) होते हुए भी क्षात्रतेज के ज्वलन्त आदर्श बन कर विश्व विश्रुत हुए। दोनों विभूतियाँ अपने महान् कार्य द्वारा विश्व को हिला गयीं। दोनों के पास साधनों का अत्यन्त अभाव था फिर भी दोनों ने एक अकेले होते हुए भी गौरव मण्डित विजय का लाभ किया। स्वामी विवेकानन्द जब अमरीका में थे तो उन के पास तन के एक भगवे वस्त्र के सिवा फूटी कौड़ी भी न थी। न भोजन के लिए पैसा था न सिर ढकने को स्थान। फिर भी भोगवाद के किले के भीतर घुसकर उन्होंने अपनी कर्तृत्व-शक्ति से विश्व विजय कर लिया। सुभाष बाबू जब भारत से बाहर गए थे तो उनके पास भी कोई साधन न था। पुलिस तथा फौज की नजर से बचकर एक भेष बदले हुए अपरिचित एकाकी व्यक्ति के समान वे दुनिया के द्वार पर खड़े थे। केवल अपनी कर्तृत्व शक्ति के बल पर उन्होंने एक अकेले व्यक्ति होते हुए संसार के बड़े-बड़े राज्यों से सम्पर्क स्थापित किया तथा बिना उचित साधनों के आज़ाद हिन्द फौज जैसी महान् सागर की लहरों के समान उमड़ती हुई सेना संगठित की जिसके थपेड़ों से भारत में जमे हुए ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ किले की जड़ें हिल गईं।

अन्तस्तल में संन्यासी का आदेश

युवक सुभाष के अन्तस्तल में एक संन्यासी का त्यागपूर्ण आदर्श सुप्त पड़ा था जो 15 वर्ष की अवस्था में जाग उठा। तब भारत के प्रत्येक तरुण के लिए विवेकानन्द का नाम एक जादू का प्रभाव रखता था। तरुण सुभाष के मन पर श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे योगाभ्यास की ओर झुके। घंटों वे मध्याह्न के सूर्य की ओर देखते रहते। उनकी आंखों के सामने विवेकानन्द जैसी तेजस्विता का आदर्श था। एक बार वे हिमालय में एकान्तवास के लिए निकल पड़े। एक बार तो सचमुच संन्यास लेने की इच्छा से वे रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। एक अभिनव विवेकानन्द बनने की उनकी हृदयस्थ लालसा बड़ी प्रबल हो उठी थी, आश्रम के स्वामीजी ने कहा कि तुम भगवा धारण किए बिना ही संन्यासी हो। तुम संसार में रहकर संन्यासी मन से भारतमाता की अर्चना करने के लिए पैदा हुए हो। इस प्रकार सुभाष बाबू संसार में होते हुए भी हृदय से संन्यासी बन गए।

राष्ट्रीय जागृति के जन्मदाता स्वामी विवेकानन्द

'ऐसे लाखों युवक-युवतियाँ चाहिए जो पवित्र भावों से ओत-प्रोत हो, सर्वशक्तिमान परमेश्वर के प्रति अटूट श्रद्धारूपी कवच धारण किए हुए, गरीबों, दलितों एवं ठुकराए हुओं के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए अदम्य साहस से परिपूर्ण हो, देश के कोने-कोने में जाकर मुक्ति का सन्देश, समाजोत्थान का सन्देश एवं महानता के सन्देश का प्रचार कर सके।' स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों ने देश के लाखों ही नहीं करोड़ों युवक-युवतियों को राष्ट्रीय जागृति की प्रेरणा दी थी। स्वयं नेताजी सुभाषचन्द्र कहते हैं—जहाँ तक बंगाल की देन का सम्बन्ध है विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रीय जागृति का जन्मदाता माना जा सकता है। उनके समाधि लेने के पश्चात् उनका प्रभाव पहले से ही कहीं अधिक बढ़ गया है।'

दुर्दमनीय संकल्प शक्ति

'विजय प्राप्त करने के लिए तुम में अति महान् साहस चाहिए, प्रचण्ड संकल्प शक्ति चाहिए। साहसी आत्मा कहता है—मैं सागर को पी जाऊंगा। मेरे संकल्प के सम्मुख पर्वत चूर-चूर हो जायेंगे। इस प्रकार की शक्ति रखो, ऐसा संकल्प रखो, परिश्रम करो, तुम ध्येय तक पहुँच जाओगे।' विवेकानन्द की उस ज्वलन्त वाणी का ज्वलन्त उदाहरण बन गए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जो टूट भले ही जाएँ पर झुकना नहीं जानते थे। जर्मनी से प्राणों का संकट मोल लेकर वे समुद्रतल के नीचे ही नीचे हजारों मील एक गुप्त पनडुब्बी के भीतर यात्रा कर जापान पहुँचे। केवल अपनी संकल्प शक्ति के बल पर उन्होंने विश्व में ऐसा कार्य कर दिखाया जिसका उपमान नहीं मिलता। शान्तिदूत विवेकानन्द का आह्वान है—'क्या तुम में इतना प्रबल संकल्प है कि पहाड़ जैसी ऊँची बाधाओं को भी पार कर जाओ? यदि सारी दुनिया तुम्हारे विरुद्ध हाथ में तलवार ले कर खड़ी हो जाए तो भी क्या तुम वही करने का साहस करोगे जो तुम ठीक समझते हो?' इतिहास के रंगमंच से सुभाष बाबू की आत्मा उत्तर देती है—अवश्य, लाख बार अवश्य, केवल ब्रिटिश साम्राज्य ही नहीं यदि संसार भी संगीनों से मार्ग को रोके तो मैं उन्हें चीरता हुआ ध्येय की ओर बढ़ जाऊंगा।'

बांधे जाते इन्सान कभी, तूफान न बांधे जाते हैं।
काया जरूर बांधी जाती, बांधे न इरादे जाते हैं।।

राष्ट्रीय एकता का आधार हिन्दुत्व

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के विचार हैं—भारत में हिन्दूधर्म ने सबसे महत्त्वपूर्ण एक जोड़ने वाले सूत्र का कार्य किया है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम, तुम चाहे जहाँ यात्रा करो, तुम्हें सर्वत्र एक धर्म, एक ही संस्कृति और एक ही परम्परा के दर्शन होंगे। समस्त हिन्दू भारत को पुण्य भूमि मानते हैं।' स्वामी विवेकानन्द के विषय में नेताजी

स्वयं लिखते हैं, 'स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में धर्म राष्ट्रवाद की प्रेरक शक्ति था। उन्होंने नई पीढ़ी में भारत के अतीत के प्रति गर्व और भारत के भविष्य के प्रति श्रद्धा, आत्मविश्वास एवं आत्म सम्मान की भावना भरने का प्रयास किया।'

इस विषय में भारत गौरव स्वामी विवेकानन्द के विचार भी मननीय हैं, 'यूरोप में राजनैतिक विचारों से राष्ट्रीय विचारों का गठन होता है, भारतवर्ष में राष्ट्र उन्हीं लोगों का संघ बन सकता है जिनकी हृत्तन्त्री धर्म की एक ही झंकार पर बज उठती है। अतएव भावी भारत की उन्नति के लिए पहली शर्त होने के नाते धार्मिक एकता की नितान्त आवश्यकता है। हम देखते हैं कि भारत में धर्म की एकीकरण की शक्ति के आगे किस प्रकार जातिगत, भाषागत एवं समाजगत् कठिनाइयाँ काफूर हो जाती हैं। हमारे जीवन का मूलस्रोत धर्म ही है।'

बलिदान-दर्शन

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—'महान् कार्य, महान् बलिदान द्वारा ही हो सकते हैं।' भारत कम से कम एक हजार मानवों का बलिदान चाहता है—मानवों का बलिदान, स्वपशुओं का नहीं। अपनी एक कविता में स्वामी विवेकानन्द धर्मयुद्ध का सजीव चित्र अंकित करते हैं।

'तुम मुझे रक्त दो मैं तुम्हें स्वाधीनता दूंगा।' इस इतिहास प्रसिद्ध उक्ति के उद्घोषक नेताजी सुभाष का आह्वान है—'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्धि चाहते हो। यदि हाँ, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा। यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे। यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद-शीतल छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।'

मातृभूमि का अन्तिम प्रेम

'भारतीय समाज मेरा शैशव का झूला, यौवन का नन्दनवन तथा मेरी वृद्धावस्था का पावन स्वर्ग है।' इन शब्दों में भारत के गौरव स्वामी विवेकानन्द का भारत प्रेम छलक रहा है। 4 जनवरी 1942 के दिन अपनी सेनाओं के साथ कदम-दर-कदम बढ़ाते हुए नेताजी सुभाष ने अपने साथियों को कहा—'क्षितिज के उस पार बलखाती हुई नदी के दूसरी ओर लहराते हुए जंगलों के पार उन धूमिल पहाड़ियों की ओट में हमारी जन्मभूमि है। हमारी नस-नस में उसी मातृभूमि का प्यार गुंथा हुआ है। हमें एकबार अपनी मातृभूमि में वापस जाना है। अतएव न रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है। हमारे शस्त्र अब म्यान में न रहेंगे। आगे बढ़ो! शत्रु की पंक्ति को चीरकर हमें अपने देश पहुँचना है। आजादी या मौत हमें याद रखनी है।' अपनी मातृभूमि से बिछुड़े माँ के उस दुलारे के यह अन्तिम उद्गार थे।

सुभाष बाबू का बलिदान दर्शन

'जब आप अपने देश को वापस जावें तो मेरे देशवासी भाइयों को बताना कि मैं आखिरी दम तक देश की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ, वे जंगे-आजादी को जारी रखें। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा, उसको कोई गुलाम नहीं रख सकता।' 18 अगस्त 1944 के क्रूर एवं रहस्य गर्भित दिवस पर जापान के तेटोको नामक स्थान पर जलते हुए हवाई जहाज में से निकलकर भागते हुए, फौजी वर्दी तथा जलते हुए बालों वाले जिस पुरुषसिंह ने अपने अन्य देशवासियों के हाथ प्यारे स्वदेश को यह सन्देश भेजा उन वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का तत्पश्चात् का जीवन अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिणी आंखों के लिए भी एक रहस्यपूर्ण प्रश्नचिह्न बना हुआ है!!

श्री गोपालदास व्यास के शब्दों में—

है समय नदी की बाढ़,
कि जिसमें सब बह जाया करते हैं।
है समय बड़ा तूफान
प्रलय पर्वत ढह जाया करते हैं।।
अक्सर दुनिया के लोग,
समय में चक्कर खाया करते हैं।
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं
इतिहास बनाया करते हैं।।
यह उसी वीर इतिहास पुरुष की,
अनुपम अमर कहानी है।
जो रक्त कणों से लिखी गई
जिसकी जयहिन्द निशानी है।।

सचमुच विश्व के वक्षस्थल पर मानव के लाल बलिदानी रुधिर से अंकित की हुई यह इतिहास दुर्लभ गाथा बड़ी ही रोमांचकारी है। इस गाथा से वीर अभिमन्यु का शौर्य, श्रीकृष्ण का यज्ञमय जीवन, चन्द्रगुप्त का रणकौशल, चाणक्य की नीति,

शिवाजी का लोकविश्रुत साहस तथा दधीचि का महान् बलिदान—सभी कुछ छिपा हुआ है।

इस महान् बलिदान वीर सुभाष का जन्म आज से 113 वर्ष पूर्व 23 जनवरी 1897 को कटक के स्थान पर प्रसिद्ध वकील श्री जानकीनाथ बोस के शुभ गृह में हुआ। अत्यन्त धर्मपरायण माता के संस्कारों से भी बालक के जीवन की दिशा निश्चित होने में बड़ी सहायता मिली। इस तेजस्वी बालक के नेत्रों में बड़ा तेज था तथा मुखमण्डल से ओज टपकता था।

5 वर्ष की अवस्था में वह तेजस्वी बालक मिशनरी स्कूल में भरती हुआ तथा सदा कक्षा में प्रथम स्थान पाने लगा। रेवनशा कालिजिएट स्कूल में वे बांग्ला भाषा में सदा प्रथम आते। स्कूल के मुख्याध्यापक बाबू बेनीमाधव दास के सात्त्विक एवं राष्ट्र प्रेमी जीवन का उस बालक के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

युवक सुभाष के अन्तस्तल में एक संन्यासी का त्यागपूर्ण आदर्श सुप्त पड़ा था जो 15 वर्ष की अवस्था में एकाएक जाग उठा। भगवान् रामकृष्ण परमहंस के पट्ट शिष्य, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द अमरीका में विजय वैजयन्ती फहरा चुके थे। चाहे सुभाष बाबू की केवल 3-4 वर्ष की अवस्था में ही स्वामी विवेकानन्द अपना नश्वर चोला छोड़ चुके थे फिर भी वह उनके सन्देश का युग था। सुभाष के तरुण मन पर रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा, वे योगाभ्यास की ओर झुके, घण्टों ही वे मध्याह्न के सूर्य की ओर देखते रहते। वे एक बार हिमालय में एकान्तवास के लिए निकल पड़े एवं संन्यास लेने की इच्छा से रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। वहाँ के स्वामीजी ने कहा कि तुम भगवा धारण किये बिना ही संन्यासी हो, तुम संसार में रहकर भारतमाता की अर्चना करने के लिए पैदा हुए हो।

यज्ञमय जीवन

सुभाष बाबू का जीवन यज्ञमय हो गया। यज्ञ करते हुए हम 62 बार दुहराते हैं—

'इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम्।'

अर्थात्, यह जनम-मरण के साक्षी जातवेदस, अग्नि देवता के लिए अर्पित है, वह मेरा नहीं है।' इसी यज्ञ-भावना को जीवन में साकार करते हुए सुभाष बाबू ने निरभिमान भाव से सर्वस्व राष्ट्रदेवता के लिए अर्पित कर दिया था।

'इदं राष्ट्रीय, राष्ट्रदेवाय, इदं न मम्।'

अर्थात्, यह सबकुछ राष्ट्रदेवता के लिए समर्पित है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

इसी भाव से जब जनों के हृदय में छिपे हुए नारायण की सेवा के लिए वे ग्राम-ग्राम घूमे तथा उन्होंने महान् समाजसेवा की, निष्काम सेवा का यज्ञमय जीवन ही सुभाष बाबू थे।

दुर्दमनीय आदर्शवाद

सुभाष बाबू एक ऐसे आदर्शवादी थे जो कभी समझौता करना नहीं जानते थे। आदर्श विरोधी किसी तत्त्व के साथ समझौता करना उनके लिए असम्भव ही था। वे टूट भले ही जावें पर न वे आदर्श को झुकने देते, न स्वयं झुकते। कालेज में एक अंग्रेज प्रोफेसर ने जब बार-बार समझाने के उपरान्त भी भारतीयों की निन्दा की तो सुभाष बाबू यह सहन न कर सके तथा उस अंग्रेज प्रोफेसर को उचित दण्ड दिया। चाहे, इस कारण उन्हें कालेज से बाहर निकलना पड़ा।

अपने राजनैतिक जीवन में भी वे कहा करते—यदि कोई मेरे संग चले तो उसके साथ, यदि कोई न चले तो अकेला और यदि कोई विरोध करे तो इस के बावजूद भी मैं निरन्तर बढ़ता जाऊंगा।

उस युग की राष्ट्रीयता में कुछ लोग अंग्रेजों से अनेक प्रकार के समझौते करने के पक्ष में थे। सुभाष बाबू पाप या अत्याचार के साथ कोई समझौता नहीं कर सकते थे।

सर्वस्व अर्पण

सुभाष सर्वस्व दान को ही सच्चा कार्य समझते थे। बलिदान पूरा होना चाहिए। सन् 1920 में उन्होंने आई.सी.एस. में सारे ब्रिटिश जगत् में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था। किन्तु राष्ट्र के लिए उन्होंने उसे भी ठोकर मार दी। वे कहा करते—'तुम मुझे रक्त दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' स्वतंत्रता का मूल्य प्राण है। उनकी उक्ति है—

'ऐसे कार्य करो कि जाति उठे, स्वयं दुःख उठाओ कि जाति सुखी हो।'

कण्टकाकीर्ण मार्ग

नेताजी का सन्देश है—'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्धि चाहते हो? यदि हां, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा, यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे; यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद शीतल छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।'

मातृभूमि का लाडला माता के लिए व्याकुल

कदम कदम बढ़ाए जा,
खुशी के गीत गाए जा
जिन्दगी है कौम की,
तू कौम पर लुटाए जा।।

4 जनवरी 1944 के दिन हृदय को तरंगित करने वाले इन स्फूर्तिदायी गीतों को गाते हुए लक्ष-लक्ष वीर सैनिकों को सम्बोधन कर वह मातृभूमि का लाडला

अपनी जन्मदात्री भारतमाता के द्वारे पर खड़ा हुआ कह रहा था—'क्षितिज के उस पार— इस बल खाती हुई नदी के दूसरी ओर, लहराते हुए जंगलों के पार उन धूमिल पहाड़ियों की ओट में, हमारी जन्मभूमि है। हमारी नस-नस में उसी जन्मभूमि का प्यार गुंथा हुआ है। हमें एक बार अपनी मातृभूमि में वापस जाना है अब हम न रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है हमारे शस्त्र अब म्यान में न रहेंगे— आगे बढ़ो! शत्रुओं की पंक्ति को चीर कर आपको अपने देश में पहुँचना है। आजादी या मौत हमें याद रखना है।' कोहिमा और मणिपुर की पहाड़ियों में नेताजी के यह शब्द आज तक गूंज रहे हैं तथा सूने क्षितिज से बार-बार टकरा कर अपने उस अलौकिक वक्ता को खोज रहे हैं जिनके मुख से निःसृत हुए।

आज उसी महान् नेता को हम देशवासी उस खोए हुए नेता की स्मृति में हृदय की हरी-भरी क्यारियों के सारे के सारे भाव पुष्प शून्य में ही चढ़ाते हुए कामना करते हैं कि हमारे पूज्य नेताजी जहाँ भी हों उन्हें हमारी भावमुखर श्रद्धा सादर पहुँचे।

यह देश गिर अवश्य गया है, परन्तु निश्चय फिर उठेगा।
और ऐसा उठेगा कि दुनिया देखकर दंग रह जायेगी।।

—स्वामी विवेकानन्द

दक्षिण-पूर्व एशिया में नेताजी की स्मृति

'जब आप अपने देश को वापस जावें तो मेरे देशवासी भाइयों को बताना कि मैं आखिरी दम तक देश की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ, वे जंगे-आजादी को जारी रखें। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा, उसको कोई गुलाम नहीं रख सकता।' 18 अगस्त 1944 के क्रूर एवं रहस्य गर्भित दिवस पर जापान के तेटोको नामक स्थान पर जलते हुए हवाई जहाज में से निकलकर भागते हुए फौजी वर्दी तथा जलते हुए बालों वाले जिस पुरुष-सिंह ने अपने अन्य देशवासियों के हाथ प्यारे स्वदेश को यह सन्देश भेजा, उन वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का तत्पश्चात् का जीवन अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिणी आंखों के लिए भी एक रहस्यपूर्ण प्रश्नचिह्न बना हुआ है!!

दक्षिण-पूर्व एशिया की इस बार की यात्रा में मुझे नेताजी के विषय में कुछ रोमांचक तथ्य प्राप्त हुए। सन् 1941 में अपने कलकत्ता निवास से अकस्मात् लुप्त होकर वे अफगानिस्तान के मार्ग से रूस होते हुए जर्मनी पहुँच गये और एक दिन जर्मन रेडियो से उन्होंने विस्मयकारी घोषणा की—'मैं सुभाषचन्द्र बोस, जिसे अंग्रेजों ने मृत बताया है, जीवित हूँ और बर्लिन में हूँ।' वहाँ उन्होंने अंग्रेजों के कट्टर शत्रु हिटलर से भेंट की, किन्तु हिटलर के हस्तक न बन कर उन्होंने भारतीय युद्धबंदियों तथा भारतीय छात्रों को संगठित कर आजाद हिन्द सेना का निर्माण किया। जर्मन नागरिकों ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया और स्वयं हिटलर ने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। द्वितीय महायुद्ध में युद्ध का रंगमंच जर्मनी से बदल कर जब दक्षिण-पूर्व एशिया में आ गया तब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बड़े रोमांचक एवं विस्मयकारी ढंग से उस भीषण युद्धकाल में जब आकाश में विमानों को ध्वस्त करने हेतु बमों के विस्फोट हो रहे थे, समुद्रों में तारपीडों द्वारा जलयानों को उड़ाया जा रहा था, धरती पर तोपों एवं टैंकों की गर्जना हो रही थी, उस समय एक जर्मन नवयुवक पनडुब्बी चालक फर्डिनेंड उंटशर उन्हें जर्मनी में समुद्र के नीचे डुबकी लगाकर, नीचे ही नीचे समुद्र मार्ग से सिंगापुर ले आया। जर्मनी में उस साहसी पनडुब्बी चालक की माता श्रीमती उंटशर से जब भेंट हुई तो वह बड़े गौरव से

अपने सुपुत्र की साहसिक पनडुब्बी यात्रा का रोमांचकारी वर्णन करती थी, जिसमें उसके पुत्र ने नेताजी का फोटो चित्र भी उतार लिया था।

मलाया का पतन

15 जनवरी 1942 को मलाया में अंग्रेजों ने जापान के सम्मुख आत्मसमर्पण कर 95 हजार भारतीय सैनिक उनके हवाले कर दिये थे। जनरल मोहनसिंह ने उन्हीं दस्तों को लेकर आई.एन.ए. की नींव डाली थी। अगस्त 1942 में भारत में भी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' गरम हो गया था।

जापान में घोषणा

सन् 1943 के प्रारम्भ में जापानी अधिकारी चाहते थे कि आइ.एन.ए. को ओकीनावा (जापान) के मोर्चे पर अमरीकी फौजों से लड़ने हेतु भेजा जावे। जनरल मोहनसिंह का मत था कि हम केवल भारत की स्वाधीनता हेतु अंग्रेजों के विरुद्ध ही लड़ेंगे अन्य किसी के विरुद्ध नहीं। उन्हीं दिनों रासबिहारी बोस सिंगापुर पधारे। उन्होंने घोषणा की कि शीघ्र ही वे जनता के सम्मुख एक वीर शिरोमणि इतिहास निर्माता को प्रस्तुत करने वाले हैं। 15 दिन बाद टोकियो रेडियो से शाम 7 बजे घोषणा हुई कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस टोकियो में हैं और शीघ्र ही सिंगापुर पधारने वाले हैं।

सिंगापुर में सिंहगर्जना

सिंगापुर में मैंने म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन का भवन देखा। जहाँ की सीढ़ियों पर खड़े होकर नेताजी ने अपना ऐतिहासिक भाषण किया था, जिसे सुनने के लिए लाखों नर-नारी, अपार जनसमूह समुद्र के रूप में उमड़ पड़ा था।

2 जून, 1943 की उस विराट सभा में ठीक 3.30 बजे मोटर केड और उसके बाद की गाड़ी में जापानी प्रधानमंत्री तोजो एवं नेताजी आये। नेताजी सफेद सूट पहने तथा गांधी टोपी लगाये हुए थे। तोजो ऊँचाई में नेताजी की कमर तक ही आते थे। तोजो के बाद जब नेताजी भाषण कर रहे थे तेज आंधी व पानी बरसने लगा। लोगों ने नेताजी पर छाता लगाना चाहा, किन्तु नेताजी ने छाता हटाते हुए कहा, 'वर्षा में हम भीगकर गल नहीं जायेंगे।' मूसलाधार वर्षा में उनका डेढ़ घंटे तक हिन्दी में ओजस्वी व्याख्यान हुआ।

''भारत को आजाद कराने, एक संगठित राष्ट्र को जन्म देने एवं उसे सुचारु रूप से चलाने के लिये हमें वर्तमान में कम से कम दो करोड़ डालर की आवश्यकता है जो मुझे 24 घंटे के अन्दर इकट्ठा करना है। इस पर कुछ व्यवसायियों ने घोषणा की कि वे अपने व्यवसाय के लाभांश का 5 प्रतिशत आजाद हिन्द सेना के लिए देंगे। किसी ने कहा कि 10 प्रतिशत तथा किसी ने 11 प्रतिशत कहा। इस पर नेताजी ने बड़ी गम्भीर

ध्वनि में पूछा, 'क्या आजाद हिन्द सेना का जो वीर सैनिक देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध के मोर्चे पर अपना रक्त बहायेगा, वह 5 प्रतिशत, दस प्रतिशत या 11 प्रतिशत रक्त ही बहायेगा या मातृभूमि के लिए अपना प्राण सर्वस्व न्योछावर कर देगा?' उन्होंने अपने ऐतिहासिक शब्द उच्चारण किये, 'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्ध चाहते हो? यदि हां, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा। यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे। यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।....'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।'

नेताजी की इस मार्मिक अपील का ऐसा प्रभाव हुआ कि वहीं पर डालरों की वर्षा प्रारम्भ हो गयी तथा प्रातः 10 बजे से पूर्व ही राशि दो करोड़ डालर की सीमा पार कर गई।

रत्न-भूषणों के उपहार—नेताजी के खजाने का रहस्य

नेताजी की अपील पर अनेक महिलाओं ने अपने स्वर्णाभूषण तथा धनाढ्य पुरुषों ने मणि-रत्नों के ढेर लगा दिये। नेताजी के सन् 1945 में अकस्मात् लुप्त हो जाने के पश्चात् जापान सरकार ने स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र द्वारा सूचित किया था कि नेताजी की अमानत स्वर्णालंकारों एवं मणिरत्नों से भरे हुए दो बड़े ट्रंक उनके पास सुरक्षित हैं, जो भारत में मंगवा लिए जाने चाहिये। पं. नेहरू ने अपना एक विशेष दूत भेजकर वे दोनों ट्रंक भारत की राजधानी में मंगवा लिये थे किन्तु बाद में वह अपार रत्न-भण्डार किस खाते या किसकी जेब में गया उसका आज तक समाधान नहीं हो सका है। सिंगापुर के प्रवास में मुझे अनेक स्त्री-पुरुष मिले जिन्होंने नेताजी को अपने तन के गहने तथा तिजोरी के रत्न भेंट किये थे। कुछ ऐसे युवक मिले, जिनके पिता या चाचा-ताऊ ने अपनी सम्पत्ति नेताजी के चरणों में चढ़ा दी थी।....वे सब मुझे नोंच-नोच कर पूछते थे कि उनकी रत्नाभूषण की भेंट किसके पेट में गई। जनता पार्टी के शासनकाल में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने यह स्वीकार किया कि पं. नेहरू ने नेताजी की दो रत्न पेटिकायें जापान से मंगवाई थीं, किन्तु उनके भावी प्रयोग-विनियोग का कुछ भी पता नहीं चलता है। दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रवासी भारतीयों की भारतनिष्ठा की रक्षा हेतु वर्तमान सरकार को नेताजी के उस विशाल रत्न-भण्डार का विनियोग विवरण घोषित करना चाहिये।

सिंगापुर संग्रहालय में नेताजी की स्मृतियाँ

सिंगापुर संग्रहालय में नेताजी एवं आजाद हिन्द फौज सम्बन्धी अनेक दुर्लभ

चित्र एवं अभिलेख हैं जिनका संग्रह एवं प्रकाशन भारतीय इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा।

मलेशिया में नेताजी की स्मृतियाँ

सिंगापुर विजय करने के पश्चात् नेताजी मलेशिया में आये तथा वहाँ लगभग 95 हजार भारतीय युद्धबन्दी सैनिकों को उन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए आजाद हिन्द सेना की ओर आकर्षित किया। मलेशिया के कुआलालम्पुर संग्रहालय में भी उनसे सम्बन्धित बहुत सामग्री है जो भारतीय नागरिकों के इतिहास ज्ञान हेतु आवश्यक है।

मलेशिया के एक सुन्दर द्वीप पीनेंग को प्राची का मोती कहा जाता है। वहाँ के गीता आश्रम के अध्यक्ष सरदार दुर्गादेव सिंह निन्दरा से बहुत घनिष्ट परिचय एवं मास भर के सहवास का सुयोग मिला। वे भी नेताजी की सेना में कैप्टन रह चुके थे। उनके सुपुत्र को नेताजी ने अपनी बाल सेना में भरती कर लिया था तथा उसे अपने साथ जापान भी ले गये थे। बाद में नेताजी ने उस किशोर बालक को अपने भाई शरतचन्द्र बोस के नाम पत्र लिख कर दिया, 'मेरा कोई पुत्र नहीं है, इस बालक को मैं पुत्र के समान मानता हूँ। इसलिये आप इसे जितना सहयोग दे सकें, दें।' नेताजी के लुप्त होने के पश्चात् वह नवयुवक नेताजी के पत्र के साथ कलकत्ता में शरतचन्द्र बोस से मिला तथा उन्होंने अपना निजी व्यय करके उस युवक को इंजीनियरिंग की ऊँची शिक्षा दिलायी। आजकल वह युवक प्रौढ़ बनकर भटिण्डा (पंजाब) में सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर है।

जापानियों को दो-टूक उत्तर

जापान से सहयोग लेते हुए भी जापान के नियंत्रण से मुक्त रह कर भारत की स्वाधीनता-साधना करते रहने के लिए उन्होंने जापानी-संसद में निरन्तर 8 घंटे तक भाषण दिया, जिसे सुनकर मंत्रिमण्डल व संसदसदस्य विस्मित हो गये और उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। वे भारतीयों के पुरुषार्थ से ही भारत की स्वाधीनता का महायज्ञ चलाना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'जापान की बदौलत भारत की आजादी प्राप्त करना गुलामी से भी बदतर है। यदि जापानी समझते हैं कि अंग्रेजों के बाद उनका महत्त्व भारत में हो जायेगा तो उनसे बढ़कर बेवकूफ और कोई नहीं।' भला हम एक गदहे को छोड़कर दूसरे को कैसे स्वीकार कर सकते हैं!

ब्रह्मदेश में नेताजी के जीवित संस्मरण

ब्रह्मदेश में मुझे पंजाब के एक प्रवासी श्री दीनानाथजी से भेंट का सुयोग मिला। वे लगभग 75 वर्ष के वृद्ध महापुरुष हैं। उन्होंने ब्रह्मदेश में नेताजी को इतना सहयोग किया कि नेताजी ने उन्हें अपना परम विश्वासी मानकर आजाद

हिन्द बैंक के 'बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज' का चेयरमैन बना दिया। जिस भवन में आजाद हिन्द बैंक चलता था वह अभी तक विद्यमान है तथा संग्रहालयों में नेताजी के अनेक दुर्लभ चित्रों के अतिरिक्त लाखों लोगों के हृदयों में नेताजी के अमर प्रेरणा के चित्र अभी तक सजीव हैं। 1 अगस्त 1943 को जब गांधी एवं नेहरू भ्रमवश नेताजी को गद्दार मानने लगे थे तब नेताजी ने देशवासियों के नाम अपील प्रसारित की—

'प्यारे देशवासियो! आज मैं तुम्हें स्वाधीन बर्मा से अभिवादन प्रेषित कर रहा हूँ....कारागारों में पड़े मेरे देश-बन्धुओं को बता दो कि उनकी मुक्ति का दिन दूर नहीं.... पूरा राष्ट्र एक प्राण होकर खड़ा हो जाय तथा दुष्ट अंग्रेजों को हमारी पुण्य-भूमि से ठोकर मारकर निकाल दो....भारत की स्वाधीनता का दर्शन करो, आजाद हिन्द जिन्दाबाद।'

श्री दीनानाथजी के पास सुभाष एवं आजाद हिन्द सम्बन्धी बड़ी मूल्यवान सामग्री लेखों, अभिलेखों और संस्मरणों के रूप में पड़ी है, जिसका इतिहास में सदुपयोग होना चाहिये।

कृतज्ञता के नाम पर आसक्ति न पले और अनासक्ति के नाम पर कृतघ्नता न पले।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

छोटानागपुर में नेताजी सुभाष की स्मृति

1938 में श्री सुभाषचन्द्र बोस हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्ष थे। महात्मा गांधी की इच्छा के विरुद्ध भी श्री सुभाषचन्द्र बोस 1939 में त्रिपुरी कांग्रेस के भी अध्यक्ष चुने गये थे। गांधीजी ने उनके विरुद्ध डा. पट्टाभि सीतारामैया को खड़ा किया था। जब सुभाषचन्द्र जीत गये तो महात्माजी ने यह वक्तव्य दिया—'पट्टाभि की हार मेरी हार है।'

सुभाषचन्द्र बोस अध्यक्ष तो बन गए, पर वह कार्यसमिति नहीं बना सके यानी उन्होंने जो कार्यसमिति बनाई, उसके सदस्यों ने उसके साथ काम करने से इन्कार किया। इस बीच गांधीजी ने राजकोट में अनशन किया था, जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा था और साधारण कांग्रेसी यह चाहते थे कि झगड़ा न बढ़े। जब सभी पुराने नेताओं ने सुभाष के साथ काम करने से इन्कार कर दिया, तब सुभाष के लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं रहा कि वह अध्यक्षता से इस्तीफा दे दें।

1939 के सितम्बर में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। सुभाष ने बहुत पहले से ही कहा था कि यह महायुद्ध आ रहा है। हमें इसका फायदा उठाकर अंग्रेज सरकार का तख्ता उलटने की तैयारी करनी चाहिए। महायुद्ध छिड़ने पर भी कांग्रेस फौरन् कुछ नहीं कर सकी। हां, उसने अपने मंत्रिमण्डलों को इस्तीफा देने के लिए कह दिया और इसके बाद 1940 की मार्च में रामगढ़ कांग्रेस के अध्यक्ष थे मौलाना अब्दुल कलाम आजाद। सुभाष ने भी रामगढ़ में समझौता विरोधी सम्मेलन किया, जो बहुत सफल रहा।

रामगढ़ कांग्रेस के मंच से बार-बार घोषणा की गई कि कोई भी सुभाष बोस का भाषण सुनने न जाय। बाबू राजेन्द्र प्रसाद के नाम से एक आज्ञापत्र कांग्रेसियों के नाम निकाला गया कि 'कोई भी कांग्रेसी श्री सुभाषचन्द्र बोस का भाषण सुनने कहीं न जाय।' फिर भी कांग्रेस सम्मेलन की अपेक्षा दस गुणा जनसमूह सुभाषचन्द्र बोस का क्रान्तिकारी भाषण सुनने एकत्र हुआ था। वहीं पर उन्होंने 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की घोषणा की थी। दिल्ली के कांग्रेस समर्थक दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' के प्रमुख सम्पादकीय में 'देशद्रोही सुभाष' शीर्षक से बहुत गंदा

अग्रलेख निकला। उसी प्रधान सम्पादक ने 'सुभाष' को देशद्रोही कह कर अपनी 'देशभक्ति' प्रकट की। मैनेजिंग डाइरेक्टर थे श्री देवदास गांधी, पूरे देश में यही हाल था।

अपनी छिछालेदारी पर श्री सुभाषचन्द्र बोस को कैसी मर्मान्तक पीड़ा पहुँची थी, यह उन्हीं के शब्दों में पढ़िये, 'उस समय बार-बार मेरे मन में आया कि आत्महत्या कर लूं, परन्तु देश को स्वतंत्र कराने की जो प्रबलतम आकांक्षा मन में थी, उसने ऐसा न करने दिया।'

छोटानागपुर का जन-जन अपने प्यारे नेता (सुभाष) को याद करता है। रामगढ़ के मुख्य चौराहे में नेताजी की मूर्ति, खूंटी में नेताजी की घोड़े पर सवार मूर्ति तथा अनेक ग्रामों एवं नगरों में नेताजी चौक एवं स्मारक बने हैं। रांची के प्रसिद्ध डा. बीरेन राय ने (जो नेताजी के साथ आजाद हिन्द सेना में भी रहे थे) नेताजी का पाठागार भी स्थापित किया है। छोटानागपुर के जनमानस में नेताजी की स्मृति अक्षुण्ण है।

नीति के अविरुद्ध प्रीति और परमार्थ के अविरुद्ध स्वार्थ से सुखमय जीवन सम्भव है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

स्वराज्य संस्थापक शिवाजी एवं स्वातंत्र्य-साधक वीर सावरकर

वीर सावरकर के आदर्श छत्रपति शिवाजी महाराज थे, जिन्होंने पांच-पांच विधर्मी, विदेशी बादशाहतो—बीजापुर की आदिलशाही, गोलकुंडा की निजामशाही, दिल्ली की मुगल शहंशाही, एबीसीनिया का सिद्दी जौहर, गोआ का पुर्तगाली शासन सब को परास्त कर स्वतंत्र हिन्दू साम्राज्य की ऐतिहासिक संस्थापना की थी।

वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी की ज्योति कैसे चमत्कारी रूप में काम कर रही थी, यह इतिहास का एक अनूठा एवं प्रेरणादायी अध्याय है। वीर सावरकर के आदर्श पुरुष छत्रपति शिवाजी ही थे तथा शिवाजी का जैसा मार्मिक इतिहास सावरकरजी ने लिखा है वह भी अतुलनीय ही है।

जैसे जीजाबाई ने संस्कारित कर शिवाजी का निर्माण किया था, वैसे ही सावरकर के माता-पिता शैशवावस्था में ही शिशु सावरकर को रामायण-महाभारत, शिवाजी, राणा प्रताप आदि की प्रेरक वीर गाथाएं सुनाकर उनका संस्कार करते थे। सावरकर के पिता (श्री दामोदर पन्त सावरकर) स्वयं अच्छे कवि थे तथा उन्होंने बालक विनायक सावरकर को मराठी के प्रख्यात सन्त-कवि तुकाराम, वापट, मोरोपन्त की कविताएं सुनाकर उसकी काव्य प्रतिभा को भी अंकुरित कर दिया था।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही अपनी मित्र मण्डली को लेकर रोहिडेश्वर के उसी शिव मन्दिर में जाकर अपनी कटार से अपनी भुजा का रक्त चढ़ाकर मातृभूमि की स्वाधीनता की प्रतिज्ञा की जहाँ बाल शिवाजी ने 250 वर्ष पूर्व अपनी बाल मित्र मंडली के साथ अपनी भुजा के रक्त से शिव का अभिषेक कर हिन्दवी स्वराज्य की संस्थापना के लिए प्रतिज्ञा की थी।

छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण के 225 वर्ष पश्चात् सन् 1901 में सावरकरजी ने मैट्रिक परीक्षा पास कर फार्ग्यूसन कॉलेज, पूना के रेजीडेंसी छात्रावास में छत्रपति शिवाजी की पूजा आरती का क्रम चालू किया, शुक्रवार के दिन सावरकर के साथी

छात्र शिवाजी महाराज का चित्र अपने छात्रावास में लगाते और उसकी आरती करते, 'आरती' सावरकर ने ही रची थी, जिसका अर्थ यह था—

हे छत्रपति शिवाजी! आर्यों के देश पर विदेशियों का हमला हो गया है, सजग होकर आप शीघ्र आइए। भारतमाता आप को रुद्ध कण्ठ से पुकार रही है। क्या आपके हृदय को उसका स्वर बेधता नहीं? हे शिवाजी! आप की जय हो। आर्य जनता आप की शरण है। इसकी मुक्ति के लिए जल्द आइये।

कभी जिस भारत-भू के लिए माता दुर्गा ने शुंभ-निशुंभ आदि दानवों का नाश किया था और जिसकी सुरक्षा के लिए श्री रामचन्द्र ने रावण का संहार किया था, वही भारत-भू आज अंग्रेजों से पीड़ित है। हे शिवाजी! आप के बिना कौन उसकी रक्षा करेगा?

हम भारतवासी त्रस्त हैं और निर्धन हो गये हैं। गुलामी की बेड़ियों ने देश को मरणासन्न बना दिया है। अब आप के शरणागत हैं। इसलिए हे प्रभु। सज्जनों के रक्षार्थ तथा भगवद्गीता के सन्देश को सार्थक बनाने के लिए आप तुरंत आइये।

कहते हैं आर्यों की करुण पुकार सुनकर स्वर्ग में शिवाजी का गला भर आया और तब देश को स्वतन्त्र कराने के लिए शृंगेरी किले में जन्म धारण किया। जब देश का कार्य हो गया तब उन्होंने रायगढ़ दुर्ग में अन्तिम विदा ले ली। बोलो, उन शिवाजी की जय बोलो। जिन्होंने देश को स्वतन्त्र कराया।

यह आरती गाकर सावरकर और उनके साथी देश सेवा का संकल्प दृढ़ करते रहते थे।

सावरकरजी ने प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग देखने की योजना बनाई। पहले उन्होंने सिंहगढ़ किला देखा। इस किले में छात्रों के बीच सावरकरजी ने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। उन्होंने शिवाजी से सम्बन्धित अन्य दुर्गों को भी श्रद्धापूर्वक देखा।

लोकमान्य तिलक ने सावरकर की रक्त प्रतिज्ञा एवं विदेशी कपड़ों की होली से गद्‌गद होकर कहा कि 'सचमुच अभिनव शिवाजी का जन्म हो गया है।' लोकमान्य तिलक ने सावरकर को लन्दन में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखकर उन्हें छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति दिलवायी थी।

तिलक महाराज ने स्वाधीनता महायज्ञ हेतु जनजागरण के लिए महाराष्ट्र में गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव का प्रचार किया था। सावरकर ने इन युवकों में प्रेरणा भरने हेतु बड़ा व्यापक अभियान चलाया। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी की जन्म स्थली शिवनेरी दुर्ग को देखा तो उसकी उपेक्षित अवस्था को देख कर उनके नेत्रों में अश्रु छलक आये। उन्होंने ही देश भर में धन संग्रह करके शिवनेरी दुर्ग पर

जीजाबाई के दुलारे, इतिहास के अलौकिक पुरुष छत्रपति शिवाजी का उचित स्मारक बनवाया। सावरकरजी ने उस शिवनेरी दुर्ग को युवकों का प्रेरणादायी महातीर्थ बना दिया।

स्वाधीनता आन्दोलन में लोकमान्य तिलक को डोंगरी जेल की जिस ऐतिहासिक बैरक में दो बार बन्द रखा गया था, वीर सावरकर को भी सन् 1911 में पचास वर्ष का आजन्म कारावास का दण्ड देकर अन्दमान जेल भेजने से पूर्व उसी डोंगरी जेल में उसी बैरक में रखा गया था। दोनों शिवाजी भक्तों को जेल के भीतर एवं बाहर समान प्रेरणाएं आन्दोलित करती रही। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने माण्डले जेल की काल कोठरी में स्वाध्याय हेतु निजी व्यय से सैकड़ों ग्रंथ मंगवाए थे। सावरकरजी ने भी अंदमान में अपने मित्रों, प्रशंसकों एवं सम्बन्धियों को पत्र लिख-लिख कर हजारों ग्रंथ स्वाध्याय के लिए एकत्र कर लिए थे।

जैसे तिलकजी ने प्रायः सभी ग्रन्थ कारागार में ही लिखे, सावरकरजी की भी सभी रचनाएं कारागार की साहित्य साधना हैं। जैसे तिलक महाराज ने माण्डले जेल की काल कोठरी की दीवारों पर कोयले से लिखकर 'गीता रहस्य' जैसे महान् ग्रंथ की रचना की। सावरकरजी भी हथकड़ी पहने हाथों से अन्दमान जेल की काल कोठरी की दीवारों पर गोमान्तक महाकाव्य लिखते थे। 1920 में अंदमान जेल की घोर यातनाओं (30 सेर तेल पेरना, रस्सी बँटने, लोहे के पिंजरे में बन्द रहने, हथकड़ियों से दीवार पर टांगे जाने, हंटरों की मार, कुपोषण, मानसिक यंत्रणा आदि) से वीर सावरकर गंभीर रूप से रुग्ण हो गये। उन्हें मृत्यु की काली छाया सिर पर मंडराती प्रतीत होने लगी। उन्होंने मृत्यु को संबोधन कर कविता लिखी—'इस स्वाधीनता की रणयज्ञाग्नि में मैंने अपनी अस्थि-अस्थि, मांस की बोटी-बोटी, रक्त की प्रत्येक बूंद ईंधन के समान भेंट कर दी है।' उसी समय उन्हें तिलक महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। सावरकरजी के परामर्श में अंदमान जेल के सभी बंदियों ने दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए दिनभर उपवास किया। यदि तिलक महाराज शिवाजी के आदर्श प्रस्थापक थे तो सावरकरजी शिवाजी के सजीव आदर्श।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही प्रेरक कवितायें, विशेष कर मराठी रणगीत पोवाड़े रचकर युवकों के हृदय में राष्ट्र भक्ति की भावनाएं प्रज्वलित करनी प्रारंभ कर दी थी। वे शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह आदि के पोवाड़े रचते व उन्हें अपने साथियों के बीच सुनाते तो किशोरों की बाहें फड़कने लगती थीं। एक पोवाड़े में वे एक स्थान पर शिवाजी, दिल्ली के मुगल सिंहासन को चकनाचूर करने वाले पानीपत के वीर पराक्रमी सदाशिवराव भाउ, सेनापति धनाजी एवं सन्ताजी आदि को एकत्रित दिखाते हैं किन्तु वीर बाजीप्रभु देश पाण्डे की अनुपस्थिति पर

दुःख प्रकट करते हैं। फिर स्वयं कहते हैं हाय वीर बाजी प्रभु! बीजापुर के मुसलमान बादशाह की नौकरी में हैं? वह विदेशी विधर्मी की, अपनी ही मातृ भूमि की दासता में सहायता कर रहा हैं?

दूत बाजीप्रभु को सम्बोधित कर कहते हैं, 'जिसको अपने देश, अपने स्वराज्य से प्रेम नहीं उस व्यक्ति को धिक्कार है। आज तो देश द्रोह करने वाले चाण्डालों का बाजार लगा है। बाजी वीर श्रेष्ठ इस दासता में अपनी आयु क्यों व्यर्थ नष्ट करते हो? गो-ब्राह्मण प्रतिपालक स्वातंत्र्य संस्थापक भगवान् शंकर के अवतार शिव प्रभु तुम्हें बुला रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम जो छिड़ा है उसके लिए तुम्हें बुला रहे हैं। वहाँ चलो, देशभक्ति का अमृत-पान करके प्रायश्चित्त करो और स्वातंत्र्य सेना का नेतृत्व करो।' ये शब्द बाजी प्रभु के हृदय में तीर के समान चुभते हैं। राष्ट्रभक्ति भावना जागृत हो उठती है और हृदय ग्लानि की भावना से मर्माहत हो उठता है। बाजी प्रभु शिव दूतों से कहते हैं—

'घर में घुसे इस विदेशी, विधर्मी, हिन्दू द्रोही चोर को मैंने राजा माना और शिवाजी जैसे महान् पराक्रमी वीर का विरोध किया। मेरी पावन मातृभूमि जिसने भ्रष्ट की। मैं उसका सेवक बना। शिव दूतों! महाराजा शिवाजी से कहना कि मेरे जैसे अधम राष्ट्रद्रोही को काट डालें, आकर मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दें।'

बाजी प्रभु का विचार आगे बढ़ता है—'मेरा देश मेरा राजा है। वह मेरा प्राण है। वह मेरा ईश्वर है। भगवान् है। मैं छत्रपति शिव प्रभु की शरण में आया हूँ। अग्नि के ऊपर जो राख जमी थी, वह उड़ गई और वह अग्नि पुनः प्रदीप्त हो वैश्वानर बनकर शत्रु दमन के लिए रणभूमि में आ डटा।

अफ़जल खां के पुत्र फाजल खां तथा एबीसीनिया के हब्शी सिद्दी जौहर ने हजारों सैनिकों के साथ पन्हाला का किला घेर लिया। शिवाजी किले में थे तथा बाजी प्रभु देश पाण्डे मात्र 100 सैनिकों के साथ रक्षा कर रहे थे। स्वतंत्रता देवी के साक्षात हृदय रूप शिवाजी उस दुर्ग में फंस गये थे। फाजल खां पिता का बदला लेने के लिए आया था। बीजापुर से प्रस्थान करने से पूर्व इस दुष्ट फाजल खां ने बीजापुर की चारदीवारी के प्रवेशद्वार पर महान् विजयानगर साम्राज्य के अन्तिम सम्राट राम राजा का सिर लटका रखा था और उसे उतार कर वहाँ पर शिवाजी का सिर लटकाने की प्रतिज्ञा की थी और वह पन्हाला दुर्ग को घेरे खड़ा था।

वीर सावरकर की ओजस्विनी वाणी कहती है—'बेटा फाजल! जानते हो मुकाबला किससे है? तुम्हारे बाप को जिसने मिट्टी में मिला दिया उस महापुरुष से दो-दो हाथ करना है। शक्तिशाली पवन को मुट्ठी में पकड़ने का यह प्रयत्न है। आओ, जंगलों को भस्म करने वाले दावानल को पकड़ने के लिए हिरन के बच्चे बढ़, आगे बढ़!'

उसी पोवाड़े में वीर सावरकर आगे लिखते हैं कि बाजी प्रभु देश पाण्डे शिवाजी को बचाने हेतु उनसे आग्रह करते हैं—'छत्रपति माई-बाप! मराठा मृत्यु से डरता नहीं। आप रांगणा चले जाइए। वहाँ से संकेत रूप पांच तोपें दागिये।' .....छत्रपति! आप वसुदेव हैं, मुसलमानों के कंस-कपट की ओर ध्यान देकर स्वतंत्रता की अमृतमयी मूर्ति लेकर रांगणा के गोकुल में चले जाइए, जहाँ वह सुरक्षित रूप से रहे।'

विश्व इतिहास में जो भयंकर और निर्णायक युद्ध हुए हैं उनमें पावन खिण्ड का यह युद्ध सभी दृष्टियों से अपूर्व था। सौ-डेढ़ सौ मराठा सैनिकों ने बहुत बड़ी मुस्लिम सेना को पूरी तरह हराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मर्म स्थान पर गोली लगने से बाजी प्रभु अर्ध मूर्च्छित होकर भी लड़ते रहे। वे बोले—'तोपों की आवाज सुनने से पहले बाजी मरेगा नहीं, मरेगा नहीं, यह बात यमराज से कह दो, बाजी तोप आवाज के पहले नहीं मरेगा।'

लड़ते-लड़ते बाजी प्रभु ने पाँच तोपों की गर्जना सुनी। तोप का प्रथम गर्जन शिवाजी का, दूसरा स्वधर्म है, तीसरा स्वदेश का, चौथा कर्तव्य का और पाँचवाँ है विजय ध्वनि का। बाजी का मृत शरीर स्वतः स्वतंत्रता भगवती ने उठाकर अपने रथ में रखा और उसे लेकर स्वर्ग की ओर बढ़ीं। गंधर्व अति आनंदित हो गये, देवताओं ने स्वागतार्थ दुंदुभि बजायी। सारा चराचर विश्व बाजी का यशोगान करने में तल्लीन हो गया।

क्रान्तिकारी चाफेकर बन्धुओं ने 1894 में हिन्दू धर्म संरक्षणी सभा की स्थापना की थी। सभा एवं सावरकरजी द्वारा स्थापित मित्र मेला के कार्यक्रम शिवाजी श्लोक तथा गणपति शिवाजी श्लोक का भाव इस प्रकार है—केवल शिवाजी की गाथा दोहराने मात्र से स्वतंत्रता मिलना संभव नहीं बल्कि हम लोगों को शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कस कर संहार कार्यों में लग जाना होगा। मित्रो! अब आपको स्वतंत्रता के लिए शस्त्र उठाने होंगे और अंग्रेज दुश्मनों के सिर काट कर स्वातंत्र्य लक्ष्मी का अभिषेक करना होगा।

'मित्रो! हम संकल्प करते हैं कि राष्ट्रीय रणांगण में हम अपना जीवन बलिदान कर देंगे और जो लोग हमारे धर्म व मातृ भूमि को नष्ट करने में लगे हैं तथा उस पर आघात कर रहे हैं उनके रक्त से धरती रंग देंगे। हम सब शत्रुओं को यमलोक पहुँचा कर ही मरेंगे।'

सावरकरजी ने अपने विश्वस्त साथियों को एकत्रित करके एक गुप्त बैठक में भारत की स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए 'अभिनव भारत' नामक एक संस्था की स्थापना की।

अभिनव भारत का प्रत्येक सदस्य निम्न प्रतिज्ञा लेता था—'छत्रपति शिवाजी के नाम पर, अपने पवित्र धर्म के नाम पर और अपने प्यारे देश के लिए पूर्व-पुरुषों की कसम खाते हुए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम सांस तक संघर्ष करता रहूँगा। मैं न तो आलस्य करूंगा और न अपने उद्देश्य से हटूंगा। मैं अभिनव भारत के नियमों का पूर्ण पालन करूंगा और संस्था के कार्यक्रम बिल्कुल गुप्त रखूंगा।'

सावरकरजी ने पूना की एक सभा में भाषण देते हुए कहा, 'छत्रपति शिवाजी की सन्तानो! जिस प्रकार शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का विध्वंस किया। सदाशिव राव भाऊ ने मुगल तख्त को चकनाचूर किया, उसी प्रकार तुम्हें अब भारत माँ को दासता की बेड़ियों में जकड़ने वाले अंग्रेजों के अत्याचारी साम्राज्य को चकनाचूर करके स्वाधीन हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करनी है। सशस्त्र क्रान्ति के बल पर इस विदेशी साम्राज्य का तख्ता पलटना है।'

1906 में सावरकरजी ने लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा चालू छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति प्राप्त की। उन्होंने फ्री इंडिया सोसाइटी की स्थापना करते हुए कहा—

'अंग्रेजी साम्राज्य को भारत से तभी समाप्त किया जा सकता है जब भारतीय युवक शिवाजी के समान हाथों में शस्त्र लेकर मरने-मारने को कटिबद्ध हो जायें। सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा ही भारत की स्वाधीनता सम्भव है। अतः हमें भारतीय युवकों को इसके लिए तैयार करना है। उसकी शस्त्रास्त्रों से सहायता करनी है।' सावरकरजी ने 2 मई 1908 को लन्दन में शिवाजी जयन्ती महोत्सव धूम-धाम से मनाया।

ढींगरा के बलिदान पर सावरकरजी ने कहा—'ढींगरा महास्वाभिमानी हिन्दू थे। उनके मतानुसार राष्ट्र शत्रु का वध भगवान् राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप आदि हिन्दू स्वाभिमानियों की वीर परम्परा का एक अंग था, वह ईश्वरीय कृत्य था। भारतीय स्वातंत्र्य समर की ज्योति प्रज्वलित करने वाला एक निनाद था उनका ऐतिहासिक वक्तव्य।'

1 जुलाई 1910 को वीर सावरकर को इंग्लैण्ड से गोरिया जलयान द्वारा भारत लाया जा रहा था। वीर सावरकर के मस्तिष्क में छत्रपति शिवाजी द्वारा औरंगजेब के कारागार से चतुरता के साथ मुक्त होने की योजना घूम गई। उन्होंने विचार किया कि अंग्रेजी साम्राज्य की जेलों में यातनाएं सहन करने की अपेक्षा मुक्त होकर मातृ-भूमि को स्वाधीन कराने में योग देना कहीं अच्छा है। फांसी पर चढ़ने की अपेक्षा अंग्रेज अधिकारियों से दो-दो हाथ करते हुए शहीद हो जाना कहीं अधिक उचित है। उन्होंने गोरों के चंगुल से मुक्त होने का निश्चय कर लिया।

8 जुलाई 1910 को मार्सेल बन्दरगाह के निकट जहाज पहुँचने ही वाला था कि सावरकर शौच के बहाने से जहाज के पाखाने में जा घुसे। बड़ी फुर्ती से वे उछलकर, पोर्टहॉल को पकड़ कर छेद से 'जय स्वातंत्र्य लक्ष्मी' का उद्घोष कर समुद्र में कूद पड़े।

वीर सावरकर ने स्वयं लिखा है—'अन्दमान में हम हिन्दू राजबन्दियों पर पापी, कुकर्मी व चुगलखोर तीन वार्डर जो रखे गये थे वे तीनों के तीनों पठानी, बलूची, मुसलमान थे। वे तीनों क्रूर मुसलमान वार्डर हिन्दुओं पर दबदबा जमाने की नीति रखते थे। समस्त सिन्धी मुसलमान, पठान मुसलमान, पंजाबी मुसलमान एक होकर हिन्दुओं को परेशान करते थे। एक दिन पठान वार्डर ने एक मद्रासी हिन्दू कैदी को गालियाँ देते हुए कह दिया, 'यह काफिर है साला....इसकी चोटी उखाड़ना चाहिए।' अण्डमान में कुछ मुसलमान कैदी हिन्दुओं को त्रस्त करके व बाद में सहानुभूति दिखाकर उन्हें 'इस्लाम धर्म' स्वीकार करने को बाध्य करते। पठानों ने जब एक-दो हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया तो सावरकरजी ने प्रत्युत्तर में शुद्धि का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

छत्रपति शिवाजी के समय में भी उनका विश्वासी सेनानायक नेताजी पालकर मुगलों द्वारा धर्म भ्रष्ट कर कुली खां बना दिया गया था। 9 वर्ष काबुल कांधार में मुगलों के अधीन युद्ध करता रहा। शिवाजी ने 19 जून 1677 को पूर्ण धार्मिक रीति से उसका शुद्धि संस्कार करवाकर उसे पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर लिया था।

वीर सावरकर ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने पर उनके अभिनंदन में कविता (अन्दमान जेल से ही) लिखी—'रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गौरव में भारत का गौरव अनुस्यूत है। भारत माता 'समरवाष्परथ' में आरूढ़ होकर राजधानी की ओर वापस लौट रही है। उसके स्वागतार्थ कवियों का समूह आगे बढ़ा। मैं भी कवि हूँ इस विश्वास से मैं भी उस कवि समूह में सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु माता की आज्ञा हुई कि क्रान्ति के वाष्पयंत्र के कक्ष में काम करने वालों की कमी है, वहाँ जा। इस आज्ञा के कारण मुझे कवि कक्ष में सम्मिलित होने का अवसर न मिला।' वीर सावरकर ने शिवाजी के यश में वीर रस के गीत गाये तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी छत्रपति को काव्यमय श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए गाया—'सुदूर किसी एक शताब्दी के एक अप्रसिद्ध दिन में महाराष्ट्र के किसी एक वन पर्वत पर अन्धकार में बैठकर हे राजा शिवाजी तुम्हारे तेजोज्ज्वल भाल में विद्युत् तरंग के समान यह भाव उत्पन्न हुआ था—'खण्डित-अव्यवस्थित भारत को मैं एक धर्मराज्य के सूत्र में आबद्ध करूंगा।'

सितम्बर 1924 ई. में प्रख्यात मुस्लिम नेता मौलाना शौकत अली ने सावरकरजी से कहा कि वे शुद्धि आन्दोलन बन्द करें। इस पर सावरकरजी ने कहा

पहले वे हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन रुकवाएं। मौलाना ने चिढ़कर कहा—'यदि मुसलमानों की बातें न मानी गयीं तो उनके विश्व में अनेक देश हैं वे वहाँ चले जाने को मजबूर होंगे।' सावरकरजी ने मौलाना के शब्द सुनकर तुरंत कहा—'प्रतिदिन फ्रंटियर मेल भारत से बाहर जाता है। आप प्रतीक्षा क्यों करते हैं? तुरंत भारत से बोरिया-बिस्तर लेकर अलविदा हो जाइए।' चलती बार खीजकर मौलाना ने सावरकर को संकेत कर व्यंग्य किया—'आप मेरे मुकाबले बहुत बौने (छोटे कद के) हैं अतः मैं आप को दबोच सकता हूँ।' सावरकर ने बिना एक क्षण रुके उत्तर दिया—'मैं आपके चैलेन्ज को स्वीकार करता हूँ। किन्तु क्या आप यह नहीं जानते कि शिवाजी अफजल खां के सामने बहुत बौने थे परन्तु उस नाटे कद वाले मराठा ने कद्दावर पठान का पेट फाड़ डाला था।' इसके बाद मौलाना कुछ न बोल पाया।

रत्नागिरि जेल में वीर सावरकर ने छत्रपति शिवाजी द्वारा संस्थापित स्वराज्य का इतिहास हिन्दू पदपादशाही लिखा। ये लिखते हैं—'मैं अपने हृदय में बहुत दिनों से यह इच्छा संजोए हुए था कि जन साधारण के समक्ष एक ऐसी पुस्तक प्रस्तुत करूं जिससे महाराष्ट्र के इस महान् आन्दोलन एवं क्रान्ति के संदेश का न्यूनाधिक ज्ञान उपलब्ध हो सके।....

वस्तुतः परमात्मा को ही यह स्वीकार था कि मैं अपने उन महान् पूर्वजों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त करूं जिन्होंने 16वीं शताब्दी में अपने प्रचण्ड शौर्य और त्याग के बल पर महान् हिन्दू राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संरक्षण का महती कार्य सम्पन्न किया।'....किन्तु मराठों की जागृति के आन्दोलन की उत्ताल तरंगों ने तो प्रान्तीय सीमाओं को लांघकर 'अखिल हिन्दू आन्दोलन' का रूप ही ग्रहण कर लिया था।

राजनीतिक रंगभूमि पर शिवाजी के प्रकट होने से पूर्व अर्थात् 1627 ई. से पहले हिमगिरि की गगनचुम्बी शैलमालाओं से हिन्द महासागर पर्यन्त जहाँ कहीं भी हिन्दू और मुस्लिम वाहिनियों में संघर्ष हुआ वहाँ हिन्दुओं को ही पराजित होना पड़ा। कभी हिन्दू सहसा ही अपने नेता के लापता हो जाने के कारण पराजित हुए तो कभी उसके रणभूमि में बलिदान हो जाने के परिणामस्वरूप हार गये अथवा कभी अपने ही किसी मंत्री या सेनापति के विश्वासघात के फलस्वरूप विजयश्री का वरण कर पाने में असफल हो गये। इस प्रकार जब कभी भी दो-दो हाथ हुए, तभी हिन्दुओ की पराजय की कहानी में एक पृष्ठ और जुड़ गया। सिन्धु नरेश महाराज दाहिर सेन का दुर्भाग्य, जयपाल का संघर्ष, अनंगपाल की दृढ़ता, दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज चौहान का पतन, कालिंजर, सीकरी अथवा तालीकोट की घटनाओं को स्मृति पटल पर लाते ही उपरोक्त कथन की सत्यता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। परन्तु जब हिन्दू जाति के भाग्य की बागडोर शाहजी तनय सरजा शिवाजी ने अपने सशक्त हाथों में थामी तो

उन्होंने हिन्दुओं के इतिहास से पराजय के पन्ने को फाड़कर उसमें विजय-वरण के अध्याय को संलग्न कर दिया।

इसके बाद इतिहास के इस स्वर्णिम समुल्लास का सृजन हुआ जिसमें हिन्दू राष्ट्र की पावन पताका पुनः कभी यवनों के हलाली परचम के सम्मुख नतमस्तक नहीं हुई।

इस प्रकार इतिहास साक्षी है कि स्वातंत्र्य वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी का तेजस्वी प्रकाश बड़े अलौकिक रूप से कार्य कर रहा था। दोनों विभूतियों को शतशः वंदना, कोटिशः अभिनंदन।

'काशिजी की कला जाती, मथुरा मस्जिद होती, शिवाजी न होता तो सुन्नत होत सब की।'

—कवि भूषण

× × ×

मानवता का अमर अलंकार

शिवाजी के जीवन कार्यों का मूल्यांकन प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार इस प्रकार करते हैं—जहांगीर ने प्रयाग के अक्षयवट वृक्ष को जड़ों से काट डाला था। उसकी जड़ों पर उबलता शीशा उड़ेला था। अविनाशी ऐसे वृक्ष को मैंने पूरा नष्ट किया है ऐसा बड़े गरूर से एलान किया था। परन्तु आगे क्या हुआ? एक वर्ष के अन्दर ही जलकर खाक हुए, उन्हीं जड़ों से वह वटवृक्ष फिर से अंकुरित हुआ। ऊपर से अपने को आवृत किये शीशे के दुर्भेद्य कवचों जैसी ही दासता की श्रृंखलाएं, अत्याचार आदि हिन्दुत्व के वटवृक्षों को सैकड़ों वर्षों तक ध्वस्त कर सेंध कर बैठे थे। वही वटवृक्ष परकियों के दमन भार में फंसने के बाद भी मरने के बजाय फिर नये सिरे से अंकुरित होते हुए दासता के सीस-कवचों को दूर फेंक कर बढ़ते-बढ़ते गगनचुंबी बनकर खड़ा हो सका, यही बात शिवाजी ने अपने जीवन से साबित कर दिखलायी।

—जदुनाथ सरकार

नास्तिक युग का महानतम आस्तिक

बलिदानी वीरों के पावन रक्त से रंजित हुई इन्द्रप्रस्थ नगरी को एक नये बलिदान का दृश्य भी देखना था। सुकरात का जहर का प्याला, ईसा की सूली तथा मंसूर की फांसी जैसे काण्ड भारत की राजधानी में भी दुहराये गयेह्लकेवल देश काल और नाम रूप के भेद के साथ। महाभारत काल, पृथ्वीराज काल तथा मुगलकाल के अनेकानेक बलिदानों के अतिरिक्त बन्दा बैरागी, गुरु तेगबहादुर, सूफी फकीर सरमद शहीद तथा बहादुरशाह के बेटों के बलिदान की रोमांचकारी गाथा अभी पूर्ण विस्मृत नहीं हुई थी जब 30 जनवरी 1948 को युग के महानतम महापुरुष का रक्त प्यासी धरती की प्यास बुझाने के लिए छलनी हुए शरीर से फव्वारों के समान बह उठा। जैसे ईसा ने अपने हत्यारों के मंगल के लिये ईश्वर से प्रार्थना की थी, वैसे ही इस महापुरुष ने अपने हत्यारे का हाथ जोड़कर अभिवादन किया तथा अपना प्राण छोड़ते हुए उच्चारण किया—'हे राम।'

जीवन भर 'राम' में अमिट आस्था वाले तथा मरते क्षण भी राम का पावन नाम स्मरण करने वाले इस अजातशत्रु महापुरुष का नाम इस युग का सर्वप्रसिद्ध नाम है —महात्मा गांधी।

इस महात्मा के महत्त्व का रहस्य क्या है? चारित्रिक गौरव की कुंजी क्या है? यह महान् संत स्वयं कहता—'संसार में अनेक राजनीतिज्ञ मिलेंगे जो धार्मिक पुरुष के वेश में कार्य करते होंगे। मैं राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाला हृदय से धार्मिक-पुरुष हूँ।'

अन्तस्तल की भक्ति-भागीरथी

जैसे सूखी मरुभूमि अथवा कठोर पठार के अन्तस्तल में शीतल जल की कोई निर्झरिणी अदृश्य रूप में बह रही हो वैसे ही गांधीजी के राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकलाप के भीतर ईश्वर भक्ति की ऐसी मधुर गंगा बहती थी जिसके दर्शन किये बिना गांधी जीवन दर्शन की कुंजी मिलना कठिन है।

इस परम भागवत महात्मा के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं—

देवपुत्र था निश्चय ही
जन मोहन मोहन।
सत्य चरण धर जो पवित्र
कर गया धराकण।।
विचरण करते संग उसी के
विविध युग वरद।
राम, कृष्ण, चैतन्य
मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद।।

हृदय-परिवर्तन

सन् 1869 में काठियावाड़ के पोरबंदर नामक स्थान में एक सामान्य वणिक करमचन्द के घर में जन्म पाने वाला एक साधारण-सा बच्चा कभी एक महान् लोकनायक बनेगा, यह कौन जानता था? अपने बचपन में ही विषय-विकारों के पंकिल-गर्त में फंसा हुआ, शरीर का दुबला, मन का कायर, मांस-मदिरा का व्यसनी, बीड़ी-सिगरेट का आदी, चोरी, झूठ तथा दुराव-छिपाव के स्वभाव वाला मतिभ्रष्ट, पथ-भ्रष्ट बालक कभी सत्य तथा अहिंसा का अवतार, धर्म तथा नीति का देवता बनकर विश्व भर में पूजित होगा, यह किसे ज्ञात था? किन्तु हृदय-परिवर्तन के ऊँचे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले भारत ने जहाँ रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया, एक महामूर्ख, अनपढ़-गंवार को कविकुल गुरु कालिदास बना दिया, नारी के प्रेम में अंधे हुए एक कामी युवक को भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास बना दिया, बंगाल के महानास्तिक तरुण बाबू नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द बना दिया—वहाँ इसी देश की मिट्टी ने काठियावाड़ के एक बनिये के विकृतमति बालक को विश्ववंद्य महात्मा गांधी बना कर दिखा दिया।

नास्तिक युग में ईश्वर विश्वास

आज का युग विज्ञान का युग माना जाता है। डार्विन ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मनुष्य को ईश्वर ने नहीं बनाया, वह बन्दरों की सन्तान है। डा. फ्रॉयड ने समाज की नैतिकता को व्यक्ति का शत्रु बताया तथा ईश्वर को बच्चों का मन-गढ़न्त आश्रय बताया। इतना ही नहीं उसने 'राम' के स्थान पर 'काम' को ही विश्व का अन्तिम सत्य घोषित कर दिया। भौतिकवाद ने 'आत्म' के स्थान पर 'एटम' को ही 'अल्ला' बताया और साम्यवाद ने विश्व की समस्याओं का केन्द्र 'अर्थ' में ही खोजा। इस घोर नास्तिकता के युग में पुनः ईश्वर में सजीव विश्वास को लेकर आने वाले इस महान् सन्त, महात्मा गांधी की खुली चुनौती थी—'मेरा दावा है कि

मेरा एकमात्र सहारा भक्ति और प्रार्थना है और, यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये जायें तो भी ईश्वर मुझे वह शक्ति देंगे कि मैं उनसे इन्कार न करूंगा, यही जोरों से कहूँगा कि वे हैं।'

तारक मन्त्र 'राम'

प्रायः संदेह किया जाता है कि जैसा रामायण में वर्णित है, 'राम-राम' लिखने मात्र से समुद्र में पत्थर कैसे तैरे होंगे। गांधीजी का दावा है कि पत्थर तैरने की बात तो दूर, राम नाम के प्रभाव से इन्सान तैरते भी देखे गये हैं और यह सच भी है। रत्नाकर डाकू कैसे तरा, तुलसीदास के प्रारम्भिक जीवन का पाप-पंक कैसे धुला? स्वयं गांधी अधमात्मा से महात्मा कैसे बने? स्वयं गांधीजी के शब्दों में, 'मैं संसार में यदि व्यभिचारी होने से बचा हूँ तो राम नाम की बदौलत। मैंने दावे तो बड़े-बड़े किये हैं, किन्तु यदि मेरे पास राम नाम न होता तो तीन स्त्रियों को मैं बहिन कहने के लायक न रहा होता। जब-जब मुझ पर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने राम का नाम लिया है और बच गया हूँ।'

रामनाम से प्राणरक्षा और प्रण-रक्षा

जब गांधीजी का अपना सगा पुत्र रामदास मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था और सभी डाक्टरों ने निराशाजनक जवाब दे दिया था, उस समय भी गांधीजी का राम-विश्वास चलायमान नहीं हुआ था। कुछ डाक्टरों ने कहा कि उसे अण्डा और मांस इत्यादि दिये बिना बचने की एक प्रतिशत भी सम्भावना नहीं है। गांधीजी ने आपद्- धर्म का बहाना करके बच्चे के प्राण बचाने के लिए भी हिंसा को स्वीकार नहीं किया। सारी रात राम नाम स्मरण करते रहे और बच्चे के मुंह में गंगाजल डालते रहे। उनकी निष्ठा के चमत्कार से बच्चा सर्वथा निरोग हो गया।

राम ही रक्षक

अपनी रक्षा के लिए उन्होंने कभी किसी को शस्त्र लेकर अपने संग नहीं चलने दिया। अफ्रीका में गोरों के एक आक्रमण के पश्चात् जब बापू जख्मी हो गये, उसके पश्चात् उनके मित्र कैलनवक ने अपनी जेब में रिवाल्वर रखकर बापू की रक्षा के लिए संग चलना चाहा। गांधीजी ने स्पष्ट कहा, 'फेंक दो रिवाल्वर। तुम्हारा विश्वास भगवान् पर है या रिवाल्वर पर? मेरी रक्षा के लिए मेरे साथ आने की जरूरत ही क्या है? क्या मैं भगवान् के हाथ में सुरक्षित नहीं हूँ? जब तक उसे मुझसे काम लेना है, वह अवश्य मेरी रक्षा करेगा।'

गांधीजी के लिए रामधुन की शक्ति फौजी ताकत से सैकड़ों गुना बड़ी थी। उनका रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन भी था। राम ने ही उन जैसे पतित को उन जैसा पावन बना दिया।

हिन्दुत्व का गौरव

आज जैसे कई नेताओं के समान उन्हें हिन्दू कहलाने में कोई लज्जा का अनुभव नहीं होता था, वरन् गौरव का अनुभव होता था। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धांजलि है, 'हिन्दू धर्म ने हमें भय से बचा लिया है। अगर हिन्दू धर्म मेरे सहारे को नहीं आता तो मेरे लिए आत्महत्या के सिवा और कोई चारा नहीं होता। मैं हिन्दू इसलिए हूँ कि हिन्दू धर्म ही वह चीज है जो संसार को रहने लायक बनाती है।'

तुम को मेरी लाज

सत्याग्रह के लिए जाते हुए गांधीजी प्रायः गुनगुनाया करते थे—रघुवर तुमको मेरी लाज, सदा-सदा मैं शरण तिहारी, तुम हो गरीब नेवाज।।

राम भक्तों की परम्परा में एक नई सुनहरी कड़ी जोड़ने वाले इस महान् संत का कहना है, 'रामनाम पोथी का बैंगन नहीं है, वह तो अनुभव की प्रसादी है। जिसने उसका अनुभव किया है वही बता सकता है, दूसरा नहीं।'

गीता तथा रामायण

गीता माता के गौरव में इस महान् आत्मा की उक्ति है—'गीता मेरे लिए शाश्वत मार्गदर्शिका है। मेरे लिए तो गीता ही संसार के सर्व धर्म-ग्रन्थों की कुंजी है। संसार के सब धर्म-ग्रन्थों में जो गहरे से गहरे रहस्य भरे हुए हैं, उनको यह मेरे लिए खोलकर रख देती है।'

वे अन्यत्र कहते हैं, 'मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं हुआ जितना की श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।' क्या ही अच्छा हो यदि आज गांधीजी के नाम की कमाई खाने वाले नेतागण गांधीजी की महानता के इस रहस्य को समझ पाएं एवं धर्मनिरपेक्ष तथा ईश्वरविहीन जीवन तंत्र को त्याग एक जीवित ईश्वर में जीवित आस्था अपना लें।

अन्तिम यात्रा

गांधीजी की प्रार्थनासभा में जब पहली बार बम का धमाका हुआ तो लोग उठकर भागने लगे। गांधीजी ने डा. सुशीला नैयर को कहा, 'ये लोग भागते क्यों हैं? प्रार्थना में यदि गोलियाँ भी चले तो भागना नहीं चाहिये। यदि राम नाम गाते मृत्यु हो तो इससे अधिक मंगलमय अवसर क्या हो सकता है! फिर गांधीजी ने कहा—'मुझे इन लोगों की आलोचना करने का क्या अधिकार है? क्या जाने जब स्वयं मुझ पर ऐसा संकट आयेगा तो मैं उसका सामना कर सकूंगा या नहीं। यदि मैं

प्रार्थना-सभा में स्वयं छाती पर गोलियाँ खाकर भी निर्भय रहूँ तथा राम-नाम गाता रहूँ तो समझना कि गांधी ठीक कहता था।'

यह गांधीजी की अपने अलौकिक महाप्रयाण की एक भविष्यवाणी ही थी। ठीक 4-5 दिन पश्चात् 30 जनवरी 1948 के दिन बिल्कुल ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ। प्रार्थना-सभा में जनता जनार्दन का अभिनन्दन करने के लिए उनके हाथ जुड़े हुए थे। उनकी नग्न छाती पर गोलियाँ बरसीं, वे निर्भय होकर राम-नाम कहते हुए उस प्रार्थनासभा में देह त्याग कर अमर हुए।

आज इस पुनीत दिवस पर हम अपने हृदय की हरी-भरी क्यारियों के समूचे भाव-सुमन उसी देवता के चरणों में समर्पित करते हैं और उस महान् आत्मा की युग-युग व्यापी प्रेरणा की याचना करते हैं—

राम मरे तो मैं मरूं, नहीं तो मरे बलाय।
पारब्रह्म का बालका, मरे न मारा जाय।।

—कबीर

मेरी दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति के पास जितने समृद्ध भंडार भरे पड़े हैं, उतने किसी के पास नहीं हैं। हमने अपनी संस्कृति को पहचाना ही नहीं....

हम अगर अपनी संस्कृति के अनुसार नहीं जीये तो एक समाज के रूप में हम आत्महत्या की ओर अग्रसर होंगे।

मेरे भीतर की भावना है कि संसार संहार के कारण मरणासन्न है। उसे इससे उबरने के लिये राह चाहिये। मैं आत्मतृप्ति और विश्वास के साथ कह सकता हूँ इस भूखे विश्व के मार्गदर्शन का अधिकार प्राचीन भारत को ही होगा।

—महात्मा गांधी

पं. जवाहरलाल नेहरू का पुनर्मूल्यांकन

भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल अपने मिजाजों के राजा हैं। उनकी महिमा में उनके अनेक प्रशंसकों ने प्रशंसा के पुल तो अवश्य बांधे किन्तु किसी ने उनकी दुर्बलताओं एवं राष्ट्रहित विरोधी बातों की ओर अंगुलिनिर्देश करने का साहस नहीं किया। इसके लिए भी नैतिक साहस एवं बौद्धिक ईमानदारी की आवश्यकता है। प्रजातंत्र के हित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम बिना पक्षपात की भावना के अपने नेताओं का मूल्यांकन करें तथा उन्हें पथभ्रष्ट होने से बचायें। प्रजातंत्र में प्रजा स्वयं राजा है तथा नेता अथवा शासक तो उसके चुने हुए प्रतिनिधि हैं। अतः प्रजा का कर्तव्य है कि जागरूक रहकर अपने प्रतिनिधियों को राष्ट्र विरोधी कार्यों से सदा रोकती रहे।

सफल अधिनायक

आज से 21 वर्ष पूर्व नवम्बर 1937 में पण्डित नेहरू ने 'माडर्न रिव्यू' में एक उपनाम से स्वयं अपने बारे में ही लिखा, 'जवाहरलाल ने एक अभिनेता के रंग और पाउडर के बिना अभिनय करना भली-भांति सीख लिया है। अपने लापरवाह से दिखाई देने वाले दल से वह जनता के रंगमंच पर पूर्ण कलात्मक अभिनय करता है। यह सब उसे और देश को कहाँ लिए जा रहा है?'.... जवाहरलाल जैसे व्यक्ति महान् और श्रेष्ठ कार्यों को करने की अपनी क्षमता होते हुए भी प्रजातंत्र में भय का कारण होते हैं। वह अपने को एक प्रजातंत्रवादी, एक समाजवादी कहता है और इसमें सन्देह नहीं कि वह सचाई के साथ ऐसा करता भी है, किन्तु प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जानता है कि अन्त में मन हृदय का गुलाम है और न्याय का अर्थ सदा ही मनुष्य की इच्छाओं और दुर्दमनीय आकांक्षाओं के अनुकूल लगाया जा सकता है। जरा सा मुड़े और जवाहरलाल प्रजातंत्र के धीमे चलने वाले ढांचे को एक ओर हटाते हुए एक अधिनायक (डिक्टेटर) बन सकता है। वह तब भी प्रजातंत्र के नारे को काम में ला सकता है, किन्तु हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार फासिज्म सदा इसी भाषा पर पला है और बाद में उसे बेकार कहकर एक ओर फेंकता है। पण्डित नेहरू के यह विचार कितने सच्चे निकले हैं। यह प्रत्येक ईमानदार भारतीय जानता है।

असहिष्णुता

अपने उक्त लेख में वे पुनः लिखते हैं—जवाहरलाल एक फ़ासिस्ट नहीं हो सकता, तो भी उसमें एक अधिनायक की सभी बातें हैं—भारी लोकप्रियता, निश्चित उद्देश्य के लिए दृढ़ संकल्प-शक्ति, अभिमान, संगठन कौशल, कठोरता। जनता के प्रति प्रेम दिखाते हुए भी दूसरों के प्रति असहिष्णु वृत्ति और दुर्बल तथा अयोग्य के प्रति एक प्रकार की घृणा।' पंजाब निवासी उनके आवेश एवं असहिष्णुता से परिचित हैं। हिन्दी भाषा के समर्थकों को पांवों तले रौंदने की धमकियाँ तथा घोर अत्याचारी शासन के नेता सरदार प्रतापसिंह कैरों के समर्थन के लिए अपना बलप्रयोग करना इस के प्रमाण हैं।

क्रोधावेश

पण्डित नेहरू की स्वीकारोक्ति है—'उसके क्रोध की तेजी भली-भांति ज्ञात है और जब काबू में कर लिया जाता है तब भी होंठों की मरोड़ उसे धोखा दे जाती है। काम पूरा कराने की उसकी दुर्दमनीय इच्छा, जो उसे पसन्द न हो उसे हटा देने और नया बनाने की इच्छा कठिनाई से ही अधिक समय तक प्रजातंत्र की मन्द गति के साथ उसे रख सके। साधारण काल में वह केवल एक योग्य और सफल शासक होता किन्तु इस क्रान्तिकारी युग में सीजर का भाव सदा ही द्वार पर खड़ा है और क्या यह सम्भव नहीं कि जवाहरलाल अपने को सीजर मान ले?' यह प्रश्नचिह्न आज तक प्रत्येक भारतीय की मेधा को चुनौती है।

अपघटना से हिन्दू

पण्डित जवाहरलाल ब्राह्मण परिवार में भले ही उत्पन्न हुए हैं पर उन्हें पण्डित कहलाना पसन्द नहीं। अपने धर्म के प्रति भी उनका भाव इतना गौरवहीनता का है कि वे कहते हैं, 'मैं एक अपघटना से ही हिन्दू पैदा हुआ हूँ। हिन्दुस्तान मूलतः हिन्दुओं का ही स्थान है तथा भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति ही है। इसलिए जो दुर्भाग्य से हिन्दू हैं वह दुर्भाग्य से ही भारतीय ठहरता है। इसके मुकाबले में स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'अब तक के सारे हिन्दुओं में मैं सबसे अधिक गौरव वाला हिन्दू हूँ।'

गो-ब्राह्मण

गाय तथा ब्राह्मण हमारी संस्कृति के अनादि काल से मानबिन्दु रहे हैं। इन्हीं की रक्षा के लिए भगवान् भी अवतार लेते हैं परन्तु पण्डित नेहरू ऐसे ब्राह्मण हैं जो स्वयं गौ के विरुद्ध हैं। अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में वे लिखते हैं—'आर्य लोग गो-मांस खाते थे....महाभारत में वर्णन आता है कि सम्मानित अतिथियों को गो-मांस और बछड़े का मांस खाने को भेंट किया जाता था।' मैंने स्वयं पण्डितजी को इस बात पर चुनौती दी परन्तु कोई उत्तर नहीं प्राप्त हुआ।

जवाहरलालजी ने कभी संस्कृत नहीं पढ़ी। महाभारत के कभी दर्शन भी उन्होंने नहीं किये! महाभारत काल भगवान् कृष्ण तथा महर्षि वेदव्यास का काल था जब गऊ का पूजन होता था। महाभारत के अनुशासन पर्व के 74/4 श्लोक में भगवान् वेदव्यास स्वयं कहते हैं—'गौ को मारने वाले, उस का मांस खाने वाले तथा उस की हत्या का अनुमोदन करने वाले पुरुष, गौ के शरीर के जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक नरक में पड़े रहते हैं।

गांधी तथा नेहरू

पण्डित नेहरू ने सन् 1938 में श्री जिन्ना को पत्र में लिखा—'गो हत्या करना मुसलमानों का एक जन्मसिद्ध एवं मान्य अधिकार है। स्वतंत्र भारत में जिसकी रक्षा की जाएगी।' इसके मुकाबले गांधीजी के विचार मनन करने योग्य हैं—'गाय की रक्षा करना भारत की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ रहकर गोवध करना हिन्दुओं का खून करने के बराबर है।'

नास्तिक नेहरू

ईश्वर विश्वास भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। गांधीजी कहते थे—'यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएं तो भी शरीर का प्रत्येक टुकड़ा खड़ा होकर घोषणा करेगा कि ईश्वर है।' जहाँ ईश्वर विश्वास गांधीजी के लिए उनकी श्वास से भी अधिक अनिवार्य था वहीं श्री जवाहरलाल, जो दुर्भाग्य से हिन्दू कहलाने में गौरव मानते हैं, अपनी धर्मशून्य नास्तिकता पर भी बड़ा नाज करते हैं।

क्या प्रत्येक बौद्धिक ईमानदारी वाला भारतीय इस पर विचार करेगा???

16 नवम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन बोझ बन जायगा। हिन्दुत्व को मुझ से छीन लो तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह जाता। यदि में इस्लाम और ईसाई धर्म को प्यार करता हूँ तो अपने हिन्दुत्व के कारण ही।

—महात्मा गांधी
(द्वारा 2 मई 1933 को यरवदा जेल में जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखा)

पाश्चात्य विचारों में भारत का जो विश्वास जगा था, अब तो वह भी हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन; और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज, जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियन्त्रित कर सके।

—जवाहरलाल नेहरू

डा. राजेन्द्रप्रसाद

जिस प्रकार हिमालय जैसे पर्वतराज के गर्भ में कौन-कौन हीरक खनिज छिपे हैं अथवा भारत महोदधि रत्नाकर के तल में कौन-कौन रत्न-माणिक्य भरे हैं यह बताना सहज नहीं, उसी प्रकार हिमालय जैसी महानता एवं महोदधि जैसी अगाधता लिए हुए निरन्तर कर्मरत कर्मयोगी के महान् मस्तिष्क में कैसे-कैसे प्रतिभा के प्रभापूर्ण हीरक तथा अगाध अन्तस्तल में कैसे-कैसे भावरत्न छिपे हुए हैं इसका मूल्यांकन कोई सरल कार्य नहीं। देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसादजी का जीवन हिमालय के धवल शृंग की सात्त्विकता एवं हिन्दू महोदधि का गांभीर्य लिए हुए एक सच्चे निष्काम कर्मयोगी का जीवन्त आदर्श था।

शिक्षा का अथ फारसी से, इति अंग्रेजी से, सेवा हिन्दी माता की

ग्राम जीरादेई (छपरा मण्डल), उत्तर बिहार के एक छोटे से निर्धन कृषक परिवार में सन् 1884 में जन्मने वाले भावी राष्ट्रपति बालक राजेन्द्रप्रसाद को अपनी शिक्षा का शुभारम्भ अपने घर पर ही एक मौलवी के पास फारसी की पढ़ाई से करना पड़ा। परिस्थिति की अनोखी विडम्बना यह है कि जिस डा. राजेन्द्रप्रसाद ने बिहार विद्यापीठ की स्थापना का नेतृत्व किया, अनेकों विद्यामन्दिरों का शिलान्यास किया, देश एवं विदेश के असंख्य विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण दिए, अपनी प्रतिभा एवं सर्वोच्च विद्या द्वारा अनेकों शिक्षा-केन्द्रों का भाग्य निर्माण किया, उसी राजेन्द्रप्रसाद को अपनी शिक्षा का श्रीगणेश, ग्राम में विद्यालयाभाव तथा घर के अर्थाभाव के कारण एक मौलवी के पास फारसी पढ़कर करना पड़ा जो कागज-पत्र, कापी-पेन्सिल के अभाव में घर के पास पड़ी हुई एक पत्थर की छोटी चट्टान पर कोयले से फारसी अक्षर लिखकर पढ़ाता था। राजेन्द्र बाबू ने आठवीं कक्षा में हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया। फिर मैट्रिक में पुनः हिन्दी, संस्कृत छोड़कर फारसी ले ली ताकि वकालत के भावी व्यवसाय में कुछ सहायता मिल सके। इण्टर में भी फारसी पढ़ी। बी.ए. में ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी में लेख लिखा तथा उत्तीर्ण हुए। एम.ए., एलएल.बी., एलएल.एम., एलएल.डी. इत्यादि विधि की समूची शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी माध्यम से हुई। फिर भी विगत 50 वर्षों में भारत में जहाँ

प्रायः सभी अग्रगण्य नेताओं ने अपनी आत्मकथा केवल मात्र अंग्रेजी भाषा में ही लिखी वहीं डा. राजेन्द्रप्रसाद ही एकमात्र नेता हैं जिन्होंने अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखी, इस पर नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया, महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा 'सत्यना प्रयोगो' गुजराती में लिखी थी जिससे वह हिन्दी-अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रचारित हुई थी। डा. राजेन्द्रप्रसाद ने अपने 9 अन्य ग्रंथ भी मूलतः हिन्दी में लिखे। अंग्रेजी में उन्होंने मात्र एक ग्रन्थ लिखा, 'Divided India' ताकि अंग्रेजों को अंग्रेजी में उनके देश-विभाजन के महापाप का दिग्दर्शन कराया जा सके।

कृषि एवं कृष्टि के समन्वय

डा. राजेन्द्रप्रसाद के अन्तर में एक भारतीय कृषक की सरलता एवं सात्त्विकता झलकती थी। भगवान् वेदव्यास ने कहा है—

'**सर्वं जिह्मं मृत्युपदं, आर्जवं ब्रह्मणा पदम्।**' अर्थात्, सभी कुटिलता मृत्युपद है तथा आर्जव (ऋजुता, सरलता) ही ब्रह्मपद है।

डा. प्रसाद राष्ट्रपति भवन में भी एक भोले-भाले सरल किसान अथवा निर्लिप्त सन्त जैसा जीवन बिताते थे। उक्त भवन की भव्य अट्टालिकाएं, स्वर्ग तुल्य उद्यान, रंगीन कालीन, राजकीय सज-धज, राजसी शोभायात्राएं, चमचमाते बैण्ड-बाजे, इन्द्रतुल्य ऐश्वर्य, अन्य दर्शकों पर चाहे जो प्रभाव डालते हों, किन्तु राजेन्द्र बाबू की नैसर्गिक सरलता एवं ग्राम्य ऋजुता पर वे झीना आवरण तक नहीं डाल पाते थे।

लेखन के क्षेत्र में भी डा. राजेन्द्रप्रसाद के सरल व्यक्तित्व की छाप उनकी भाषाशैली पर पड़ी। वे सरल अकृत्रिम तथ्य को सीधी भाषा में कहना तथा लिखना जानते थे, व्यर्थ अलंकारों के बोझ से उसे बनावटी बनाना नहीं। भाषा के रूप एवं शृंगार के प्रति उनकी रुचि उतनी ही कम थी, जितनी स्वयं अपनी वेशभूषा के प्रति। उनमें ग्राम्य सरलता थी, नागरी कृत्रिमता नहीं।

जैसे कृषक कृषि द्वारा उत्तम बीजों के चयन, संवर्धन, विकास एवं संरक्षण का कार्य करता है उसी प्रकार एक संस्कृति-संस्कारक समाज में उत्तम संस्कार रूपी बीजों की खेती कर सांस्कृतिक मूल्यों का संवर्धन एवं संरक्षण करता है। इसीलिए कृषि (Agriculture) के अनुरूप मानव संस्कृति को कृष्टि (Culture) कहा जाता है। कृषि जड़ खेतों में जड़ बीजों की खेती है। कृष्टि सजीव समाज में सचेतन जीवन-मूल्यों की खेती है। कृषि से व्यक्ति को जीवनदायी आहार मिलता है, कृष्टि (संस्कृति) से समाज को शाश्वत जीवनदायी संस्कार, विचार एवं आचार मिलता है। डा. राजेन्द्रप्रसाद कृषि एवं कृष्टि के समन्वय थे। उनमें कृषक की सरलता के साथ संस्कारक की अलौकिक प्रतिभा भी थी। कृषक धरती में हल

चलाने, खाद-पानी देने, बीज बोने, घास-फूस जंगल साफ करने, बाड़ लगाने तथा खेत की रखवाली करने के पश्चात् कर्तव्य के सन्तोष को पाता है। उपज रूपी फल के लिए वह भगवान् की दया पर निर्भर रहता है। अतः कृषि निष्काम कर्मयोग की प्राथमिक पाठशाला है। कृष्टि (संस्कृति) उसी निष्काम कर्मयोग की परमावस्था है जिसमें समाज रूपी परमेश्वर की सर्वतोभावेन सेवा करके, अपने कर्म रूपी पुष्पों से परमेश्वर की पूजा करके, कर्मफलों का नैवेद्य भी उसी प्रभु के चरणों में चढ़ा दिया जाता है। राजेन्द्र बाबू ऐसे सरल, सात्त्विक, निरहंकार, निष्काम कर्मयोगी थे।

संस्कृत एवं संस्कृति

संस्कृत के महत्त्व पर डा. राजेन्द्रप्रसाद के विचार बड़े श्रद्धापूरित हैं। 'संस्कृत विद्या' पर मेरी अगाध श्रद्धा है क्योंकि इसमें ज्ञान का भण्डार है....उस भण्डार में से ढूंढ़-ढूंढ़कर कुछ ऐसी मूल्यवान वस्तुएं निकाली जा सकती हैं जिनको संसार ने अभी तक नहीं पाया है।' संस्कृत को संस्कृति की भाषा मानते हुए वे कहते हैं, 'संस्कृत का अभ्यास और पठन-पाठन क्यों प्रोत्साहित किया जाय?....क्योंकि हमारी संस्कृति और सभ्यता का स्रोत इसी से निकला है और आज तक जारी है।'

संस्कृत को सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी बताते हुए डा. राजेन्द्रप्रसाद लिखते हैं, 'इस भाषा के ज्ञान पर ही आज के यूरोपीय भाषा-विज्ञान की नींव पड़ी है। संस्कृत का अभ्यास करने पर ही उन्होंने उसमें और यूरोपीय भाषाओं में वह सम्बन्ध देखा जिससे वे संस्कृत, फारसी, लातीनी, यूनानी, स्लाव, त्यूतोनी, केलती इत्यादि भाषाओं को एक वंश की बतला सके।'

अपनी पुस्तक संस्कृत और संस्कृति में डा. राजेन्द्रप्रसाद ने संस्कृत वाङ्मय, इतिहास, कला और विज्ञान के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुत शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है।

शिक्षा का भारतीयकरण

डा. राजेन्द्रप्रसाद शिक्षा के भारतीयकरण के पूर्ण समर्थक थे। वे लिखते हैं, 'हमारी नीति है कि हम अपने बच्चों को भारतीय रखें, न कि उन्हें विदेशी बना देवें। इसलिए हमारी उच्चकोटि की शिक्षा भी मातृभाषा द्वारा ही दी जानी चाहिए।' दीक्षान्त समारोहों के भारतीयकरण के प्रबल समर्थक राजेन्द्र बाबू अपने सभी दीक्षान्त भाषण हिन्दी में देते थे तथा उनमें भारतीय जीवनमूल्यों का प्रबल प्रतिपादन करते थे। अपने एक दीक्षान्त भाषण में स्नातकों को सम्बोधन करते हुए वे कहते हैं, 'सरस्वती के इस प्रसिद्ध मन्दिर में कई वर्ष की साधना और तपस्या के उपरान्त आज आप स्नातक भाइयों ने उसका वरदान पाया है—यह वरदान, जो आपके जीवन में आपके लिये अमोघ कवच होगा, और जो होगा आपकी जीवनयात्रा का अक्षय संबल।'

काव्य-कानन के चिर वसन्त की अमर कोकिला सरोजिनी नायडू

जब तक जीवित हूं
आत्मा की यह अभिलाषा
मैं कविता कर सकूं,
एक शाश्वत चिर सुन्दर,
एक सनातन अमर पंक्ति
जो गूंजे युग-युग।
क्या आत्मा की यह चिर
पिपासा पूरी होगी ?

इन अमर पंक्तियों की गायिका भारत कोकिला सरोजिनी नायडू सचमुच भारत के काव्योद्यान की मधुवर्षिणी कोकिला है। कल ही हमने वसन्तोत्सव मनाया है। आधुनिक काल में भारतीय साहित्य को वासन्ती मधुरिमा एवं सौन्दर्य का दान देने वाली इस प्रफुल्ल सरोजिनी का प्राकट्य भी 13 फरवरी 1879 के दिन दक्षिण भारत के हैदराबाद नगर में हुआ।

सरोजिनीजी की अपनी ही एक अमर पंक्ति है—'माता का जो हाथ झूलने को झुलाता है वह सारे विश्व को हिला सकता है।' इस शाश्वत उक्ति में स्वयं उन्हीं के शैशव एवं बाल्यकाल के विकास का रहस्य छिपा हुआ है। सरोजिनी के पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय पूर्वीय बंगाल के एक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न एक उच्च विद्वान थे। वे एडिनबरा से डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त कर जर्मनी में भी विद्याध्ययन कर चुके थे। सरस्वती के उस वरद पुत्र का सारा समय विद्या विलास तथा अध्ययन, स्वाध्याय में बीतता था। कवि का हृदय तो उन्हें भी मिला था किन्तु उनकी पत्नी वरदा सुन्दरी बांग्ला भाषा की एक उच्च कोटि की कवयित्री थी। सरोजिनी के हृदय का काव्यानन्दोन्मेष मुख्यतया उनकी माता श्रीमती वरदा सुन्दरी की काव्य-प्रतिभा का ही वरदान था।

बहुत छोटी आयु में ही सरोजिनी कविता करने लगी। वे स्वयं लिखती हैं, 'एक दिन जब मेरी अवस्था 11 वर्ष की थी, मैं बीजगणित के एक प्रश्न पर बैठी खीझ रही थी। प्रश्न ठीक निकलता नहीं था। उसके बदले एक पूरी कविता मेरे मन में आ गई और मैंने उसे लिख डाला।' इस तेजस्वी बालिका ने 12 वर्ष की आयु में मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। 13 वर्ष की अवस्था में सरोजिनी ने अंग्रेजी के कवि स्काट की कविता 'Lady of the lake' से मिलती-जुलती एक 1300 पंक्तियों वाली कविता केवल 6 दिन में ही लिख डाली। उन्हीं दिनों बीमारी के बावजूद भी उस बाल कवयित्री ने 2000 पंक्तियों का एक काव्य नाटक लिख डाला तथा दो-एक वर्ष पश्चात् एक उपन्यास भी लिख डाला।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु से जब वह 16 वर्ष की नन्ही सरोजिनी इंग्लैण्ड पहुँची तो उसने वहाँ के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार एडमन्ड गास को अपनी रचनायें दिखाईं। किन्तु एडमन्ड गास के निम्नलिखित उत्तर ने सरोजिनी की जीवनधारा और भावधारा, दोनों को बदल डाला। एडमन्ड गास ने लिखा—'झूठे अंग्रेजी भावों में डूबी हुई अपनी सब रचनाओं को रद्दी की टोकरी में डाल दो। एक विचारशील भारतीय युवती से जिसने हमारी भाषा ही नहीं हमारे छन्दशास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, हम उन्हीं पाश्चात्य भावों तथा कल्पनाओं की आशा नहीं रखते। हम उससे प्राच्य भावों एवं कल्पनाओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, धर्म के उन अनादि मन्तव्यों का दिग्दर्शन करना चाहते हैं, जिनका प्राच्य देशों में उसी समय अनुभव हो चुका था जब पाश्चात्यों को स्वयं अपना ही ज्ञान नहीं था। तुम अपनी कविता में अंग्रेजी पक्षियों रोविन और लता का वर्णन छोड़ दो। इसी प्रकार हमारे फूलों, फलों, वृक्षों तथा दृश्यों और भू-देशों के वर्णन का भी सदा के लिए परित्याग कर दो, हमारे गिरजाघरों के घंटों को भूल जाओ। अपने देश और अपने प्रान्त की नदियों, पर्वतों, मन्दिरों, उद्यानों, वनस्पतियों तथा निवासियों का वर्णन करो—इनके सहज तथा प्राकृतिक भाव व्यक्त करो। भारतीयता धारण करो। पाश्चात्य कलाकारों की अनुकृति करने की चेष्टा में अपने व्यक्तित्व का नाश न कर डालो।'

ये शब्द किसी भी भावुक हृदय को परिवर्तित करने में समर्थ थे। श्री गास की इस सामयिक एवं हृदयस्पर्शी चेतावनी के प्रभाव से विदेशीयता की नकल करने वाली सरोजिनी अब अपने स्वदेश एवं स्वातंत्र्य की सुवास से आप्लावित हो उठी। अपने स्वदेश रूपी सुधावर्षी चन्द्रमा की रजत किरणों से यह जीवन्त सरोजिनी खिल उठी तथा उसके पराग से दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

अब सरोजिनी ने आत्म गौरव के गीत गाते हुए स्वर्ण देहली में प्रवेश किया। स्वर्ण देहली कविता संग्रह सन् 1905 को प्रकाशित तथा वह स्वदेश भक्ति की प्रेरणा देने वाले मि. एडमन्ड गास को ही समर्पित किया गया।

मातृभूमि की वन्दना में राष्ट्र-कोकिला गा उठी—

अन्धकार से ग्रस्त,
रुदन करती मानवता
कहती है उसको
तेरा नेतृत्व चाहिए
हे माता, उठ भारतमाता,
अब तक कोई।
मां! भावी तेरी पूजा
अर्चा करने को आकुल।

भारत के कोटि-कोटि सुतों का प्रतिनिधित्व करते हुए सरोजिनी माँ को आश्वासन देती है—

हिन्दू के पूजा फूलों से
तव किरीट है।
पारसी की पावन,
अग्नि है तेरी ज्योति
तेरी रक्षा हित मचली
तलवार यवन की।
ईसाई की सेवा तव
चरणों में अर्पित।

प्रेम एवं यौवन की इस कोकिल कण्ठी कवयित्री ने अपने यौवन को पुकार कर कहा—

हे मेरे यौवन, प्रिय संगी यौवन मेरे,
क्या तू चला जाएगा,
मुझको यहीं छोड़कर।
दीर्घकाल के साथी मेरे एक साथ हम
देश और देशान्तर में घूमे-खेले हैं
मिल कर हमने उषा का
मृदु पान किया है!
और हैं फूल एक आकाश तले मिल
चपल मित्र! मैं कल तक
लिखती भावी सपने

अब अतीत की भंगुर
सुख सपने देखूंगी।
स्थिरता का दे वचन
पुनः ओ जाने वाले,
जा तू यौवन।
झूठी प्रेम प्रतिज्ञा वाले
पर जाने से पूर्व ही
मेरे नेत्र पुटों को
एक बार ले चूम अरे
चिरसंगी यौवन!

सरोजिनी के हृदयकोष में गुम्फित काव्य पराग अपनी सम्पूर्णता में फूट कर बाहर निकलने के लिये व्याकुल हैं—

वास्तव में मैं कवि नहीं हूं!
मुझ में है कल्पना
और है अभिलाषा।
किन्तु नहीं उद्गार
कि कविता लिख पाऊं।
एक भी कविता
यदि सत्यं शिवं सुन्दरं हो
तो फिर सुख का
महामौन धारण कर लूं।।

शान्ति की प्रबल कामना में यह कोकिला भी ब्रह्मानन्द की मधु मधुर आम्रामृत मंजरी के लिए पुकार उठती है—

अन्त स्थान है दूर
और अस्पष्ट भी
किन्तु निरन्तर अपनी
ओर बुला रहा।
सारे जीवन के दिन
रात क्षणिक भर हैं
कब पाएंगे हम
निर्वाण की शान्ति सुधा?

जीवन तथा मृत्यु की लीला के रहस्य को बताने के लिए आकुल मानवात्मा की जिज्ञासा इस कला कोकिला की एक वेदना भरी कूक में फूट निकली है—

हे जीवन के दीप !
काल के होंठों ने
अकस्मात् निज श्वास से
तुझ को बुझा दिया।
जग न सकेगा पुनः
कभी क्या हे दीपक !
क्या मुझको रहना होगा
अन्धियारे में ?
हे जीवन तरु,
काल के निर्दय पैरों ने
रौंद डाला है
सूखे रहेंगे पत्ते
अब क्या सदा अरे
क्या न पुनः फूटेंगे
पल्लव फूल नए ?

सरोजिनी नायडू तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों बंगभूमि की उज्ज्वल सन्तानें, एक ही समय में साहित्य सर्जना कर रही थीं। रवि बाबू बांग्ला भाषा में तथा सरोजिनी आंग्ल भाषा में। भारत कोकिला के उपरोक्त पद्यांशों का जो पद्यानुवाद इन पंक्तियों के लेखक द्वारा बन पड़ा है सम्भवतः उसमें उस कमनीय कोकिला की रसवन्ती कला का आनन्द प्राप्त न हो सके, किन्तु उस भारत कोकिला के जन्म दिवस के उपलक्ष पर आज भारत की राष्ट्रभाषा के माध्यम से यहाँ तुच्छ भाव प्रसून ही अर्पित करते हुए मैं अपनी श्रद्धा प्रवण भावांजलि चढ़ाता हूँ।

14 फरवरी, 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

विश्व मनीषा के मणिमुकुट डा. राधाकृष्णन

धरती को भगवान् का महानतम वरदान एक क्रांतदर्शी महापुरुष के रूप में प्राप्त होता है जो अपने प्रज्ञान एवं कर्तृत्व द्वारा धरती की ही काया पलट करके उसे स्वर्णिम बना देता है।

5 सितम्बर, 1888 के दिन दक्षिण भारत की एक छोटी सी तीर्थस्थली, तिरुपति में एक धर्मभीरु ब्राह्मण परिवार में उस बालक का जन्म हुआ जिसके भाग्य में विश्वमनीषा का मणिमुकुट बनना लिखा था। लूथर मिशन हाई स्कूल, तिरुपति से मैट्रिक की परीक्षा देने के पश्चात् बालक को अपने सम्मुख प्रकाश की कोई स्पष्ट रेखा दिखाई न देती थी। पिता ने कह दिया था कि आगे की पढ़ाई असम्भव है क्योंकि न उसके पास बच्चे की किताबों के लिये पैसा है और न ही उसकी फीसों को भरने का सामर्थ्य। बालक बड़े असमंजस में पड़ा। उसने एक पड़ोसी विद्यार्थी से, जिसने एफ.ए. की परीक्षा दी थी, पूछा कि कालेज में विषय क्या लेने चाहिएं।

उस बालक ने बताया कि 'मैंने तो दर्शन का विषय लिया था, यदि आपको पसन्द हो तो आप मेरी दर्शन की पुस्तकें प्रयोग कर सकते हैं।' मैट्रिक परीक्षा के बाद की दो मास की छुट्टियों में बालक राधाकृष्णन ने वह सारी पुस्तकें पढ़ लीं, उसे बड़ी रुचिकर लगीं। इस प्रकार उस बालक ने केवल इसीलिए कालेज में दर्शन का विषय ले लिया कि उसके पास किसी अन्य विषय की पुस्तकें खरीदने के लिए पैसा ही नहीं था। और इस प्रकार आर्थिक संकट से बाध्य होकर दर्शन विषय लेने वाले बालक में से ही हमें प्राप्त हुआ युग का महानतम दार्शनिक-महामनीषी, डाक्टर राधाकृष्णन।

शंका का अंकुश

जिज्ञासा की गोदी में ही दर्शन का जन्म होता है और जिज्ञासा को तीव्रतम बनाने के लिए शंका का चुभन देने वाला तीक्ष्ण अंकुश आवश्यक है। राधाकृष्णन की प्रायः समूची शिक्षा ईसाई शिक्षा संस्थाओं में हुई। क्रिश्चियन कालेज मद्रास से उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उस समय के ईसाई धर्मप्रचारक हिन्दू धर्म एवं भारतीय दर्शन पर खुल्लमखुल्ला कीचड़ उछालते रहते थे। स्कूल-कालेज के ईसाई प्रचार ने भी उनकी

धार्मिक श्रद्धा को ठेस पहुँचाई। श्रद्धालु राधाकृष्णन हिन्दुत्व के विषय में शंकालु होने लगे। अपनी आत्मकथा में वे स्वयं लिखते हैं, 'ईसाई धर्म-प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है। वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहाई देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएं करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के सब स्तम्भों को हिला डाला, जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

हिन्दुत्व के गौरव सर्वस्व विवेकानन्द

ईसाईयों द्वारा हिन्दू धर्म की भर्त्सना युवक राधाकृष्णन के स्वाभिमान को चुनौती थी। उन्हीं की तरुणावस्था में भारतीयों के वक्षस्थल विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के पावन स्मरण से फूल जाते थे। उन्हीं विवेकानन्द के सन्देश से राधाकृष्णन को जीवन की ठीक दिशा प्राप्त हुई। वे स्वयं लिखते हैं, 'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्‌गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कालेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मैं यह बात मानने को तैयार नहीं था कि जिन हिन्दू ऋषियों और उपदेष्टाओं ने भारत की प्राचीन संस्कृति को हमारे लिए जुटा रखा है और जिनकी साधना का परिणाम हमारा समस्त ज्ञान है, स्वयं वे ही अधार्मिक व्यक्ति थे।'

वे पुनः लिखते हैं, 'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित हो कर मैं हिन्दुत्व का विधिवत अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

गीता ने जीवन पलट दिया

प्रोफेसर राधाकृष्णन ने पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन करते हुए एक ऐसी घटना पढ़ी जिसने उनके जीवन की दिशा को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मोड़ दे दिया। इसी शताब्दी में ही अमरीका के एक महान् सन्त इमर्सन इंग्लैण्ड के सन्त कवि कार्लायल से मिलने के लिए यूरोप में गये। यूरोप में जब इन दोनों सन्तों का मिलन हुआ तो कार्लायल ने इमर्सन से कहा कि 'तुम समृद्धशाली डालर के देश से आए हो— बताओ, मेरे लिए क्या लाए हो?' इस पर इमर्सन ने रोकर कहा कि 'हम तो कंगाल हैं, हमारे पास है ही क्या, हां! मेरे पास विश्व की एक परम मूल्यवान वस्तु है। मेरे गुरु थोरो प्रतिदिन प्रातःकाल इसी भगवद्‌गीता का पाठ करते थे उन्हीं के सात्त्विक अश्रुओं से भीगी हुई यह गीता ही मैं आपको भेंट करता हूँ।' इस पर गद्‌गद होकर कार्लायल ने भी इमर्सन को गीता भेंट की। राधाकृष्ण ने जब यह घटना पढ़ी कि

पश्चिम के दो महान् मनीषी आपस में मिलने पर गीता ही भेंट करते हैं तो उन्होंने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को उठाकर ताक पर रख दिया और भगवद्गीता के प्रथम श्लोक से प्रारम्भ किया, '**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवाः।**'

धर्म की पुकार

इस धर्महीन भौतिकवाद एवं कोरे नास्तिकता के युग में डा. राधाकृष्णन धर्म की वाणी बनकर अवतरित हुए। इस युग में जब मार्क्स ने कहा था कि धर्म जनसाधारण को राजनैतिक बेहोशी दिलाने वाली अफीम है, इसी युग में राधाकृष्ण ने विश्व भर में घूम-फिर कर धर्म को मानवता के त्राण का एकमात्र मन्त्र बताया। उन्होंने युग को आह्वान करते हुए कहा, ''भौतिक ज्ञान से धर्म की कमी पूरी नहीं हो सकती। इलेक्ट्रोन और प्रोटोन चरम सत्य के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकते।' वे पुनः कहते हैं कि 'बिना धर्म के मनुष्य बेलगाम घोड़े जैसा है, मनुष्य को नरपशु से बदलकर दिव्य पुरुष बनना है।'

आत्मा का संगीत

राधाकृष्णन की आत्मा में वही दिव्य संगीत ध्वनित होता है जो तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की आत्मा में सुनाई देता है और इस आधिभौतिक कोलाहल से भरे हुए युग में भी वे आत्मा का स्वर बन कर विश्व के समक्ष आए! मानव को सम्बोधन कर के वे कहते हैं, 'हे मनुष्य! तू केवल वस्तुओं में से एक वस्तु नहीं है, चीजों में से एक चीज नहीं है, तू अमर आत्मा है, संसार का स्वामी है, अपने आपको पहचान!' वे पुनः कहते हैं, 'यदि हम यह मान लें कि विश्व का मूल ईश्वर में नहीं है, तो यह संसार निरर्थकताओं का कारागार बन जाएगा।' आत्मा के धर्म का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं, 'सच्चे धर्म का लक्ष्य यह है कि उसमें कर्ता कर्म करता हुआ भी कर्म से भिन्न होता है। उसका लक्ष्य आत्मा की शक्ति द्वारा जीवन को नियन्त्रित करना है।'

शान्ति के देवदूत

राधाकृष्णन सकल मानवता के लिए शान्ति के दिव्य देवदूत बनकर आए हैं। मानव को चेतावनी देते हुए वे कहते हैं—'एक अन्य युद्ध, लड़ने वालों तथा देखने वालों, दोनों के लिए आत्मघातक सिद्ध होगा।' वे पुनः कहते हैं, 'जैसे महायुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय गलतफहमियों की चरम सीमा है, शान्ति अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का सुफल है। हिंसा का मार्ग अपनाना धर्म से तथा झगड़ों को शान्ति से सुलझाने के पथ से, कायरतापूर्वक भाग जाना है।'

विश्वास का द्रष्टा

प्राचीन ऋषियों के समान राधाकृष्णन ने भी उद्घोष किया है—

वसुधैव कुटुम्बकम्—सारी वसुधा ही परिवार है।

वह पुनः कहते हैं, 'मम देशो भुवनत्रयम्—तीनों भुवन में मेरा ही देश है। श्री दिनकर के शब्दों में, विश्ववाद की जो भावना गांधीजी के कर्मयोग, अरविन्द की साधना और रवीन्द्र के काव्य में प्रतिफलित हुई, राधाकृष्णन ने उसका सम्पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया है। और इस दर्शन की रचना करने में उन्हें गांधी, रवीन्द्र और अरविन्द की अनुभूतियों से सहायता भी मिली है।' इस प्रकार आज के संसार के कोलाहल में उन्होंने सांस्कृतिक समन्वय की माधुरी का संचार किया है।

मानवता के नाम उनका सन्देश है, 'सभी मनुष्यों की मनोदशाएं और रीतियाँ अब एक ही मानव चेतना के अंग हैं। मनुष्य का दर्शक मनुष्य है। क्षितिज पर एक नये मानवतावाद का उदय हो चुका है। इस बार वह भेदभाव से ऊपर उठकर समग्र मानव-जाति का आलिंगन करेगा।' शान्ति के लिए भी विश्ववाद दर्शन के इस द्रष्टा ने मार्ग दिखाया है, 'घृणा तथा हिंसा से क्षत-विक्षत हुई इस धरती पर अब यह नारा गुंजाना है—'एक धरती पर एक मानव परिवार है।'

प्रकृति और पुरुष

प्रकृति के पदार्थमय रूप की पूजा करने वाले मनुष्य ने परम पुरुष को भुला दिया है। डा. राधाकृष्णन की चेतावनी है, 'जिन्दगी ऐसे सरकस का रूप ले रही है। जिसका न कोई ढांचा दिखाई देता है न कोई लय और न कोई ताल। मनुष्य के भीतर बसने वाले ईश्वरीय रूप की उपेक्षा करने से आदमी बीमार हो गया है, उसकी आत्मा रुग्ण हो गई है।'

प्रकृति इतनी पालतू तो बनाई नहीं जा सकती कि वह पग-पग पर मनुष्य की आज्ञा में चले। जब तक पूर्णता के दर्शन नहीं होते—जब तक सनातन की झांकी नहीं मिलती है तब तक मन की शान्ति बहुत दूर की आशा रहेगी, सुरक्षा की भावना सुखों की जननी है और यह भावना मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय पाने से आने वाली नहीं है। इसके लिए हमें वस्तुओं पर नहीं स्वयं अपने आप पर स्वामित्व पाना होगा।'

मानवता का मन्दिर—भारत

भौतिकवाद की चकाचौंध से अंधे हुए पश्चिम को डा. राधाकृष्णन ने चेताते हुए कहा, 'यह सच है कि तुम लोगों ने आकाश पर पक्षियों के समान उड़ना तथा जल में मछलियों के समान तैरना सीख लिया है, किन्तु धरती पर एक सच्चे मानव के समान चलना तुमने अभी तक नहीं सीखा है। वह तुम्हें भारत से सीखना होगा।'

5 सितम्बर, 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

यशस्वी उद्योगी, राष्ट्र कर्मयोगी घनश्यामदास बिड़ला

मेरा तो मेरे साथ राख हो जायगा
दूसरों का दिया हुआ, शायद रह जायगा।
न भी रहे तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं
आत्मा अर्थात् मैं पर कोई आघात नहीं।
भूख-विवश देह की भोग में भक्ति है
भोजन, पानी पर टिकी देह की शक्ति है,
भोग्य वस्तु, व्यक्ति से बढ़ती अनुरक्ति है
इसी से जनमती जगत्-आसक्ति है
किन्तु जगदीश्वर की अमानत वह सारी निधि
जगत् के जीव कल्याण हेतु अर्पित कर
मुझे लीन होना है उसी जगदीश्वर में
जहां चिर शान्ति है और अनासक्ति है।

अनासक्त भाव से चिर शान्ति की गोद में

लन्दन में 11 जून को अपने महाप्रयाण से कुछ समय पूर्व 90 वर्षीय स्व. बाबू घनश्यामदास बिड़ला ने एक पारिवारिक, अनौपचारिक विचार गोष्ठी में अपने यह विचार व्यक्त किये थे जिनमें उनके मृत्यु दर्शन एवं महाप्रयाण के पूर्वाभास का भाव झलकता है। ऊपर की पंक्तियों में उनके विचार का काव्य रूपान्तर है।

हिन्दी के वर्चस्वी कवि-लेखक श्री वियोगीहरि जो 50 वर्षों से श्री घनश्यामदास बिड़ला के सहयोगी एवं स्नेहभाजन रहे हैं, लिखते हैं, 'देखा था कि इधर दो-तीन वर्षों से वह 'कूच' करने की तैयारी में रहते थे। कहा करते थे कि सामान यूं थोड़ा है, फिर भी उसे पैक कर रहा हूँ।' तात्पर्य था सामान उन सब सद्विचारों और सुकृतों का जो उनके सहज बन पड़े थे।....दीखता था कि ऐहिक

कर्मों में वे आकंठ डूबे हुए हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं। अनासक्ति की ओर बढ़ने का उनका यथाशक्ति प्रयास रहता था।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी गीता का सार संदेश अनासक्ति योग ही मानते थे उनसे 32 वर्ष लम्बा, उनके स्वर्गवास पर्यन्त, स्नेह सहयोग सम्बन्ध रखने वाले श्री घनश्यामदास बिड़ला ने बापू के गीता तत्त्व को मानो जीवन में साकार करने में ही जीवन भर साधना की थी। एक लंगोटीधारी की अनासक्ति की अपेक्षा एक कोटिपति की अनासक्ति कुछ विशेष महत्त्व रखती है।

बिड़लाजी लिखते हैं—'संसार यात्रा के लिये हर प्राणी एक कार्य लेकर आता है। उस कार्य के सिद्ध होने पर वह संसार से विदा हो जाता है क्योंकि तब उसके जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।' बिड़लाजी भी नब्बे वर्ष तक स्वस्थ सुफल एवं यशस्वी जीवन जीने के पश्चात्, लगभग 77 वर्ष के व्यवसाय-उद्योग के गौरवशाली कीर्तिमान के पश्चात् शिक्षा, साहित्य, धर्म, दर्शन, संगीत, कथा, विज्ञान प्रौद्योगिकी, अध्यात्म सभी में अपना समुचित योगदान देने के पश्चात् संसार से निर्लिप्त भाव से विदा हो गये। उनके महान् जीवन का कार्य पूर्ण हो गया।

रंक से राजा, क्षत्रिय से वैश्य, बेहड़ला से बिड़ला

देश के सबसे बड़े धनपति बिड़लाजी को न अपनी निर्धनता का इतिहास कभी भूला था और न ही कोटिपति-अरबपति होने का अहंकार उन्हें धन मदांध, भोगी-विलासी या अत्याचारी बना सका था। नवलगढ़ राजस्थान के एक प्रतिहार (पंवार) वंश के क्षत्रिय वीर का नाम बेहड़सिंह था। कालांतर में वही नाम राजस्थानी उच्चारण परिपाटी में बेहड़ा, बहिड़ा, बेहड़ला, बिड़ला और अंग्रेजी उच्चारण लेखन में बिरला बन गया। बौद्ध एवं वैष्णव प्रभाव से शिकार वृत्ति त्यागकर अहिंसा का व्रत लेने तथा शस्त्रकर्म त्यागकर व्यवसाय करने के फलस्वरूप बिड़ला परिवार क्षत्रिय से वैश्य माना जाने लगा।

राजा बलदेवदास बिड़ला से चार पीढ़ी पूर्व उनके वृद्ध प्रपितामह भूधरमल बिड़ला सपरिवार नवलगढ़ राज्य के बुधौली ग्राम से शेखावाटी राज्य के पिलानी गांव में आकर बस गये। उनके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र उदयराम बिड़ला के आगे 3 पुत्र हुए—शोभाराम, रामधनदास एवं चुन्नीलाल। शोभाराम बिड़ला (श्री घनश्यामदास बिड़ला के परदादा) मात्र 10 रुपये मासिक वेतन पर एक साधारण दुकान में प्रबन्धक थे। बाबू घनश्यामदास बिड़ला स्वयं लिखते हैं—'मेरे प्रपितामह 10 रुपये मासिक के मामूली वेतन पर एक व्यापारिक प्रतिष्ठान में प्रबन्धक थे। उनके न रहने पर पितामह (श्री शिवनारायण बिड़ला) ने 18 वर्ष की वय में अपना निजी कारोबार शुरू करने का निर्णय किया और भाग्य की तलाश में बंबई गये। बाद में मेरे पिता (राजा बलदेवदास बिड़ला) ने इस कारोबार को फैलाया और जब मेरा जन्म हुआ तो हमारा

परिवार खुशहाल परिवार था, जिसका 35 वर्ष से जमा हुआ व्यवसाय था। मैंने अपनी तथाकथित पढ़ाई पूरी की ही थी कि मुझे भी पारिवारिक धंधे में लग जाने को कहा गया और 12 वर्ष की वय में मैं उसमें कूद पड़ा।'

बिड़लाजी को 10 रुपया मासिक वेतन पाने वाले परदादा की कंगाली का तथ्य कथन करने में कोई संकोच या हीनभावना भी नहीं थी तथा स्वयं देश के सबसे धनी प्रतिष्ठान का स्वामी बन जाने का कोई अभिमान भी नहीं था। यह मानसिक सन्तुलन एवं अनासक्ति गीता, उपनिषद् के स्वाध्याय तथा मालवीयजी एवं गांधीजी के सत्संग का ही सुफल था।

धनकुबेर से कल्याणनिधि न्यासी

भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं गांधीजी की शिक्षा के अनुसार बिड़लाजी सब धन को समाज या परमेश्वर का मानकर स्वयं को मात्र न्यासी (ट्रस्टी) मानते थे। वह कहा करते थे—

'ठीक है पैसा कमाओ पर ध्यान रखो, वह साथ जाने वाला नहीं है, लोकहित के कामों में पैसे का सदुपयोग करो।'

बिड़लाजी की स्कूली शिक्षा तो मात्र 12 वर्ष तक, ग्रामीण बहीखाते लिखने के स्तर तक ही हुई किन्तु उन्होंने अपने परिश्रम, स्वाध्याय एवं अध्यवसाय द्वारा विश्व के खुले हुए विश्वविद्यालय का प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया था। वे साहित्य, संगीत, विज्ञान, प्रविधि, राजनीति, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं अध्यात्म के चलते-फिरते पुस्तकालय ही थे। 60 वर्ष की अवस्था में वह रुचिपूर्वक फ्रेंच भाषा सीख रहे थे। जीवनभर वे प्रातःकाल की सैर के समय एक विद्वान को साथ लेकर घूमते थे। रात्रि-शयन से पूर्व नियमित रूप से कथा-पुराण सुनते थे। इस प्रकार वे बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा मंडित महापुरुष बन गये थे। बिड़लाजी के व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति, कर्म का समन्वय होते हुए भी भक्ति-भागीरथी का स्वर सबसे मुखर था। वह तुलसीदास के पद एवं गीता के भक्ति योग के श्लोक सस्वर गाते हुए अश्रुपुलकित हो जाते थे। श्री रतनलाल जोशी के शब्दों में वह भक्ति के अमृत को वर्ण, आश्रम, जाति, उपजाति की सीमाओं से मुक्त कर मेघजल की भांति सर्वसाधारण में बांटने के लिए धरती पर उतरे थे। भक्ति शब्द भज धातु से बना है जिसका अर्थ ही है सेवा। अतः बिड़लाजी भक्ति का रूपान्तर 'सर्वभूत हित' के अर्थ में करते थे। गीता में आदर्श भक्तों को **सर्वभूतहितेरताः** कहा गया है।

मर्यादा मण्डित महामानव

बाबू घनश्यामदास बिड़ला का जन्म श्री रामनवमी के पावन दिवस पर सन् 1894 में राजस्थान के पिलानी गांव में हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि राम

भक्ति एवं श्रीराम की मर्यादा का वरदान उन्हें जन्मजात ही प्राप्त हुआ था। उनके अपने शब्द हैं, 'महान् व्यक्ति न गली-गली में पैदा होते हैं न हर सदी में जन्म लेते हैं।' उन्हें इस बात का दुःख था कि इतिहास के कुछ महान् कहलाने वाले प्रसिद्ध पुरुष भी चरित्र से दुर्बल थे। वह लिखते हैं, 'चर्चिल एक महान् व्यक्ति था। मेरा भी उनसे काफी सम्पर्क था।....पर चर्चिल की दूसरी शक्ल भी थी। लार्ड मोरेन चर्चिल का अपना खास चिकित्सक था।....इसलिए उसके दोषों को भी वह जानता था। उसने चर्चिल के दोषों का भी विवरण दिया।' वे पुनः लिखते हैं, 'रूजवेल्ट भी एक महान् व्यक्ति था। पर उसके चरित्र लेखक ने यह भी बताया कि रूजवेल्ट विवाहित होने पर भी एक अन्य महिला से सांठ-गांठ रखता था। हमारी भारतीय संस्कृति के मापदंड से तो वह व्यभिचारी पुरुष था।'

रूसो फ्रांस का एक उत्कृष्ट विचारक था। सारे 'कांफेशन्स' में उसने अपने व्यभिचारों का एक नंगा चित्र जनता के सामने रखा है।....ऐसा भी कथन है कि उसकी मानसिक विक्षिप्तता ने उसे इस जंजाल को लिखने के लिए प्रेरित किया। किसी ने इसे धूर्त और लुच्चा भी बताया है। संसार में अनेक शक्तिशाली नेता एवं वैभवशाली व्यवसायी हुए किन्तु कुछ बिरले ही बिड़लाजी के समान चरित्र के धनी भी रह सके। सत्ता का मद एवं धन का मद, मनुष्य को प्रायः कांचन-कामिनी की माया में बांध लेता है।

बिड़लाजी को भक्ति एवं नैतिकता के संस्कार पैतृक परम्परा से भी मिले थे। वह लिखते हैं, 'मेरे बाबा और पिताजी अतिशय सामान्य लेकिन ईश्वर भक्त थे। उनका जीवन बहुत कठोर था। उन्हीं की आज्ञा से मुझे भी प्रातः 5 बजे ही उठना पड़ता था। मेरे पिताजी बहुत जोर देते थे कि मैं उनके साथ पूजा किया करूं। इस नियम से मैं बच नहीं सका, रोज पूजा करता था। धीरे-धीरे ईश्वर में मेरा विश्वास गहरा होता गया। ईश-प्रार्थना में मैंने अपने आप को बहुत घने रूप में जोड़ा, पर उससे भी अधिक मेरा विश्वास कर्म के प्रति भी बना। मैंने एक फार्मूला (सूत्र) बनाया—'ईश्वर के नाम पर कर्म, होंठों पर उनका नाम और हृदय में उन्हीं के लिए सच्चा प्यार।'

गांधीजी के निम्न वचन को अपनी पुस्तक 'डायरी के पन्ने' में लिखकर बिड़लाजी ने अपने हृदय पटल पर लिख लिया था, 'मुझे रोटी न मिले तो व्याकुल नहीं होता, परन्तु प्रार्थना के लिए तो पागल हो जाऊंगा।'

राजा बलदेवदास बिड़ला के चारों पुत्र चरित्रवान थे। उनके तप से ही बिड़ला बन्धु संस्थान बना तथा उन्नति में आकाश को चूम लिया। जनवरी 1965 में जब बाबू युगलकिशोर बिड़लाजी के तार संदेश से मैं गोहाटी से कलकता बिड़ला भवन आया तो श्री आदित्य बिड़ला के विवाह प्रसंग पर चारों भाइयों के दर्शन हुए—

श्री युगलकिशोर बिड़ला, श्री रामेश्वरदास बिड़ला, श्री घनश्यामदास बिड़ला एवं श्री ब्रजमोहन बिड़ला। आज चारों भाई स्वर्गवासी हो चुके हैं तथा देश के इतिहास में प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

महापुरुषों की छाया में

सेठ घनश्यामदास बिड़ला एक स्वाधीनता सेनानी एवं अध्यात्म साधक के रूप में गांधीजी, डा. राजेन्द्रप्रसादजी, मालवीयजी, पं. नेहरू, श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार, स्वामी अखंडानन्द जी सरस्वती, स्वामी चिन्मयानन्दजी, पं.रामकिंकर उपाध्यायजी आदि के निकट संपर्क में आए। बिड़लाजी लिखते हैं—गांधीजी से मेरा पचीस साल (पुस्तक लिखने तक 25 वर्ष, गांधी निर्वाण तक 32 वर्ष) का संसर्ग रहा है। मैंने अत्यन्त निकट से, सूक्ष्मदर्शक यंत्र की भांति उनका अध्ययन किया है। समालोचक होकर छिद्रान्वेषण किया है। पर मैंने उन्हें कभी सोते (विवेकहीन) नहीं पाया। इस पुस्तक (बापू) के विषय में स्वयं गांधीजी ने लिखा, 'बापू पुस्तक की पूरी भाषा मधुर है। कई जगह दलील की पुनरुक्ति हो गई है। उससे भाषा के प्रवाह में कोई क्षति नहीं आती।' इस पुस्तक के आदिवचन में श्री महादेव भाई देसाई ने लिखा है, 'सारी पुस्तक बिड़लाजी की तलस्पर्शी परीक्षण शक्ति का सुन्दर नमूना है।'

स्वाधीनता आन्दोलन के विषय में वह लिखते हैं—'धार्मिक विप्लव यहाँ अनेक हुए हैं, पर राजनीति का जामा पहनकर धर्म किस तरह अपनी सत्ता जमाता है, वह देश के लिए एक नया ही अनुभव है।'

आधुनिक युग के भामाशाह

'श्री बिड़लाजी ने प्रचुर मात्रा में धन कमाया और प्रत्येक अच्छे कार्य के लिए प्रचुर मात्रा में उदारतापूर्वक दान भी किया।' डा. राजेन्द्रप्रसाद के इन शब्दों में एक महान् सत्य का कथन है। उनका दिल्ली का बिड़ला भवन स्वाधीनता सेनानियों का अघोषित संसदभवन, नेताओं का विश्राम स्थल, गांधीजी का कर्मस्थल एवं निर्वाण स्थल तथा बाद में राष्ट्रीय स्मारक बन गया। स्वाधीनता यज्ञ में उन्होंने गांधीजी को कोरी चेकबुक दे रखी थी। देश के दोनों नोबेल पुरस्कार विजेताओं विश्वविश्रुत वैज्ञानिक श्री सी.बी.रमन एवं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों को बिड़लाजी ने समुचित सहयोग दिया। श्री सी.बी. रमन ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने से पूर्व श्री घनश्यामदास बिड़लाजी को पत्र लिखा, 'यदि आप एक विशेष उपकरण खरीदने हेतु मुझे 22 हजार रुपया दे दें तो सम्भवतः मैं नोबेल पुरस्कार जीत सकता हूँ।' श्री बिड़लाजी ने तुरंत उन्हें 22 हजार रुपये का चेक भेज दिया। टैगोरजी के शान्ति निकेतन हेतु भी उन्होंने लाखों रुपया दान किया। भारतीय विद्या भवन मुम्बई, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इत्यादि अनेक संस्थाओं को उन्होंने प्रचुर दान दिया। लन्दन में एक विशाल लक्ष्मीनारायण मन्दिर बनवा रहे थे।

शिक्षा सेवा एवं साहित्य सेवा

बिड़लाजी ने अपने पैतृक ग्राम पिलानी में मरुभूमि के भीतर एक ऐसी हरीतिमा पूरित शिक्षा की फुलवारी लगा दी, जो विश्वविद्यालय के स्तर तक विकसित होकर देश की मूर्धन्य शिक्षा संस्था बन गई है। वहाँ के सरस्वती मन्दिर की तुलना का देवालय देश भर में अन्यत्र कहीं नहीं होगा। उन्होंने सस्ता साहित्य मंडल की स्थापना की। बिड़लाजी ने नागरी प्रचारिणी सभा एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन हेतु भरपूर आर्थिक सहयोग दिया। सन् 1924 में सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के रूप में उन्होंने भाषण किया। 'अगर हमें हिन्दी का भंडार भरना है और इसे भाषाओं की चोटी पर पहुँचाना है तो हमें प्रान्तीय भाषाओं से बहुत कुछ लेना होगा।....हर प्रकार की कृत्रिमता से हमें अपनी भाषा को बचाना चाहिए।'

मुझसे सब अच्छे

अपने निबन्ध संग्रह 'मुझसे सब अच्छे' में बिड़लाजी के निर्मल विनयी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। 'मैंने हवा को कहा—तुम संसार का इतना उपकार करती हो तो अपनी थोड़ी सी खबर अखबारों में बढ़ा-चढ़ाकर छाप दिया करो।'' हवा ने कहा—'मेरा अखबार है मेरा ईश्वर का हृदय। निस्वार्थ भाव से प्राणी मात्र की सेवा करना यही मेरा धर्म है।' इसे पढ़कर गांधीजी ने लिखा, 'तुम साधु बनोगे और साधु ही रहोगे।' उस आजीवन साधनारत साधु को नमनांजलियाँ। उस युग के हिरण्यदीप को श्रद्धांजलियाँ।

6 जुलाई, 1983
'रांची एक्सप्रेस' में प्रकाशित

साधु स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी

विश्व भर के जितने भी राजाओं, राजकुमारों, मन्त्रियों, राजनीतिज्ञों एवं दार्शनिकों के मैंने अभी तक दर्शन किये हैं या उनका परिचय प्राप्त किया है, उनमें से छः ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें मैं बिना किसी संकोच के 'महापुरुष' के विशेषण से विभूषित कर सकता हूँ। उनमें से दो की जीवनलीला पूर्ण हो चुकी है। शेष चार महान् जीवित विभूतियों में से एक साधु वास्वानीजी हैं। इन शब्दों में यूरोप के प्रसिद्ध देश आस्ट्रिया के प्रख्यात विद्वान डाक्टर बीजल ने भारत के एक महान् जीवित संत, पूज्य साधु स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानीजी को हृदयहारी श्रद्धांजलि समर्पित की।

पूज्य वास्वानीजी का जन्म 25 नवम्बर, 1879 में सिन्धु प्रदेश के हैदराबाद नगर में हुआ। सिन्धु हमारे समूचे राष्ट्र को उसका प्रख्यात हिन्दू नाम प्रदान करने का गौरव रखता है। जिस सिन्धु प्रदेश में कभी वेदों की ऋचायें गूंजती थी। वहाँ बाद में भी अनेक संत-महात्मा, फकीर-दरवेश और सूफी फकीर पैदा हुए। श्री वास्वानी का शिक्षा का जीवन बड़ा तेजस्वी था। वास्वानीजी में बचपन से ही संतों के पावित्र्य एवं चारित्र्य के लक्षण दृष्टिगोचर होते थे। वे एकान्त प्रेमी थे तथा अपना अधिक समय चिन्तन में ही बिताया करते थे। भोजन करते समय कई बार वे किसी आते-जाते फकीर की आवाज सुन लेते तो तुरंत अपना भोजन उसके साथ बांटने के लिए दौड़ पड़ते। स्कूल में ही उन्होंने अपने सहपाठियों की छोटी-सी बाल मण्डली बना ली थी जो सभी प्रतिदिन कुछ पैसे बचाते रहते थे। उन पैसों से आटा खरीद कर उसकी रोटियाँ बनाकर वास्वानीजी अपनी मित्रमण्डली सहित मार्ग में बैठे हुए लूले, अन्धे, अपाहिज लोगों को बांटने जाते।

रात्रि के समय वह तेजस्वी बालक स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी, घर की छत पर बैठ जाता और घण्टों तक चन्द्र और तारकों को निर्निमेष नयनों से निहारता रहता। एक बार वास्वानीजी ने इसी प्रकार रात्रि को चन्द्रमा की चन्द्रिका में बैठे हुए एक श्वेत रंग वाली दिव्य विभूति को गगनमण्डल में देखा जिसकी लम्बी और चांदी जैसी श्वेत दाढ़ी वायु में लहरा रही थी। उस विभूति ने वास्वानीजी को

पुकारा और वास्वानीजी ने प्रत्युत्तर दिया। इसके पश्चात् वास्वानीजी अनन्त मौन में ऐसे खो गए कि उन्हें कुछ भी होश न रहा। यह अद्भुत दृष्टि वास्वानीजी ने तब प्राप्त की जब वे केवल 8 वर्ष के अबोध बालक थे। तब से अब तक, वे कहते हैं कि कोई अज्ञात शक्ति निरन्तर उनका पथप्रदर्शन और रक्षण कर रही है।

कालेज में वास्वानीजी के सहपाठी और अध्यापक दोनों उनकी प्रखर बुद्धि एवं पठित जीवन से बड़े प्रभावित थे। एक बार कुछ विद्यार्थी शरारत में, उन्हें सैर के बहाने, एक सुन्दर नर्तकी के घर ले गए तथा उन्हें वहाँ बिठा कर स्वयं चम्पत हो गए। वास्वानीजी के भोले सौन्दर्य को देखकर उस वेश्या की कामाग्नि और प्रदीप्त हो उठी। वह उस चरित्रवान युवक के अति निकट बैठ गई जिससे वह अपने इत्र लगे हुए वस्त्रों की महक से वास्वानीजी को आकर्षित कर सके, किन्तु वास्वानी एक मूर्ति के समान स्थिर बैठे रहे। वेश्या ने आसक्ति की वाणी में कहा : क्या आप मेरे अन्तर भवन में नहीं आएंगे? वास्वानीजी ने कहा—मैं पहले से ही अन्तर्भवन में हूँ। वेश्या ने अपने गात्रों को नग्न कर के कहा-क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ? वास्वानीजी ने अर्ध-निमीलित नेत्रों से कहा—'प्यारी बहन! जिस सौन्दर्य को तुम बार-बार दर्पण में देखकर दर्पित होती रहती हो वह हाड़ और मांस का सौन्दर्य पल भर में नष्ट हो जाने वाला है। मांस केवल मांस को ही अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, मांस सदा मांस के लिए ही आहार बन जाता है और काम की अग्नि में भस्म हो जाता है। किन्तु एक ऐसा सौन्दर्य भी है जो कभी म्लान नहीं होता, यह तुम्हारे भीतर 'आत्मा का सौन्दर्य' है। उसको देखो तब तक जब तक कि तुम्हारी सारी वासनाएं जल न जाए और तुम्हारा शरीर आत्मा का दिव्य मन्दिर न बन जाए।' वह वेश्या इन दिव्य वचनों से अभिभूत हो गई। अपने बालसूर्य के समान चमकते हुए नेत्रों से वास्वानीजी ने कहा, 'आओ बहन, हम दोनों प्रभु का पावन नाम गाएं।' दोनों ने प्रभु का कीर्तन प्रारम्भ किया। इतने में शरारती मित्र पुनः कमरे में प्रविष्ट हुए किन्तु वास्वानीजी के गंगा जैसे पावन जीवन को देखकर वे बड़े लज्जित हुए तथा उस सन्त प्रकृति सहपाठी से की हुई उस शरारत पर बड़े पछताए।

प्रारम्भ से ही वास्वानीजी के भीतर एक फकीर या साधु बनने की हृदयस्थ लालसा पनप रही थी। जब श्री स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी ने एम.ए. की परीक्षा गौरव के साथ पास की तो वे माता से साधु बनने के लिए आज्ञा एवं आशीर्वाद मांगने आए। माँ की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अनेक वर्षों तक उस महान् देवी ने परिश्रम करके, तप करके, स्वयं भूखा रहकर भी अपने बच्चे को ऊँची शिक्षा दिलवाई थी। उसका एकमात्र आशा का तारक स्थाणुदेव ही था, वह भी उसे बुढ़ापे में त्याग कर साधु बनना चाहता था! माता ने बच्चे की शिक्षा के लिए धन का बड़ा ऋण भी लिया हुआ था। अब वह कौन चुकाए? माँ ने अश्रु

भरे नेत्रों से पुत्र को कहा—'मेरे बेटे! दुनिया में जाओ और महापुरुष बनो। जाओ और धन कमा कर लाओ, मुझे ऋण चुकाना है।' उस तेजस्वी पुत्र के नेत्र भी गीले हो गए।

एक समय था जब तरुण वास्वानी अपने कमरे में बैठे रात्रि को देर तक पढ़ते थे तथा प्रातःकाल के पंछी अपने मनोहर गीत गा-गा कर उन्हें मुक्तगगन में विहार करने का सन्देश देते । वे पुण्यसलिला सिन्धु नदी के तट पर एकान्त में बैठ जाते तथा गगन के तारों, वन की कोयलों एवं सिन्धु की अजस्रधारा के सम्मुख प्रतिज्ञा करते कि जीवन को उस अनन्त के चरणों पर प्रेमोपहार के रूप में चढ़ा दूंगा, जिसके प्रकाश से तारे चमकते हैं, जिसके गीत कोकिल गाते हैं तथा जिसकी अनन्त महिमा के समान कलकल निनाद करती हुई अनन्त वाहिनी सिन्धु बही जा रही है।

किन्तु उस महान् एवं तपस्वी माता का दुःख भी वास्वानीजी से देखा न गया। वास्वानीजी मेट्रोपालिटन कालेज कलकत्ता में (जो बाद में विद्यासागर कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ) इतिहास तथा अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

वास्वानीजी जब केवल 30 वर्ष के थे तब वे जर्मनी की राजधानी बर्लिन में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भारत के एक प्रतिनिधि के रूप में गए। वहाँ तथा यूरोप के अन्य देशों में उनके भाषणों से भारत का शीर्ष उन्नत हुआ। इस अवसर पर न्यूयार्क के श्री वी. आई. कूपर ने कहा, 'आज भारत के नेता कौन हैं? पश्चिम में तीन नाम ही सर्वप्रसिद्ध हैं—महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा टी. एल. वास्वानी। भारत को वास्वानी के रूप में एक महान् वरदान मिला है जो 'विज्ञान के फेराडे' के समान अध्यात्म जीवन एवं शिक्षा के महान् देवदूत हैं। पश्चिमी राष्ट्र वास्वानीजी के लेखों में बहुत कुछ प्राप्त कर रहे हैं। क्या भारतीय भी उनमें अपने ध्येय के दर्शन करते हैं? यूरोप से लौटने पर वास्वानीजी दयालसिंह कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। तत्पश्चात् वे सर ब्रजेन्द्रनाथ सील के स्थान पर विक्टोरिया कालेज, कूच बिहार के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। फिर वे पटियाला के महाराज के निमन्त्रण पर महेन्द्र कालेज पटियाला में प्रिंसिपल नियुक्त हुए। वहीं पर उन्होंने अपनी माता की अन्तिम बीमारी का समाचार प्राप्त किया। वास्वानीजी तुरंत अपनी माता के पास पहुँचे तथा कई दिन तक उनकी सेवा की किन्तु माता स्वर्ग सिधारी। अन्तिम बार अपनी आंखों में संतोष के आंसू भर कर माता ने अपने प्यारे पुत्र से कहा—'मैं एक सन्तुष्ट नारी के समान खुशी से मर रही हूँ क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरे लाडले तू भगवान् का प्यारा है।' वास्वानीजी की अवस्था 40 के लगभग भी नहीं थी। उन्होंने उसी दिन नौकरी से त्यागपत्र भेज दिया। अब उन्हें संसार से बांधने वाला कोई नहीं था। मुक्तगगन के मुक्त पंछी के समान वे मुक्ति के गीत गाने लगे। अपना सर्वस्व उन्होंने प्रभु के चरणों में चढ़ा दिया।

अरे यात्री, तेरी मंजिल तुझे पुकारती है

एक बार वास्वानीजी संध्या के समय सिन्धु के तट पर जा रहे थे। एक बच्चे ने पुकारा। निकट आकर बच्चे ने प्रणाम किया और कहा, 'मुझे आशीर्वाद दें तथा मेरे घर आकर मेरी माताजी को भी आशीर्वाद देवें, वह बीमार है।' वास्वानीजी ने कहा—'बेटा, तुम्हारा घर कहाँ है? बच्चे ने कहा—'नाना पेठ में।' वास्वानीजी ने पूछा—'उस से पूर्व कहाँ था।' बच्चा—'शिवाजी नगर में था।' 'और उससे पूर्व?'

बच्चा बोला—हैदराबाद सिन्ध में मेरा जन्म हुआ। वास्वानीजी ने पूछा—'हैदराबाद सिन्ध में जन्म पाने से पूर्व तुम्हारा घर कहाँ था?' आश्चर्यचकित बच्चे ने कहा—'मुझे अपनी माता से पूछना पड़ेगा!' वास्वानीजी ने कहा—

अरे भटकने वाले!
तुझे तेरा घर खोज रहा है।

वास्वानीजी ने पूना में संस्थापित अपने सेंट मीरा स्कूल के लिए यही ध्येय वाक्य रखा है—ह

'O Wanderer!
The Homeland seeketh thee!'

6 दिसम्बर, 1959
हिन्दी 'मिलाप' में प्रकाशित

हे प्रभु! अगर तुम हमें दोबारा इस धरती पर जन्म दो मनुष्य का तो भारत में ही देना। क्योंकि वहाँ गरीबी होगी, गुलामी भी होगी लेकिन वह जिसे में जीवन में आत्मसात् करके कृत-कृत्य होना चाहूँगा, वह आत्मिक ज्ञान, वहाँ कि हिन्दू जाति में ही मुझे मिलेगा।

—हरवर्ट स्पेन्सर

महायोगी महर्षि रमण

शान्ति और प्रेम के अवतार महर्षि रमणजी का जन्म इस कथन की पुष्टि करता है कि भारत एक महान् देश है। यहाँ समय-समय पर महापुरुषों का जन्म होता है जो अपने महान् अद्वितीय गुणों से मानवता का कल्याण करते रहे और भारत को गौरवान्वित करते रहे हैं। जैसा कि स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है कि उस आदिम काल से ही, जब से मानव अस्तित्व का सपना देखने लगा था; भारतवर्ष में, जीवित मानवों के सारे सपनों ने अपना चिर काम्य धाम प्राप्त किया है। यूरोप में भारत के अनन्य अन्तर्द्रष्टा रोमां रोलां ने कहा था कि 'इस देश में पिछले चार हजार वर्षों से अविराम रूप से दिव्य दर्शन का वृक्ष नित नूतन होकर फलता रहा है, एकबारगी ही अनेक प्रकार के फल इसकी शाखाओं पर फलते हैं, उच्चतम कोटि से लगा कर निम्नतम कोटि तक के, अनाम्य से अनन्त एक परमात्मा तक। अनेक देवता समान्तर रूप से इस देश में विद्यमान रहे हैं। युग-युगान्तरों में भारतवर्ष अटूट रूप से मार्गशोधकों और विश्वात्मा ज्योति पुरुषों की एक पुष्पमाला सी खड़ा करता चला गया है, जिसकी जड़ें आकाश में होती हैं और जिसकी शाखाएं पृथ्वी पर फैलती हैं।

महर्षि रमणजी का जन्म किसी विशेष घटनाक्रम द्वारा परिचालित नहीं हुआ। आरम्भ से ही बालक रमण का ध्यान भगवान् में लगा रहता था, उनका जीवन भगवद्प्राप्ति के लिए आरम्भ से ही आकुल रहता था। संन्यास साक्षात्कार और इनसे प्राप्त होने वाली शक्ति, मानो आरम्भिक काल से ही महर्षि में जन्मजात अधिकार की भांति प्रकाशित थे। हिन्दू आदर्श सदा ही इस बात का समर्थक रहा है कि शब्दों के द्वारा नहीं, अपितु जीवन और कर्म के माध्यम से ही अध्यात्म की शिक्षा दी जाए। कहा जाता है कि महर्षि रमणजी सदा ही सहज समाधि में रहते थे। सदा ही सत्य साक्षात् की एक अविच्छिन्न शान्ति के भीतर वास करते थे। जब कभी कोई काम उनके सम्मुख प्रस्तुत होता था तो उसे वे अपने सहजानन्द से रंच मात्र भी विचलित हुए बिना बड़ी स्वाभाविकता से सम्पन्न कर दिया करते थे।

महर्षि रमण मौन मन्त्रदाता थे। जैसा कि दक्षिणामूर्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है, ठीक वैसे ही महर्षि भी मौन उपदेश द्वारा ही मुमुक्षुओं को प्रतिबोध दे

दिया करते थे। महर्षि के व्यक्तित्व में संयोजन की अद्‌भुत शक्ति का परिचय मिलता है।

सर्वप्रथम महर्षि रमण मदुरै के मीनाक्षी मन्दिर में आए। यहाँ आकर उन्हें वस्त्र, निद्रा, भूख-प्यास, आदि की चिन्ताएं भूल गईं और वे सदैव विचारों में ही लीन रहने लगे। एक दिन अचानक उन्हें ऐसा लगा कि उनकी मृत्यु हो रही है। यह महान् कष्टदायक अनुभव था। पर इस कष्टदायक अनुभव के बाद ही उन्हें स्वयं ही यह अनुभव हुआ कि यदि मृत्यु आई भी तो भी उनकी देह का ही नाश होगा, उनके अन्तर का एक अंश आत्मा तो नहीं मरेगी। इस अनुभूति ने उनके समस्त जीवन को नई दिशा दे दी। अनेक कठिनाइयों का सामना करने के बाद आप तिरुवण्णामलै आए। तब से अन्तिम समय तक वहीं रहे। महर्षि ने अपनी माता के आग्रह पर भी आश्रम छोड़ना स्वीकार नहीं किया। महर्षि की इस तल्लीनता को देखकर उनकी माता स्वयं ही आश्रम में आकर रहने लगी।

तिरुवण्णामलै आने पर उनकी विचार तल्लीनता इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि वह सर्वदा ही सहज आत्मानुभूति की दशा में रहते थे। उनके इस आत्म-साक्षात्कार का पता जब आस-पास के साधुओं और धर्मपरायण व्यक्तियों को लगा तो वे उपदेश के लिए महर्षि के पास आने लगे। कुछ वर्षों बाद ही उनकी ख्याति सारे देश और बाद में संसार में फैल गई।

महर्षि रमण ने अपने अपूर्व आत्मज्ञान से केवल भारतीयों को ही पावन नहीं किया। वरन् प्रसिद्ध यूरोपियन, अमरीकन व अन्य देशों के विद्वान भी महर्षि का दर्शन प्राप्त कर अपने आपको धन्य मानते हैं। पश्चिम के भौतिकवाद से तंग आकर पश्चिमी लोग महर्षि रमण की शरण आकर अपूर्व शान्ति को प्राप्त कर अपने आपको भाग्यवान मानते हैं और सदा-सदा अपने आपको महर्षि का ऋणी मानते हैं। प्रसिद्ध कथालेखक समरसेट माम ने अपनी पुस्तक 'ए राइटर नोटबुक' और 'रेज़र ऐग' में महर्षि का विस्तृत वर्णन किया। माम भी अपने जीवन में शान्ति प्राप्त करने तथा आत्मानुभूति के लिए महर्षि के ऋणी हैं। महर्षि का आश्रम हिन्दू, मुस्लिम, पूर्वी, पश्चिमी, अमीर-गरीब सबके लिए खुला था और वे उनसे अपने जीवन के लिए एक नई प्रेरणा लेकर लौटते थे। महर्षि ने कभी कर्म के त्याग का उपदेश नहीं दिया। उनका कहना था कि एक बार अपने वास्तविक 'मैं' को पहचानने के बाद व्यक्ति किसी भी स्थान पर और किसी भी स्थिति में प्रसन्न रह सकता है।

महर्षि की आत्मिक शक्ति के कारण जो कोई भी महर्षि के पास से लौटते थे, उनकी शान्ति और नये आत्मिक बल को देखकर उन लोगों के परिचित तक आश्चर्य में पड़ जाते थे। समरसेट माम से, किसी ऐसे व्यक्ति ने जो कि महर्षि जी के पास से लौट कर आया था, कहा कि 'मुझे महर्षि से अधिक कोई नहीं समझ

सकता। मैं जिस क्षण उनके सामने जाता हूँ वे उसी क्षण न जाने कैसे मुझे पूरी तरह से समझ जाते हैं। मेरी सब कठिनाइयाँ, मेरे सब सुख, मेरी सब आकांक्षायें उन पर आप ही आप प्रकट हो जाते हैं। वे मुझे सम्पूर्ण सर्वांग रूप में से देख सकते हैं और उनके सामने मैं भी अपने को सम्पूर्ण अनुभव करता हूँ।"

पाल ब्रण्टन भी महर्षि से भेंट करने के पश्चात् अपने आपको किसी और स्थिति में अनुभव करने लगे। उनके शब्दों में, 'एक क्षण के लिये जब मेरी और देवर्षि की आंखें मिलीं, तो अपने भूतकाल को पृथ्वी की दलदल और उस में कभी उगे सफेद फूलों के दृश्य दोनों सब एक क्षण में मेरे मानस पटल पर घूम गये। मुझे लगा कि मेरे सामने एक ऐसी शक्ति बैठी है जो मेरे जीवन का अध्ययन बड़े सहज रूप में और मुझसे कहीं अधिक व्यापक रूप में कर रही है। मुझे यह भी लगा कि यदि मैं इस रहस्यमय व्यक्ति को अपने विचार जगत् में स्वच्छंद विचरने दूं तो मेरी सारी व्यथाएं मुझे व्यथित करना छोड़ देंगी और मेरा क्रोध सहनशीलता में परिवर्तित हो जायगा और मैं अपने जीवन का आलोचक बने रहने के स्थान पर उसे समझ सकूंगा।'

महर्षि रमणजी की यही विशिष्टता थी कि वे प्रत्येक के वास्तविक 'मैं' और बाह्य माध्यम से अन्तर को देख सकते थे, सन्त एक्सपेरी ने भी कहा है 'आंखें अन्धी हैं, आदमी दिल से ही देख सकता है।' महर्षि रमण हृदय से देखते थे, प्रेम से देखते थे और इसीलिये वे सबको उस रूप में देखते थे जिस रूप में होना चाहिए। महर्षि की उपस्थिति एक दर्पण का कार्य करती थी जिसके सामने बैठे व्यक्ति का सारा जीवन सुव्यवस्थित रूप से प्रतिबिम्बित हो कर आ जाता था। इस प्रकार वे एक कलाकार थे—जीवन के कलाकार। एक महान् कलाकार भी तो अव्यवस्थित जीवन को सुव्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करता है।

आत्मद्रष्टा महर्षि सदा ही यह उपदेश देते थे, '**आत्मान विद्धि**' अर्थात् स्वयं को पहचानो। इस प्रकार अपनी दैवीशक्ति द्वारा मानवमात्र का कल्याण करने वाली इस महान् विभूति ने 14 अप्रैल, 1950 को इहलोक छोड़ निर्वाण को प्राप्त किया। उनका महानिर्वाण दिवस सारे देश में मनाया गया। इस महान् विभूति के विषय में कहा गया है कि इनका निधन नहीं हुआ वरन् जानने वाला और ज्ञेय का ऐसा मेल हुआ है जो कि स्वयं ज्ञान ही है।

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती

सूर्य का उदय पूर्व से ही होता है। इसलिए प्रारम्भ से ही प्राची दिशा शेष संसार को प्रकाश का दान देती रही है। भारत भूमि धर्म की जननी है और इसी धरती के बेटों ने समय-समय पर हाथ में ज्ञान की मशाल को लेकर पथभ्रष्ट मानवता को आलोक का पथ दिखाया है। ऋषियों की इस धरती ने आज पुनः एक दिव्यज्योति सम्पन्न महर्षि को पैदा किया है जिसके ज्ञानालोक एवं प्रेमपीयूष से जगती के कोटि-कोटि मानवों को अमृतमयी शान्ति का लाभ प्राप्त हो रहा है। वे ऋषि तुल्य लोकनायक हैं, अध्यात्म ज्ञान के सूर्य जगद्गुरु स्वामी शिवानन्दजी महाराज। भारत का आध्यात्मिक ज्ञान विश्व के सर्वोच्च पर्वत हिमालय का ही वरदान है। जिस पर्वत की कल-कल निनाद करती हुई अजस्र वाहिनी सदा-नीराएं सदा से भारत की इस धरती एवं धरती के बेटों की प्यास बुझाती रही हैं तथा उन्हीं अमृततोया नदियों के सिंचन से पैदा होने वाले अन्न से कोटि-कोटि भारतीयों की क्षुधा शान्त होती रही है, उसी पुण्य पावन हिमालय के तुषारमण्डित हिमशिखरों पर अनन्त तपश्चर्या करने वाले सन्तों, महात्माओं एवं ऋषियों के ज्ञान से फूटने वाली अमृत गंगा से भी युग-युग में मानवता का उद्धार होता रहा है। जगद्गुरु स्वामी शिवानन्द भारत के उन प्राचीन ऋषियों की ही पावन परम्परा में आने वाले अध्यात्म के महानतम लोकशिक्षक हैं जिनका कार्य दुर्बल मानवता के लड़खड़ाते हुए निर्बल पगों को सत्यं एवं ऋतं के मार्ग पर चलाना है। सहस्ररश्मि-सूर्य के समान ही वे भी आज प्राच्य द्वारा पाश्चात्य को प्राप्त होने वाले महानतम वरदान है।

लीलाधारी की अनन्त लीला के साझीदार परम पूज्य स्वामी शिवानन्द का पावन आश्रम हिमालय की गोदी में, ऋषिकेश की पावन तीर्थस्थली में पुण्य पावनी गंगा के पावन तट पर है। वहाँ आनन्द कुटीर पर ब्रह्मानन्द की साक्षात् मूर्ति स्वामी शिवानन्दजी के शरीरधारी स्वरूप के 73वें जन्मदिवस पर उनके दर्शन के लिए विश्वभर के भिन्न-भिन्न देशों से उनके हजारों शिष्य एवं भक्त एकत्रित हुए हैं।

एक बार शिवानन्दाश्रम में निजी डाकखाना चलता था। डाकखाने का अध्यक्ष आश्रम का एक स्वामी ही था। एक दिन वह 12 हजार रुपये लेकर भाग

गया। लोगों ने कहा—पुलिस में रिपोर्ट करवा दें। स्वामी शिवानन्दजी नहीं माने। वे यही कहते रहे—'संन्यासी कभी चोर नहीं हो सकता, उसे अवश्य ही कोई आवश्यकता होगी। मुझे दुःख है कि उसने मुझे नहीं बताया। मुझे कह देता तो धन की यहाँ क्या कमी है।' स्वामीजी ने दो दिन स्वयं उपवास किया तथा उसकी शान्ति के लिए आश्रम में सामूहिक प्रार्थना कराई।

एक बार एक पागल व्यक्ति ने सत्संग में बैठे हुए स्वामीजी महाराज पर कुल्हाड़े से प्रहार कर दिया। किन्तु दैववश वह प्रहार एक चित्र पर लगा जो फट गया। उसने दूसरा प्रहार किया जो एक दूसरे चित्र पर लगा। सत्संग में भगदड़ मच गई, लोगों ने उस पागल को पकड़ लिया तथा स्वामीजी से अनुरोध किया कि उसे पुलिस के हवाले कर दिया जाय। इस भीषण अशान्ति के बीच स्वामीजी शान्त एवं प्रफुल्ल बदन बैठे रहे। स्वामीजी ने कहा—'इस व्यक्ति को 100 रुपए दे कर इसके घर पहुँचा दिया जाए। उसे 100 रुपये दिये गये तथा उसके लिए प्रार्थना भी की गई। यह स्वामीजी की अलौकिक करुणा है।

एक बार पुलिस ने एक चोर को पकड़ा जिसके पास शिवानन्द आश्रम के बर्तन पकड़े गए। स्पष्ट प्रमाण था कि बर्तन आश्रम के हैं। उन पर आश्रम का नाम खुदा हुआ था। स्वामीजी से पूछा गया कि क्या बर्तन आश्रम के हैं? स्वामीजी ने कहा—'बर्तन तो सब ईश्वर के हैं, आश्रम का उन पर कोई ठेका नहीं है।' स्वामीजी ने अपनी अलौकिक करुणा एवं क्षमा के द्वारा उस चोर का भी जीवन बदल दिया।

'विचारो मैं कौन हूं? आत्मा
को जानो और मुक्त बनो।
स्तब्ध बनो, शान्त बनो,
करो आत्म-साक्षात्कार।
श्रोता को सुनो, द्रष्टा को देखो,
खोजो ज्ञाता को,
तुम हो नहीं तन, और नहीं मन,
तुम हो अमृतमयी आत्मा।'

मानव के प्रति उनका सन्देश है—

'प्यारे दैवी बालो, भगवान् सर्वव्यापक है, भगवान् तुम्हारे अन्तरतम में वास करते हैं। वे प्रत्येक में निवास करते हैं। तुम्हारा अस्तित्व भगवान् का ही सत्‌रूप है। उस प्रणय देव को मेरा बारंबार विनीत भाव से हार्दिक अभिनन्दन। उनके आशीर्वाद से आपको भक्तिपूर्ण हृदय, विशुद्ध बुद्धि, निश्चल एवं सुशान्त मन

और संयमित इन्द्रियाँ प्राप्त हों। मुक्तात्मा की तरह ब्रह्मतेज की शुभ्र प्रस्फुटित ज्योत्स्ना प्राप्त कर पग-पग पर तेज विकीर्ण करो।'

स्वामीजी की कृपा से ऋषिकेश में ही एक वृहद् योग वेदान्त विद्यालय चल रहा है तथा विश्व भर के भिन्न-भिन्न प्रसिद्ध नगरों में दिव्य जीवनमण्डल की शाखाएं चल रही हैं। स्वामीजी स्वयं कभी विदेश में नहीं गए पर यहीं बैठे ही उन्होंने अनेक पाश्चात्य विद्वानों को अपने अध्यात्म बल से अपनी ओर खींच लिया है। अनेकों के मन की आध्यात्मिक शंकाओं को स्वामीजी ने उन्हें स्वप्न में ही दर्शन दे कर शान्त किया है।

इंटरनेशनल कल्चर फोरम, संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सेक्रेटरी मिस फ्लोरेन्स बार्कर ने लिखा है—

'मरुस्थल के मरुद्यान के समान यह 'योग-वेदान्त आख्य विश्वविद्यालय' विश्व व्यापक चेतना का शुद्धीकरण कर उसे सगुणाविष्ट करता है। पवित्रता की परम पुनीत ज्योति से समस्त विश्व को आलोकित करता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति का यह केन्द्र कार्य व्यस्त जीवन को अभिशाप मानने वाले, प्रभु को विस्मृत किए हुए तथा नास्तिक लोगों को सतत सुख एवं शान्ति की रश्मियों से आलोकित कर सौन्दर्य निधि कृपालु परमेश्वर में विश्वास पुष्ट कर, जीवन को उन्हीं प्रभु का वरदान मानने का पवित्र भाव जागृत करता है। मधुकोष के स्वामी और ज्ञान के तेजोपुंज श्री स्वामी शिवानन्दजी के आध्यात्मिक ज्ञान को पाने के लिए ही हम लालायित हैं।' श्री एम. सी. बिजावत, उपकुलपति काशी विश्वविद्यालय का कथन है—'स्वामीजी की आशिषों की अक्षयनिधि से हम सब धनी बन गए। उनकी लेखनी में जीवन परिवर्तन का जादू है तथा उनकी मनमोहक मुस्कान में मानव के समस्त पापपंक को भस्म करने की शक्ति निहित है।

22 सितम्बर 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति में है, किन्तु प्रत्येक (व्यक्ति) ईश्वर में नहीं है, और इसलिये वह दुःखी है।

—श्री रामकृष्ण परमहंसदेव

धर्मसम्राट स्वामी करपात्रीजी को श्रद्धांजलि

अनन्त श्रीविभूषित, धर्मसम्राट पूज्य स्वामी करपात्रीजी के निधन से अध्यात्मिक जगत् का एक महान् ज्योतिपुंज मानो सहसा विलुप्त हो गया है। अपने कर रूपी पात्रों में भोजन करने के कारण वे करपात्री नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। अन्यथा उनका नाम स्वामी हरिहरानंद सरस्वती था। वे बद्रिकाश्रम धाम के ज्योतिर्पीठाधीश्वर श्री जगद्‌गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के योग्यतम पट्टशिष्य थे। उनके गुरु भाइयों (स्वामी ब्रह्मानंदजी के अन्य शिष्यों) में उल्लेख योग्य थे—स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती (जो बाद में वृन्दावन के श्री उड़िया बाबा के उत्तराधिकारी बन गए)। स्वामी सान्तानन्दजी सरस्वती (जो ब्रह्मानन्दजी के पश्चात् ज्योतिर्मठ के पीठाधीश्वर बने), स्वामी परमानन्दजी सरस्वती (जो धर्म संघ कार्यालय निगम बोध घाट दिल्ली में रहते थे, तथा विगत वर्ष स्वर्गवास हो गए), महर्षि महेश योगी (जिन्होंने भावातीत ध्यान केन्द्र ऋषिकेश स्थापित कर देश-विदेश में पर्याप्त मात्रा में धन एवं यश कमाया), स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जिन्हें करपात्रीजी ने लगभग 8 वर्ष पूर्व ज्योतिर्पीठाधीश्वर जगद्‌गुरु शंकराचार्य घोषित कर दिया था।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती अपने बाद शंकराचार्य की गद्दी अपने योग्यतम शिष्य स्वामी करपात्रीजी को ही देना चाहते थे, किन्तु उनकी शर्त यह थी कि करपात्रीजी राजनीति को तिलांजलि दे दें। करपात्रीजी ने अपनी रामराज्य परिषद् को त्यागना स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें शंकराचार्य के पद से वंचित होना पड़ा। इसके बदले करपात्रीजी अपनी योग्यता के बल पर शंकराचार्य निर्माता बन गए। यद्यपि शंकराचार्य का पीठ स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने स्वामी सान्तानन्द जी सरस्वती को उत्तराधिकार रूप में सौंप दिया, किन्तु स्वामी करपात्रीजी ने अपनी ओर से, काशी की विद्वत् सभा के बल पर स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी को ज्योतिर्पीठ का शंकराचार्य घोषित कर दिया। चाहे न्यायालय ने इसे मान्यता नहीं दी। स्वामी करपात्रीजी का आरोप था कि स्वामी सान्तानन्द सुपठित एवं विद्वान नहीं हैं। स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी के स्वर्गवास के पश्चात् स्वामी करपात्रीजी ने पुनः अपनी ओर से काशी की विद्वत परिषद् की सहमति से स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती को ज्योतिर्पीठ का शंकराचार्य

घोषित कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः पीठ की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वामी सान्तानन्दजी को ही माना, क्योंकि उत्तराधिकार पत्र उन्हीं के पक्ष में था। जो भी हो, जनता के हृदयसिंहासन पर करपात्रीजी द्वारा घोषित शंकराचार्यों का ही पूज्य स्थान बना रहा। पुरी के शंकराचार्य भी करपात्रीजी के शिष्य हैं। द्वारिकापीठ के शंकराचार्य भी करपात्रीजी के भक्त एवं उनके अखिल भारतीय धर्मसंघ के अध्यक्ष रहे चुके हैं। इस प्रकार तीन-तीन शंकराचार्यों के निर्माता एवं निर्देशक होने के कारण करपात्रीजी बिना शंकराचार्य बने भी सुपर शंकराचार्य बने हुए थे। इस दृष्टि से वे सचमुच धर्मसम्राट ही थे।

करपात्रीजी की विद्वत्ता अगाध थी। हिन्दू धर्मशास्त्रों का उन्होंने गम्भीर चिन्तन किया था। वे बोकारो स्टील सिटी में अठारह दिन तक श्रीमद्भागवत के एक श्लोक के एक चरण 'योगमाया समादृत'' की गम्भीर सुविस्तृत व्याख्या में अमृत उड़ेलते रहे।

साम्यवाद का सबसे करारा उत्तर उन्होंने अपने ग्रन्थ मार्क्सवाद और रामराज्य में दिया है। उन्होंने रामराज्य परिषद् के माध्यम से राम के देश में भारतीयों के सम्मुख पुनः रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया। उनका कथन था कि 'श्रीराम जय राम जय जय राम' हमारे देश का राष्ट्र मंत्र है। समर्थगुरु रामदासजी ने छत्रपति शिवाजी को यही विजय मंत्र दिया था, जिसके प्रताप से छत्रपति शिवाजी सदा विजयी बने।

गोरक्षा के लिए स्वामी करपात्रीजी तन-मन-प्राण से समर्पित थे। उन्होंने गोरक्षा आन्दोलन में दिल्ली में लाखों नर-नारी एवं साधुओं के विराट् प्रदर्शन का नेतृत्व किया। उसमें पुलिस के लाठीचार्ज से उन्हें भी आहत होना पड़ा तथा अनेक साधुओं को जीवन बलिदान करना पड़ा। सन् 1976 में जब विनोबाजी ने सम्पूर्ण देश में गोवध बन्दी हेतु अनशन किया तो उन्हें अनशन से रोकने के लिए प्रधानमंत्री ने झूठ-मूठ घोषणा कर दी कि देशभर में गोवध बन्दी का आदेश लागू कर दिया गया है। इससे भ्रमित होकर जब कई शंकराचार्यों ने श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रशस्ति गान तथा आपातकाल का समर्थन करना शुरू किया तब स्वामी करपात्रीजी ने शंकराचार्यों को भी आड़े हाथों लिया।

पूज्य करपात्रीजी के साथ मेरा सम्पर्क बहुत पुराना एवं बहुत निकट का रहा है। मेरे बचपन के यज्ञोपवीत के दीक्षागुरु स्वामी नन्द नन्दनानंद सरस्वती स्वयं संन्यास लेकर स्वामी करपात्रीजी के चरणों में शिष्य रूप में रहते आए हैं। अतः पूज्य करपात्रीजी उस दृष्टि से मेरे परम गुरु ही बन गए थे। यूनेस्को द्वारा सन् 1963 में जब मुझे यूरोप, अमरीका, कनाडा में व्याख्यानमाला हेतु आमन्त्रित किया गया तो स्वामी करपात्रीजी ने इस आधार पर मुझे अनुमति नहीं दी कि समुद्र

यात्रा से मनुष्य म्लेच्छ बन जाता है। बाद में स्वामीजी ने इसी आधार पर अनुमति दी कि मैं विदेश यात्रा में कहीं भी पका हुआ भोजन तब तक न करूं जब तक वह पवित्र स्थान पर मेरे नेत्रों के सामने न बना हो तथा यात्रा के दौरान जब भोजन पकने-पकाने की सुविधा न हो, तब मैं केवल दूध और फल पर निर्वाह करूं। मैंने स्वामीजी के इस आदेश का नियमपूर्वक पालन किया, जिससे मेरी यात्रा बड़ी सफल एवं निर्विघ्न हो सकी।

स्वामीजी कई ऐसे विचार रखते थे जिससे हमारा मतभेद भी हो जाता था, किन्तु वे बात समझ आ जाने पर बाद में समर्थन भी करने लगते थे। जीवन भर वे शुद्धि संस्कार के विरोधी रहे। सोंस के रामरक्षा यज्ञ में हमने विलियम नाम के व्यक्ति को बलराम नाम देकर उसका वेदमंत्रों सहित शुद्धि संस्कार किया। इस पर स्वामीजी रुष्ट हो गए और उन्होंने तुरंत मुझे अपने पास बुलाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार दूसरों को शुद्ध करते-करते तुम स्वयं अशुद्ध बन जाओगे। लम्बी बातचीत के पश्चात् मैंने उन्हें समझाने में सफलता पा ली कि बिना शुद्धि के हिन्दू समाज संख्याबल में क्षीण हो जायेगा और धीरे-धीरे हिन्दुस्तान आर्यावर्त्त से म्लेच्छावर्त्त बन जायेगा। उन्होंने उस रात्रि की सभा में शुद्धि का समर्थन किया। 'हमारे समाज के जिन बन्धुओं की निर्धनता या अज्ञान का अनुचित लाभ उठाकर विदेशी प्रचारक उन्हें फुसलाकर धर्मच्युत करते हैं वे बन्धु अपने मन से धर्म नहीं बदलते, उन्हें केवल विवशतावश विदेशी पादरियों के सम्मुख झुकना पड़ता है। धर्म तो मन की आस्था पर आधारित है। अतः जो धर्म मन से न बदलकर लोभ, लालच या विवशतापूर्वक धर्मान्तरित किये जाते हैं, शास्त्र की दृष्टि से वे हिन्दू ही हैं क्योंकि मन के बदले बिना धर्म बदला ही नहीं जा सकता। अतएव ऐसे सभी तथाकथित धर्मच्युत बन्धुओं को हमें सरल शुद्धि संस्कार द्वारा पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर प्रीतिपूर्वक अपना लेना चाहिए।' और तब से मुझे शुद्धियाचार्य कहना प्रारम्भ किया।

हरिजनों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा काफी बदल गया था। मीनाक्षीपुरम कांड के पश्चात् उनके हृदय को बड़ा आघात लगा और उन्होंने मृत्युशय्या से वक्तव्य दिया कि 'हरिजन हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं तथा देव-मन्दिरों में वे उसी स्थान से दर्शन के अधिकारी हैं जहाँ से शंकराचार्य, अन्य धर्माचार्य या ब्राह्मण दर्शन कर सकते हैं।'

अनन्य राष्ट्रभक्ति के दिव्य अवतार श्रीगुरुजी

आज भारत के क्षितिज से अखण्ड, अनवरत, निष्काम राष्ट्रभक्ति के सजीव अवतार का तिरोधान हो गया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक, अद्वितीय राष्ट्र-सेवा-व्रती पूज्य श्रीगुरुजी (श्री माधव सदाशिव गोलवलकरजी) ने जीवन लीला संवरण कर परम शान्तिधाम को प्रयाण किया है। जहाँ देवलोक में उन जैसी दिव्य विभूति के प्रवेश पर गंधर्वों का स्वागत गान गूंज रहा होगा। वहाँ भारत के कोटि-कोटि नर-नारी उस महान् अलौकिक विभूति के स्वर्गवास पर अपनी अश्रु-मुक्ता मालाओं से उन्हें अपनी श्रद्धा-भक्ति की पुष्पांजलि चढ़ा रहे हैं।

वन्देमातरम् का वरदान

सन् 1905-06 में देश में स्वदेशी आन्दोलन का ज्वार उठा था। श्री अरविन्द, लोकमान्य तिलक तथा लाला लाजपत राय ने देश भर में वन्देमातरम् मंत्र को गुंजा दिया था। बंगाल के युवकों ने अपना हृदय चीर कर प्लासी के पाप के प्रायश्चित्त के रूप में वन्दे मातरम् गाते हुए लाठी, गोली तथा फांसी तक का स्वागत किया था। विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1902 में महासमाधि ली थी, वेदान्त विग्रह स्वामी रामतीर्थ ने सन् 1905 में गंगाजी में जल समाधि ली थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघ चालक डा. केशव बलिराम हेडगेवार ने नागपुर के विद्यार्थी जीवन में वन्देमातरम् आन्दोलन में खुलकर भाग लिया था, जिसके कारण उन्हें घर वालों से ताड़ना हुई तथा स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। किन्तु प्रत्येक यातना एवं ताड़ना की मार में उनके मुख से गूंजता 'वन्दे मातरम्' पूज्य श्री गोलवलकरजी का 1906 में जन्म इन्हीं महान् विभूतियों के पुञ्जीभूत प्रभाव तथा वन्दे मातरम् की अमर प्रेरणा के दिव्य वरदान के रूप में ही हुआ था।

मातृभूमि के दिव्य आध्यात्मिक स्वरूप के द्रष्टा

योगीराज श्री अरविन्द ने लिखा है, 'स्वाधीनता वह सुफल है जो हम बलिदान से पाते हैं तथा मातृभूमि वह देवी है जिसे हम समर्पित करते हैं। यज्ञाग्नि की उठती हुई सप्त जिह्वाओं में हमें वह सबकुछ समर्पित करना है जो कुछ हम हैं और जो कुछ

हमारा है। यज्ञाग्नि की लपटों में हमें अपना रक्त, जीवन तथा स्वजनों का सुख-सौख्य सभी समर्पित कर देना है।' पूज्य श्रीगुरुजी ने भी मातृभक्ति को आध्यात्मिक भित्ति पर अधिष्ठित करते हुए कहा है, 'हमारे लिये इस भूमि से पवित्रतर और कुछ नहीं हो सकता। इस भूमि की धूलि का एक-एक कण, जड़ और चेतन प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक काष्ठ और प्रस्तर, प्रत्येक वृक्ष और नदी हमारे लिए पवित्र है।' यह भूमि जिसका महायोगी अरविन्द ने विश्व की दिव्य जननी के जीवन्त आविष्कीकरण के रूप में साक्षात्कार किया—जगन्माता! आदिशक्ति! महामाया! महादुर्गा! जो मूर्त रूप साकार होकर हमें दर्शन-पूजन-वंदन का अवसर प्रदान कर रही है।

यह भूमि जिसकी स्तुति हमारे दार्शनिक कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'देवि भुवन मनोमोहिनी....नील सिन्धु जलधौत चरणतल' कह कर की है।

यह भूमि जिसका वंदन स्वतंत्रता के उद्घोषक कवि बंकिमचन्द्र ने अपने अमर गीत वन्दे मातरम् में किया है, जिसने सहस्रों युवा हृदयों को स्फूर्त कर स्वतंत्रता के हेतु आनन्द पूर्वक फांसी के तख्ते पर चढ़ने की प्रेरणा दी—त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी—वह भूमि जो अनन्त काल से हमारी प्यारी पावन भारतमाता है जिसका नाम मात्र हमारे हृदयों को शुद्ध सात्त्विक भक्ति की लहरों में आपूर्ण कर देता है। अहो, यही तो हमारी सब की माँ है, हमारी तेजस्विनी मातृभूमि।'

जन्मजात योगी

इस दिव्य बालक माधवराव का जन्म सन् 1906 में नागपुर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। बालक मधु की स्मृति एवं धारणाशक्ति इतनी अलौकिक थी कि एक बार किसी विषय को सुन लेने के पश्चात् वह उसे जीवन भर नहीं भूलता था। एक बार हिस्लाप कालेज के प्राचार्य गार्डिनर को बहुत अचम्भा हुआ जब बालक माधवराव ने प्राचार्य के व्याख्यान में प्रस्तुत एक बाइबिल की सूक्ति को सुधार कर बताया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए एक बार परीक्षा से तुरंत पूर्व उन्हें एक बिच्छू ने डस लिया। वे पांव के दंश वाले भाग को चाकू से छीलकर पुनः स्वाध्याय में तन्मय हो गये। पूछने पर उन्होंने कहा, 'बिच्छू ने मेरे पांव को काटा है, मेरे मस्तिष्क को नहीं। अतः पढ़ाई में बाधा का कोई प्रश्न ही नहीं।' धारणाशक्ति में तो वे अद्वितीय ही थे। सम्भवतः संसार का कोई भी अन्य पुरुष इतने अधिक (लाखों) लोगों को नाम से नहीं जानता होगा जितना गुरुजी जानते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनके आदर्श प्राध्यापक रूप पर मुग्ध होकर ही सारा विश्वविद्यालय तथा बाद में सारा राष्ट्र उन्हें पूज्य गुरुजी के रूप में संबोधन करने लगा।

निर्भीक स्वयंसेवी

एक बार श्री माधवरावजी मद्रास में मत्स्य विज्ञानशाला में शोध हेतु गये हुए थे। वहाँ एक दिन हैदराबाद के निजाम को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया

था। उक्त विज्ञानशाला में शुल्क देकर प्रवेश की परम्परा थी। निजाम के आने पर जब सभी अधिकारी उनके स्वागत के लिये चिन्तित हो रहे थे तब माधवराव ने आगे बढ़कर उनसे प्रवेश पत्र पूछा। इस पर सभी के स्तंभित हो जाने पर गोलवलकरजी ने बताया कि 'नियम में सब समान हैं। टिकट में रियायत किसी निर्धन व्यक्ति के लिये हो सकती है किन्तु संसार के सबसे धनी व्यक्ति के लिए नहीं।'

अभिनव नरेन्द्र

अपनी आध्यात्मिक साधना के लिये श्री गोलवलकरजी रामकृष्ण आश्रम सरगाच्छी (बंगाल) में पूज्य स्वामी अखण्डानंदजी के चरणों में पहुँचे। वहीं इन्होंने अपनी ब्रह्मचर्य साधना में केश एवं श्मश्रु वर्धन प्रारम्भ किया। बाद में माता पिता के बारम्बार आग्रह के उपरान्त भी 9 सन्तानों में से एकमात्र अकेले जीवित रहने वाले श्री माधवराव ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का आजीवन पालन किया। वंशवृद्धि के लिए माता-पिता के अश्रुपूर्ण आग्रह के उत्तर में वे कहते, 'केवल मेरा वंश ही नहीं किन्तु अनेक सहस्त्र वंशों को अपनी वृद्धि त्यागनी पड़ेगी ताकि भावी पीढ़ियाँ अधिक समृद्ध भारत में जन्म ले सकें।' पूज्य गुरुजी के सरगाच्छी आश्रम के पुराने साथी अमिताभ महाराज कहते थे, 'श्री गोलवलकर अभिनव नरेन्द्रनाथ हैं— अभिनव विवेकानंद।'

इतिहास दुर्लभ लोकसंग्रही

विश्व में आज तक जितने महापुरुष हुए हैं उनमें से इतना बड़ा लोकसंग्रही कदाचित ही कोई अन्य हुआ हो। विगत 33 वर्षों से निरन्तर देश के कोने-कोने में प्रवास कर देश की सोई हुई आत्मा को जगाते हुए जो इतना विशाल तेजस्वी संगठन उन्होंने निर्माण किया है वह इतिहास का एक अनूठा चमत्कार ही है।

निष्काम यज्ञमय जीवन

पूज्य गुरुजी का जीवन एक दिव्य यज्ञ स्वरूप जीवन था। अपने लिए कभी भी तनिक स्वार्थ एवं पदलिप्सा की चाह न रखते हुए उन्होंने सर्वस्व राष्ट्र माता के चरणों में पूजा स्वरूप समर्पित कर दिया। ऐसी अनन्य राष्ट्रभक्ति का आदर्श युग-युग तक मानवता को प्रेरित करता रहेगा।

गुरुजी की भाषा मधुर, एक-एक शब्द नपा-तुला और सारगर्भित होता था जैसे कोई वेदवाक्य हो। स्व. श्री टी.आर. वेंकटराम शास्त्रीजी उस समय दक्षिण भारत में लिब्रल पार्टी के उच्च नेता थे, उनके मन में R.S.S. के विषय में भ्रान्तियाँ थी। वे इसे एक जातिवादी संगठन मानते थे। जब वे श्री गोलवलकर से मिले तो उनके विचार बिल्कुल बदल गये। उन्होंने लिखा, 'मैं यहाँ गुरुजी से भेंट करने आया था किन्तु उनके शक्तिशाली वार्तालाप ने मुझे पूर्णतया झकझोर कर रख

दिया। उनसे भेंट करने के बाद मेरे विचार बहुत सुदृढ़ और परिपक्व हुए हैं, मुझे अपने पहले के विचारों और मान्यताओं में परिवर्तन लाना होगा, आप सब उनके विचारों को शान्त मन से सुनें और उस पर मनन करें।

गुरुजी ने विद्यार्थियों को सम्बोधन करते हुए कहा, हमारे विद्यार्थी को बार-बार कहा जाता है कि वे राष्ट्र के स्तम्भ हैं। यह बात सुनते-सुनते कुछ युवाओं के मन दम्भ से फूल जाते हैं जो उचित नहीं है। हमें स्तम्भ नहीं नींव के पत्थर बनना है। यदि राष्ट्र के भवन की नींव सुदृढ़ हो तो राष्ट्र मजबूत होगा। नींव का पत्थर चाहे देखने में सुन्दर आकृति का न हो, किन्तु सुदृढ़ होना चाहिये। इस पत्थर में कोई दम्भ नहीं होता। यदि वह कमजोर हो, या हिलता हो तो पूरा भवन डगमगा सकता है जो असुरक्षित होगा। हमें शांत होकर अपनी सेवा देनी है, कोई दिखावा नहीं। इस प्रकार हम राष्ट्र की सच्ची सेवा कर पायेंगे। निष्काम एवं निर्लिप्त भाव से सेवा करनी है, केवल औरों को भाषण या ज्ञान बांटने से नहीं।

राष्ट्रवाद—राष्ट्रवाद एक विलक्षण अनुभूति है जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में प्रेम, सद्भावना और भाईचारे की भावना बढ़ाती है। यह कर्तव्यपरायणता, बलिदान, सबका कल्याण एवं एकनिष्ठा को दृढ़ करती है। हमें एक सबल, सक्षम और विकसित राष्ट्र की आवश्यकता है, जहाँ सामूहिक आदर्श, आकांक्षायें, चिन्तन एवं संवेदनशीलता हो। ऐसे राष्ट्र का प्रबुद्ध नागरिक हिन्दू है। विघटनकारी भिन्न-भिन्न आदर्शों, ऐतिहासिक मतभेदों वाले नागरिक कैसे एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं?

राष्ट्रीय चरित्र की महत्ता के बारे में गोलवलकरजी कहते थे, इतिहास पर दृष्टि डालने से देख सकते हैं कि ऊँचे राष्ट्रचरित्र वाले देश प्रगति के शिखर तक पहुँच जाते हैं, जहाँ राष्ट्रीय चरित्र गिरते हैं वह राष्ट्र पतन को प्राप्त होता है। राजनीतिक समस्यायें तो आती-जाती रहती हैं—उनका कुछ अस्थाई हल मिल जाता है, किन्तु राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कार्य निरन्तर सुन्दर ढ़ंग से चलना चाहिये। जब तक राष्ट्र जिन्दा है, हम जीवित हैं। यह महान् कार्य सदा चलता रहना चाहिये।

गुरुजी को अपनी निष्काम सेवा के लिये सब दिशाओं से सम्मान मिला जो शायद किसी राजा को भी नसीब न हो। इतना मान-सम्मान मिलते हुए भी वे सदैव अहंकार या दंभ से दूर रहे। वे जल में कमल की भांति निर्लिप्त रहते थे। सच्चे कर्मयोगी गुरुजी ने कहा था, मैं अत्यधिक मान-सम्मान के स्थान पर कटु आलोचना को शांत कर बुझे हुए विष की तरह पी सकता हूँ।

अंतिम मार्मिक भेंट

पूज्य गुरुजी 10 मार्च 1963 को रांची जिला के प्रवास पर पधारे थे तो उनका

स्वास्थ्य चिन्ताजनक था। वे प्रखर ओजस्वी वक्ता इस बार बैठकर थोड़ा समय बोले। अचानक ध्वनिवर्धक एवं विद्युत् की खराबी से उनकी वाणी और अधिक क्षीण प्रतीत हो रही थी। उनके प्रवचनों में जो अमृत बरसता था तथा प्रेरणा का महासागर उमड़ता था, इस बार हम सब उससे कुछ वंचित रह गये थे। रेलवे स्टेशन पर प्रथम श्रेणी के विश्रामागार में वे एक थके हुए सिंह के समान आराम कुर्सी में लेटे थे। चरण स्पर्श कर मैंने संस्कृति विहार द्वारा प्रकाशित विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार विषयक कुछ सुन्दर चित्र, उन्हें भेंट किये। उन्होंने आशीर्वाद दिया। प्लेटफार्म से गाड़ी के डिब्बे तक ले जाने में मैं उन्हें दायीं भुजा से थामे हुए तथा प्रो. अगाशेजी बायीं भुजा से। डिब्बे में बैठकर वे बोले—'अब शरीर काम का नहीं रहा। प्रभु जब चाहें ले लेवें। हम तो तैयार बैठे हैं।' इस पर सभी के नेत्र सजल हो गये। कुछ दिनोपरान्त मेरे पूज्य पिताजी का स्वर्गवास होने पर उन्होंने संवेदना एवं आशीष का सुन्दर पत्र नागपुर से भेजा। उनकी उस पत्र प्रेषित आशीष से हम सहन शक्ति पाकर पुनः स्वस्थचित्त हुए ही थे कि वे स्वयं अमरों के लोक के लिए सिधार गये। पूज्य पिताजी के स्वर्गवास पर उन्होंने सांत्वना दी थी। आज उनके दिव्य देहारोहण पर जगत्पिता जगदीश्वर के सिवा हमें कौन सांत्वना दे सकता है? उनकी दिव्य आत्मा हमें सदा सर्वदा राष्ट्र सेवा के महाव्रत में अमर प्रेरणा देती रहे, यही प्रभु से अभ्यर्थना है।

जो हितैषियों के सम्मुख अपनी भूल स्वीकार करता है, वह महान् बनता है। उसकी महत्ता उसे सम्पन्न तथा प्रसन्न रखती है तथा अन्यों को महान् बनने के लिए प्रेरित करती है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी सरयुनन्दनजी महाराज

पश्चिम की वाणी राजनीति की वाणी है। किन्तु भारत की वाणी धर्म और अध्यात्म की वाणी है। पश्चिम में व्यक्ति की प्रतिष्ठा इस कसौटी पर आंकी जाती है कि उसने अपनी चालाकी से, बुद्धि-कौशल से, अपनी धूर्तता से, अपनी कूटनीति से या रणनीति से कितने अधिक लोगों को अथवा कितने अधिक देशों को लूटा या पराधीन बनाया। इसके विपरीत भारत में महानता का मापदण्ड है त्याग, लोक संग्रह, अध्यात्मिक विकास। हम भारत में महान् उसे नहीं मानते जिसने सबसे अधिक लूटा है। इसके विपरीत हम महान् उसे ही मानते हैं जिसने उत्सर्ग सबसे अधिक किया है। पश्चिम सिकन्दर, युनिलिस, नेपोलियन आदि को महान् गिनता रहा है किन्तु भारत में बुद्ध राजवैभव को लात मार कर महान् बनते हैं और अशोक भिक्षुपद स्वीकार करने के उपरान्त महान् गिने जाते हैं।

विगत एक पक्ष में रांची में एक वयोवृद्ध सिद्ध महात्मा का 118 वर्ष की अवस्था में निर्वाण हुआ जिसका समाचार बहुत कम लोगों को ज्ञात हुआ तथा सम्भवतया समाचार पत्रों में उनके विषय में कोई सूचना प्रकाशित नहीं हुई। आज भारत में भी हम पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता की चकाचौंध से इतने मोहित हो गये हैं कि राजनीतिक छल-छद्म, दुर्घटना, अपराध, अशोभन वार्त्ता को ही समाचार के रूप में महत्त्व दिया जाता है और पवित्र अध्यात्म सिद्धि, योग साधना एवं जीवन के परम पुरुषार्थ की उपलब्धि को हम समाचार के योग्य भी नहीं मानते।

आज से लगभग 120 वर्ष पूर्व वृन्दावन में एक दिव्य बालक का जन्म हुआ जो बाद में पूज्य ब्रह्मचारी सरयुनन्दनजी महाराज के रूप में एक सिद्ध योगी बनकर प्रतिष्ठित हुए। बचपन में ही माता की वात्सल्यमयी छाया छिन जाने के कारण बालक अनाथ जैसा हो गया। घर में बड़ी भाभी के मन में भावी सम्पत्ति के बंटवारे की आशंका को लेकर कुछ द्वेष भाव जागा और उसने पाठशाला जाते हुए बालक को प्रातः अल्पाहार में कुछ विष खिला दिया। यमुना नदी पार करते हुए बालक का शरीर अचेत हो गया और यमुना की धारा में बहते-बहते वह एक दूर स्थान तक जा पहुँचा किन्तु यमुना की शीतल धारा के प्रवाह से बालक का विष उतर गया। उसी दिन से बालक ने पुनः घर का मुख नहीं देखा।

काशी में एक मठ में वह सात्त्विक तेजस्वी बालक वहाँ के बड़े महात्मा का प्रिय पात्र बन गया। वहाँ भी आश्रम के अन्य ब्रह्मचारियों ने उसकी योग्यता एवं लोकप्रियता से मन ही मन ईर्ष्या से जलकर उसे स्नान के बहाने गंगा की अथाह जलधारा में धक्का दे दिया। ब्रह्मचारी सरयुनन्दनजी ने अनुभव किया कि स्वयं गंगामाता अपनी गोदी में लेकर गंगा की पावन धारा में नहलाती हुई काशी की परिक्रमा करा रही है। आगे जाकर उनके बड़े महन्तजी एक घाट पर ब्रह्मचारी सरयुनन्दन को पुकार रहे थे। दिव्य देहधारी इस गंगादेवी ने ब्रह्मचारी बालक को महन्तजी के हाथ में सौंपा और जलधारा में ही विलीन हो गई। इस अलौकिक चमत्कारी घटना से ब्रह्मचारीजी की प्रतिष्ठा और बढ़ गई। प्रतिष्ठा को अपनी साधना में बाधक मानकर वे चुपचाप नितान्त अपरिचित क्षेत्र असम प्रदेश के कामरूप कामाख्या धाम में जा पहुँचे। वहाँ पचासों वर्ष की तपस्या के उपरान्त उन्होंने शक्ति माता के एक स्वरूप (बगलादेवी) की सिद्धि प्राप्त की। चाहे कामारूप कामख्या में अनेक असमी और बंगाली भक्त देवी के सम्मुख जीव बलि चढ़ाते हैं किन्तु ब्रह्मचारी जन्म संस्कार से वैष्णव होने के कारण निरन्तर भगवती की अहिंसक पूजा के ही पक्षपाती रहे। वे कहते कि भगवती महामातेश्वरी सारे जगत् की जननी है उसका हृदय अपनी संतानों के प्रति अनन्त अनन्त वात्सल्य से भरा हुआ है। अतः वह अपनी सन्तानों का रक्तपान कभी नहीं कर सकती। स्वामीजी लक्ष्मी की पूजा इतने मनोयोगपूर्वक और विधि-विधान से करते थे कि दर्शकों तक के हृदयों में पावन भाव उजागर होने लगते थे। वे तो भगवती को साक्षात् आह्वान करके पूजन करके, भगवती से अति मधुर विनीत वाणी में वार्तालाप करते थे। उनके मुंह से निकले हुए माँ शब्द को सुनने मात्र से बड़े से बड़े नास्तिकों की नास्तिक भावना, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं के साथ में पिघल कर बहने लगती थी। स्वामीजी के मुख से गोविन्द शब्द का उच्चारण सुन कर कलेजे को अपार ठण्डक मिलती थी। न जाने किस गहराई से यह माँ और गोविन्द शब्द निकलते थे जो अपने वाणी के स्पन्दन मात्र से ही अपार सुख विकीर्ण करने लगते थे।

पूज्य स्वामी सरयुनन्दन महाराज ने भूटान राज्य की सीमा के भीतर लगभग 20 मील अन्दर जाकर एक प्राचीन तीर्थ महाकाल में भी आश्रम बना रखा था। अनेक असमी, नेपाली, सिक्किमी और भूटानी स्वामीजी के भक्त और शिष्य बन गये थे। चाहे स्वामीजी का शरीर उत्तर प्रदेश का था किन्तु संयोगवशात देश भर के अधिक से अधिक गुजराती उन्हें गुरु रूप में मानकर उनकी चरण धूलि माथे पर चढ़ाते थे। शिष्यों के निमन्त्रण पर स्वामीजी अति वृद्ध अवस्था तक भी कोलकाता, धनबाद, रामगढ़, रांची, लोहदगा, बड़बील, राजनंदगांव, परली बैजनाथ, नासिक, मुम्बई, अहमदाबाद, राजकोट, दिल्ली आदि स्थानों पर सत्संग प्रवास करते रहते थे।

प्राणायाम की सिद्धियों से उनका शरीर लगभग 120 वर्ष की अवस्था तक प्रायः स्वस्थ एवं निरोग रहा। ब्रह्मचर्य के तेज से उनकी बुद्धि एवं स्मृति अलौकिक थी। शरीर लगभग सवा छः फुट ऊँचा, अन्त तक रीढ़ की हड्डी सीधी, 100 वर्ष के बाद भी दांत, भुजाएं लम्बी घुटनों तक छूती हुई, दृष्टि सूक्ष्म, श्रवण शक्ति, बड़ी विलक्षण, ब्रह्म मुहूर्त का दैनिक जागरण, स्नान, संध्या, सत्संग, जाप, धर्मचर्चा, गोष्ठी, प्रवचन सभी कुछ नियमित एवं व्यवस्थित था।

स्वामीजी निश्छल प्रेम की मूर्ति थे। सामान्य वार्तालाप भी इतनी स्नेह मधुर वाणी में करते थे कि श्रोता का मन जीत लेते थे। बहुत बार प्रेम से संबोधन करते-करते उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरने लगते। जब आपातकाल में उन्हें कामरूप कामाख्या में ज्ञात हुआ कि मेरा शरीर अकारण बंदी बना लिया गया तो वे वृद्ध महात्मा गोहाटी से गया जेल में मुझे मिलने के लिये पधारे। इतना अपार स्नेह एवं इतना उदार आशीर्वाद मनुष्य अपने सगे-सम्बन्धियों से भी प्राप्त नहीं करता होगा। राजनंदगांव, मध्यप्रदेश में एक मन्दिर में गायत्री, भगवान् कृष्ण एवं दुर्गाजी की प्रतिमाओं के स्थापना पर्व पर स्वामीजी ने मुझे भी आमन्त्रित किया। मैंने देखा कि विलासपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. बलदेव प्रसाद मिश्र, मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल नागपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश आदि सभी प्रतिष्ठित महानुभाव महाराजजी के चरणों में साष्टांग नमस्कार कर अपने को धन्य मानते थे। अभी कुछ मास पूर्व दिल्ली में यमुना के तट पर एक यमुना माता का मन्दिर निर्मित हुआ जिसके प्रतिष्ठा पर्व पर स्वामीजी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। भारत सरकार के जहाजरानी मंत्री श्री अनन्त प्रसाद शर्मा इस कार्यक्रम के मुख्य यजमान थे। वहीं से स्वामीजी धनबाद होते हुए रामगढ़ पधारे थे और लोहर दगा, बड़बील में सत्संग करने के उपरान्त पुनः 30 अक्टूबर को रामगढ़ पधारे जहाँ उन्हें पेट की अंतड़ियों में अचानक बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी। उन्होंने गंगा जलपान कर तुलसी दल लेकर कह दिया मुझे काशी में गंगा माता की गोदी में ले जाओ किन्तु भक्तों ने उन्हें रामवली सिंह के शल्य चिकित्सा भवन में उपचार हेतु भरती करवा दिया। वे मना करते रहे तथा यही पुकारते रहे मुझे गंगाजी ले चलो। वहीं शरीर शान्त हो जाने पर उन्हें तुरंत काशी में गंगाजी में ले जाया गया और इस प्रकार गंगा मैया का लाडला गंगा माता की गोद में समा गया।

स्वामीजी से मुझे पिछली एक शताब्दी में अनेक महापुरुषों के विषय में वार्तालाप करने का बड़ा अमूल्य सुयोग प्राप्त हुआ था। वे श्रीरामकृष्ण परमहंस की चर्चा श्रद्धा से करते थे पर उन्हें प्रत्यक्ष देखने का सुयोग नहीं मिला था। विवेकानन्द को उन्होंने कई मंचों पर सुना था और वे इसे भारत का निर्भय शेर कहते थे। महामना मालवीयजी के साथ उनका सत्संग बड़ा प्रेरक रहा। वे उन्हें

परम भागवत मानते थे। श्री अरविन्द को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा और सुना था, और उन्हें ज्वलंत देश भक्त कर्मयोगी कहते थे। स्वामी रामतीर्थ की चर्चा निकलने पर स्वामीजी की वाणी प्रेमाश्रुओं से रुद्ध हो जाती थी। वे कहते सभी महापुरुषों में स्वामी रामतीर्थ सबसे विलक्षण थे। उनका आध्यात्मिक नशा देखने वाले और सुनने वालों को भी चढ़ जाता था। देश के राजनीतिक महापुरुषों की चर्चा वे नहीं करते थे सिवाय लोकमान्य तिलक के। रामायण की चौपाइयों को गाते समय उनके वृद्ध कंठ की स्वर लहरी और उनकी पराभक्ति के अश्रुबिन्दु मिलकर एक अलौकिक वातावरण पैदा कर देते थे।

जीवन में मैंने कुछ उच्च कोटि के संतों-महात्माओं का सत्संग किया है। उन जैसे तपःपूत योगसिद्ध भागवत साक्षात्कारी महापुरुष की चरण धूलि के कण के तुल्य भी नहीं हूँ किन्तु उनकी उदारता एवं सदाशयता कितनी महान् है कि मेरे द्वारा की गयी दक्षिण-पूर्व एशिया की व्याख्यानमाला के बारे में उन्होंने अनेकों स्थानों पर बड़े प्रेम और गौरव से चर्चा की—मेरा प्यारा बेटा हरवंशलाल दक्षिण पूर्व एशिया का दिग्विजय करके आया है। स्वयं इतने महान् होते हुए भी अपने तुच्छ शिष्यों को इतना मान देने वाले थे! उन अलौकिक साधक सिद्ध महापुरुष के चरणों में उनके निर्वाण पर अपनी अनन्त श्रद्धांजलियाँ एवं विनम्र नमनांजलि समर्पित करने के अतिरिक्त हम तुच्छ मानवों के पास उनके चरणों पर चढ़ाने योग्य है ही क्या!

एकनाथ रानाडे

विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी के संस्थापक अध्यक्ष श्री एकनाथ रानाडे भारतीय इतिहास की विरल विभूतियों में से एक थे। उनके स्वर्गवास से भारतीय समाज को विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के अनुरूप ढालने वाला एक सर्वतोभावेन समर्पित समाजसेवी एवं जाति का दूरदर्शी भाग्य विधाता हमसे छिन गया।

एक बार स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा था कि 'यदि मेरे पास श्री एकनाथ रानाडे एवं श्री दीनदयाल उपाध्याय जैसे दो व्यक्ति हो जाय तो मैं देश का चित्र ही बदल कर दिखा दूं।' उन्हें इस बात पर दुःख होता था कि ऐसे महान् समर्पित महापुरुषों का मूल्य केवल राजनीतिक पूर्वाग्रह, राष्ट्रीय अदूरदर्शिता तथा विचारधारा के तनिक मतभेद के कारण हमारा कांग्रेस का प्रशासन पहचान नहीं रहा है। अपने भाव की व्याख्या में उन्होंने बताया था कि सारे काश्मीर आन्दोलन का संचालन करने वाला श्री दीनदयाल उपाध्याय काश्मीर में एक विधान, एक निशान एवं एक प्रधान के आदर्शों को लेकर सत्याग्रह का संचालन कर रहा था। प्रतिदिन समय पर सत्याग्रहियों का जत्था नारा लगाते हुए चांदनी चौक, दिल्ली में उपस्थित हो जाता था किन्तु भारत सरकार की खुफिया पुलिस हजार प्रयास करने पर भी संचालनकर्ता दीनदयाल को पकड़ नहीं सकती थी, जबकि वे वहीं पर फटी हुई मैली धोती पहन कर एक खंभे के सहारे खड़े मूंगफली खाते हुए सत्याग्रह का तमाशा देखते रहते थे और सी.आई.डी. वाले इसी भ्रान्ति में थे कि वहाँ वह भी वेश बदला हुआ सी.आई.डी. का ही व्यक्ति है तथा अपना ही काम कर रहा है।

श्री एकनाथ रानाडे ने जिस प्रकार भीषण कठिनाइयों को अकेले ही झेल कर विवेकानन्द केन्द्र एवं शिला स्मारक की रचना का चमत्कार कर दिखाया वह भी भारतीय इतिहास में अतुलनीय ही है। इतना बड़ा ध्येयनिष्ठ, निरन्तर कर्मलीन तथा अन्ततोगत्वा सफलता को पाकर भी निरभिमान रहने वाला निरहंकारी कर्मयोगी आज के युग में दुर्लभ है।

श्री एकनाथजी रानाडे प्रखर मेधाशक्ति के व्यक्ति थे। दर्शन में एम.ए. करके सीधे समाज सेवा के कार्य में लग गये। वे शैशवावस्था से ही संघ के स्वयंसेवक थे

तथा संघ संस्थापक डा. केशव बलिराम हेडगवार के सजीव संस्पर्श में आये थे। देश-भक्ति की जो विद्युत् धारा उनको स्पर्श कर गई, उसी ने उनके भीतर से एक महापुरुष को आलोकित कर दिया। वे संघ के आजीवन समर्पित पूर्णकालिक प्रचारक बन गये। वे संघ की विचारधारा को बड़े मनोयोगपूर्वक दार्शनिक शैली में प्रस्तुत करने में बड़े सिद्धहस्त थे। वे केवल आराम कुर्सी पर बैठ कर दार्शनिक ऊहापोह करने वाले विचारक नहीं थे वरन् वे प्रत्यक्ष जीवन में दर्शन को वृत्ति में उतारने में भी परम कुशल थे। वे संगठन प्रविधि के महान् मर्मज्ञ थे। उनकी धारणाशक्ति इतनी विकसित थी कि वे प्रथम परिचय में ही सैकड़ों स्वयंसेवकों के नाम तुरंत दोहरा कर बता सकते थे तथा बैठक या गोष्ठी में वे प्रत्येक स्वयंसेवक को उसका नाम लेकर ही पुकारते थे जिससे सभी विस्मयविमुग्ध हो जाते थे। किसी विषय का प्रस्तुतीकरण करने में वे ऐसा बोलते थे मानो कोई महान् दार्शनिक गम्भीर चिन्तन के पश्चात् सिद्धान्त की व्याख्या कर रहा है। इसलिए श्री रानाडेजी का प्रत्येक शब्द एक मंत्र तुल्य मूल्यवान बन जाता था।

महान् त्याग

संघ के श्री गुरुजी पहले रामकृष्ण मिशन में ही आध्यात्मिक प्रशिक्षण हेतु गये थे। वहाँ वे स्वामी विवेकानन्द के गुरु भाई स्वामी अखण्डानंदजी से दीक्षित भी हुए थे। स्वामी अखण्डानंदजी प्रायः कहते थे कि माधवराव गोलवलकर अभिनव नरेन्द्र है। सन् 1963 में स्वामी विवेकानन्द शताब्दी वर्ष के अवसर पर स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों को साकार करने के लिए एक व्यापक चिरस्थाई समाज निर्माण का कार्य खड़ा करने की आवश्यकता थी ताकि हिन्दू समाज का आमूलाग्र कायाकल्प किया जा सके। एतदर्थ किसी तेजस्वी महापुरुष की आवश्यकता थी, जो इसी कार्य के लिए अनन्यभाव से लग जाय और इस असंभव कार्य को भी संभव करके दिखा सके। उस समय श्री एकनाथजी रानाडे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह (राष्ट्रीय महामंत्री) थे। यदि वे उसी पद पर बने रहते तो संभवतः समय आने पर वे सर्वोच्च पद को भी अलंकृत कर सकते थे। किन्तु उन्होंने सब मोह एवं पदलिप्सा त्याग कर श्री गुरुजी की इच्छानुसार अपने आप को विवेकानन्द केन्द्र के अत्यन्त कठिन एवं जटिल कार्य के लिए झोंक दिया।

कन्याकुमारी में ईसाई उत्पात

विवेकानन्द शिला पर ईसाइयों ने ईसाई क्रॉस लगा कर एक विवाद खड़ा कर दिया था कि वह सन्त थामस की शिला है। श्री रानाडे ने कई वर्ष तक न्यायालय में केस लड़कर यह निर्णय प्राप्त किया कि वह विवेकानन्द शिला हिन्दू-तीर्थ है जहाँ स्वामीजी को पश्चिम दिग्विजय की प्रेरणा मिली। फिर भी ईसाइयों ने उत्पात जारी रखा और विवेकानन्द शताब्दी वर्ष में स्थापित विवेकानन्द स्मारक संगमरमर

पट्टी को हथौड़ों से चूर-चूर कर दिया। कई कार्यकर्ताओं पर घातक प्रहार हुए, दर्जनों स्वयंसेवक घायल हुए तथा दो-तीन की मृत्यु भी हुई। कन्याकुमारी ईसाई बहुल नगर होने के कारण ईसाई वहाँ हिन्दुओं का कोई महान् स्मारक बनने देना नहीं चाहते थे। किन्तु वीरव्रती रानाडे हिम्मत नहीं हारे। उन्होंने प्रशासन की सहायता लेकर ईसाई उपद्रवकारियों को वहाँ से निरस्त किया। फिर तमिलनाडु सरकार ने अपनी कई आपत्तियाँ खड़ी कर दी। उन्होंने कहा कि धार्मिक न्यासबोर्ड की अनुमति के बिना वहाँ कोई स्मारक नहीं बन सकता। श्री रानाडे फिर भी हिम्मत नहीं हारे। वे बोर्ड के एक-एक सदस्य को मनाने के प्रयास में लगे रहे। जब धार्मिक न्यासबोर्ड के सदस्य माने तथा मंत्री भक्त वत्सल्य को भी मना लिया गया तब केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने आपत्ति खड़ी कर दी। शिक्षा मंत्री प्रो. हुमायूं कबीर ने कहा कि वहाँ विवेकानन्द शिला स्मारक बन जाने से उक्त शिलाओं का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो जावेगा। श्री रानाडे फिर भी निरुत्साहित नहीं हुए। वे शिक्षामंत्री को भी स्मारक की भावी भव्य योजना से संतुष्ट करने में सफल हो गये।

रामकृष्ण मिशन को संतुष्ट करना

फिर रामकृष्ण मिशन ने आपत्ति कर दी कि स्वामी विवेकानन्द से संबंधित प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल पर स्मारक या मंदिर बनाने का एकाधिकार उन्हीं का है। श्री रानाडे ने, 1963 में स्वामी विवेकानन्द के हिन्दू राष्ट्र के प्रति उद्बोधन की वाणी को सम्पादित कर 'उत्तिष्ठत जाग्रत' नाम का एक बड़ा प्रेरणादायी संकलन प्रकाशित करवाया। रामकृष्ण मिशन ने बिना उनकी अनुमति के विवेकानन्द वाणी का संकलन प्रकाशित करने पर भी कानूनी आपत्ति कर दी। श्री एकनाथजी तो सन्त एकनाथ के समान बड़े मधुरभाषी एवं नितान्त निष्काम समाजसेवी थे। उन्होंने स्वयं रामकृष्ण मिशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं अन्य अधिकारियों से स्वयं मिलकर इस महान् राष्ट्रीय कार्य में सहयोग के लिए उन्हें भी सन्तुष्ट कर लिया।

निधि संग्रह

श्री एकनाथजी ने विवेकानन्द शिला स्मारक हेतु धन संग्रह करने में पुनः महामना मालवीयजी की स्मृति जगा दी। इस स्मारक के लिए उन्होंने देश भर से 1 करोड़ 20 लाख रुपये धन संग्रह किया। द्वार-द्वार से देश के 25 लाख जनसाधारण से कम से कम 1 रुपया प्रतिव्यक्ति संग्रह किया गया। प्रत्येक राज्य सरकार से भी दान संग्रह किया गया तथा भारत का एक अलौकिक तीर्थस्थल विवेकानन्द शिला स्मारक के रूप में निर्मित हो गया। उसके उद्घाटन के समय राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने कहा—'आज जब हम पुनः भाग्य के चौराहे पर खड़े हैं तब विवेकानन्द का सन्देश हमारे लिए विशेष महत्त्व का है।'

श्री एकनाथ रानाडे ने कहा—'विवेकानन्द मंडपम् के जो शिखर आज आप स्मारक की परिपूर्ति पर देख रहे हैं वे हम तब भी देखा करते थे जब यह शिला खाली नंगी पड़ी थी तथा इस पर कुछ भी निर्माण नहीं हुआ था। हमारे उस समय के स्वप्न के शिखर आज वज्र साकार होकर एक अलौकिक भव्य भवन के रूप में सामने आ गये हैं।'

प्रधानमंत्री पुलकित

15 सितम्बर 1980 को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने शिला स्मारक का परिदर्शन कर अपनी सम्मति अंकित की 'कन्याकुमारी आकर यह दृश्य देखकर मेरा हृदय पुलकित हो गया है कि विवेकानन्द सन्देश में सहस्रों, लाखों के विश्वास ने किस प्रकार इस अद्वितीय स्मारक को संभव बना दिया है।

गृही-प्रचारकों की योजना स्वामी विवेकानंद के सेवा के सन्देश को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करेगी।'

हिमालय आदर्श कन्याकुमारी कृति

स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा कि हिमालय ध्यान भावना का प्रतीक है और कन्याकुमारी उस आध्यात्मिक आदर्श को प्रत्यक्ष जीवन में क्रियान्वित करने का प्रतीक बन गया है।

जहाँ रामकृष्ण मिशन में संन्यासी प्रचारक निर्माण करने की योजना चलती है वहाँ विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी में बिना संन्यास ग्रहण किए ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी तेजस्वी तरुण प्रचारकों को प्रशिक्षित करने का महान् प्रकल्प प्रारम्भ किया गया है। अब तक सैकड़ों जीवनव्रती कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित कर अरुणाचल, असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, अंडमान, कलकत्ता, चांडिल, जमशेदपुर, सिक्किम, दिल्ली, हिमाचल, अहमदाबाद, मुम्बई, मद्रास, नगरकोइल, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में शिक्षा, औषधि सेवा, योगासन शिविर आदि के सुन्दर प्रकल्प चलाए जा रहे हैं। श्री रानाडे कई बार रांची भी पधारे हैं।

संगठन तंत्र एवं समर्पण

'हिन्दू राष्ट्र का जीवन लक्ष्य' में श्री रानाडे लिखते हैं—'समर्पण की बलवती भावना के बिना हम अपने संगठन तंत्र का उपयोग भली प्रकार न कर सकेंगे। अतः संगठन तंत्र के ज्ञान के साथ ही हृदय में सम्पूर्ण समर्पण का भाव भी चाहिए।'

प्रकाशन

श्री रानाडे द्वारा संपादित ग्रन्थ एवं पत्रिकाएंहृINDIA'S CONTRIBUTION TO WORLD THOUGHT & CULTURE, (705 पृष्ठ) CHRISTIANITY IN

INDIA, FREEDOM FIGHTER, DOWRY SYSTEM, DANCE IN INDIA, INDIA IN THE EYES OF FOREIGNERS, MOTHER INDIA'S CHILDREN ABROAD, RISING CALL TO HINDU NATION, उत्तिष्ठत्त जाग्रत, YUVA BHARATI, केन्द्र भारती, केन्द्र समाचार, KENDRA PATRIKA.

मानस की झांकी

श्री रानाडे की एक सम्पादकीय टिप्पणी हैह्न'बाल मन ही नहीं, वयस्कों, प्रौढ़ों एवं वृद्धों के मन पर भी चित्रों एवं मूर्तियों का प्रभाव पड़ता है। जरा विचारिए तो सही कि आपके घरों में किनके चित्र शोभा पा रहे हैं? यदि सिनेमा के कलाकारों के चित्रों को आप लगाते हैं तो वैसे ही मार्ग की ओर आप और आपकी सन्तानें चलेंगी और उसी स्तर का चिन्तन भी चलेगा।....किसी व्यक्ति के मानस की झांकी देखनी हो तो उसके कक्ष की साज-सज्जा को देखकर आप प्रायः ठीक अनुमान पर ही पहुँचेंगे। महापुरुषों के प्रेरक चित्र, सुन्दर प्राकृतिक चित्र, सात्त्विक कलात्मक चित्र, धार्मिक श्रद्धा जगाने वाले मनोरम चित्र इत्यादि से अपना घर सजाना सत्संस्कार की दिशा में आवश्यक और उपयोगी पग है।'

37 वर्ष का पावन संपर्क

सन् 1945 में बिलासपुर संघ शिक्षावर्ग में मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ। तब वे वर्ग के बौद्धिक प्रमुख थे। 1961 में दिल्ली संघ शिक्षावर्ग में अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख थे। मेरे प्रति उनका स्नेह एवं आत्मीयता का व्यवहार अन्त तक बना रहा। उन्होंने एक जीवन व्रती श्री नागेन्द्र भट्ट को रामकृष्ण मिशन मोराहाबादी, रांची में रखा था। वहाँ उस प्रचारक को कुछ कठिनाई होने लगी। मा. एकनाथजी के आदेशानुसार हमने उसे संस्कृति विहार में रख लिया। सन् 1974 में श्री रानाडे रांची पधारे तथा संस्कृति विहार का सविस्तार परिदर्शन कर हार्दिक आशीर्वाद दिया। 1974 के अन्त में पुनः मुम्बई में अ.भा. विद्यार्थी परिषद के रजत जयन्ती सम्मेलन में उनसे भेंट हुई। 1975 में आपात स्थिति घोषित हो जाने पर उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि वे रांची पधार रहे हैं तथा वे मेरे निवास पर ही ठहरेंगे। किन्तु आपात स्थिति में मेरे शरीर के ही बन्दी बना लिए जाने के कारण श्री एकनाथजी को मूरी स्टेशन से ही लौट जाना पड़ा। 1966 में मैं अपनी माताजी के साथ कन्याकुमारी जाकर श्री एकनाथजी से मिला। 1979 में उन्होंने मुझे अरुणाचल प्रदेश में विवेकानन्द केन्द्र द्वारा संचालित 7 विद्यालयों के शिक्षक शिक्षण शिविर में व्याख्यानमाला हेतु आमंत्रित किया। 1980 में वे अस्वस्थ हुए। फरवरी एवं मार्च 1982 में मैं उनसे पुनः मिल कर आया। वे स्वास्थ्य लाभ करते-करते वैकुण्ठ लाभ कर गये।

सफलता का रहस्य

श्री रानाडेजी की सफलता का रहस्य था

(क) हीन भावना का नितान्त अभाव

(ख) उत्साह एवं सतत प्रयत्न

(ग) मानवीय संबंधों के हित में, लोक संग्रह हेतु, प्रत्येक पत्र का अनिवार्य उत्तर।

जीवन मंत्र

श्री एकनाथ रानाडे का जीवन मंत्र जो वे जीवनव्रती कार्यकर्ताओं को दीक्षा मंत्र के रूप में देते थे, बड़ा मार्मिक है—

वयं सुपुत्रा अमृतस्य नूनं, तवैव कार्यार्थमिहोपजाताः।
निष्काम बुद्ध्याऽऽर्त विपन्न सेवा, विभो! तवाराधनमस्दीयम्।।

अर्थात्

हम अमृत सुपुत्र हैं निश्चय, जन्मे ईश्वर कार्य निमित्त।
स्वार्थ-मुक्त सेवा दुःखियों की, विभो! तेरा पूजन अर्चन।।

'.....जगत् में जो सर्वश्रेष्ठ एवं साहसी होते हैं उनके भाग्य में कष्ट ही लिखा होता है।.....इस जगत् में किसी न किसी को कष्ट उठाना ही पड़ेगा। मुझे आनन्द है कि प्रकृति के सम्मुख बलि के रूप में जिनको खड़ा किया गया है उनमें से मैं एक हूँ.....'

—स्वामी विवेकानन्द

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के महान् पक्षधर श्री छागला

श्री मुहम्मद करीम छागला के स्वर्गवास से भारत की राष्ट्रीय शक्तियों की एक अपूरणीय क्षति हुई है। वे मुसलमान होते हुए भी मुस्लिम कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता से मुक्त ऐसे उदार एवं आदर्श राष्ट्रवादी महापुरुष थे कि उनका जीवन भारतीय मुसलमानों के लिए एक जीवित आदर्श के रूप में प्रस्तुत किये जाने योग्य है।

राष्ट्रधर्म बनाम व्यक्तिगत धर्म

उन्होंने राष्ट्रधर्म को व्यक्तिगत आस्था से सदा ऊँचा माना तथा अपनी व्यक्तिगत निष्ठा की रंगत से राष्ट्रीयता की ज्योति को कभी भी धूमिल या रंजित नहीं होने दिया। वे रहीम, रसखान, दारा शिकोह एवं नजीर की परम्परा के राष्ट्रवादी मुस्लिम थे जो इस्लामी मजहब को मानते हुए भी भारत की राष्ट्रीय संस्कृति को व्यक्तिगत मजहब से ऊँचा मानकर इसकी उचित प्रतिष्ठा करते थे।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा

वे बड़े साहस से यह सत्य घोषित करते थे कि संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है तथा यदि भारतीय मुसलमानों को भारतीय राष्ट्र के प्रति वफादार रहना है तो उन्हें भारत की मूल-संस्कृति के प्रति वफादार रहना होगा, न कि अरब की संस्कृति के प्रति।

हिन्दू निन्दकों को करारा तमाचा

जब पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जुल्फिकार अली भुट्टों ने हिन्दुओं को घिनौनी गाली दी थी तब भी श्री छागला ने भुट्टों को करारा तमाचा लगाया था। उन्होंने भुट्टों को स्मरण कराया कि वह स्वयं हिन्दू की संतान होकर हिन्दू को गाली देने के बहाने अपने समस्त पूर्वजों को गाली दे रहा है।

99 प्रतिशत मुसलमानों में हिन्दू रक्त

उन्होंने बड़ी ऐतिहासिक घोषणा की कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश

के ९९ प्रतिशत मुसलमानों की नसों में हिन्दू रक्त ही है। अतः हम सब मजहब से मुसलमान होते हुए भी जाति से हिन्दू ही हैं।

मजहब से मुसलमान—संस्कृति से हिन्दू

श्री छागला का यह दृष्टिकोण दक्षिण-पूर्व एशिया के मुसलमानों में अभी तक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित है। एक बार पाकिस्तान के राजदूत ने इन्डोनेशिया के राजदूत से पूछा कि आप कैसे विचित्र मुसलमान हैं जो अपने देश में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन एवं रामायण, महाभारत की लीलाएं करते रहते हैं। इसके उत्तर में इन्डोनेशिया के राजदूत ने कहा—'यह सच है कि इतिहास की किसी उथल-पुथल में हमने अपना महजब बदल लिया है किन्तु हमने न ही अपना रक्त बदला है और न ही पूर्वज। रामायण और महाभारत इन्डोनेशिया के इतिहास एवं संस्कृति में इतने रच-पच चुके हैं कि उन्हें वहाँ की संस्कृति से विलग किया ही नहीं जा सकता।' यदि भारत के अधिकांश मुसलमान छागलाजी एवं इन्डोनेशिया के मुसलमानों के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानने वाले होते तो कदाचित् हमारी मातृभूमि का विभाजन ही न होता। यदि अब भी श्री छागलाजी के स्वर्गवास पर उनकी ज्वलन्त प्रेरणा को रावी एवं गंगा के आर-पार बसने वाले मुसलमान बन्धु अपना लें तो भी तीन टुकड़ों में बंटा हुआ यह महान् देश पुनः एक हो सकता है।

न्याय एवं लोकतन्त्र के पक्षधर

श्री छागला न्याय, लोकतंत्र एवं नागरिक अधिकारों के इतने महान् पक्षधर थे कि उन्होंने सिद्धान्त के लिए अनेक बड़े-बड़े पदों को ठुकरा दिया, किन्तु सिद्धान्त पर आंच नहीं आने दी। उन्होंने आपातस्थिति का भी डटकर विरोध किया था और अभी हाल ही में उन्होंने सरकार द्वारा लादे गये आन्तरिक सुरक्षा कानून का बड़े साहस एवं निर्भीकता से विरोध किया। श्री छागला विधि के एक महानतम विशेषज्ञ, न्याय के श्रेष्ठतम पक्षधर, लोकतन्त्र के सजग प्रहरी, संस्कृति के निष्ठावान पुजारी तथा राष्ट्रीयता के इतिहास दुर्लभ आदर्श थे।

संस्कृति के अधिष्ठान पर शिक्षा की पुनर्रचना

कुछ वर्ष पूर्व श्री छागला ने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के दिल्ली में राष्ट्रीय अधिवेशन में मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए विद्यार्थी परिषद् के इस मन्तव्य का बड़ा प्रबल समर्थन किया कि भारत में शिक्षा का इस प्रकार से भारतीयकरण होना चाहिए जिससे भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने वाले नवयुवकों को अनायास ही भारत की आत्मा का दर्शन प्राप्त हो सके।

छागला-स्मारक रजत पदक

संस्कृति विहार, रांची द्वारा उनके सम्मान में एक छागला स्मारक रजत पदक

प्रारम्भ किया जा रहा है जो प्रतिवर्ष श्री छागला की पुण्यतिथि पर छोटानागपुर क्षेत्र के उस मुस्लिम सज्जन को प्रदान किया जायेगा जो छागलाजी की विचार-धारा के अनुरूप भारत की मौलिक संस्कृति की महानतम सेवा करने वाला प्रमाणित होगा।

'यदि तुम आओ तो तुम्हारे साथ, यदि नहीं तो तुम्हारे बिना, यदि तुम विरोध करो तो उसकी अवहेलना करते हुए, मैं अपना कार्य निरंतर करता रहूंगा।'

—वीर सावरकर

स्वातंत्र्य के अमर साधक तथा लोकतन्त्र के महान् रक्षक : राष्ट्रपति वराहगिरि वेंकटगिरि

राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के स्वर्गवास से एक महान् देशभक्त, संविधान संरक्षक, विधिवेत्ता, श्रमिक वर्ग का सच्चा हितैषी तथा राष्ट्र का एक अद्वितीय मार्गदर्शक हमसे छिन गया है।

श्री गिरि जब आयरलैण्ड में शिक्षा प्राप्ति हेतु गये थे तब वे वहाँ के महान् देश-भक्त तथा बाद में वहाँ के राष्ट्रपति पद पर आसीन होने वाले प्रो. डी. वलेरा की स्वातंत्र्य निष्ठा एवं राष्ट्रभक्ति से बहुत प्रभावित हुए थे। यह अद्‌भुत संयोग है कि डी. वलेरा आयरलैण्ड के राष्ट्रपति बने तथा उनके शिष्य वी.वी. गिरि भारत के राष्ट्रपति बने। श्री डी. वलेरा श्री गिरि एवं अन्य शिष्यों को बार-बार यह कहते थेह्र 'भूल में मत रहो, ये आयरलैण्ड वास्तव में आर्यलैण्ड ही है। आर्यावर्त्त से आर्य जाति के लोग ही सारे यूरोप में फैलते हुए आयरलैण्ड तक पहुँचे थे।' वे आग्रह पूर्वक कहते थे, 'आर्यावर्त्त एवं आयरलैण्ड दोनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्त होना है।'

श्री गिरि के भारत में पहुँचने पर उन्हें महात्मा गांधी जैसे महान् राष्ट्रनिर्माता का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। डी. वलेरा ने स्वाधीनता का जो सिद्धान्त दिया, गांधीजी ने उसके लिए साधना का पथ दर्शाया और स्वाधीनता की सिद्धि के उपरान्त श्री गिरि प्रदेश एवं देश के अनेक पदों को सुशोभित करते हुए एक दिन स्वाधीन भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए तथा स्वाधीन आयरलैण्ड के राष्ट्रपति (अपने गुरु) डा. डी. वलेरा से हाथ मिलाने गये। तब स्वाधीन आर्यावर्त्त एवं स्वाधीन आयरलैण्ड ने गद्‌गद भाव से परस्पर वन्दना-अभिवन्दना की।

श्री गिरि ने अपने स्वर्गवास से केवल तीन सप्ताह पूर्व Illustrated Weekly में एक बड़ा विचारोत्तेजक लेख दिया था Poll for one party rule (एक दल के शासन हेतु चुनाव) जिसमें उन्होंने लिखा था कि राष्ट्रपति के रूप में वे केवल कुर्सी की शोभा बढ़ाने वाले और प्रधानमंत्री की हर बात को आंख मूंद कर मानने वाले

रबर स्टाम्प राष्ट्रपति नहीं थे। उन्होंने आपातकाल की घोषणा पर इन्दिरा गांधी को जोरदार पत्र लिखा था कि यह इमरजेन्सी एक स्वाधीन लोकतन्त्र के लिए अपमानजनक है। उन्होंने लिखा कि आपातकाल के विरुद्ध सलाह देने वाले भीमसेन सच्चर जैसे अनेक प्रतिष्ठित नेताओं को मीसा में बन्दी बना दिया गया। इन्दिरा गांधी उन्हें भी बन्दी बना सकती थी जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते। वे पुनः देश की अतिशय निर्धनता से दुःखी हो कर अश्रु प्रेरक वाणी में कहतेह्न'इस आजाद देश के सामान्य नागरिक को भोजन, कपड़ा और आवास की उतनी सुविधाएं भी प्राप्त नहीं हैं जितनी कि कारागार में कैद भुगतने वाले किसी चोर, डाकू या कातिल जैसे अपराधियों को भी प्राप्त होती है।' इसीलिए भुखमरी का शिकार एक गरीब सज्जन भूख से लाचार होकर अपराधी बनता है ताकि जेल में रोटी, कपड़ा और कोठरी तो मिल जाएगी।

उन्होंने अपने उक्त लेख में लिखा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी देश में एक ही दल की तानाशाही लादने के लिए चुनाव करवा रही हैं ताकि विरोधी पक्ष को बिल्कुल कुचल दिया जाये तथा राज्यों की स्वायत्तता समाप्त कर केन्द्र के हाथ में सर्वसत्ता केन्द्रित हो जाय। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि इमरजेन्सी का सबसे बड़ा सलाहकार प्रधानमंत्री का पुत्र संजय गांधी ही था तथा अब पुनः उसी की व्यूह रचना के अनुसार विरोधी पक्ष को कुचल कर, पुराने नेताओं को किनारे धकेल कर उग्रवादी, अधीर एवं सत्तालोलुप जवानों को आगे लाकर राज्यों की स्वायत्तता भी शून्यप्रायः कर के, केन्द्र को सर्वशक्तिमान बनाकर उसी संजय गांधी को देश का सर्वोच्च शासक बनाने का राजनीतिक खेल खेला जा रहा है।

यह दैवी संयोग की बात है कि 23 जून की प्रातः श्री संजय गांधी 34 वर्ष की अल्पायु में ही एक हृदयविदारक दुर्घटना से स्वर्गवासी हुए तथा 24 जून प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में श्री गिरि 86 वर्ष की आयु में शान्तिपूर्वक परलोक सिधार गये। उन वृद्ध एवं युवा नेता, दोनों को आज सारा राष्ट्र यथायोग्य श्रद्धा के फूल चढ़ा रहा है।

स्वामी रामानन्द और उनका जीवनदर्शन

दिव्यालोक से दीप्त मुखमण्डल, सतत वाहिनी सुर सरिता के निर्मल जल की भांति छलछल करता हुआ अधरों का मुक्तहास! अनन्त ज्ञान की गम्भीरता में डूबी हुई पलकें, उनके भीतर अलसाये हुए अधखुले नयनतारक, उनके भीतर की मानव हृदय की गहराइयों तक पहुँचने वाली अनुभवी दृष्टि, श्वेत-धवल, सात्त्विकता एवं तप से पवित्र हुई इकहरी काया, उन्मुक्त विशाल वक्षस्थल और उसके भीतर गिरे हुए को उठाकर, भटके हुओं को राह पर लाकर, अज्ञान की तमिस्रा में ठोकरें खाते हुए को प्रकाश में लाकर, पल भर में उस अलौकिक अनन्त प्रेम की शीतल छाया में खींच लाने वाला अनुभूतिपूर्ण शक्तिशाली हृदय, त्याग-तपस्या और सेवा का साकार स्वरूप और सत्यं, शिवं-सुन्दरम् की साक्षात मूर्ति—यह है, पूज्य स्वामी रामानन्दजी का धुंधला-सा चित्र। जो शब्दों की तूलिका तथा भावों के रंगों से बनाए नहीं बनता और नयनों के सम्मुख से हटाए नहीं हटता।

यह अलौकिक विभूति स्वामी रामानन्दजी कौन थे? यह सम्भवतः बहुत कम लोगों को ज्ञात है, किन्तु जिनको तनिक भी परिचय प्राप्त है, वे तो उनके नाम पर प्राण न्योछावर करने वाले बन गये हैं। भारत में राम का नाम ही सुधा-वर्षी है। राम के आनन्द में लीन रहने वाले तो कई महापुरुष इस धरती पर हुए किन्तु दो अलौकिक तत्त्वद्रष्टा 'स्वामी रामानन्द' के पवित्र नाम से देश भर में विख्यात हुए। एक तो मध्यकाल के पुण्यश्लोक स्वामी रामानन्दजी हुए जो काशी-अघनाशी की जनाकीर्ण वीथियों में उद्घोषणा की वाणी में गाते थे—

रामहिं केवल प्रेम पियारा,
जानि सके तो जान निहारा।
जाति पांति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।

इन्हीं महात्मा की चरण-रज के स्पर्श से काशी के एक जुलाहे, सन्त कबीर के ज्ञान-कपाट खुल गए थे।

प्रस्तुत वाक्य पुष्पाञ्जलि के पूज्य देवता हैं आधुनिक पंजाब के एक विलक्षण

आत्मदर्शी स्वामी रामानन्दजी, जिनकी जीवनधारा और विचारधारा मध्यकालीन स्वामी रामानन्दजी की स्मृतियों को हरा करने वाली है।

जालंधर के नर-नारी जिनसे भली-भांति सुपरिचित हैं, जिस जालंधर में उनके सहस्रों भक्त आज तक भी उनकी यशोगाथा गाते हैं, जहाँ पर 'आत्मनिवास' में उनकी स्मृति में, उन मुक्तात्मा की जन्म-जयंती के उपलक्ष में साधना-सप्ताह मनाया गया है, स्वामीजी की लगभग पैंतीस वर्ष की लघुजीवन गीतिका के अधिकांश स्वर जालंधर नगर में ही गूंजते रहे हैं। जिस स्वनामधन्य महिला को इस महापुरुष के लालन-पालन का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे पूज्या, भावीजी आज भी जालंधर में निवास करती हैं। जिस महान् नारी को स्वामीजी ने अपनी माता कह कर पुकारा वे उनकी धर्ममाता श्रीमती सुमित्रा देवीजी भी जालंधर में निवास करती हैं।

आपका जन्म युक्तप्रांत में ललितापुर गांव में एक पंजाबी क्षत्रिय परिवार में हुआ। बचपन से ही आप बड़े आदर्शवादी रहे हैं। प्रत्येक परीक्षा में आप सर्वप्रथम आते रहे। सामान्यतया आपकी शिक्षा आर्यसमाजी संस्थाओं में ही हुई। आपका आदर्श भी वही रहा जो आर्यसमाज का है। स्वामी दयानन्दजी के जीवन का उन दिनों आप पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामीजी पर महात्मा बुद्ध का प्रभाव भी पड़ा। इन्होंने महात्मा बुद्ध को मैत्री, प्रेम और निस्वार्थ सेवा की प्रतिमा के रूप में देखा। इनके शब्दों में, उनकी करुणा की मुझे थाह नहीं मिलती, उनकी मैत्री की सीमाएं नहीं दीखती, उनके प्यार का पारावार नहीं पाता, उनके त्याग का कोई अंत नहीं। उनके त्याग में मनुष्यत्व की पराकाष्ठा दीखती है और साथ ही वह दिव्य भी है। मानो देवता होते हुएह्लदेवताओं से भी ऊँचे होते हुए इस स्थूल पृथ्वी पर विचरे थे।

विचारधारा

स्वामीजी की विचारधारा के मुख्य बिन्दु निम्नांकित हैं।

मोक्षह्लमोक्ष प्रकृति से छुटकारा पाना नहीं, प्रकृति को आत्मसात् करना है। स्वामीजी के विचार इस प्रकार हैंह्लआध्यात्मिक विकास मन, बुद्धि और शरीर से परे होना मात्र नहीं है। कैवल्य ही हमारे योग की अन्तिम कोटि, विश्राम स्थली नहीं है। आध्यात्मिक विकास जो आत्मा की सम्पूर्ण सन्निहित शक्तियों को पूर्णरूपेण प्रकृति में अभिव्यक्त करना है, स्थूल जगत् तक में ले आना है, यह प्रकृति से भागने का योग नहीं है। यह प्रकृति को भी आत्मभूत करने का योग है, आत्मा के पूर्णत्व को प्रकृति में प्रकट करना है—यही इस आध्यात्मिक विकास का लक्ष्य है।

गृहस्थ महिमाह्लस्वामीजी गृहस्थ जीवन को प्रभु भक्ति के मार्ग में बाधा न मानकर भक्ति की एक साधना ही समझते हैं। उनके अनुसार, गृहस्थ जीवन तो

साधन है। यह व्यक्ति को निर्मल और उज्ज्वल कर सकता है। यह प्रभु की सेवा का परम सौभाग्य है। आंखें खोलकर पहचानो तो सही।

ईश्वर बुद्धि से परेह्नअध्यात्म ज्ञान बुद्धि से परे की वस्तु है। इसका ज्ञान आत्मा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। स्वामीजी ने लिखा है—'मनुष्यत्व के द्वारा देवत्व नहीं तो दिव्यत्व अवश्य है। बुद्धि के क्षेत्र तक हम पहुँचे हैं! यही मनुष्यत्व की विशेषता है। बुद्धि का ज्ञान विश्लेषण से, भेद से होता है, परन्तु वस्तु ज्ञान तो इससे परे भी है और कहीं उत्तम। समाधि ज्ञान तो महाचैतन्य का क्षेत्र अभी हमारे आगे है। वह ज्ञान जिससे सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु भी अपने रहस्य को सहज में खोल देता है। और उससे परे वह ज्ञान जिसमें सभी का एकीकरण एक में होकर एक का दर्शन अनेक में होता है, वह ज्ञान जिसे समता कहा है। इस ज्ञान की अभिव्यक्ति तो अभी बाकी है।'

आत्मसमर्पणह्न'प्रभु के आगे माथा झुकाना है तो झुकाओ फिर जैसे वह ले चले उसी रास्ते पर खुशी से चलो। जो अनुभव वह कराये वह स्वीकार करो। वह दर्द देगा तो सहन की ताकत भी देगा, वह साथी बना साथ रहेगा। वह प्यार से भर देगा ठीक समय पर। वह देने में कंजूस नहीं, वह पगला नहीं। दूसरे का हित, उसका विकास ही सबसे बड़ी बात उसके सामने रहती है। उसकी लीला विचित्र है, वह खूब खेलता है। कभी रास्ता खोलता लगता है और कभी बन्द करता है। वह सभी रास्तों से व्यक्ति को जाग्रत करता हुआ ले जाता है।'

आदर्श साधुह्न'आदर्श साधु' क्या है? जो भगवान् को साथ ले, उसका हो जाए पूरी तरह से। जिसका अपनापन सध जाय अर्थात् मिट जाए प्रभु में। प्रभुमय हो जाना, उसी के लिये जीना, उसी में जीना। यही आदर्श पथ की ऊँची साधना है।'

आत्मानं विद्धिह्नअविद्या के अंधकार में पड़े हुए मानवों को आत्म-जागरण का संदेश देते हुए स्वामीजी कहते हैं, 'घर में रखी वस्तु भी हाथ से दूर हो सकती है, यदि हम उसे पहचानते नहीं। ऐसे ही भगवान् भी यदि हम उसे पहचानते नहीं, यदि उसकी समीपता को प्रतीत नहीं करते, यदि हमने नहीं जाना कि वह तो हमारे हृदय में विशुद्ध स्वरूप में सदैव विराजमान है और उससे कभी बात नहीं की तो सचमुच वह हमसे अति दूर है। इतना दूर कि हमारी कल्पना की उड़ान तक भी वहाँ न पहुँच पायेगी। यदि उसे अपने भीतर नहीं खोजते तो वह कहीं भी मिलने का नहीं।'

4 जनवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

सन्त कबीर ने धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक-क्रांति का सूत्रपात किया था

महात्मा कबीर शान्ति के यशस्वी कवि और आत्मा के अमर गायक थे

भारत का सच्चा इतिहास केवल राजाओं, रानियों का अथवा आक्रमणों और युद्धों का किस्सा मात्र नहीं है, वह तो उसकी चिरंतन जीवी शाश्वत आत्मा का अमर तराना है—आध्यात्मिक साधना का वह अजस्र प्रवाह जो मानव के अन्तरतम से झरने के रूप में फूट कर अबाध गति से सभी राजनैतिक उद्वेलनों के भीतर से भी सदा प्रवहमान रहता हुआ शासनों और रूढ़ियों के विकृत प्रतिबन्धों को खण्ड-खण्ड करता हुआ शाश्वत गति से बहता है। मध्यकालीन भारत के पुण्यश्लोक सन्तकवि महात्मा कबीर एक ऐसी अद्‌भुत आध्यात्मिक क्रान्ति के मन्त्रदाता थे जिसके कारण न केवल भारत का ही वरन् सकल मानवता का शीर्ष उन्नत हुआ है। यदि कभी मानवता की ऐसी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदुर्लभ आत्माओं की गणना हो, जिन्हें 'मानवता के गौरव' तथा 'धरती के फूल' कहलाने का सम्मान प्राप्त है तो अमर वैभव तथा शाश्वत गौरव के उस मन्दिर में हमारे इस 'शान्ति के यशस्वी कवि' तथा 'आत्मा के अमर गायक' महात्मा कबीर का पूज्य आसन अवश्य होगा। कबीरजी का पावन नाम आने वाले युगों में यश के अमर तरानों में सदा गूंजता रहेगा।' इन शब्दों में प्रो. हरवंशलाल ओबराय, अध्यक्ष दर्शन विभाग, डी. ए. वी. कालेज जालन्धर तथा भूतपूर्व संयोजक पंजाब प्रादेशिक हिन्दी, साहित्य संगम ने कबीर जयन्ती के पावन पर्व पर सन्तकवि कबीर को एक वक्तव्य में श्रद्धांजलि समर्पित की।

क्रांतदर्शी कवि कबीर के दर्शन के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा हैह्न

'कबीरजी की कविता एक युगान्तरकारी रचना है। संत कबीर संसार की उन महानतम विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने अपने सबल विचारों की सत्य एवं अहिंसा रूपी पूर्ण शक्ति से इस महादेश में एक धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संक्रांति

का सूत्रपात किया। कबीरजी के रहस्यवादी गीतों से स्फूर्ति प्राप्त कर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गीतांजलि के अमर गीतों की रचना प्रारम्भ की तथा विश्व में सम्मान पाया। कबीरजी के निर्मल तथा पवित्र धार्मिक विचारों से प्रभावित हो गुरु नानक ने 'सिख धर्म' की नींव रखी जिन की धर्म पुस्तक 'गुरु ग्रन्थ' में कबीरजी के दोहे तथा शब्द गूंज रहे हैं। कबीरजी के ही उदात्त सांस्कृतिक आदर्शों से प्रेरणा पाकर महात्मा गांधी ने सरल जीवन तथा उच्च विचार का पुनः उद्घोष किया।'

प्रो. ओबराय ने सभी साहित्य एवं संस्कृति के प्रेमियों से अपील की है कि वे सन्तोष तथा शान्ति के देवता भारत की महान् आत्मा महात्मा कबीर को अपने हृदय की हरी-भरी क्यारियों के श्रद्धासुमन चढ़ा कर अपने महान् सांस्कृतिक कर्तव्य का पालन करें।

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही परिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के अधिक समीप पहुंच जाता है।

—रामधारीसिंह दिनकर

महामना मालवीयजी का उद्‌बोधक सन्देश

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला, मल्लशाला प्रति पर्व महोत्सवः।।

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

1. राष्ट्र जागरण के लिये ग्राम-ग्राम में सभा होनी चाहिये (जिससे गांव की उन्नति का सामूहिक विचार होता रहे)।
2. ग्राम-ग्राम में सामाजिक एकता का निर्माण करने हेतु सामूहिक रूप में पवित्र भगवद्‌कथा होनी चाहिये।
3. प्रत्येक ग्राम में पाठशाला हो (जिससे विद्या का प्रसार हो, सामाजिक चेतना जागे, अपराध कम हों, लोग रामायण, महाभारत आदि पढ़कर भारत की प्राचीन महिमा जानें)।
4. प्रत्येक ग्राम में मल्लशाला हो (जिससे बालक और तरुण प्रतिदिन कुश्ती, कबड्डी, भारतीय खेल खेलें, तेल मालिश करें, बजरंग बली की जय बोलें तथा वज्र जैसे अंगों वाले बन जावें)।
5. प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक सांस्कृतिक पर्व (मकर संक्रांति, वसन्त, वर्ष-प्रतिपदा, होली, श्रावणी, गुरुपूर्णिमा, तुलसी जयन्ती, श्री कृष्णजन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली, गीता जयन्ती आदि) पर एक विराट सामूहिक महोत्सव होना चाहिए (जिससे समाज के सभी घटकों में यह भावना जागे कि वे एक ही पावन संस्कृति भागीरथी में अवगाहन कर रहे हैं)।

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सोगताः।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम्।।

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

सभी भारत धर्मी भरत सन्तानों, सनातन धर्मी, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, देव समाजी, प्रार्थना समाजी, सिक्ख समाजी, जैन समाजी, बौद्ध समाजी, शैव, शाक्त, वैष्णव, लिंगायत, निर्गुण मार्गी, सगुण मार्गी, कबीर पंथी, दादूपंथी, राधा

स्वामी, स्वामीनाथ धर्मी इत्यादि-इत्यादि, सभी को चाहिये कि वे अपने-अपने विशेष व्यक्तिगत धर्म (उपासना पद्धति) का पालन करते हुए (अपने समाज धर्म की रक्षा हेतु) एक-दूसरे से परस्पर प्रेम एवं आदर का व्यवहार करें।

बहुकृत्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तत्वं भयस्थाने हा पुत्रक! विहन्यसे।।

(महाभारत से मालवीयजी द्वारा उद्धृत)

'हे पुत्र! तुम्हें बहुत काम करना है, किन्तु तुम कुछ उद्योग नहीं कर रहे हो। यह जागने का समय है, किन्तु तुम सो रहे हो, तुम्हारे सामने भय का स्थान उपस्थित है, किन्तु तुम विश्वास किये निश्चिन्त पड़े हो। हे प्यारे पुत्र! तुम इस तरह से मारे जाओगे। जागो! जागो!'

मैंने सदा ही सनातनी हिन्दू होने का दावा किया है। क्योंकि—

मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों में और इसलिये अवतारों व पुनर्जन्म में विश्वास करता हूँ।

वर्णाश्रम धर्म का सिद्धान्त मुझे स्वीकार्य है, किन्तु आज के विकृत और भोंडे रूप में नहीं, अपितु मूल वैदिक रूप में।

गो रक्षा के प्रति मेरा सामान्य से अधिक आग्रह है।

मूर्ति पूजा में मुझे अविश्वास नहीं है।

और मैं कट्टर हिन्दू हूँ इसलिये मैं समस्त सृष्टि से प्रेम कर सकता हूँ।

—महात्मा गांधी

महामहिमामण्डित महर्षि मेँहीँ परमहंस के चरणकमलों में

सादर समर्पित

अभिनंदन पत्रम् प्रथम

ओइ महामानव आशे।
दिके दिके रोमांच लागे, मर्त्य धूलिर घाशे घाशे।।
सुर लोके बेजे उठे शंख, नर लोके बाजे जय डंक।।
एल महाजन्मेर लग्न।
आजि अमा रात्रिर दुर्गतोरण गत धूलि तले हये गेल भग्न।
उदय शिखरे जागे मा भैः मा भैः, नव जीवनेर आश्वासे।
जय जय जय रे मानव-अभ्युदय, मन्द्रि उठिल महाकाशे।।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमृत वाणी से प्रस्फुटित इस महामानव अभिनन्दन में हम रांची निवासी नर-नारीगण अपने हार्दिक अभिनन्दन के अन्तःस्पन्दित स्वर मिला कर गा रहे हैंह

ओइ महामानव आशे।
धन्य हुआ महापुरुष आगमन।
दशों दिशाएं रोमांचित हैं, धरणी के तृण तृण में स्पन्दन।
धन्य हुआ महापुरुष आगमन।।
देव लोक में शंख बज उठे, धरती में जय डंक बज उठे।
यह महापुरुष प्राकट्य लग्न !
आज अमा रात्रि दुर्ग तोरण धूलि तले हों भग्न ! !
उदय शिखरे अभय दान ध्वनि, नव जीवन आश्वासन।

जय, जय, जय ! महामानव ज्योति ! भू नभ में अभिनन्दन।।

धन्य हुआ महापुरुष आगमन ! !

हे सन्तशिरोमणि! आप जैसे दिव्य आध्यात्मिक अवतारी पुरुष की चरण धूलि का स्पर्श कर यह छोटानागपुर की मनोरम-वनस्थली तथा स्वर्णरेखा-तट-शोभिता रम्य रुचिर रांचीनगरी, कल के इतिहास और आज के प्राविधिक विकास की साक्षी यह भूमि, अपने को धन्य-धन्य मान रही है।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार सच्चित्सुखसागरेऽस्मिन्, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

सचमुच इस संसार में जन्म प्राप्त कर जिसका चित्त अनन्त सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर में लीन हो जाता है, उसके जन्म से उसका कुल पवित्र हो जाता है, उसकी जन्मदात्री माता धन्य हो जाती है और सारी वसुन्धरा उसकी चरणधूलि को चूम कर पुण्य-पावन हो जाती है।

हे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, साधनसिद्ध, लोकप्रसिद्ध महात्मन्! आप विगत एक शताब्दी के इतिहास के प्रत्यक्ष द्रष्टा तथा सहस्राब्दियों की आध्यात्मिक परम्परा के सजीव साक्षी हैं। इस भूमि का चप्पा-चप्पा अपने इतिहास के मुंदे हुए नेत्र खोल कर आप जैसे इतिहास निर्माता का दर्शन कर धन्य हो रहा है। छोटानागपुर की पहाड़ियाँ विंध्याचल की ही पूर्वी श्रेणियाँ हैं। त्रेतायुग में महर्षि अगस्त्य ने सर्वप्रथम विंध्याचल पार किया। भगवान् राम ने यहीं के वनवासी वानरों को हृदयों से लगाया तथा उन्हीं की सेना संगठित कर त्रैलोक्य विजयी रावण की लंका को धूलि-धूसरित कर दिया।

हे महान् भारत की महानता के मूर्तिमन्त महिमापुरुष! महाभारत काल में जनमेजय के नागयज्ञ से बचकर एक पुण्डलीक नामक नाग वाराणसी होते हुए सपत्नीक रांची जिले के सुतयाम्बे ग्राम में आया था। एक बालक को जन्म देने के पश्चात् वह परिवार लुप्त हो गया। यहाँ के एक वनवासी राजा मादरा मुण्डा ने देखा कि एक सुन्दर अबोध शिशु पत्तों के दोने में पड़ा हुआ है जिसके मुख को धूप से बचाने के लिए एक काले नाग ने उसके सिर के ऊपर अपना फण फैला रखा है। वनवासी राजा ने उस बालक को पुत्रवत् पाला-पोसा तथा उसी फणिमुकुटनाथ शाहदेव से छोटानागपुर के नागवंशी राजाओं की परम्परा का सूत्रपात हुआ। हे महर्षे! उसी नागवंश के एक धर्मात्मा राजा ऐनीनाथ शाहदेव ने 1791 में यहाँ के भक्त वनवासी जनों की सुविधा के लिए यहीं इसी क्षेत्र के सामने ऊँची पहाड़ी पर जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण करवाया। उसी नागवंशी राजाओं की परम्परा में ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव हुए जो इसी क्षेत्र के राजा थे, सन् 1857 में भारत की स्वाधीनता हेतु शहीद चौक रांची में बलिदान हुए। उन्हीं की स्मृति में यह शहीद

मैदान है जहाँ यह सत्संग महाधिवेशन हो रहा है तथा उन्हीं के राज्य की भूमि में आज एशिया का विशालतम अभियंत्रण निगम स्थापित है जिसके सभापति इस महाधिवेशन में मुख्य अतिथि के पद को सुशोभित कर रहे हैं।

हे करुणा सागर एवं अहिंसावतार! यह भूमि बुद्ध, महावीर, अशोक, शंकराचार्य, चैतन्य की चरण धूलि से, बिरसा भगवान् की क्रान्ति ज्वाला से, परमहंस योगानन्द की साधना, महात्मा गांधी, स्वामी प्रणवानन्द, स्वामी शरणानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, माँ आनन्दमयी के पदार्पण से पवित्र हो चुकी है।

अध्यात्म सरोवर के पूर्ण पंकज! पश्चिम ने लूटने, जीतने या संग्रह करने वालों को महान् गिना, जैसे सिकन्दर महान्, नेपोलियन महान्, बिस्मार्क महान्, जूलियस सीजर महान्। भारत ने भोगी, लोलुप, लुण्ठक, परपीड़क को तुच्छ एवं पतित माना। भारत में महानता की कसौटी है त्याग, वैराग्य, समर्पण और आत्मविजय।

यहाँ बुद्ध और महावीर राज्य त्यागने के पश्चात् महान् बनते हैं। अशोक भी राजा के रूप में चण्ड अशोक था पर भिक्षु बन कर अशोक महान् हो गया। भारत की आध्यात्मिक फुलवारी के सुन्दरतम पुष्प हैं—ऋषि-मुनि, योगी, भिक्षु, अर्हत, मनीषी, भक्त-सिद्ध और सन्त। हे महर्षे! आप में वैदिक ऋषियों के समान परम सत्य का दर्शन है, मुनियों का मनन एवं मौन साधना है, योगियों की अटल शान्ति एवं समाधि सुधा है, बौद्ध भिक्षुओं की सम्यक् सम्बोधि है, जैन अर्हतों के समान आत्मनिष्ठा है, ज्ञानियों की मनीषा है, भक्तों का हृदयस्पर्शी। भक्तियोग है, सिद्धों की सिद्धियाँ करतलगत हैं और हजारों वर्ष की सन्त-परम्परा आपके विग्रह में अखण्ड एवं समग्र रूप से सजीव हो उठी है। इसलिए आपका वन्दन, अभिवन्दन भारत की समस्त अध्यात्म परम्परा का समग्र एवं शाश्वत अभिनन्दन है।

हे जन्मजात योगी, हे बाल ब्रह्मज्ञानी महापुरुष! जब आप मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे तब बिल्डर्स नाम की अंग्रेजी कविता की चार पंक्तियाँ व्याख्या के लिए पूछी गईंह्न

'For the structure that we raise
Time is with material's field,
Our todays and yesterdays
Are the blocks with which we build.'

इसकी व्याख्या में आपने उस 14-15 वर्ष की किशोर अवस्था में लिखाह्न

'हम लोगों का जीवन मन्दिर अपने सुकर्म या कुकर्म रूपी प्रतिदिन की ईंटों से बनता या बिगड़ता है। मानव का जीवन मन्दिर उसके ही किये पुण्य और पाप कर्म रूपी ईंटों से निर्मित होता है। अपवित्र और कलुषित कर्मों से मानव जीवन का

प्रसाद भी मैला कुचैला, अरुचिकर और घृण्य बन जाता है और पुरुष के पवित्र एवं सर्व कल्याणकारी कर्मों से जीवन मन्दिर प्रोज्ज्वल, स्वच्छ तथा आलोकमय हो जाता है और आध्यात्मिक साधना या परमात्म भक्ति ही इस मन्दिर की सर्वोत्कृष्ट ईंट है। इन ईंटों से बना जीवन-मन्दिर विश्व का दिव्यादर्श और सभी का आकर्षण केन्द्र बन जाता है।'

हे सन्त प्रवर!

प्रायः लोग पश्चिम की यान्त्रिक भौतिकवादी चकाचौंध से मोहान्ध हो भारत की अध्यात्म साधना एवं सन्त-परम्परा को प्रतिगामी, व्यर्थ एवं राष्ट्र प्रगति में बाधक मानने लगे हैं। देश के 56 लाख साधु बाबाओं के केवल खाने-पीने और भांग, चरस का दम लगाने का दृश्य देखकर लोग उन्हें परोपजीवी, दूसरों की कमाई चाटने वाले तथा समाज पर व्यर्थ भार मानने लगे हैं। एक बार भगवान् बुद्ध भिक्षा के लिए एक गृहस्थ के द्वार पर रुके। गृहस्थ ने तिरस्कारपूर्वक डांटते हुए कहा, 'बाबा! तू स्वस्थ शरीर का, हाथ-पांव वाला व्यक्ति है। तू काम न करके भीख क्यों मांगता है? देख, मैं प्रतिदिन खेत में हल चलाता हूँ, बीज बोता हूँ, खाद देकर खेत में उत्पादन करता हूँ। मैं किसी के द्वार पर भीख मांगने नहीं जाता। तू भी परिश्रम से खेती कर और स्वावलम्बी बन कर बिना भीख मांगे खा।' भगवान् बुद्ध ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'हे बन्धु! मैं भी खेती करता हूँ। मानव का मन मेरा खेत है, उत्साह एवं पुरुषार्थ मेरे बैल हैं, तप मेरा हल है, तितिक्षा मेरी छड़ी, सत्य और अहिंसा मेरे बीज हैं, करुणा मेरी खाद है और श्रद्धा जल है। इससे जो खेती होती है वह अमृत की खेती होती है। इसे न कोई लूट सकता है न जला सकता है।' यह सुन कर वह गृहस्थ किसान भगवान् बुद्ध के चरणों में गिर गया एवं उनसे दीक्षा की याचना की। हे महर्षे! आप भी कोटि-कोटि मानवों के मनों में जो आध्यात्मिकता एवं नैतिकता के बीज बो रहे हैं उसके फलस्वरूप मानवता का भविष्य परमोज्ज्वल होगा। आपका कथन है, ''कानून से नैतिक पतन छूट नहीं सकता। कानून चलता है और घूस-फूस चलते ही हैं। अतः कानून की अपेक्षा मनुष्य के नैतिक जीवन के उत्थान पर बल देना जरूरी है। ऐसा जीवन जहाँ झूठ और प्रपंच के लिए कोई स्थान नहीं। जहाँ झूठ नहीं वहाँ घूस कहाँ से आये? इसलिए सदाचार का पालन करो। सदाचार के पालन से स्वराज्य में सुराज्य हो जायेगा।

हे अमृत पुरुष! आज विदेशी धन के प्रभाव से यत्र-तत्र सामूहिक धर्म परिवर्तन कर धर्मप्राण भारत का स्वत्व लूटने का दुश्चक्र चल रहा है। यदि भारत में हिन्दू ही अल्पमत में हो गये तो धर्म निरपेक्षता एवं लोकतन्त्र का नाश तो हो ही जायेगा, भारत की अध्यात्म-परम्परा भी खण्डित हो जायेगी तथा भारत फिर भारत नहीं रहेगा।

हे धर्म गुरु! हे धर्मपुराण ज्योतिर्धर योगेश्वर! आपने धर्म की महत्ता के विषय में गीता योग प्रकाश में कहा ही है—'धर्म युद्ध में युद्ध करना कर्तव्य पालन करना है।' अतः धर्म रक्षा युग का परम धर्म है।

हे महामहिम महापुरुष! हम आपके स्वागत में क्या पाद्य-अर्घ्य आचमनीय आसन पूजन निर्माल्य भेंट करें? सच्चे साधकों के हृदय कमल में ही आपका सिंहासन है, जहाँ त्रैलोक्य का ऐश्वर्य आपका भूषण है, सारी विचित्र घटनाएं आपकी लीला। आपकी वाणी ही बीज मंत्र है। बीज में जो रहस्य है वह क्या अनाज की दुकान में लगी अन्न की ढेरी में या पाकशाला में पकते हुए भोजन में प्रकट होता है? हम हाथ जोड़ कर, शीश नवा कर प्रार्थना करते हैं कि आपकी अमृत वाणी का बीज मंत्र हमारे चित्त उद्यान में अंकुरित हो, हम उसे संयम एवं तप का सुरक्षा वलय प्रदान करें, साधना की खाद और श्रद्धा का जल चढ़ावें, जिससे उस बीज की अन्तर्निहित श्यामलता, कोमलता, पुष्प रंग, विचित्रता और सुन्दर फलों की मधुरता प्रकट हो। इस प्रकार उसके स्पंदन, कम्पन, छाया, रूप, रस, गन्ध से देह-मन, प्राण परितृप्त हो तथा आत्मा के पूर्णानन्द की लहरों से जग एवं जीवन धन्य-धन्य बन जावें।

इन तुच्छ वाक् पुष्पों से ही आपका अभिनन्दन करते हुए

हम हैं आपके भक्त एवं
दर्शनाभिलाषी सेवक तथा
रांची नगर के नर-नारीगण

पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंस के चरणकमलों में अभिनंदन पत्रम् द्वितीय

हे भारत की आध्यात्मिक रंगभूमि को सुशोभित करने वाले, सन्तों की दिव्य परम्परा के युग दुर्लभ युगावतार! इस धर्म प्राण भारत देश के अहिंसा-प्रवण मगध प्रान्त के प्रकृति-प्राण छोटानागपुर क्षेत्र की, स्वर्ण-रेखा-तट-तीर्था इस रम्य रुचिर रांचीनगरी में हम आपका हार्दिक अभिनन्दन कर स्वयं कोटिशः आनन्दित हो रहे हैं।

हे सन्त-शिखामणि! आप त्रिताप-तप्त, क्लेश-संतप्त संसार को अपने ज्ञान के अमृत छींटे मार कर पुनः जीवन दान करने वाले हैं, यह पृथ्वी आप जैसे सन्तों की पावन चरण धूलि के स्पर्श से ही अभी तक जीने योग्य बनी हुई है। आप सन्त ही मानव जाति के प्राण, सृष्टि के सौभाग्य एवं संसार रूपी पादप के अमृत फल हैं।

सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल सन्त

की सूक्ति के अनुरूप इस भवाटवी में जलने वाले जीवों को सोमरस की शीतलता का अमृत बांटने वाले और मुक्ति का चंदन तिलक लगाने वाले हे सन्त भगवन्त! हम आपके पावन पादपद्मों में कोटिशः नमन करते हैं।

यह छोटानागपुर की रम्य वनस्थली उस विंध्याचल पर्वत की ही पूर्वी पर्वत शृंखला है जिसे महर्षि अगस्त्य ने पार कर सर्वप्रथम दक्षिणापथ में प्रवेश किया था। यहीं से दंडकवन प्रारम्भ हो जाता है और यहीं के वनवासी वानरों को प्रभु रामचन्द्र महाराज ने भक्ति का अमृत पिला कर एक विशाल सेना के रूप में संगठित किया, जिसने त्रिलोकजयी रावण का कलेजा कंपा दिया। इसी रांची जिला में भक्तराज हनुमानजी का जन्म स्थान आंजन प्रसिद्ध है, जहाँ अभी तक गोदी में हनुमानजी को लिये अंजनी माता का प्राचीन मंदिर वर्तमान है। रोहतास गढ़ से प्रारम्भ कर इस सारे छोटानागपुर क्षेत्र को महाभारत काल में करुषखण्ड कहा जाता था और यहाँ की सब से बड़ी उरांव वनवासी जाति के लोग अभी तक अपने को करुष या कुड़ख कहते हैं। जनमेजय के नागयज्ञ से बचकर जो एक पुण्डलीक नामक नाग वाराणसी होते हुए रांची जिला के सुतियाम्बे नामक ग्राम में आया था, उसी के अनाथ बच्चे को मादरा मुण्डा

नामक एक वनवासी राजा ने पाला और उसी 'फणिमुकुट नाथ साहदेव' से यहाँ नागवंशी राजाओं की परम्परा प्रारम्भ हुई।

भगवान् बुद्ध एवं महावीर ने इस मनोरम वनस्थली में विहार किया था, अशोक ने सिमडेगा के मार्ग से कलिंग-विजय हेतु प्रयाण किया और हृदय परिवर्तन के पश्चात् केतुंगा (थाना बानो) में एक विशाल बौद्ध विहार बनवाया। भगवान् शंकराचार्य ने पुरीधाम से जो धर्म दिग्विजय प्रारम्भ की उसके अन्तर्गत उन्होंने टांगीनाथ महादेव (थाना चैनपुर) एवं देवाकी (थाना घाघरा) में विशाल शिव मन्दिर स्थापित किये। श्री श्री चैतन्य महाप्रभु ने बुण्डु, तमाड़ के रम्य वनों को देखा तो उन्हें वृन्दावन की याद आ गई। यहीं के बिरसा भगवान् ने विदेशी शासन एवं विदेशी पादरियों के विरुद्ध एक विराट क्रान्ति की और वह वीर स्वदेश एवं स्वधर्म के लिए बलिदान हो गया। आचार्य स्वामी प्रणवानन्द, परमहंस योगानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने भी इस भूमि को अपने चरणों से पावन किया है। आज आप जैसे भक्ति के भूषण, स्वधर्म के रक्षण एवं वैराग्य के संरक्षण स्वरूप महर्षि का प्रथम बार चरण चुम्बन कर इस धरती का रोम-रोम, घास का प्रत्येक तिनका मानो रोमांचित हो उठा है तथा दशों दिशाएं एक नूतन इतिहास रचना की अपेक्षा से पुलकायमान हो रही हैं।

दिके दिके रोमांच लागे, मर्त्य धूलिर धासे धासे।

हे तपोनिधे! हे भारत के सच्चे भाग्य विधाता! आप भारत की राजनीतिक स्वाधीनता को एक दृढ़ आध्यात्मिक आधार प्रदान कर भारत की नींव मजबूत करने के महत् कार्य में लगे हैं। 1930 में गांधीजी द्वारा प्रणीत स्वाधीनता आन्दोलन में जब सत्याग्रही यह गीत गाते थेह्न

आओ वीरों, मर्द बनो अब, जेल तुम्हें भरना होगा।
सत्याग्रह के समर क्षेत्र में, सन्मुख थिर डटना होगा।

तब आप उसी को आध्यात्मिक पुट देकर गाया करते थे—

आओ वीरों मर्द बनो अब, जेल तुम्हें तजना होगा।
मन निग्रह के समर क्षेत्र में, सन्मुख थिर डटना होगा।

हे मुक्तिदाता सद्गुरु! आप अज्ञानियों के लिए ज्ञानांजन, साधकों के साधन और सिद्धों के समाधान हैं। जिस प्रकार अमूर्त ऋतुराज के आगमन की सूचना मिलते ही सारी वनश्री प्रसन्नतापूर्वक पुष्पवती, फलवती, रसवती होकर बड़ी सज-धज से उसके स्वागत के लिए तत्पर रहती है, उसी प्रकार निर्गुण, निराकार परमब्रह्म, परमात्मतत्त्व ही दयाभाव से प्रेरित हो सगुण-साकार श्री सद्गुरु रूप में विश्व कल्याण के लिए जगती तल पर अवतरित होता है।

अपने जीवभाव से ऊबकर जीवात्मा ही नहीं, देवत्व से ऊबकर देवतागण भी ब्रह्मनिवास में प्रविष्ट होने का शुभ योग श्री सद्गुरु रूपी ज्योतिषी से पूछने आते है।

हे अर्थ-शुचिता के व्याख्याता और कर्मयोग दीक्षाता! आज देश में और पूरे मानव समाज में जो भ्रष्टाचार व्याप्त हो रहा है उसका मूल कारण अर्थ-शुचिता का अभाव ही है। बिना शुद्ध आजीविका के शुद्ध विचार और विवेक सम्भव नहीं हैं। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव 'सोने की सूई' और 'रूपे का धागा' लेकर भक्ति भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि में पिरोता रहा। कबीर 'झीनी झीनी चदरिया' बुनता रहा तथा रविदास जूता गांठते हुए प्रत्येक टोभ में हरि नाम गुंजाता रहा। हे सन्तकुलशेखर! आपने अपने दीक्षागुरु बाबा साहब के आदेशानुसार केले और बांस की खेती की तथा साधनाकाल में अपने को स्वावलम्बी बनाकर एक आदर्श मर्यादा निभाई।

हे परम दयालो!

गुजरात के एक सन्त कहते—'किसान को मेरे पास आने के लिए समय कहाँ है? उसे तो धूप में खेती करके अन्न पैदा करना और दुनिया को खिलाना है। मैं ही उसके खेत में जाकर उसके पीछे-पीछे चलूंगा। वह हल चलाकर जमीन को जोते और मैं अपनी वाणी चला कर उसके दिल और दिमाग को जोतूं। दोनों अपनी-अपनी खेती करेंगे।' बैल के पीछे-पीछे चलता था किसान और किसान के पीछे-पीछे चलता था साधु।

बजाय इसके कि रांची के लोग आप जैसे अमृत के मेघ एवं ब्रह्मानन्द के सरोवर के पास पहुँचते, आप स्वयं चलकर यहीं पधारे हैं ताकि रांची के व्यस्त लोग भी अमृत से वंचित न रह जावें। हम किन शब्दों में आपका धन्यवाद करें?

हे परमहंस प्रभो! एक बार सन्त कबीर का ब्रह्मज्ञानी पुत्र कमाल वर्षा से बचने हेतु एक झोंपड़ी के किनारे खड़ा हो गया। झोपड़ी से, चमड़े की मशकें सीने वाला दादू चमार बाहर आया और कमाल को भीतर ले जाकर एक गन्दे से चमड़े को पोंछ कर उस अतिथि को बैठने के लिए आसन दिया। कमाल के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। दादू ने क्षमायाचना करते हुए कहाह्न'मेरी झोपड़ी में चमड़े के सिवा और कुछ आसन योग्य नहीं है।' कमाल ने कहाह्न'जैसा सरल, स्वाभाविक सच्चा प्रेम तुमने दिखाया है वैसा बहुत कम में होता है। जैसे मैं तेरी झोपड़ी के द्वार पर खड़ा था, वैसे ही मेरे प्राण प्रभु भी इसी भाव से रोज इस जीवन के द्वार पर खड़े रहते हैं और रोज ही वे व्यथातुर अन्तर् से लौट जाते हैं। जो कुछ भी सामान्य वस्तु मेरे पास है उसे तो मैं इस तरह सहज भाव में नम्र एवं निरभिमान होकर उनके सम्मुख बिछा नहीं पाता हूँ। यही मानव जीवन की करुण कहानी है।'

हे भक्तिमन्त, भगवन्त, सन्त, सिद्ध, सद्गुरु! आज हम दादू के समान अपना मैला-कुचैला, कंगाल की कुटिया का तुच्छ आसन देकर, तुच्छ वाणी के रूखे-सूखे पुष्पों से जो स्वागत कर रहे हैं कृपया उसे स्वीकार कर हमें आशिष् प्रदान कीजिएगा।

रांची अधिवेशन
28 अप्रैल, 1979

हम है आपके भक्त एवं
मार्गदर्शनाभिलाषी सेवकगण
रांची के नर-नारीवृन्द।

अनियन्त्रित काम, क्रोध तथा लोभ प्राणी के पतन में हेतु है। अतएव उत्थान में बाधक हैं।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती